अनादि अनिधन

जिनागम पंथ जयवंत हो

श्री मद् आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित रयणसार ग्रंथोपरि

प्रवचनवृत्ति

रयणोदय

(प्रथम भाग)

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर मुनि

अहारजी के बड़े बाबा
देवाधिदेव 1008 श्री शान्तिनाथ भगवान
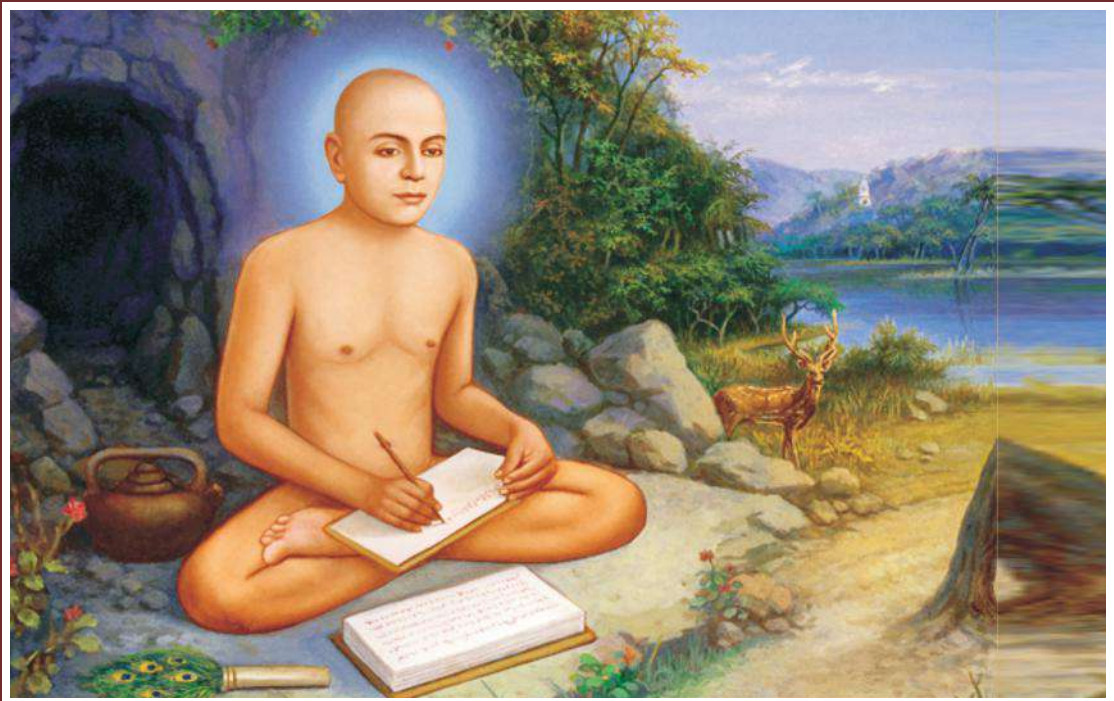
श्री मद् आचार्य कुंदकुंद स्वामी
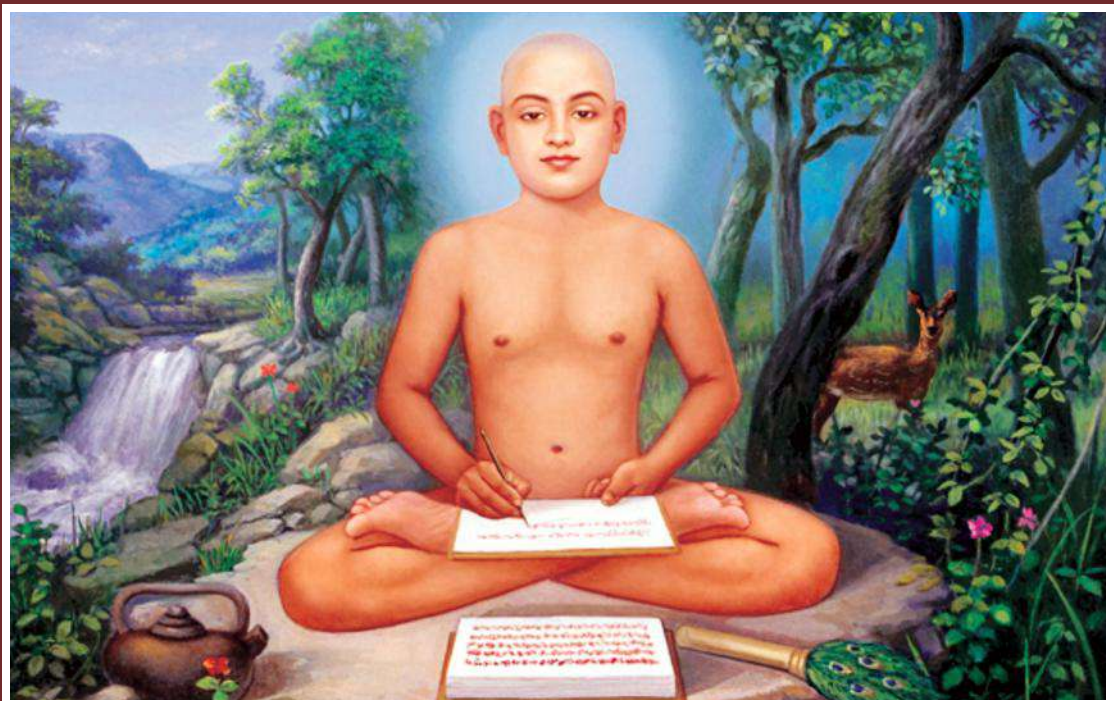
श्री मद् आचार्य पूज्यपाद स्वामी

जिनागम पंथी
वंदनीय आचार्य परंपरा

आचार्य श्री आदिसागर जी 'अंकलीकर'

आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज

आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज

आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज
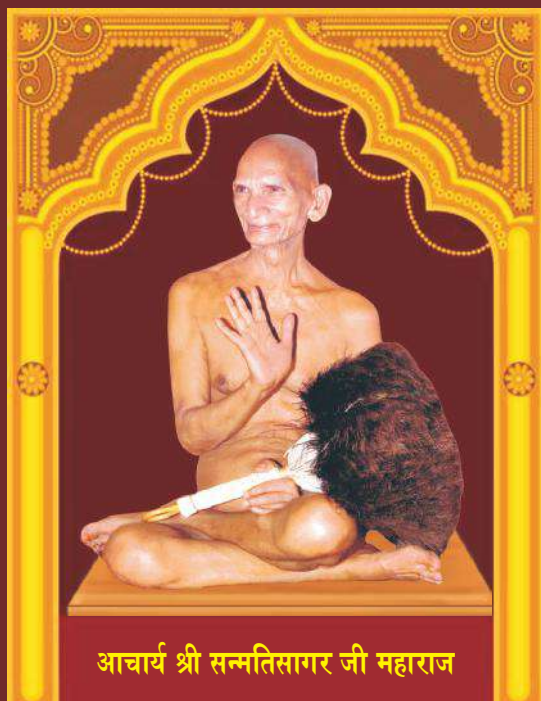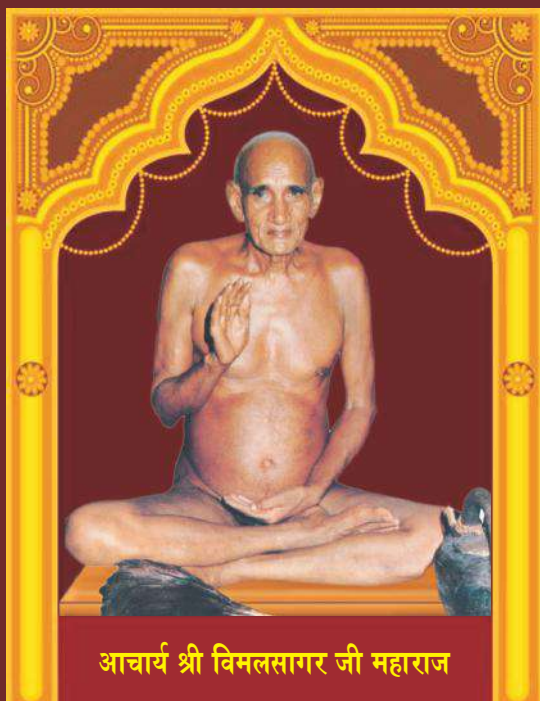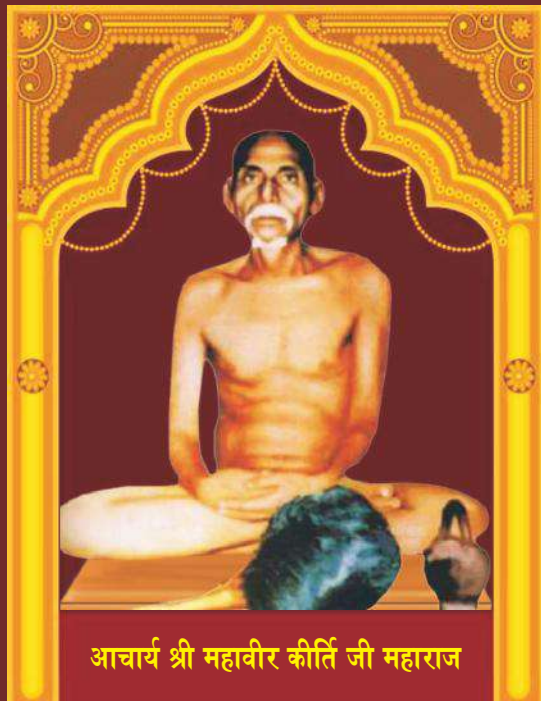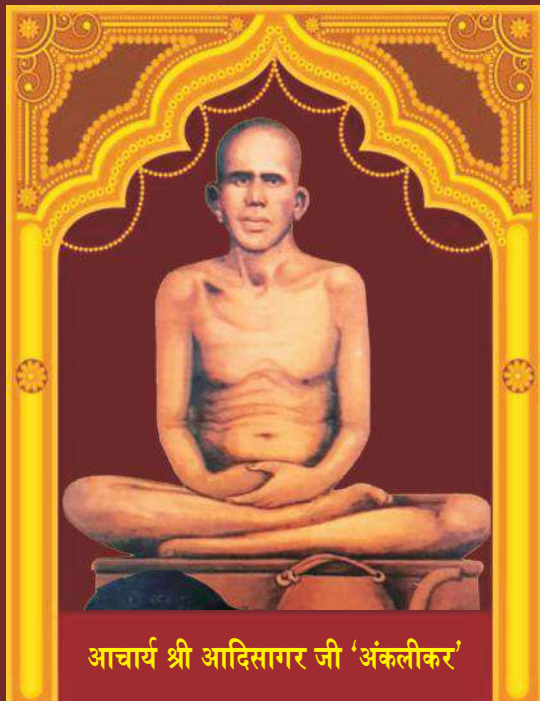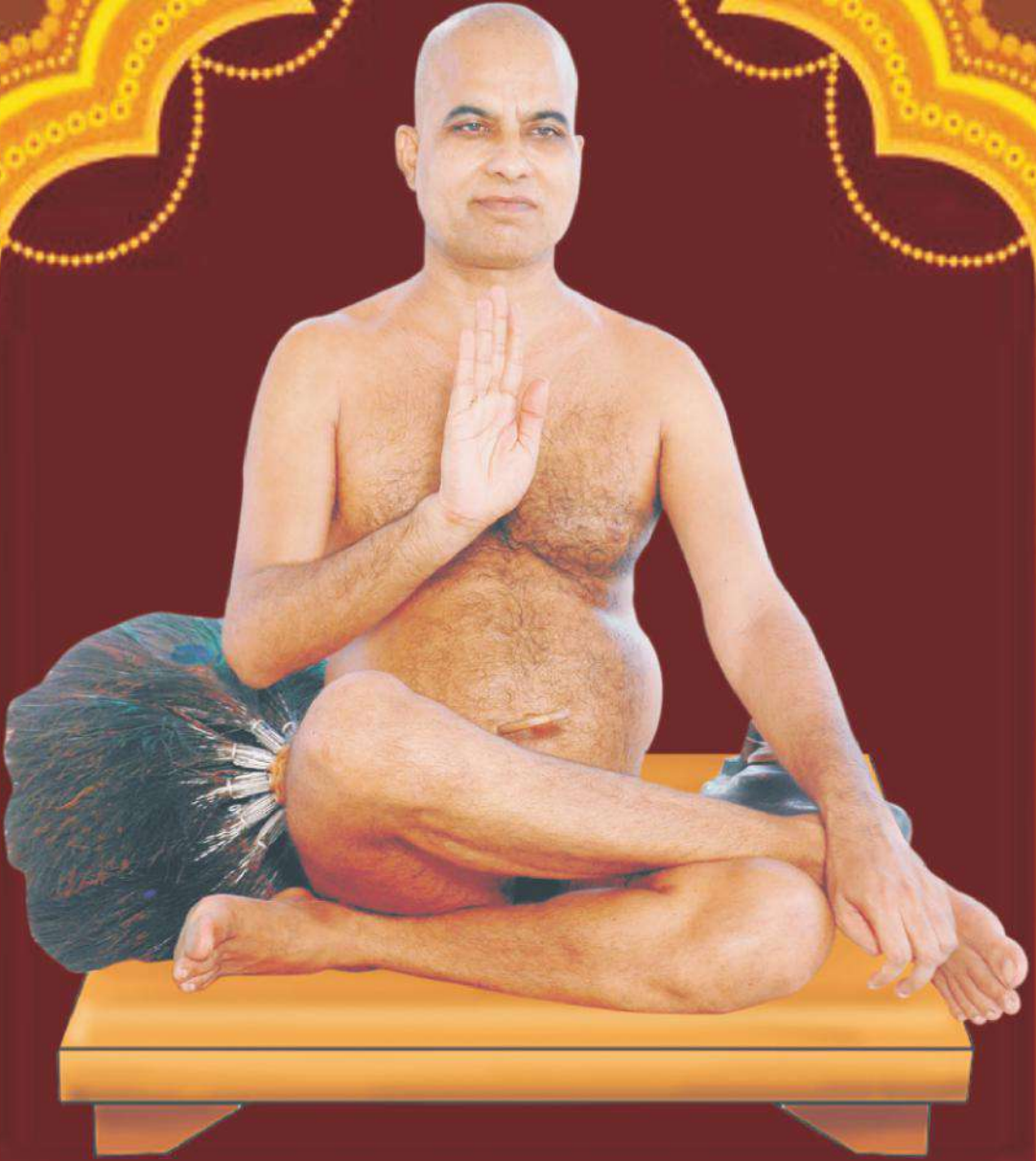
प. पू. राष्ट्रसंत सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज

भावलिंगी संत का जिनागम पंथी मुनि संघ
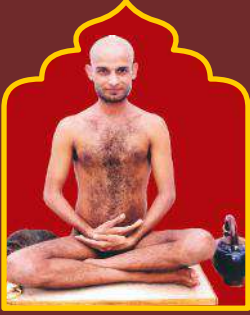
श्रमण श्री 108 विचिन्त्यसागर जी
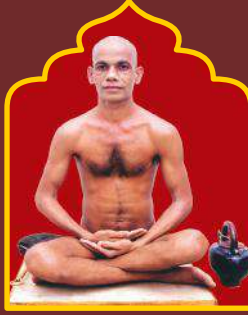
श्रमण श्री 108 विजेयसागर जी
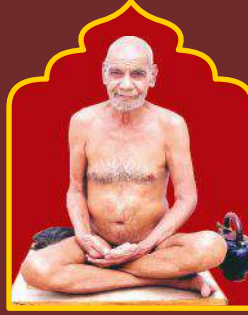
श्रमण श्री 108 विश्वार्यसागर जी

श्रमण श्री 108 विश्वार्थसागर जी

श्रमण श्री 108 विध्रुवसागर जी

श्रमण श्री 108 विव्रतसागर जी

श्रमण श्री 108 विशुभ्रसागर जी

श्रमण श्री 108 विशमसागर जी
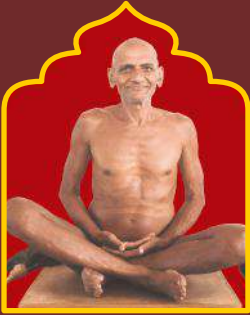
श्रमण श्री 108 विश्वांकसागर जी
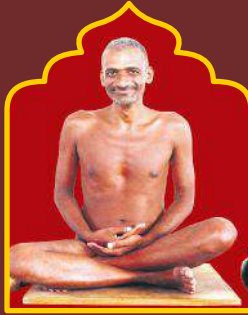
श्रमण श्री 108 विश्वार्कसागर जी
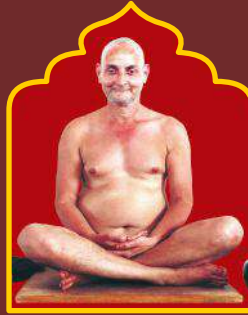
श्रमण श्री 108 विश्वांशसागर जी
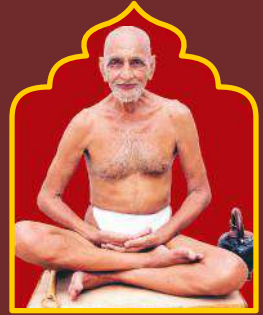
ऐलक श्री 105 विश्वज्ञसागर जी

क्षुल्लक श्री 105 विश्वाभसागर जी

बा. ब्र. अंकित भैया

भावलिंगी संत का जिनागम पंथी आर्यिका संघ

आर्यिका विद्यान्तश्री माताजी

आर्यिका विमलांतश्री माताजी

आर्यिका विक्रांतश्री माताजी

आर्यिका विश्वांतश्री माताजी

आर्यिका विध्वांतश्री माताजी

आर्यिका विजयांतश्री माताजी

आर्यिका विभ्रांतश्री माताजी

आर्यिका विनयांतश्री माताजी

आर्यिका विजितांतश्री माताजी

क्षुल्लिका विदेहांतश्री माताजी

ब्र. भगवती दीदी

बा.ब्र. विशु दीदी

बा. ब्र. नेहा दीदी

बा. ब्र. ज्योति दीदी

बा. ब्र. सृष्टि दीदी

बा. ब्र. महिमा दीदी

ब्र. सुमन दीदी

बा. ब्र. सोनाली दीदी

बा. ब्र. दीपा दीदी

बा. ब्र. रिया दीदी

बा. ब्र. गुंजन दीदी

जिनागम पंथ जयवंत हो
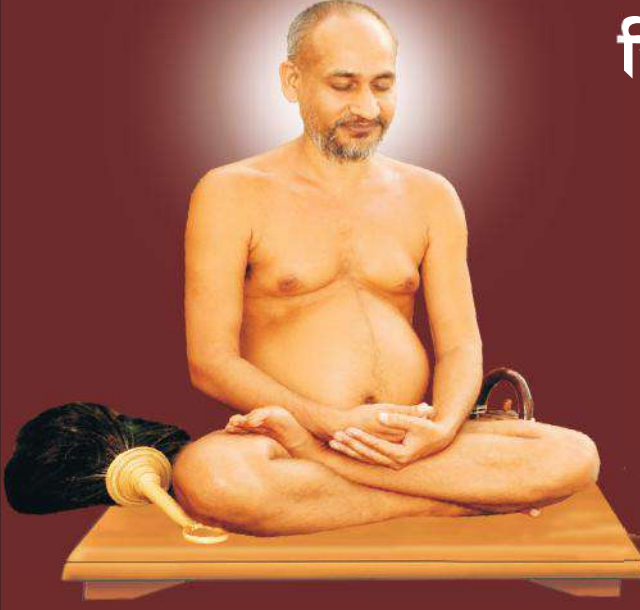
श्रीमती स्नेहलता जैन–श्री अनिलकुमार जैन

श्रीमती शैली जैन–श्री जयप्रकाश जैन, चिराग जैन

ग्रंथ भेंटकर्ता परिवार

श्रीमती अंकिता जैन–श्री प्रमित जैन

जिनागम पंथी परिवार

फर्मः जय विमर्श ट्रेडर्स, श्री जी ट्रेडर्स, छीपीटोला, आगरा (उ.प्र.)

जिनागम पंथ जयवंत हो
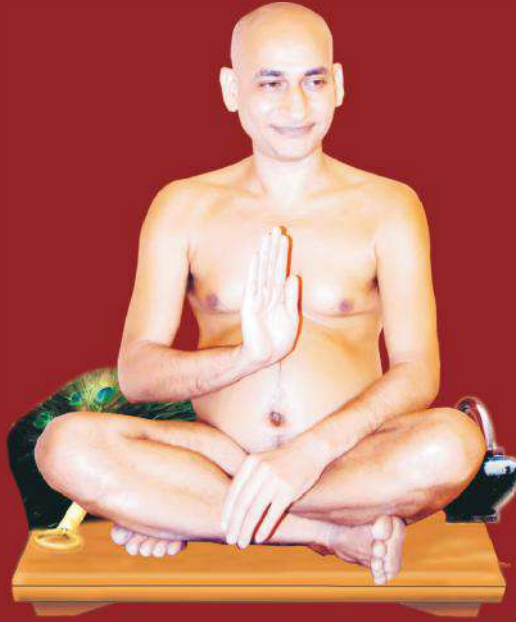
स्व. श्रीमती अनीता जैन की पुण्य स्मृति में

जिनागम पंथी परिवार

श्री माणिकचंद जैन, श्री अमित जैन-श्रीमती सुरभि जैन, श्री अनुज जैन-श्रीमती निधि जैन,
सचिन जैन, विधि जैन, इच्छा जैन एवं समस्त 'बसई परिवार'

फर्म: विमर्श कृपा ऑयल मिल, जैन नगर खेड़ा, फिरोजाबाद
महावीर ट्रेडर्स, दिल्ली. मो.: 9911426975

राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच (रजि.)

के अंतर्गत

जिनागम पंथ ग्रंथमाला

उद्देश्य

मूल जिनागम का संरक्षण, प्रकाशन, प्रचार-प्रसार
एवं लोकोपयोगी, धार्मिक-नैतिक साहित्य का
निर्माण व प्रकाशन

शुभाशीष/प्रेरणा

प. पू. श्रमणाचार्य विमर्शसागर जी महाराज

स्थापना ग्रंथमाला : 15 नवम्बर 2018, विमर्श उत्सव

कार्यालय : 116, भूता कम्पाउण्ड, इटावा रोड़, भिण्ड (म.प्र.)

शास्त्रदान का पुण्य अवसर

.. शास्त्र विक्रय.. ज्ञानावरणस्यास्रवा:। श्रुतात्स्याच्छ्रुतकेवली।

शास्त्र विक्रय ज्ञानावरण कर्म के आस्रव का कारण है। तथा शास्त्रदान से श्रुतकेवली होता है। ऐसा आगम वाक्य है।

जिनागम पंथ ग्रंथमाला से प्रकाशित श्रुत साहित्य का विक्रय नहीं किया जाता। सभी स्वाध्यायी जीवों के लिए निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता है। यदि आप जिनागम पंथ ग्रंथमाला के इस पवित्र उद्देश्य से जुड़ना चाहते हैं तो शास्त्र प्रकाशन के लिए शक्ति अनुसार दानराशि समर्पित कर शास्त्र दान का पुण्य अर्जित करें एवं ग्रंथमाला के सदस्य बनें।

(सदस्यता राशि - आपकी दान भावना के अनुसार) मो.- 7869841100

जिनागम पंथ ग्रंथमाला : ग्रन्थांक - 1

श्री मद् आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित

रयणसार

(गाथा 1 से 7 तक)

प्रवचनवृत्ति

रयणोदय

(प्रथम भाग)

प्रवचन वृत्तिकार

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी मुनिराज

जिनागम पंथ, प्रकाशन

जिनागम पंथ ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक - 1

मूलग्रंथ	:	रयणसार (आचार्य कुन्दकुन्द देव)
शुभाशीष	:	सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागर जी मुनिराज
प्रवचनवृत्ति	:	रयणोदय
प्रवचन वृत्तिकार	:	भावलिंगी संत श्रमणाचार्य विमर्शसागर जी
समावलोकन	:	मुनि श्री विचिन्त्यसागर जी
संचयन	:	आर्यिका विद्यान्त श्री माताजी
		आर्यिका विमलांत श्री माताजी
प्रस्तुति	:	बा. ब्र. विशु दीदी
सम्पादन	:	डॉ. श्रेयांस जैन, बड़ौत
संस्करण	:	13 फरवरी 2019 (वि.नि.सं. 2545)
प्रथमावृत्ति	:	2000 प्रति

प्राप्ति स्थान :

जिनागम पंथ ग्रंथालय
छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मो. : 9425146667

राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच
भिण्ड (म.प्र.)
मो. : 9826217291

डॉ. विश्वजीत कोटिया
आगरा (उ.प्र.)
मो. : 9412163166

अरिन्जय जैन
दिल्ली
मो. : 9810099002

मुद्रक :
पारस एन्टरप्राइजिज 'प्रिंस जैन', दिल्ली
फोन : 0120-4572108, 9811011018

परिचय की वीथियों में

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज
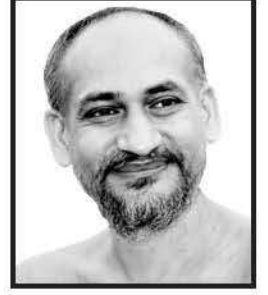
लौकिक यात्रा

पूर्व नाम : श्री राकेश कुमार जैन

पिता : श्री सनत कुमार जैन

माता : श्रीमती भगवती जैन

जन्म स्थान : जतारा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

जन्म तिथि : मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी सं. 2030

जन्म दिनांक : 15 नवम्बर, 1973, दिन : गुरुवार

शिक्षा : बी.एस.सी. (बायलॉजी)

भ्राता : दो (अग्रज राजेश जैन, अनुज चक्रेश जैन)

भगिनि : दो – (कमला, प्रियंका)

विवाह : बाल ब्रह्मचारी

खेल : बैडमिंटन, शतरंज
(विशेषता–दोनों खेल जिनसे सीखे उन्हीं के साथ फाईनल खेलते हुए चैंपियन कप विजेता)

सामाजिक सेवा : मंत्री–श्री दिगम्बर जैन नवयुवक संघ, जतारा

रुचि : अध्ययन, संगीत, पेंटिंग

सांस्कृतिक रुचि : अनेक धार्मिक, सामाजिक नाट्य मंचन

परमार्थ यात्रा

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज के प्रथम बार जतारा नगर में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रयगजरथ महोत्सव में समाज की ओर से निवेदन (सन्-1995, स्थान-मोराजी सागर, म.प्र.)

त्याग के संस्कार :

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज की जतारा नगर में वैयावृत्ति के समय आजीवन आलू प्याज एवं रात्रि भोजन के त्याग से गृह त्याग की भावना।

ब्रह्मचर्य व्रत :

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज ससंघ का विहार कराते हुए सिद्धक्षेत्र श्री अहार जी में भगवान शान्तिनाथ की चरणछाया में फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, सोमवार संवत् 2051, 27 फरवरी 1995 को आचार्यश्री से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

सामायिक प्रतिमा :

आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से पार्श्वनाथ मोक्ष सप्तमी के अवसर पर सामायिक प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। स्थान-ललितपुर क्षेत्रपाल जी, 3 अगस्त सन्-1995, गुरुवार।

ऐलक दीक्षा :

फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार, संवत् 2052, 23 फरवरी, 1996 को देवेन्द्रनगर (पन्ना) में तपकल्याणक के दिन आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से ऐलक दीक्षा ग्रहण की और नाम पाया ऐलक विमर्शसागर जी।

मुनि दीक्षा :

पौष कृष्णा 11, संवत् 2055, सोमवार दिनांक 14 दिसम्बर, 1998 को अतिशय क्षेत्र बरासो (भिण्ड) में आचार्यश्री विरागसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की और मुनि विमर्शसागर नाम पाया।

आचार्य पद घोषित :

आचार्यश्री विरागसागरजी ने 2005 को कुन्थुगिरी पर गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी सहित 14 आचार्य एवं 200 पिच्छि के मध्य आचार्य पद घोषित किया।

आचार्य पद संस्कार :

मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी सं. 2067 रविवार दिनांक 12 दिसम्बर, 2010 को बाँसवाड़ा, राजस्थान में आचार्यश्री विरागसागरजी ने आचार्य पद के संस्कार किये और नाम दिया आचार्य विमर्शसागर जी।

शान्ति भक्ति की सिद्धि

25 दिसम्बर 2015, सिद्धक्षेत्र अहार जी में भगवान श्री शान्तिनाथ स्वामी के अतिशयकारी पादमूल में, संघस्थ बा.ब्र. विशु दीदी की असाध्य बीमारी (रोग) से करूणान्वित हो पूज्य गुरुदेव ने जब लगभग 1400 वर्ष प्राचीन आचार्य-पूजयपाद स्वामी रचित शान्त्यष्टक का भावपूर्वक पाठ किया तो देखते ही देखते क्षण मात्र में दीदी असाध्य रोग से मुक्त हो गईं। तब क्षेत्र के यक्ष-यक्षणियों द्वारा गुरुदेव की महापूजा की गई और सूचित किया कि आपको अपनी निर्मल साधना से इस पंचमकाल में दुर्लभतम् शान्ति भक्ति की सहज ही सिद्धि प्राप्त हुई है। साथ ही पूज्य गुरुदेव को 'अहार जी के छोटे बाबा', 'भावलिंगी संत', 'शान्तिप्रभु के लघुनंदन' आदि संज्ञायें प्रदान की।

शब्दालंकार

रत्नत्रय के ऊर्जस्वी और तेजस्वी अलंकारों से जिनकी आत्मा का एक-एक प्रदेश अलंकृत है। सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् की दिव्य रश्मियों से आलोकित पूज्य गुरुवर विमर्शसागर जी महाराज का विराट व्यक्तित्व किन्हीं शब्दालंकारों का मोहताज नहीं है। फिर भी जगह-जगह की धर्मप्राण-समाजों, ऊर्जस्वी संगठनों एवं यशस्वी व्यक्तियों ने नाना अवसरों पर अपने मनोभावों को शब्दों में समेट कर गुरुचरणों में कई शब्दालंकार प्रस्तुत किये हैं और अपना सौभाग्य माना है।

वात्सल्य शिरोमणि—संत के जीवन का सबसे प्रभावी गुण होता है उसका अकृत्रिम वात्सल्य भाव, पूज्य गुरुवर को यह वात्सल्य की अमूल्य सम्पदा, गुरु परम्परा से विरासत में ही प्राप्त हुई है, वर्षायोग 2008 के उपरान्त उ.प्र. के आगरा नगर में पंचकल्याणक के अवसर पर आगरा समाज ने आपके वात्सल्य से प्रभावित होकर आपको ''वात्सल्य शिरोमणि'' के अलंकार से विभूषित किया।

श्रमण गौरव—पूज्य गुरुवर विमर्शसागर जी महाराज की अनुशासन के सुडौल साँचे में ढली निर्दोष श्रमण चर्या वर्तमान में श्रमण जगत को गौरवान्वित करती है, पूज्य श्री की आगमानुसारी चर्या से प्रभावित होकर एटा-2009 वर्षायोग में शाकाहार परिषद ने आपको ''श्रमण गौरव'' की उपाधि से अलंकृत किया और अपना सौभाग्य बढ़ाया।

वात्सल्य सिन्धु—वात्सल्य और करुणा के दो पावन तटों के बीच प्रवाहित गुरुवर की जीवन मंदाकिनी जनमानस की सतह पर बिखरी घृणा, बैर, कटुता की कलुषता को सहज ही धो डालती है। पूज्यश्री के इसी गुण आकर्षण से अनुग्रहीत हो, एटा में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के अवसर पर राजेश जैन गीतकार आदि कवि समूह ने गुरुवर को ''वात्सल्य सिन्धु'' का भाव वंदन अर्पित कर सौभाग्य माना।

आचार्य पुंगव—संतवाद, पंथवाद और ग्रंथवाद की वैचारिक संकीर्णताओं से 'असम्पृक्त' पूज्य श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज की सिर्फ चर्या ही अनुकरणीय नहीं, अपितु उनका 'चतुरानुयोग' का निर्मल ज्ञान भी ज्येष्ठ है। ऐसे ज्ञान और चर्या में श्रेष्ठ संत के महिमावंत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जतारा जैन समाज ने पंचकल्याणक 2012 के अवसर पर आपको ''आचार्य पुंगव'' की उपाधि से भूषित कर अपना मान बढ़ाया।

राष्ट्रयोगी—पूज्य गुरुवर का ''वैचारिक वैभव'' सिर्फ जैनों तक सीमित नहीं अपितु हर जाति का व्यक्ति उसे अपनी विरासत मानता है। अतः विजयनगर वर्षायोग में राष्ट्रवादी संस्था भारत विकास परिषद् द्वारा आयोजित दिव्य संस्कार प्रवचन माला में आपके राष्ट्रोन्नति से समृद्ध उपदेशों को सुनकर आपको ''राष्ट्रयोगी'' का अलंकार समर्पित किया।

सर्वोदयी संत—पूज्य आचार्यश्री की निर्भीक शैली जन मानस को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है तभी तो पूज्यवर के प्रवचनों में जैनों के साथ-साथ अजैन भी देशना को सुनकर आनंदित होते हैं, आपके उपदेशों में प्राणीमात्र के उदय की दिव्य चमक नजर आती है। तभी तो विजयनगर दिगम्बर जैन समाज ने 2012 वर्षायोग में आपको "सर्वोदयी संत" की उपाधि से नवाजा।

प्रज्ञामनीषी—श्रुताराधना के अनुपम आराधक-जिनेन्द्रवाणी के गहन प्रचारक, वाणी और कलम के अनूठे जादूगर पूज्यश्री के तीक्ष्ण प्रज्ञा और निर्मल ज्ञान से प्रभावित होकर, अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन विजयनगर-2012 में कविगण एवं भारत विकास परिषद् द्वारा "प्रज्ञामनीषी" की उपाधि से विभूषित किया गया।

राष्ट्रहितैषी—उत्तरप्रदेश के एटा नगर में स्वामी विवेकानन्द की 150वीं जन्म जयन्ति के अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद् के तत्त्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय युवा सम्मेलन में पूज्य गुरुदेव के राष्ट्रहित में समर्पित देशोन्नति परक अमूल्य चिंतन से प्रभावित हो विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा आपको "राष्ट्रहितैषी" अलंकरण से अलंकृत किया गया।

आदर्श महाकवि—सम्प्रतिकाल में कुरल शैली का सैकड़ों विषयों को हृदयंगम करनेवाले अमर महाकाव्य "जीवन है पानी की बूँद" के शब्द शिल्पी, भजन, गजल, मुक्तक, कविता, नई कविता, पद्यानुवाद, सवैया आदि अनेक जटिल विधाओं पर साधिकार कलम चलानेवाले परम पूज्य भावलिंगी संग श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज के अपूर्व काव्यात्मक अवदान से प्रेरित हो, 14 नवम्बर 2016 को अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन में, देश के ख्यातिलब्ध मूर्धन्य कवियों ने सुरेश 'पराग' के नेतृत्व में एवं पं. संकेत जी के मार्गदर्शन में सकल जैन समाज देवेन्द्र नगर की गरिमामयी अनुमोदना के संग पूज्य श्री को "आदर्श महाकवि" का अलंकरण भेंट कर निज सौभाग्य वर्धन किया।

साहित्य यात्रा

आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज यूँ तो शरीर से दुबले-पतले लेकिन गौरवर्ण, शुभ संस्थान, चौड़ा ललाट, दमकता मुखमण्डल, प्रशस्त मुद्रा, मधुर मुस्कान के धारी

हैं, ऐसे ही आचार्यश्री की लेखनी भी जनमानस के हृदय को छूनेवाली है। आचार्यश्री ने अनेक विषयों पर कलम चलाते हुए साहित्य सृजन किया है।

काव्य, प्रवचन, पाठ संग्रह–

1. हे वन्दनीय गुरुवर (काव्य)
2. गूँगी चीख (प्रवचन)
3. शंका की एक रात (प्रवचन)
4. मानतुंग के मोती
5. विमर्शाञ्जलि (पूजा पाठ संग्रह)
6. गीताञ्जलि (भजन)
7. विरागाञ्जलि (श्रमण पाठ संग्रह)
8. जीवन है पानी की बूँद (भाग–1)
9. जीवन है पानी की बूँद (भाग–2)
10. जीवन है पानी की बूँद (समग्र)
11. जीवन चलती हुई घड़ी (काव्य)
12. खूबसूरत लाइनें (काव्य)
13. समर्पण के स्वर (काव्य)
14. आइना (काव्य)
15. सोचता हूँ कभी-कभी (काव्य)
16. मेरा प्रेम स्वीकार करो (काव्य)
17. वाह क्या खूब कही (काव्य)
18. करलो गुरु गुणगान (काव्य)
19. आओ सीखें जिनस्तोत्र
20. जनवरी विमर्श
21. चटपटे प्रश्न-स्वादिष्ट उत्तर (पहेली)
22. जैन श्रावक और दीपावली पर्व
23. भरत जी घर में वैरागी
24. शब्द शब्द अमृत

गज़ल संग्रह :

ज़ाहिद की ग़जलें

विधान :

- आचार्य विरागसागर विधान
- श्री एकीभाव विधान
- श्री भक्तामर विधान (3)
- श्री विषापहार विधान
- श्री कल्याण मंदिर विधान
- श्री श्रमण उपसर्ग निवारण विधान

चालीसा : गणधर चालीसा

टीका : योगसार प्राभृत (प्राकृत/हिन्दी) : विमर्शोदया / अप्पोदया

लिपि : विमर्श लिपि, विमर्श अंक लिपि

भाषा : विमर्श एम्बिसा

पद्यानुवाद :

1. सुप्रभात स्तोत्र
2. महावीराष्टक स्तोत्र
3. लघु स्वयंभु स्तोत्र
4. भक्तामर स्तोत्र (त्रय पद्यानुवाद)
5. गोम्मटेस स्तुति
6. द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)
7. विषापहार स्तोत्र
8. एकीभाव स्तोत्र
9. पञ्चमहागुरुभक्ति
10. तीर्थंकर जिनस्तुति
11. गणधरवलय स्तोत्र
12. कल्याणमंदिर स्तोत्र
13. परमानंद स्तोत्र

बहुचर्चित भजन :

1. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य)
2. कर तू प्रभु का ध्यान
3. ऋण मुक्ति का वर दीजिये
4. शान्तिनाथ कीर्तन
5. देश और धर्म के लिये जिओ
6. माँ

प्रेरणा से प्रकाशन :

1. सिर्फ दो प्रवचन (आचार्य विरागसागरजी, सम्पादक-आचार्य विमर्शसागर जी)
2. हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा में आचार्य विरागसागर के कृतित्त्व का अनुशीलन (डॉ. लोकेश खरे)
3. समसामयिक आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा)

4. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी)
5. प्रज्ञाशील महामनीषी

प्रेरणा से स्थापित :

• आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला

• जिनागम पंथ ग्रंथमाला

उद्देश्य : मूल जिनागम का संरक्षण प्रकाशन

प्रचार-प्रसार एवं लोकोपयोगी धार्मिक, नैतिक साहित्य का निर्माण, प्रकाशन

विद्वत् संगोष्ठी :

1. समसामयिक आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा-2006)
2. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी-2007)
3. जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (बड़ौत-2014)
4. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य) राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (बडा मलहरा-2016)
5. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य) राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (देवेन्द्रनगर-2016)
6. सम सामयिक राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी एवं जैन पत्रकार, संपादक सम्मेलन (जबलपुर-2017)
7. 'रयणोदय' ग्रंथ पर राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी एवं जैन पत्रकार, सम्पादक सम्मेलन (छिंदवाडा - 2018)

संस्कार यात्रा

ऐतिहासिक पूजन प्रशिक्षण शिविर—आचार्यश्री के सानिध्य एवं निर्देशन में आयोजित पूजन प्रशिक्षण शिविर एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें जैनधर्म के संस्कार

एवं शिक्षा का प्रयोग करना सिखाया जाता है। यदि चेतनतीर्थ स्वरूप उपासक संस्कारित नहीं, तो अचेतनतीर्थ स्वरूप जिनमंदिरों का महत्व नहीं जाना जा सकता। आचार्यश्री जब अपने मधुर कंठ से शिविर का यथायोग्य संचालन करते हैं तब हर श्रावक भक्ति में ऐसा लीन हो जाता है कि 4-5 घंटे का भी पता नहीं चलता। आचार्यश्री के निर्देशन में आयोजित इस शिविर के माध्यम से आज हजारों लोग जैनत्व के संस्कारों से जुडे हैं। अभी तक 21 पूजन शिविर आयोजित हो चुके हैं–

1. महरौनी (उ.प्र.)
2. वरायठा (म.प्र.)
3. अंकुर कॉलौनी, सागर (म.प्र.)
4. सतना (म.प्र.)
5. अशोक नगर (म.प्र.)
6. रामगंजमण्डी (राज.)
7. भानपुरा (म.प्र.)
8. सिंगोली (म.प्र.)
9. कोटा (राज.)
10. शिवपुरी (म.प्र.)
11. आगरा (उ.प्र.)
12. एटा (उ.प्र.)
13. डूंगरपुर (राज.)
14. अशोकनगर (म.प्र.)
15. विजयनगर (राज.)
16. भिण्ड (म.प्र.)
17. बड़ौत (उ.प्र.)
18. टीकमगढ़ (म.प्र.)
19. देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
20. जबलपुर (म.प्र.)
21. छिंदवाड़ा (म.प्र.)

पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव :

1. नेमिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2002 (रजवांस-सागर, म.प्र.)
2. आदिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2003 (महरौनी, ललितपुर, उ.प्र.)
3. आदिनाथ पंचकल्याणक रथ महोत्सव-2004 (बूँदी-राज.)
4. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2007 (रामगंजमण्डी, राज.)
5. पार्श्वनाथ पंचकल्याणक रथोत्सव-2007 (कोटा, राज.)
6. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2008 (शिवपुरी, म.प्र.)

7. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2009 (आगरा, उ.प्र.)
8. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2010 (एटा, उ.प्र.)
9. आदिनाथ पंचकल्याणक त्रय गजरथ महोत्सव-2012 (जतारा, म.प्र.)
10. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2013 (तीर्थधाम आदीश्वरम् चंदेरी, म.प्र.)
11. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव-2015 (पृथ्वीपुर, म.प्र.)
12. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव-2015 (टीकमगढ़, म.प्र.)
13. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव-2015 (बैरवार, जतारा, म.प्र.)
14. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव-2018 (धनौरा, म.प्र.)

चातुर्मास :

1. मढ़ियाजी जबलपुर (म.प्र.) – 1996
2. भिण्ड (म.प्र.) – 1997
3. भिण्ड (म.प्र.) – 1998
4. भिण्ड (म.प्र.) – 1999
5. महरौनी (उ.प्र.) – 2000
6. अंकुर कॉलौनी (सागर, म.प्र.) – 2001
7. सतना (म.प्र.) – 2002
8. अशोकनगर (म.प्र.) – 2003
9. रामगंजमण्डी (राज.) – 2004
10. सिंगोली (म.प्र.) – 2005
11. कोटा (राज.) – 2006
12. शिवपुरी (म.प्र.) – 2007
13. आगरा (उ.प्र.) – 2008
14. एटा (उ.प्र.) – 2009
15. डूंगरपुर (राज.) – 2010
16. अशोकनगर (म.प्र.) – 2011
17. विजयनगर (राज.) – 2012
18. भिण्ड (म.प्र.) – 2013
19. बड़ौत (उ.प्र.) – 2014
20. टीकमगढ़ (म.प्र.) – 2015
21. देवेन्द्रनगर (म.प्र.) – 2016
22. जबलपुर (म.प्र.) – 2017
23. छिंदवाड़ा (म.प्र.) – 2018

वर्तमान संत संस्था में आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज एक ऐसे श्रेष्ठ संत हैं जिनके पास ज्ञान संस्कार की चर्चा एवं चर्या देखने-सुनने को मिलती है। कम-बोलना लेकिन काम का बोलना आचार्यश्री की अपनी विशिष्ट शैली है। प्रवचनों में सकारात्मक चिंतन को परोसने वाले हित-मित प्रियभाषी जिनागम पंथ प्रवतर्क आचार्यश्री पंथ-संत जातिवाद की भी खूब खबर लेते हैं। सच्चे संतत्व को प्रकाशित करनेवाले आचार्यश्री कहते हैं, पंथ-संत-जातिवाद को बढ़ावा देनेवाले श्रमण एवं श्रावक जिनधर्म के विनाशक होंगे। आचार्यों की अपनी-अपनी आचार्य परम्परा से श्रावक साधुओं के प्रति अश्रद्धानी होंगे, साथ ही सामाजिक समरसता, एकता नष्ट होगी। सचमुच आचार्यश्री का चिन्तन भविष्य की व्याख्या कर रहा है। आचार्यश्री का सरल-सौम्य व्यक्तित्व एवं पूर्वापर चिंतन ही आचार्यश्री की अलग पहिचान है। ऐसे युगचेता संत के चरणों में हम बारम्बार नमन करते हैं।

श्रमण विचिन्त्यसागर
(संघस्थ)

पूज्य गुरुदेव से संबंधित अन्य साहित्य

जीवनी साहित्य :

1. राष्ट्रयोगी : लेखक – श्री सुरेश 'सरल' जबलपुर (म.प्र.)
2. आंगन की तुलसी : लेखक – प्राचार्य श्री निहाल चन्द जैन, बीना (म.प्र.)
3. जतारा का ध्रुवतारा : लेखक : श्री कपूर चंद जैन 'बंसल' जतारा (म.प्र.)
4. भावलिंगी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
5. विमर्श धाम (महाकाव्य) : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
6. सर्वोदयी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्री ज्ञानचन्द जैन, 'दाऊ' सागर (म.प्र.)
7. विमर्श महाभाष्य : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
8. विमर्श वाटिका : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल' जतारा (म.प्र.)
9. विमर्श भक्ति शतक : लेखका – श्रीमती स्मृति जैन 'भारत' अशोक नगर (म.प्र.)
10. विमर्श शतक 1, 2 : कलेखक – पं. ब्रजेन्द्र जैन, देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
11. विमर्श वंदना : लखेक – कवि शशिकर 'खटका' राजस्थानी, विजयनगर (राज.)

विधान :

1. आचार्य विमर्शसागर विधान : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
2. संकट मोचन तारणहारे-गुरु विमर्श विधान : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)

स्मारिकायें :

1. विमर्श वारिधि (विजयनगर चातुर्मास 2012, स्मारिका)
2. विमर्श प्रवाह (बड़ोत चातुर्मास 2014, स्मारिका)
3. विमर्श गीतिका (टीकमगढ़ चातुर्मास 2015, स्मारिका)
4. विमर्शानुभूति (देवेन्द्रनगर चातुर्मास, 2016, स्मारिका)

मासिक पत्रिका :

विमर्श प्रवाह (मासिक)
प्रधान संपादक-डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत)
संपादिका-डॉ. अल्पना जैन (ग्वालियर)
प्रबंध संपादक-डॉ. विश्वजीत जैन (आगरा)
संपादक-पं. सर्वेश शास्त्री

सम्पादकीय

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

(अध्यक्ष अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद्)

"रयणोदय" ओजस्वी और प्रभावक, प्रवचनकार आशुकवि आचार्य प्रवर श्री विमर्शसागर जी मुनिराज द्वारा श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत रयणसार पर दिए गए प्रवचनों का संग्रह है। अद्यावधि रयणसार के प्रवचनों में श्रेष्ठ प्रवचनसंग्रह है, जो सामान्य से सामान्य व्यक्ति को प्रभावित करनेवाला ग्रन्थ रत्न है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रत्नत्रय हैं। इनका सर्वदेश पालन श्रमण (मुनि) करते हैं और एकदेश पालन करनेवाले श्रावक होते हैं। श्रावकधर्म में दान और जिनपूजन प्रधान हैं। मुनिधर्म में ध्यान और स्वाध्याय मुख्य हैं। जो सम्यग्दृष्टि श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार जिनपूजन करता है और मुनियों को दान देता है, वह मोक्षमार्ग पर चलनेवाला और श्रावकधर्म का पालन करनेवाला होता है। सम्यग्दृष्टि के विशेष गुणों का व्याख्यान आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने स्वयं किया है वे रयणसार की दूसरी गाथा में बताते हैं कि सम्यग्दृष्टि कौन? जो पूर्वाचार्यों के वचनों को ज्यों का त्यों विस्तारित करता है-

पुव्वं जिणेहिं भणिदं जहट्ठिदं गणहरेहिं वित्थरिदं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लदि जो हु सद्दिट्ठी॥2॥

जो व्यक्ति पूर्वकाल में जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित गणधरों के द्वारा विस्तृत किया गया और जो पूर्वाचार्यों की परम्परा से प्राप्त हुआ है उसको ज्यों का त्यों यथावस्थित वास्तविक सत्य ही प्रतिपादन करता है। निश्चय से वही सम्यग्दृष्टि है।

प्रखर प्रज्ञा और प्रतिभावन्त सन्त आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज शास्त्र ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष फल की मीमांसा करते हैं–शास्त्र स्वाध्याय से अज्ञान का नाश होता है सच्चेज्ञान की प्राप्ति होती है और जिससमय भावपूर्वक शास्त्र स्वाध्याय करते हैं, प्रवचन सुनते हैं उससमय असंख्यात गुणश्रेणी रूप पापकर्मों की निर्जरा होती है। यह तो साक्षात् फल/प्रत्यक्ष फल है। परोक्ष फल में आचार्य भगवन् कहते हैं जिसके पास शास्त्रज्ञान होता है उसे परम्परा से शिष्यों और प्रशिष्यों के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। शिष्यगण जहाँ भी जाते हैं गुरु नाम अवश्य ही स्मरण करते हैं। वे कहते हैं हमने गुरु मुख से इस शास्त्र को पढ़ा-सुना और जाना है। हमारे गुरुदेव का हम पर उपकार है। शिष्य जब अपने गुरु का स्मरण करता है तो गुरु का यश वृद्धिंगत होता है। शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा पूजा जाना, प्रशंसा होना, शिष्यों की संख्या में वृद्धि होना आदि परोक्ष फल हैं। परोक्ष फल भी दो प्रकार का होता है– अभ्युदयसुख और मोक्ष सुख। इसके बाद प्रवचनकर्ता परमपूज्य आचार्यश्री ग्रन्थकर्ता और ग्रन्थ के विषय में रोचक शैली में व्याख्यान करते हैं। ग्रन्थ रयणसार है और ग्रन्थकर्ता आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव हैं। हाँ कुछ इतिहासज्ञ विद्वान् रयणसार को आचार्य कुन्दकुन्द रचित नहीं मानते हैं किन्तु अद्यावधि आचार्य कुन्दकुन्द से भिन्न रचनाकार का उल्लेख नहीं मिला है। परम्परा से भी आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव की रचना ही रयणसार को स्वीकार किया गया है।

रयणसार गाथा तीन की प्रवचनवृत्ति में प.पू. आचार्यश्री ने तेरहपंथ-बीसपंथ संज्ञाओं को जिनागम बाह्य निरूपित किया है, तारणपंथ की चर्चा करते हुए सम्यक् दिशाबोध प्रदान किया है, और जिनागमपंथ की स्वीकारता की प्रेरणा देकर समाज को सामाजिक एवं धार्मिक एकता का सूत्र प्रदान किया है।

रयणसार की गाथा पाँच पर व्याख्यान में सम्यग्दर्शन की सम्यक् मीमांसा करते हुए प्रवचनकार पूज्य आचार्यश्री ने सम्यग्दृष्टि को सात भय, सात व्यसन, पच्चीस मलदोषों से रहित, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त तथा निशंकितादि अष्टांग युक्त सिद्ध करते हुए इन सभी गुणों को विस्तार से समझाया है। व्यसनों के त्याग की प्रेरणा दी है, क्योंकि व्यसन आत्मा को दुख देते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव भय से रहित होता है। पच्चीस मलदोषों

से भी रहित होता है। तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, आठ शंकादि मल दोष और आठ मद ये पच्चीस सम्यग्दर्शन में दोष लगाते हैं। इनसे रहित होने पर ही निर्दोष सम्यक्त्व होता है। इस सम्यग्दर्शन के अभाव में संसार परिभ्रमण करता है जीव। संसार बाहर नहीं है, वह तो हमारे भीतर है लेकिन हम सभी की सोच इसके विपरीत है क्योंकि हमारा उपयोग हमेशा बाहर की ओर होता है।

पूज्य आचार्यश्री ने संसार की अन्तरंगता को बतलाते हुए कहा है कि संसार तो आत्मा में रहनेवाला रागद्वेष, मोह, अज्ञान भाव है। अगर इनको जीत लिया जाए इनसे मुक्त हो जाए तो संसार से मुक्त हो जाते हैं। यदि राग-द्वेष-मोह मिथ्यात्व इनको न जीता जाये तो यह जीव संसारी बना रहता है।

इसप्रकार के वचन संसार की सत्ता को सिद्ध करनेवाले हैं। पूज्य आचार्यश्री पुनः समझाते हैं कि संसार कहाँ है? भीतर है या बाहर है? कहाँ है? संसार भीतर भी है और बाहर भी है। बाह्य जगत् के पदार्थ निमित्त बनते हैं और भीतर परिणाम उत्पन्न होते हैं। इसलिए यदि संसार से छूटना है तो इन बाह्य निमित्तों का भी त्याग करना होगा। कलुषित परिणामों को भी छोड़ना होगा। तभी आत्मा संसार से विरक्त हो सकता है। जबतक यह अज्ञानी जीव पर-पदार्थों में अपने सगे सम्बन्धियों में आसक्त रहता है तब तक संसार का सृजन होता है।

इसप्रकार की विवेचना में भक्तिरस-परक काव्यों के सृजेता, आदर्श महाकवि आचार्यवर्य श्री विमर्शसागर जी महाराज आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी विरचित रयणसार पर चिन्तनपूर्ण प्रवचन कर उसे ज्ञान की कसौटी पर कसते हैं। सिद्धान्त और आगम परम्परा का संवहन करते हुए अध्यात्म विद्या पुरस्कर्ता आचार्यश्री महान् तत्त्ववेत्ता हैं। रयणसार में दान की महिमा और पात्रदान के विषय में रोचक वर्णन है। इसमें दान का फल बताकर कहा गया है कि जिसप्रकार माता गर्भस्थ शिशु की सावधानी से रक्षा करती है उसीप्रकार से निरालस होकर साधुओं की वैय्यावृत्य करनी चाहिए।

रयणसार में वर्णित विषयों की अति सुन्दर विवेचना रयणोदय में है। रयणसार में जीर्णोद्धार, पूजा प्रतिष्ठादि से बचे हुए धन को भोगनेवाला मनुष्य दुर्गतियों के दुःख

भोगता है। दान–पूजादि से रहित, कर्तव्य–अकर्तव्य के विवेक से हीन एवं क्रूर स्वभावी मनुष्य सदा दुःख पाता है। इस पञ्चमकाल में मिथ्यात्वी श्रावक और साधु बहुतायत में मिलते हैं किन्तु सम्यक्त्वी श्रावक और साधु विरल हैं। गुरुभक्ति विहीन अपरिग्रही शिष्यों का तपश्चरण आदि ऊसर भूमि में बोये गये बीज के समान है। इन विषयों को विशद रूप में जिनागम पंथ के महान् उपदेष्टा भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज ने अनेक उदाहरणों के माध्यम से 'रयणोदय' में वर्णित किया है। गुरुनिन्दा आदि को अपने व्याख्यान में महापाप की संज्ञा दी है।

'रयणोदय' नामक प्रवचन संग्रह की शैली प्रभावित करती है क्योंकि जगह–जगह श्रावकों के लिए शिक्षा देते हुए पूज्य आचार्यश्री ने कहा है–अगर कोई साधु उपदेश देता है कि आपको धर्मकार्यों में दान देना चाहिए तो ये साधु का उपदेश है लेकिन श्रावक साधु को ही दान में रुपया आदि देने लग जाए तो यह श्रावक का अविवेक है।

श्रावकों के लिए उनका कर्तव्यबोध कराते हुए प्रवचनवृत्तिकार पूज्य आचार्यश्री शिक्षा देते हैं–भो श्रावको! अपने विवेक से जानना महाराजश्री को संयम की साधना में किस वस्तु की आवश्यकता है? मैं उस वस्तु की पूर्ति करूँगा। ये हमारा धर्म है, वैय्यावृत्ति है, श्रावक का गुण है, लेकिन इतने धनवान मत बनना कि तुम साधु को भी धन देने लग जाओ। यदि तुमने साधु को धन दिया तो सुगुरु बना दिया या शिथिलाचारी बना दिया। किसने बनाया? भो श्रावको! तुम धन नहीं देते तो क्या साधु जबरदस्ती तुम्हारी जेब से निकाल लेता?

ध्यान रखो, अगर कोई साधु कदाचित कह दें हमारे लिए एक गाड़ी चाहिए तो दे मत देना। नहीं तो साधु उसका ड्राइवर हो जायेगा। भले ही वह गाड़ी में बैठकर ड्राइविंग न करे लेकिन उसका माइण्ड तो ड्राइविंग करेगा ही। इसलिए ध्यान रखो, साधु को कभी गाड़ी आदि मत देना, निर्ग्रन्थ साधु के पास गाड़ी की कहाँ आवश्यकता है? ये तो पदविहारी हैं और पदविहारी साधु को गाड़ी की आवश्यकता नहीं होती है। संघ के विहार आदि की व्यवस्था श्रावकों को बनाना चाहिए।

इस 'रयणोदय' में पदे-पदे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की महिमा वर्णित है। सच्चे देव अठारह दोषरहित छियालीस गुणमण्डित परम परमात्मा होते हैं अनन्त चतुष्टय से युक्त होने के कारण तीनों लोकों में श्रेष्ठ और पूज्य होते हैं उनके वचन ही सच्चा शास्त्र कहलाता है। सच्चा शास्त्र अर्थात् श्रुत। श्रुत भगवान् जिनेन्द्र की वाणी होने के कारण सम्यग्दर्शन का कारण है। प्रवचनकार पूज्य आचार्यश्री श्रुतज्ञान की महिमा को बतलाते हुए कहते हैं श्रुतज्ञान को कैवल्य का बीज कहा है। जो तत्त्वों को भले ही नहीं जानता हो किन्तु जिनवाणी में जिसकी इसप्रकार श्रद्धा है कि जिनेन्द्र भगवान् ने जो कुछ भी कहा है, उस सबकी मैं अच्छी तरह से श्रद्धा करता हूँ वह सम्यग्दृष्टि ही है। सम्यक्त्ववान् साधु के विषय में कहा है कि विनय से युक्त होकर स्वाध्याय करता हुआ साधु पाँचों इन्द्रियों के विषयों से संवृत और तीन गुप्तियों से गुप्त एकाग्रमना होता है।

साधु की सभी विशेषताओं को पूज्य आचार्य प्रवर वर्णित ही नहीं करते वे स्वयं सभी गुणों से विभूषित भी हैं। आचारतत्व, आधारतत्व आदि आठ गुणों के भूषण हैं। महाव्रतों, षडावश्यकों, समितियों-गुप्तियों, पञ्चेन्द्रिय निरोध का सम्यक् परिपालन करनेवाले हैं इसीलिए 'रयणोदय' में रयणसार के परिप्रेक्ष्य में साधु की भी सम्यक् चर्या का विवेचन किया गया है। श्रावक और श्रमणधर्म के समस्त आवश्यक कर्तव्यों की पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर जी ने विस्तार से मीमांसा की है। सम्यक्त्व निधि से विभूषित जिनागम पंथ के प्रवर्तक आचार्यश्री का विपुल साहित्य और सहस्रों मनीषियों की ज्ञान-पिपासा को शान्त करनेवाले उनके प्रवचन तथा काव्य सृजन उनके ज्ञानगुण की विशिष्टता के परिचायक हैं। वे रयणसार की प्रत्येक गाथा को सरल सहज रूप में प्रवचनों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

परम वंदनीय भावलिंगी संत आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज की शैली की यह भी विशेषता है कि वह प्रतिपाद्य विषय को उदाहरण के माध्यम से सहज गम्य बना देते हैं। वे णमोकार मंत्र की महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि पञ्चनमस्कार मंत्र प्राणीमात्र के लिए शरणभूत है क्योंकि यह समस्त पापों का नाश करनेवाला है। सभी मंगलों में प्रथम मंगल है। इसका पवित्र मन से श्रद्धापूर्वक जो भी स्मरण करता है,

उसके जीवन में सब मंगल ही मंगल है। जब सुभौम चक्रवर्ती समुद्र में जहाज से यात्रा कर रहा था उसीसमय उसके पूर्व के बैरी देव ने उस पर उपद्रव किया तब सुभौम चक्रवर्ती मन ही मन पञ्चपरमेष्ठी मंत्र का स्मरण करने लगा। उस देव ने अपनी विक्रिया से भयंकर आँधी-तूफान खड़ा कर दिया। समुद्र की लहरें सुनामी की तरह भयंकर वेग के साथ उठने लगीं। वह देव सुभौम को मार डालने के लिए संकट पर संकट पैदा कर रहा था किन्तु चक्री सुभौम ने इन संकटों के मध्य भी णमोकार मंत्र रूप रक्षाकवच को धारण कर रखा था।

ऐसे उदाहरण ही णमोकार मंत्र की श्रद्धा को प्रगाढ़ बनाने में सार्थक हैं। पूज्य आचार्यप्रवर ने इस रयणसार की प्रवचनवृत्ति रयणोदय में ग्रन्थ पढ़ो निर्ग्रन्थ बनो, मंगल आचरण ही मंगलाचरण, जैन वन्दनवार की मांगलिकता, जिनागम वक्ता ही सम्यग्दृष्टि, जिनागम बाह्य पंथ जिनप्रवचन नहीं। इन शीर्षकों के माध्यम से रयणसार की तीन गाथाओं की विषय वस्तु को उद्घाटित किया है। पूज्य आचार्यश्री ने इस रयणोदय (प्रथम भाग) में गाथा-1 से 7 तक प्रवचन किये हैं।

पूज्य आचार्य श्री की प्रवचन शैली में संस्कारों की बौछारें हैं वे सहज आबाल वृद्ध को संस्कार शिक्षा प्रदान करते हैं वे समझाते हैं—अगर तुम्हारा बेटा क्रोध करे तो कहना—बेटा! जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है क्रोध करने से जीव नरकगति का पात्र बनता है फिर कभी जब आपको किसी विपरीतता-प्रतिकूलता के कारण क्रोध आने लगे तो तुम्हारा बेटा कहेगा, मम्मी! मम्मी! जो क्रोध करता है उसे नरकगति में जाना पड़ता है इसलिए आप इस समय क्रोध मत कीजिए। क्षमाभाव को धारण कीजिए। जिनेन्द्र भगवान् का दिया हुआ यह सूत्र तुम्हारे लिए मृत्युकाल में भी समाधि का कारण बन सकता है। इसलिए जब भी बोलो जिनवाणी बोलो।

राष्ट्रयोगी एक श्रेष्ठ प्रवचनकार के साथ आदर्श महाकवि भी हैं इसीलिए शिक्षा प्रदायक उदाहरण समन्वित प्रवचन प्रारम्भ एवं पूर्णकर प्रतिपाद्य के सार को छन्द में प्रस्तुत करते हैं सम्यग्दर्शन का स्वरूप बतलाकर उसे प्राप्त करने के उपाय को बताते हुए कहते हैं—

अपनी भूल सँभालोगे, सम्यग्दर्शन पा लोगे।
देह बसे निज आतम में, परमातम प्रगटा लोगे॥
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, प्रभु नजर न आये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे॥

सम्यग्दर्शन की महिमा तो बतलायी ही है साथ में ग्रन्थ के वैशिष्टय को भी उजागर किया है। पञ्चम प्रवचन में स्पष्ट किया है कि पुण्य-पाप निज तत्त्व नहीं। पर पदार्थों के संयोग से मेरेपन की निश्चयात्मक् दृष्टि प्राप्त नहीं होती है वह दृष्टि पुण्य पाप से ऊपर उठकर ही प्राप्त होती है।

सम्यग्दृष्टि की विशेषताओं को पूज्य आचार्यश्री बड़ी कुशलता से वर्णित करते हैं। सम्यग्दृष्टि निज शुद्धात्मा में अनुरक्त रहता है, बहिरात्मा की दशा से रहित (पराङ्गमुख) होता है, आत्मज्ञानी होता है, देव-गुरु और धर्म को मानता है और दुःखरहित होता है। सम्यग्दर्शन की विशेषताओं को आगम के परिप्रेक्ष्य में वर्णित कर सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का विवेचन आचार्य प्रवर ने बड़े विस्तार से और उदाहरणों के माध्यम से किया है। 'रयणोदय' में सम्यग्दृष्टियों के आचरण की चर्चा करते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव का आचरण कैसा होना चाहिए? भले ही वह नियम रूप न हो। संकल्प रूप न हो पर जब सम्यक्त्व प्रगट होता है, तब उसका आचरण सहज ही सम्यक्त्व के अनुरूप बन जाता है फिर वह ज्ञानी महात्मा (गुरु) के पास जाकर कहता है कि भगवन् अब मेरी इन पदार्थों में रुचि नहीं रही आप मुझे नियम दीजिए। ज्ञानी गुरु संकल्प के साथ नियम देते हैं ज्यों ही वह संकल्प में बंधता है वह व्रत ग्रहण कर लेता है देशव्रती या सकलव्रती बन जाता है। इसीप्रकार और भी बताते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्धात्मा में अनुरक्त रहता है जैसे भूखा भोजन में अनुरक्त रहता है, प्यासा पानी में अनुरक्त रहता है, निर्धन धन में अनुरक्त रहता है या कोई संतान में अनुरक्त रहता है ऐसे ही अनन्तकाल से दुःख को प्राप्त आत्मा यदि अनन्त सुखस्वभावी शुद्ध आत्मा को प्राप्त होता है तो उसमें अनुरक्त रहता है। ऐसे ही विभिन्न उदाहरणों के साथ विवेचन किया है।

सम्यग्दृष्टि पञ्च महागुरु का परम भक्त होता है। वह कभी किसी की निन्दा नहीं करता है। पूज्य आचार्यश्री ने 'रयणोदय' के विषय विवेचन के लिए अपनी आधारभूमि मूल ग्रन्थों को ही बनाया है, जो प्रकृत ग्रन्थ की प्रामाणिकता को सिद्ध करती है। इस ग्रन्थ में आगम-सिद्धान्त के विषयों के उपस्थापन के साथ जनसामान्य के लिए प्रेरणास्पद प्रस्तुति पूज्य आचार्यश्री की प्रज्ञा, प्रतिभा और अपूर्व मेधा का सुपरिणाम है। आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज जहाँ "जीवन है पानी की बूँद" जैसे लोकप्रिय महाकाव्य के रचयिता हैं, वहीं आचार्यश्री अमितगति प्रणीत योगसार प्राभृत पर प्राकृत भाषा में टीका लिखनेवाले महान टीकाकार हैं। इन्हें प्रबोध है कि आत्मोत्थान और आध्यात्मिक शान्ति के लिए अनुपम स्रोत जिनमन्दिर, जिनार्चा, स्वाध्याय और मंत्रोच्चार हैं। इन साधनों का अवलम्बन ही जीवन को सुख-शान्तिपूर्वक अलौकिक बना सकता है। परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी मुनिराज पवित्र ज्ञानवाले, शीलरूप वस्त्र को धारणकर सौम्य शरीरवाले हैं। सुरलक्ष्मी तथा सिद्धिलक्ष्मी इनके अधीन है। इनको संसार के भोगोपभोग बाल्यकाल से ही नहीं लुभा सके। तृणवत् उनका परित्याग कर साधना के पथ पर आरूढ हुए। जिनागम पंथ के प्रखर उपदेष्टा आचार्यश्री विमर्शसागर जी मुनिराज श्रेष्ठ प्रवचनकार हैं। आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव के रयणसार पर दिए गए इनके प्रवचन 'रयणोदय' शीर्षक से प्रकाशित हो रहे हैं जो लोकोपकारी हैं। इनमें साधु और श्रावक दोनों परम्परा के पोषकों को तत्त्व का बोध होता है। यह ग्रन्थ निश्चित रूप से सर्व सामान्य को वस्तुतत्त्व का बोध करानेवाला पावन निमित्त है।

प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी मुनिराज कृत यह रयणोदय 'प्रवचनवृत्ति' हम सभी के शुद्धमनोवृत्ति में कारण बने, इसी मंगल भावना के साथ पूज्य आचार्यश्री के चरणों में सादर कोटिशः नमोस्तु करता हूँ।

●●●

रयणोदय दर्शन

जानें, क्या है जिनागम पंथ

—भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज

'जिनागम पंथ' अनादि-अनिधन, विश्व मैत्री, प्रेम, एकता का परम पावन संदेश है, जो तीर्थंकर भगवंत, केवली अरिहन्त, गणधर संत, आचार्य-उपाध्याय-निर्ग्रंथ के मुख से अतीतकाल में कहा गया, वर्तमान में कहा जा रहा है और भविष्यकाल में कहा जायेगा।

अहो! तीर्थंकर जिन की वाणी यानि जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम और इसमें वर्णित आत्महितकारी पंथ, मार्ग। यही है जिनागम पंथ।

अहो! जिनागम में कथित पंथ अर्थात् मार्ग, यही सच्चा था सच्चा है और सच्चा रहेगा। तीर्थंकर सर्वज्ञ जिन की वाणी ही जिनागम है। और जिनागम में कथित श्रमण-श्रावकधर्म यह पंथ अर्थात् मार्ग है। जो श्रमण-श्रावकधर्म के मार्ग पर चल रहा है वह जिनागम पंथ का पथिक 'जिनागम पंथी' है।

सचमुच जिनागम पंथ शाश्वत था, शाश्वत है, शाश्वत रहेगा। जो जिनागम पंथ का पथिक है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक अथवा श्रमण संज्ञा को प्राप्त जिनागम पंथी है। जो जिनागम पंथ की श्रद्धा से रहित है वह मिथ्यादृष्टि है।

अहो! विदेह क्षेत्र में विराजित, विद्यमान बीस तीर्थंकरों के मुख से गणधरादि परमेष्ठी भगवंतों के द्वारा आज भी जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम प्रगट हो रहा है।

धन्य हैं! वे भव्य जीव जो जिनागम कथित समीचीन पंथ अर्थात् जिनागम पंथ को स्वीकार कर अनादि मोह, राग-द्वेष की परम्परा का विच्छेदन कर आत्मकल्याण कर रहे हैं। अहो! जिनागम पंथ के अलावा अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। जिनागम पंथ के अलावा अन्य पंथ उन्मार्ग हैं, अकल्याणकारी हैं।

जयदु जिणागम पंथो, रागो-दोसो य णासगो सेयो।
पंथो तेरह-बीसो, रागादि-वड्ढिओ असेयो।।

जो रागद्वेष का नाश करनेवाला है, कल्याणकारी है, ऐसा 'जिनागम पंथ जयवंत हो'। इसके अलावा तेरह पंथ, बीसपंथ आदि पंथ, रागद्वेष को बढ़ानेवाले हैं, अकल्याणकारी हैं।

अहो! कालदोष के कारण कतिपय विद्वानों ने तीर्थंकर जिनदेव के मुख से भाषित अर्थात् सर्वांग से खिरनेवाली दिव्यध्वनि में कथित जिनागम पंथ से बाह्य तेरहपंथ, बीसपंथ, शुद्ध तेरह पंथ आदि नाना पंथों की संज्ञाएँ रखकर परस्पर रागद्वेष को जन्म दिया है। कुछ विद्वान एवं श्रमण संज्ञा से भूषित जीवों ने भी ख्याति-पूजा-लाभ के लिए नये-नये पंथ गढ़कर भव्य जीवों का महान् अहित किया है।

अहो! अज्ञानता, आज ये जीव इन नाना संज्ञाओं से पंथों का पोषणकर जिनागम पंथ से दूर खड़े हो गये हैं। और कल्पित पंथों का पोषणकर अपना आत्म पतन ही कर रहे हैं। तेरह-बीस आदि संज्ञाएँ जिनेन्द्र देव की वाणी से बाह्य हैं। ये जिनागम पंथ से बाह्य पंथ ही वर्तमान में राग-द्वेष का कारण बने हुए हैं। चारों तरफ समाज में विघटन, मंदिरों में खींचतान, इन कल्पित तेरह-बीस आदि पंथों की ही देन है। जिनागम पंथ सभी को एक सूत्र में बाँधकर मैत्री-प्रेम-वात्सल्य का संदेश देता है।

अहो! आज भी यदि स्वकल्पित पंथों का दुराग्रह छोड़कर सब जीव जिनेन्द्र देव की वाणी यानि जिनवाणी जिनागम में श्रद्धा रखें, और जिनागम वर्णित पंथ यानि 'जिनागम पंथ' को सच्ची श्रद्धा से स्वीकारें, तो सर्व समाज में आज भी एकता का सूत्रपात हो सकता है। आपस के रागद्वेष मिट सकते हैं और जिनशासन गौरवान्वित हो सकता है।

'जयदु जिणागम पंथो।'
'जिनागम पंथ जयवंत हो।'

❑

रयणोदय

(प्रथम भाग)

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरल-शब्द-घनौघ-प्रक्षालित सकल-भूतल-मल-कलंका।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।2।।

अज्ञान-तिमिरान्धानां, ज्ञानांजन-शलाकया।
चक्षु-रुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।3।।

श्री परम गुरवे नमः, परम्पराचार्य-गुरवे नमः। सकल-कलुष-विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीव-मनः प्रतिबोध-कारकं, इदं शास्त्रं 'श्री रयणसार' नामधेयं, अस्य मूलग्रंथ-कर्तारः श्री सर्वज्ञदेवाः तत् उत्तरग्रंथ-कर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधर-देवाः तेषां वचनोनुसार- मासाद्य श्री कुन्दकुन्द-आचार्येण विरचितं, तस्य 'रयणोदय' प्रवचनवृत्तिं भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागरेण जिनागम-पंथानुसारं विरचितम्।

''सर्वश्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।''

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन-धर्मोऽस्तु मंगलं।।

मंगलं भगवान् अर्हन्, मंगलं वृषभो जिनः।
मंगलं पूज्यपादार्यो जिनागम-पंथोस्तु तं।।

सर्वमंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

ग्रंथ मंगलाचरण

णमिदूण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार - धम्मीणं।।

जयदु जिणागम पंथो
जिनागम पंथ जयवंत हो।

श्री मद् आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित

रयणसार

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर मुनिराज कृत

प्रवचनवृत्ति

रयणोदय

नमः श्री शान्तिनाथाय,
जगच्छान्ति विधायिने।
कृत्स्न कर्मोघ शान्ताय,
शान्तये सर्व कर्मणाम्।।

मंगलं भगवान् अर्हन्,
मंगलं वृषभो जिनः।
मंगलं पूज्यपादार्यो,
जिनागम पंथोस्तु तं।।

रयणोदय
(भूमिका प्रवचन)

●

ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो

01.08.2013

भिण्ड
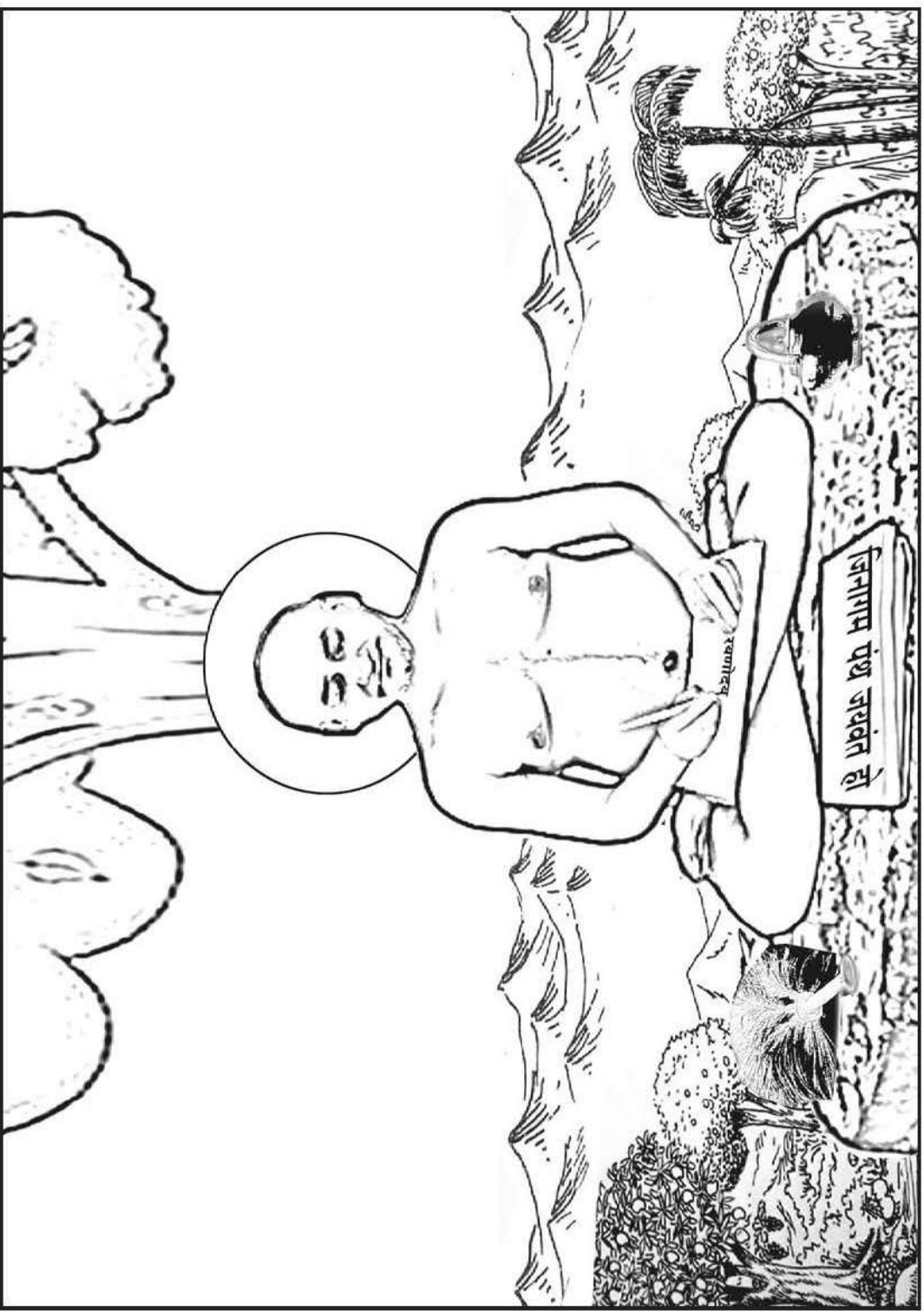
भावलिंगी संत श्रीमद् आचार्य विमर्शसागर मुनिराज

1

रयणोदय

ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो, मोक्षमार्ग को सभी चुनो।
गुरुमुख से जिनवाणी को, सुनो-सुनो सब भव्य सुनो।।
जिनवाणी सच्चा, हो-हो-2, सुखमार्ग दिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्मकल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

बंधुओ! इस मानव जीवन में यदि कुछ सुनने योग्य है तो वह भगवान जिनेन्द्र की वाणी है। जो भव्य जिनवाणी को सुनता है वह अपने जीवन को भगवान जिनेन्द्रमय बनाता है। अपनी आत्मा को परमात्मा बनाता है। आत्मा को पूर्ण ज्ञानमय अनुभव करते हुए दु:खों से छूट जाता है मुक्त हो जाता है।

भो ज्ञानी आत्माओ! विचार करना, आपको दो कर्ण मिले हैं, जिनके माध्यम से आप बहुत कुछ सुनते हैं। लेकिन जो भी आप सुनते हैं, उससे मात्र राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारी भाव ही उत्पन्न होते हैं। अनादिकाल से आज तक अनंतभव मात्र विकारों को पैदा करते-करते ही व्यतीत कर दिए। क्यों? क्योंकि कभी रुचिपूर्वक, श्रद्धापूर्वक माँ जिनवाणी का रसपान नहीं किया। सुनने के लिये आपको इस जगत में बहुत कुछ मिल सकता है पर जिनवाणी सुनने को मिल जाये तो अपना महान पुण्य समझना। भगवान जिनेन्द्र की वाणी का जो श्रद्धापूर्वक अभ्यास करते हैं, उनके बारे में कहा है-

संतों के प्रवचन सुने, जिनने नित्य अनेक।
पृथ्वी में हैं देवता, नररूपी वे एक।।

सुबह होती है। आपका बेटा आपको पापा कहता है माँ कहता है। आप घर पर होते हैं तो कभी टी.वी. के माध्यम से कुछ सुनते हैं। कभी आप पुस्तक आदि पढ़कर बहुत कुछ जानने का प्रयास करते हैं, लेकिन वह सब तात्कालिक ज्ञान है। वह ज्ञान हमें पूर्णतः सत्य का बोध नहीं करा सकता। त्रैकालिक सत्य का, संसार के वास्तविक स्वरूप का जीवादि पदार्थों के स्वभाव का यथार्थ बोध करानेवाली एकमात्र भगवान अरिहंत देव की वाणी है। जिसे हम जिनवाणी माता, सच्ची माता के रूप में पूजते हैं।

ध्यान रखना! तुम्हारा बेटा तुम्हें माँ कहेगा लेकिन तुम एकमात्र जिनवाणी को ही अपनी माँ कहना। अगर जिनवाणी तुम्हारे लिए माता जैसी प्रतीत होगी, और जिनवाणी का एक-एक सूत्र सुनकर ऐसा चिन्तन आयेगा, अहो! मैंने अपने जीवन में कभी ऐसे उत्तम सूत्र-उत्तम वाक्य नहीं सुने। आज तो मैं धन्य हो गया। मेरा आत्मा कृतार्थ हो गया। ऐसा चिंतन अंदर आने लग जाये, तो वह जिनवाणी, जिनसूत्र तुम्हारे लिये सम्यग्दर्शन का कारण अवश्य बन जायेगा। इस जगत में सब कुछ सुनना सुलभ है एकमात्र जिनवाणी अत्यंत दुर्लभ है।

बड़े अनमोल हैं जिन बैन, सदा सम्मान कर इनका।
ये देते बोधि-समाधि, बने भवमेरु भी तिनका।।

एक समय ऐसा था जब भारतभूमि पर साक्षात् अरिहंत देव विहार करते थे। पवित्र हो उठती थीं दशों दिशाएँ। जहाँ प्रभु के पावन चरण सहज रूप से ठहर जाते, वहाँ भव्य जीवों के लिए महाकल्याणकारी समवशरण सभा की रचना स्वतः हो जाती थी। यह पुण्य प्रताप होता

था तीर्थंकर प्रकृति का। समस्त प्राणियों के लिए शरणभूत ऐसी समवशरण सभा के मध्य विराजमान तीर्थंकर देव की धर्मदेशना उपस्थित सभी भव्य जीवों के लिए सर्वांग से खिरती थी। साक्षात् जिनेन्द्रदेव की हितकर वाणी सुन धन्य हो उठता था सभी का जीवन।

लेकिन यह पंचमकाल है यहाँ साक्षात् अरिहंतों का सान्निध्य हमें प्राप्त नहीं। सम्यग्दर्शन में कारणभूत जिनबिंब हमें जिनालयों में देखने को मिलते हैं, जिनके निमित्त से हम जानते, पहचानते हैं कि भगवान अरिहंत का स्वरूप कैसा था? अगर भगवान की वाणी हमारे लिए लिपिबद्ध होकर प्राप्त न हुई होती तो इन निर्ग्रंथ प्रतिमाओं को भी शायद हम पहचान नहीं पाते कि यह भगवान महावीर की प्रतिमा है या अन्य की।

आज हम तीर्थंकर देव, निर्ग्रंथ मुनि, माँ जिनवाणी का क्या स्वरूप है? शास्त्रों के माध्यम से ही निर्णय कर पाते हैं जान पाते हैं पहचान पाते हैं। इस पंचमकाल में जिनवाणी माता का, शास्त्रों का, चारों अनुयोगों का हमारे ऊपर महान उपकार है। क्योंकि चार अनुयोग रूप जिनवाणी माँ जीवन निर्माण से निर्वाण तक की यात्रा में साथ निभाती है।

1. प्रथमानुयोग के रूप में हमें सम्यक् जीवन जीने की कला सिखाती है।
2. करणानुयोग के रूप में कर्म और उनके फलों का बोध कराकर लक्ष्य प्राप्ति हेतु भाव बनाये रखने को प्रेरित करती है।
3. चरणानुयोग के रूप में सम्यक्चारित्र पूर्वक जीने और समाधि साधना पूर्वक मरने की कला सिखाती है।
4. द्रव्यानुयोग के रूप में हमारे आत्मा का सहज स्वरूप क्या है? वर्तमान में हम कैसे हैं? और हमें कैसा होना है? यह बोध कराती है।

इसप्रकार जिनवाणी माता का और जिन आचार्य भगवंतों ने उसे लिपिबद्ध किया उन सभी का हमारे ऊपर महान उपकार है।

बंधुओ! जब भगवान अरिहंत देव हमारे बीच न रहे, तब निर्ग्रंथ आचार्यों को चिंता हुई कि भगवान के बाद उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान कहीं विलुप्त न हो जाये अत: उन महान आचार्य भगवंतों ने जिनवाणी को लिपिबद्ध किया। एक समय ऐसा भी व्यतीत हुआ जब वह शास्त्र इतने सुलभ नहीं थे जितने आज हैं। अत: उस समय जिनवाणी यदा तदा ही कहीं सुनने और

पढ़ने को प्राप्त हो पाती थी। क्योंकि निर्ग्रंथ मुनिराज प्राय: जंगलों में निवास करते थे। और निर्ग्रंथ मुनिराजों को जंगल में खोजने कौन जा पाता था? कदाचित् मिल भी जाते तो बड़े पुण्य से जिनवाणी सुनने को मिलती थी। अथवा कभी कोई निर्ग्रंथ मुनिराज नगर में आहारचर्या हेतु पधारते और निरंतराय आहारचर्या सम्पन्न होने के बाद भव्य जीव उनसे प्रार्थना करते- हे गुरुदेव! आप हमारे लिए भवतापहारी देशना प्रदान करें, और मुनिराज करुणाभाव से उन भव्य जीवों के लिए महामांगलिक उपदेश देते तो धन्य हो जाते वे श्रावक, वे भव्यजीव गुरुमुख से साक्षात् जिनवाणी का रसास्वादन करके। उनका मन-मयूर आनंदित हो उठता। वे भव्य जीव मन ही मन विचारने लगते कि-

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन श्री जिन की वाणी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामैं सबको सुखदानी।।

किंतु आज ऐसा समय है जब हमें जिनवाणी सुलभ है परन्तु भौतिकता अधिक प्रभावी हो रही है। और भौतिक संस्कृति जितनी अधिक प्रभावी होती है जिनवाणी का श्रवण करनेवाले उतने ही विरले होते जाते हैं। आज जिनवाणी तो सुलभ है लेकिन जिनवाणी का अध्ययन करनेवाले, स्वाध्याय करनेवाले जीव बहुत ही विरले हैं। आज जिनवाणी पढ़ने के लिए हमें मिल रही है परन्तु हम कहते हैं हमारे पास समय नहीं है।

विचार करना, आपने बेटे को जन्म दिया किंतु सपूत को जन्म दो, तब कोई बात है। पुत्र को जन्म देनेवाले तो संसार में सभी जीव हैं किंतु सपूत को वही जन्म देता है जो जिनवाणी सुनता-सुनाता है। **माता-बहिनों का यह कर्तव्य है कि वह संतान को जन्म दें तो उसे जन्मघूँटी के साथ-साथ जिनवाणी का घूँट अवश्य पिलायें। अगर जिनवाणी का घूँट पिला दिया तो जन्म लेनेवाले का जन्म सार्थक हो जाएगा।** और यदि तुमने उसके लिये च्यवनप्राश खिलाया, हॉर्लिक्स (Horlicks) पिलाया लेकिन जिनवाणी न सुनाई तो ध्यान रखना, तुमने माता का फर्ज कदाचित् निभा लिया, पर एक सच्ची माता जिनवाणी माता का फर्ज नहीं निभाया इसलिये प्रत्येक माँ-बहन का कर्तव्य है वह अपनी संतान को एक बार जिनवाणी का घूँट अवश्य पिलायें। क्योंकि-

जिनवाणी के मीठे बोल, जीवन में सुख देते घोल।
जिनवर की ये भेंट अमोल, खोले कर्मों की सब पोल।।

अगर आपका बेटा स्कूल जाता है तो आप सारी पुस्तकों की व्यवस्था कर देते हो, पर बड़े आश्चर्य की बात है आप अपने बेटे को पढ़ने के लिए प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग चार अनुयोगों के शास्त्र उपलब्ध नहीं करा पाते। बंधुओ! वर्तमान में जिनवाणी को पढ़ने और सुनने की आवश्यकता है। हमारे पास इतना समय अवश्य होना चाहिए कि हम समझ सकें, भगवान आदिनाथ हमारे प्रथम तीर्थंकर थे। उन्होंने यह तीर्थंकरत्व कैसे पाया? उन्होंने किस तरह से साधना की? कैसा था उनका जीवन? उन्होंने अच्छी-बुरी हर परिस्थिति का सामना किसप्रकार किया? जैनधर्म में 24 तीर्थंकर हुए। उन 24 तीर्थंकर भगवंतों का क्या स्वरूप है? यह सब हमें पता होना ही चाहिए। अगर आपसे कोई पूछले-आपके अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं उनका जीवनचरित्र क्या है? उन्होंने अपना जीवन कैसे जिया था? उन्होंने कैसे सन्यास धारण किया और अपने साधनाकाल में कैसे साधना की थी? तो आप बगलें झाँकने लग जायेंगे। आप सोच में पड़ जायेंगे। सामनेवाले व्यक्ति ने भगवान महावीर के विषय में जो पूछा है इस विषय में हमें तो कोई नॉलेज (Knowledge) ही नहीं है।

विचार करना, अगर आप किसी रामभक्त से पूछें- भगवान राम का चरित्र क्या है? तो वह फिर भी बता देगा। लेकिन आप भगवान महावीर के भक्त, भगवान महावीर की बात नहीं बता सकते। क्यों? क्योंकि कभी भगवान महावीर के चरित्र को, उनकी वाणी को, पढ़ने के लिये समय ही नहीं निकाला। कभी विचार ही नहीं किया कि हमें भगवान महावीर के विषय में कुछ जानने का प्रयास करना चाहिये। एक बात ध्यान रखना, जो परमात्मा के विषय में जानने की जिज्ञासा पैदा करेगा वही एक दिन अपनी आत्मा के विषय में जानने का विचार कर सकता है।

घर में अगर किसी पहलवान का फोटो (Photo) लगा हो और बेटा देखकर पूछे, यह कौन है? तो आप कहते दारासिंह। वह अपनी तोतली बोली में पुन: पूछता है-ये दालासिंह कौन है? तो आप कहते-बेटा! ये बहुत बड़े पहलवान थे। अच्छा, मैं भी पहलवान बनूँगा। अच्छा, तुम भी पहलवान बनोगे। हाँ, आत्मा से यह आवाज आने लग जाती है। क्यों? क्योंकि जैसा निमित्त मिलता है वैसा ही परिणमन होना प्रारंभ हो जाता है। यदि दूध को अग्नि का संयोग मिल जाये तो दूध भी अग्नि की तरह गर्म होना प्रारंभ हो जाता है। और यदि दूध को बर्फ का सान्निध्य मिल जाये तो दूध बर्फ की तरह ठंडा भी होना प्रारंभ हो जाता है।

इसीप्रकार यदि निर्ग्रंथ मुनिराज का सान्निध्य मिल जाये तो हमारी परिणति भी निर्मल होने लगती है, पवित्र होने लगती है। और वैसे ही संस्कार हमारी आत्मा में जागृत होने लगते हैं। हम

कई जगह देखते हैं आहारचर्या को निकलें तो गली मौहल्ले के छोटे-छोटे बच्चे जो रोज देखते कि महाराज-आहार को निकले हैं। ऐसे पड़गाहन होता है। ऐसे महाराज आहार करते हैं। फिर 2-4 बच्चे इकट्ठे हो गये, एक बालक महाराज बन गया, 2-3 बालक-बालिका श्रावक बनकर उनका पड़गाहन कर रहे हैं। हे स्वामिन्! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु, अत्र-अत्र अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ-तिष्ठ। वे बालमुनि आये, खड़े हो गये। बच्चे परिक्रमा लगाने लगे। मुनिराज की तरह उन्होंने भी अपने नन्हें-नन्हें हाथों की अंजुली बना ली और जो बच्चे श्रावक बने हैं वे आहार देने लगे। बच्चों में ये संस्कार कहाँ से आ गया? किसी ने सिखाया क्या? नहीं, ये किसी ने सिखाया नहीं लेकिन बच्चों ने उस चर्या को अपनी दृष्टि से, आँखों से देखा है निहारा है, इसलिये उन में वह संस्कार आ गया कि चलो महाराज-महाराज खेलें।

कहने का तात्पर्य यह है **अगर बच्चों के लिये जिनवाणी सुनाई जाये, तीर्थंकरों के चरित्र सुनाये जायें, कर्म और उनके फलों के बारे में बताया जाये, आचरण की बातें सिखायी जायें और आत्मा का स्वरूप समझाया जाये, तो निश्चित ही वे अपने सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा इस संसार सागर से एक दिन निकलकर परमात्मा अवश्य बन सकते हैं। और यह महान उपकार होगा एकमात्र जिनवाणी माता का।**

बंधुओ! मैं यह बता रहा था, आज अगर तुम तीर्थंकरों को पहचानते हो, कि यह भगवान आदिनाथ का बिम्ब है। यह भगवान महावीर की प्रतिमा है। खड्गासन मुद्रा में स्थित ये भगवान बाहुबलि हैं। तो एकमात्र जिनवाणी के आधार से। क्योंकि हमें जिनवाणी में उनका स्वरूप बताया गया है। यदि जिनवाणी में यह स्वरूप प्रकाशित न होता तो हम उन प्रतिमाओं को देखकर भी कभी उन्हें तीर्थंकर रूप में स्वीकार न कर पाते। महान उपकार है यह हमारे ऊपर, हमारी जिनवाणी माता का। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव जिनवचनों का माहात्म्य श्री दर्शनप्राभृत में प्रदर्शित करते हुए कहते हैं-

जिणवयण मोसहमिणं विसय सुह विरेयणं अमिदभूयं।
जर मरण वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।17।।

जिनवचन अमृत के समान हैं। यह जिनवचन रूपी औषधि विषयसुख को दूर करनेवाली है। विरेचन करनेवाली है। बुढ़ापे और मरणरूपी व्याधि को हरनेवाली तथा समस्त दुखों का क्षय करनेवाली है।

इसलिये हमें जिनवाणी के पठन-श्रवण में समय अवश्य देना चाहिए। ग्रंथ पढ़ने का समय अवश्य ही निकालना चाहिए। **विचार करना, आपका बेटा स्कूल में पढ़ता है और स्कूल से जैसे ही घर आता है, वह अपने सब्जेक्ट (Subject) को बिल्कुल भी न पढ़े तो आप उससे कहते हो, बेटा! थोड़ा अपना विषय कंपलीट (Complete) करो। बेटे से कहते हो, बेटा! टी.वी. मत देखो, मोबाइल पर गेम्स (Games) मत खेलो, अपनी पुस्तकों को पढ़ो। लेकिन तुम कभी शास्त्र पढ़ते हो क्या? अगर तुम अपने घर में प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय करते होते, तो तुम्हें बेटे से यह नहीं कहना पड़ता, बेटा! पुस्तक खोलकर अपना विषय कंपलीट (Complete) करो।**

थोड़ा सा विचार करना, कोई माँ मंदिर आई। अपने बेटे को साथ लाई। भगवान जिनेन्द्र को नमस्कार किया। वंदना स्तुति करते हुए परिक्रमा लगायी। पूजन-जाप की और शास्त्र स्वाध्याय करने बैठ गयी। साथ में आया बालक अपनी माँ की हर क्रिया को देख-देखकर दोहराने लगता है। उसने पैर धोए, माँ के साथ भगवान के पास पहुँचा, फिर माँ की ओर देखने लगा। माँ ने दोनों हाथों को जोड़कर नमोस्तु किया तो उसने भी किया। माँ ने अर्घ चढ़ाया तो वह भी सामग्री माँगने लगा। अपने छोटे-छोटे पैरों से एड़ी के बल खड़े होकर वेदिका पर अर्घ चढ़ाकर फिर माँ की ओर देखा। माँ परिक्रमा लगाने लगी, तो वह भी इधर-उधर देखता हुआ उसके पीछे-पीछे चलने लगा। माँ ने भगवान को धोक लगाई तो उसने माँ को देखते-देखते धोक लगा दी। माँ उधर भगवान की पूजा में लीन, तो वह भी सामग्री हाथ में लेकर अपनी पूजा में लीन। वह जाप करने बैठी, तो वह भी माँ की तरह आँखे बंद करके बैठ जाता और धीरे-धीरे कुछ बुदबुदाने लगता। वह भी बैठा-बैठा माँ की तरह उँगलियों पर अँगूठा घुमाने लगता और बीच-बीच में चुपके से आँख खोलकर माँ को देखता भी रहता कि माँ अभी भी ऐसे ही बैठी है या नहीं।

भले ही उसे इस बात का पता नहीं कि यह जाप कहलाती है। इसमें मंत्र बोला जाता है। लेकिन उसको कम से कम उस क्रिया का ज्ञान तो हो गया। जब वह धीरे-धीरे बड़ा होगा। उसे थोड़ा सा बोध होगा। वह णमोकार मंत्र जैसे ही याद करेगा स्मरण करेगा तुरंत ही जाप करना प्रारंभ कर देगा।

वही माता जब शास्त्र स्वाध्याय कर रही है। पुस्तक पढ़ रही है। बगल में बैठा हुआ बेटा माँ से पहले पुस्तक पढ़ने की कोशिश में लग जाता है। वह माँ के हाथ से पुस्तक खींचने लग

जाता है। माँ भी मंदिर में रखी हुई कोई छोटी सी पुस्तक बेटे को पकड़ाकर कहती है लो बेटा! फाड़ना नहीं अच्छे से पढ़ना। अब बेटा जानता तो है नहीं, कि ये पुस्तक सीधी है या उल्टी। वह तो उसे खोल करके बैठ जाता है, और देखने लग जाता है माँ की ओर। देखता है माँ पढ़ रही है तो वह भी पढ़ना प्रारंभ कर देता है ध्यान से, जैसे बड़ा ज्ञानी हो। कहने का तात्पर्य यह है **यदि आज घर-घर में स्वाध्याय करने का नियम होता। माता-पिता बैठकर अगर जिनवाणी का स्वाध्याय कर रहे होते, अध्ययन कर रहे होते, तो आपका बेटा भी अपने आप अपने विषय की पुस्तक लेकर बैठ जाता, अध्ययन भी करता, शास्त्र स्वाध्याय भी करता।** इसप्रकार उसके अंदर सम्यग्ज्ञान के संस्कार अवश्य ही आते। पढ़ा-लिखा होने के साथ-साथ वह संस्कारी व विनयवान भी होता।

बंधुओ! आज आप सभी का ऐसा सुअवसर आया है कि आपको एक ग्रंथ के माध्यम से भगवान महावीर के समवसरण में क्या वाणी खिरी थी? उन्होंने क्या उपदेश दिए थे? वह ज्ञानप्राप्त होगा। वह उपदेश आचार्य कुंदकुंददेव विरचित 'श्री रयणसार जी' ग्रंथ में निहित हैं। हम सभी आज से रयणसार जी ग्रंथ के माध्यम से कुछ जानने का प्रयास करेंगे। इस ग्रंथ में श्रावक व साधु दोनों के लिये मार्गदर्शन दिया गया है। श्रावक को अपने जीवन में किस तरह से चलना चाहिये। उठना-बैठना चाहिये। उसे कौन सी चर्या करना चाहिये। यह आचार संहिता निरूपित की गयी है। यह आचार संहिता ही श्रावक का संविधान कहलाती है। और साधु को कैसे रहना, चलना, उठना, बैठना। कैसी चर्या करना चाहिये। इसका दिग्दर्शन साधु की आचार संहिता है। और साधु की आचार संहिता ही उसका संविधान है।

यदि किसी देश का संविधान न हो तो क्या वह देश ठीक तरह से चल सकता है? नहीं चल सकता। तो जैसे किसी देश का संविधान न हो तो वह देश ठीक तरह से नहीं चल सकता, ऐसे ही अगर श्रावक और साधु जीवन का संविधान न हो तो श्रावक और साधु भी अपने जीवन में कभी योग्य आचार-विचार नहीं ला सकते।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि अब हम सभी के लिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव द्वारा विरचित श्री रयणसार जी ग्रंथ के माध्यम से अपने भीतर की ग्रंथियों को सुलझाने का प्रयास करना है। क्योंकि संसार में रहने वाले जितने भी जीवात्मा हैं उनके अंदर ऐसी-ऐसी ग्रंथियाँ उलझी हुई हैं कि जब तक वे सुलझेंगी नहीं तब तक वे संसार से सुलझ नहीं सकते। समस्त सांसारिक ग्रंथियों को सुलझाने का उपाय निर्ग्रंथों ने जिनग्रंथों में बताया है।

संसार में जन्म-मरण करना यह तो प्रत्येक जीव की नियति है। लेकिन जन्म-मरण से मुक्त होना यह उस जीव का अपना पुरुषार्थ है। हम जन्म-मरण की परंपरा को बढ़ाना चाहते हैं या उसे तोड़ना चाहते हैं। बताइए क्या अच्छा लगता है? जन्म लेना अच्छा लगता है या मरना अच्छा लगता है? जगदीश जी! आप बताइए क्या अच्छा लगता है? जन्म लेना या मरना? जन्म लेना अच्छा लगता है। (जगदीश) जन्म लेना अच्छा लगता है। मरण करना अच्छा नहीं लगता। लेकिन ध्यान रखना, जगदीश बनने के लिए जन्म और मरण दोनों से छूटना पड़ता है। जन्म लेना अच्छा लगता है मरना नहीं किंतु बिना मरण किये जन्म होता नहीं है।

किसी संत से पूछो, भो मुने! आपको जन्म लेना अच्छा लगता है मरण करना? तो संत कहेगा- मुझे तो मरण करना अच्छा लगता है। कैसा मरण? वह कहता है समाधिमरण।

कवि द्यानतराय ने समाधिमरण भाषा में कहा भी है-

गौतम स्वामी वन्दौं नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ निशदिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है।।

साधु जन्म से साधु नहीं होता। जन्म लेने के बाद वह मोक्षमार्ग की साधना को समझता है, फिर साधु बनता है। और साधु की साधना का लक्ष्य एकमात्र समाधिपूर्वक मरण होता है। यदि समाधिपूर्वक मरण होगा तो निश्चित ही जन्म लेने की परंपरा का स्वत: ही छेद हो जायेगा। यदि कोई साधक एक बार समाधिपूर्वक मरण कर लेता है तो वह शीघ्रातिशीघ्र जन्म-मरण दोनों की परंपरा से मुक्त हो जाता है, छूट जाता है और देहातीत अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

विचार करना, आपके जीवन का लक्ष्य क्या है? आपको पापा बनना है या परमात्मा। कुछ लोग सोच रहे हैं परमात्मा बन जायें और कुछ लोग सोच रहे हैं पहले पापा बन जायें, फिर परमात्मा बनेंगे। पापा तो तुम अनंत पर्यायों से बनते आ रहे हो। सम्पूर्ण लोक में ऐसा एक भी प्राणी नहीं जिसे तुमने अपना पापा न बनाया हो और जिसके तुम पापा न बने हो। लेकिन न तुमने किसी को परमात्मा बनाया, न तुम कभी परमात्मा बने। पापा बनते-बनते तो अनंत भव गुजारे हैं। एक बैल भी पापा है। एक गधा भी पापा है। और जितने भी पापा होते हैं वे सब गधे होते हैं। जैसे गधा अपना पूरा जीवन भार ढोते-ढोते निकाल देता है वैसे मनुष्य भी अपने परिवार का भार ढोते-ढोते जीवन व्यतीत करता है और अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मैंने जाहिद की ग़ज़लें कृति में लिखा है–

दो पल को भी सुकूँ नहीं, कोल्हू का बैल है।
लगता है जिंदगी को, ढो रहा है आदमी।।

बंधुओ! वस्तु का भार ढोना सरल है परिवार का भार ढोना सरल नहीं। किसी के सिर पर किसी वस्तु का भार हो तो उस भार को उतारना बहुत सरल होता है। थक जाने पर अथवा कोई भी कष्ट होने पर वह उसे तुरंत उतारकर रख देगा लेकिन परिवार के भार को उतारने में दाँतों पसीना छूटता है। **चिंतन करो, परिवार का भार ढोते-ढोते अनेकों पर्यायें बीत गईं लेकिन आज तक तुम इस परिवार के भार को ढोने से मुक्त न हो पाये। इसलिये पापा बनने की मत सोचना। अगर सोचना है तो परमात्मा बनने की सोचना, क्योंकि जिनवाणी माँ किसी को पापा नहीं बनाती अपितु परमात्मा बनने की राह दिखाती है।**

भगवान अरिहंत देव की वाणी पापा बनने का नहीं वरन् परमात्मा बनने का उपदेश देती है। अगर तुम्हें जिनवाणी पर सच्ची श्रद्धा है, तो तुम कभी पापा बनने की नहीं, परमात्मा बनने की सोचोगे। तुम्हें पापा तो तुम्हारा कर्म बनाएगा। और जिनवाणी माता द्वारा बताया शुद्धकर्म तुम्हें परमात्मा बनाएगा। इसलिये बंधुओ! भगवान अरिहंत की वाणी पर सच्ची श्रद्धा रखना। अगर जिनवाणी पर सच्ची श्रद्धा है तो आत्मा से यही आवाज आयेगी, मैं परमात्मा बनना तो चाहता हूँ यदि अभी परमात्मा नहीं बन पाऊँ तो संत आत्मा, महात्मा बन जाऊँ और अगर महात्मा भी न बन पाऊँ तो कम से कम एक सच्चा श्रावक तो बन ही जाऊँ। वह अपने अंतस में सदा भावना भाता है कि–

संत साधु बन के विचरूँ वह घड़ी कब आयेगी?
शांति मेरे उर में जब वैराग्य की छा जायेगी।।

बंधुओ! एक श्रावक भी अपनी आत्मा का हित कर सकता है। भगवान महावीर ने समवशरण में दो नाम बताये, श्रावक और श्रमण। श्रमण, निर्ग्रंथ योगिराज मुनिराज कहलाते हैं और जो श्रावक होता है वह श्रमणों का, निर्ग्रंथों का उपासक होता है। हम अगर श्रमण नहीं बन सकते तो कम से कम श्रमणोपासक श्रावक तो अवश्य ही बन जायें।

एक जीवन होता है गृहस्थ का और एक श्रावक का। गृहस्थ और श्रावक में अंतर होता है–

गृहस्थ- जिसके मन में गृह स्थित रहता है वह गृहस्थ होता है।

श्रावक- जो भले ही गृह में स्थित हो लेकिन जिसके मन में गृह नहीं परमात्मा स्थित हो वह श्रावक कहलाता है। जिसके हृदय में परमात्मा बसता है, ऐसा वह श्रावक गृह में रहते हुए भी गृहस्थ नहीं। **''गेही पै गृह में न रचै ज्यों जल तें भिन्न कमल है।''**

इसलिये बंधुओ! गृहस्थ मत बनना, श्रावकत्व को धारण करना। जिस श्रावक के हृदय में परमात्मा बसता हो, भावों में यह बात आती हो-हे भगवन् महावीर! मैं आपकी तरह परमात्मा कब बनूँगा? महावीराष्टक में आप बोलते हैं-

''महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे''

हे भगवन् महावीर स्वामी! आप मेरे नयनों के पथगामी बने रहें अर्थात् मैं जहाँ-जहाँ अपनी दृष्टि डालूँ मुझे आप ही आप नजर आयें। हर प्राणी में मुझे आपका रूप दिखे। अपने आप में मुझे आप का स्वरूप दिखे। ऐसा कब होगा? जब हृदय में भगवान महावीर होंगे। तो नयनों में भी भगवान महावीर ही दिखायी देंगे।

अगर किसी व्यक्ति के लिये कोई वस्तु बहुत अच्छी लगती हो, हृदय में समाई हुई हो और वह आँख भी बंद कर ले, तो भी वही वस्तु दिखायी देती है। क्योंकि वह वस्तु उसके मन में बसी हुई है। ऐसे ही जिस श्रावक के हृदय में परमात्मा समाया रहता है वह निरंतर यह सोचता है मैं आपको कब प्राप्त कर लूँ? आप जैसा बनकर इस संसार के जाल से मैं कब छूट जाऊँ? वह मानता है-

राग द्वेष मद मोह घटा, आतमरुचि प्रगटावे।
धर्म पोत पर चढ़ प्राणी, भव सिंधु पार जावे।। बा.भा.।।

हम जानते हैं परमात्मा अनंतसुखी है। हमारी आत्मा में भी अनंत सुख समाया हुआ है। जब तक हमें अपनी आत्मा में सुख नहीं दिखायी देगा तब तक हम अपनी आत्मा का आश्रय नहीं करेंगे। जिस वस्तु में हमें कुछ लाभ दिखायी देता है, हम उसी वस्तु का आश्रय करते हैं। यदि उस वस्तु में लाभ दिखायी न दे तो क्यों कोई उसका आश्रय करेगा? एक गिलास में ठंडा पानी रखा है और एक गिलास में गर्म पानी। तीव्र गर्मी का मौसम है अब आपको जिसमें शीतलता दिखाई देगी आप उसी गिलास को तो उठायेंगे। आप जानते हैं अगर इस गिलास का

पानी पियेंगे तो हमारी प्यास मिट जायेगी। आपके अन्तरंग में ऐसा श्रद्धान, ऐसा निर्णय है। ऐसे ही जिस दिन यह निर्णय होगा कि हमारे आत्मा में ही अनंतसुख समाया हुआ है उस दिन सुख पाने हेतु तुम अपनी आत्मा का ही आश्रय करोगे। क्योंकि ऐसा श्रद्धान है, निर्णय है कि मेरा सुख मुझमें ही है।

बंधुओ! यह धर्म हमें आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव द्वारा विरचित श्री रयणसार जी ग्रंथ के माध्यम से समझने का प्रयास करना है। हमने जन्म लिया है तो हमारा आचरण अब कैसा होना चाहिये? हमारा जीवन कैसा होना चाहिये? हमें कौन-कौन से कार्य करना चाहिये? जिससे हमारी आत्मा एक दिन परमात्मा बन सके। और आज हमारी आत्मा परमात्मा नहीं बन पा रही है तो कम से कम पुण्यात्मा तो बन ही जाये। यह जानने का प्रयास हम सभी को करना है।

ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो, मोक्षमार्ग को सभी चुनो।
गुरुमुख से जिनवाणी को, सुनो-सुनो सब भव्य सुनो।।
जिनवाणी सच्चा, हो-हो-2, सुखमार्ग दिखाये रे..........

बंधुओ! एक ग्रंथ वह होता है जिसे हम शास्त्र कहते हैं और एक ग्रंथ वह होता है जिसका अर्थ परिग्रह होता है। **ग्रंथ का स्वाध्याय करने से हमारा आत्मा ग्रंथ से मुक्त हो सकता है।** अर्थात् ग्रंथ का स्वाध्याय करने से हमारा आत्मा एक न एक दिन समस्त परिग्रहों से मुक्त हो जाता है, आत्मा की वह दशा ही निर्ग्रंथ दशा कहलाती है। निर्ग्रंथ का तात्पर्य, जिसके पास कोई परिग्रह न हो। क्योंकि परिग्रह से युक्त निर्ग्रंथ नहीं सग्रंथ कहलाता है। भगवान महावीर ने किसकी उपासना करने का उपदेश दिया, निर्ग्रंथों की या सग्रंथों की? यह निर्णय करना है। आज तो हम भूमिका बना रहे हैं कल से श्री रयणसार जी ग्रंथ प्रारंभ होगा। तो भगवान महावीर ने किसकी उपासना का मार्ग बताया? निर्ग्रंथों की उपासना का। क्योंकि अगर आत्मा को परिग्रह से मुक्त करना है तो हमें परिग्रह मुक्त की ही उपासना करनी होगी। आराधना करनी होगी। अपने ज्ञान को माँजना होगा। हमें अपने आत्मा में निर्णय करना होगा।

एक बात बताना, यदि आपके नगर में कोई मुनिराज माला पहनकर आ जायें तो क्या आप उन्हें मुनिराज कहोगे? नहीं कहोगे। क्यों? क्योंकि यह निर्ग्रंथ मुनि का स्वरूप नहीं है। निर्ग्रंथ मुनिराज तो पूर्णतया परिग्रह से रहित होते हैं। और जब हम उनकी आराधना उपासना करते हैं

तो हमें सातिशय पुण्य की प्राप्ति होती है। इसलिये बंधुओ **'ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो'** जिनवाणी निर्ग्रंथ बनने का उपदेश देती है।

हमारा आत्मा अनंतकाल से परिग्रह सहित है। यह परिग्रह ही संसार का कारण है। दुख का कारण है। चक्रवर्ती छह खण्ड का अधिपति होता है। अगर वह परिग्रह में बुद्धि रखे-रखे मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो सीधे सातवें नरक में पहुँचकर घोर दुख सहता है। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि वह अपने बाह्य वैभव में ही डूबा रहा। यदि वही चक्रवर्ती अपने छह खण्ड के वैभव से अपनी दृष्टि हटा ले, और उस समस्त परिग्रह को त्याग दे, तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि वह चक्रवर्ती उसी पर्याय से निर्वाण को भी प्राप्त हो जाता है। अत: दुख प्राप्ति का सबसे बड़ा कारण, मुक्ति में सबसे बड़ा बाधक यह परिग्रह ही है। **यद्यपि श्रावक गृहस्थों के लिये बाह्य परिग्रह आवश्यक है। किंतु जितना आवश्यक हो उतना ही लेना। पदार्थ की तृष्णा और आसक्ति से बचना। आवश्यकों को पूरा करने हेतु आवश्यक पदार्थों को अपनाना किंतु उसमें आसक्ति न जगाना।**

आपने कभी मुनिराज को आहार दिया है। आप देखिएगा, मुनिराज को जब आप आहार देते हैं तो वे अपने हाथ में लेते हैं। वह इसलिये कि जितना आवश्यक है मैं उतना ही लूँगा। आवश्यकता से ज्यादा नहीं लूँगा। आपके पास तो महाराज को देने के लिये थाल के थाल तैयार हैं लेकिन महाराज अपने करपात्र में उतना ही लेते हैं जितना आवश्यक होता है। यदि मुनिराज थाली में आहार लेते तो आवश्यकता से ज्यादा हो जाता। यह मुनिराज का गृहस्थ के घर जाकर दिया जानेवाला मौन उपदेश है। जिससे श्रावक यह समझ ले कि धन्य हैं ये मुनिराज, जितना आवश्यक, उतना ही लेते हैं। हमें भी गृहस्थ जीवन में जितना आवश्यक हो उतना स्वीकारना चाहिये शेष में आसक्ति भाव का त्याग कर देना चाहिये। श्री सूत्रपाहुड में आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव निर्ग्रंथ मुनिराजों की चर्या के विषय में कहते हैं-

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेल अत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं।।27।।

जिसप्रकार समुद्र के समान बहुत भारी जल के विद्यमान रहने पर भी वस्त्र धोने का इच्छुक मनुष्य थोड़ा ही जल ग्रहण करता है। उसी प्रकार मुनिराज भी गृहस्थों के घर बहुत भारी सामग्री रहने पर भी आवश्यकता के अनुसार आहारादि की अपेक्षा अल्प ही ग्रहण करते हैं। यथार्थ में जिनकी इच्छा, मूर्च्छा, आसक्ति दूर हो गई है। उनके सब दुख दूर हो गये हैं।

बंधुओ! आवश्यकता परिग्रह नहीं है आसक्ति का नाम परिग्रह है यह प्रथम सूत्र है।

और जब आसक्ति छूट जाती है और हम मात्र आवश्यकताओं तक सीमित रह जाते हैं तब भगवान महावीर दूसरा सूत्र देते हैं। वे कहते हैं– **'आवश्यकता भी परिग्रह है'** अर्थात् अभी तुम जो हाथ में आहार ले रहे हो, इस आवश्यकता को भी तुम्हें छोड़ना होगा। तब साधक भावना भाता है–

त्यागूँ आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ।।स.भा।।

मैं अब समाधि के लिए आहार-पानी का भी त्याग कर दूँ। मुनिराज के लिये पिच्छी कमण्डल आवश्यक है। भगवान महावीर कहते हैं–जब तक तुमने पीछी कमण्डल प्राप्त नहीं किये तब तक तो ये आवश्यक हैं और इन्हें धारण करके जब तुम अपनी आत्मा के ध्यान में डूबोगे तो उस समय यह आवश्यक उपकरण भी परिग्रह रूप हो जाते हैं, अत: आत्मध्यान की अवस्था में तुम इनका भी त्याग कर देना। बंधुओ! ये जीवन जीने की कला है 'जितना आवश्यक उतना ही स्वीकार।'

इसतरह जो अपना जीवन जीता है वह कभी दुर्गति का पात्र नहीं बनता। और जो आसक्ति में जीता है, अनावश्यक को छोड़ने का विचार नहीं करता, ऐसा जीव दुर्गति रूपी भँवरों में फँसकर संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो, मोक्षमार्ग को सभी चुनो।
गुरुमुख से जिनवाणी को, सुनो-सुनो सब भव्य सुनो।।
जिनवाणी सच्चा, हो-हो-2, सुखमार्ग दिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 1

(प्रथम प्रवचन)

•

मंगल आचरण ही मंगलाचरण

02.08.2013

भिण्ड

(मंगलाचरण)

णमिदूण वड्ढमाणं, परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रय णसारं, सायार-णयार-धम्मीणं।।1।।

* अन्वयार्थ *

(**परमप्पाणं**) परमात्मा (**वड्ढमाणं**) वर्धमान (**जिणं**) जिनेन्द्र को (**तिसुद्धेण**) मन, वचन, काय तीनों की शुद्धिपूर्वक (**णमिदूण**) नमस्कार करके (**सायारणयार**) सागार-अनगार (**धम्मीणं**) धर्म के व्याख्यान करने वाले (**रयणसारं**) रयणसार-नामक ग्रन्थ को (**वोच्छामि**) कहता हूँ।

अर्थ-मैं (कुन्दकुन्द), वर्तमान शासनाधिपति परमात्मा वर्धमान जिनेन्द्र को मन-वचन-काय त्रिशुद्धिपूर्वक नमस्कार करके सागार-गृहस्थ और अनगार-मुनि धर्म का व्याख्यान करनेवाले रयणसार ग्रन्थ को कहता हूँ।

जीवन्धर कुमार मरणासन्न कुत्ते को पंच नमस्कार मंत्र सुनाते हुए

2

रयणोदय

वर्द्धमान जिन नमन-नमन, मन-वच-काया से वंदन।
रयणसार को कहता हूँ, सुनलो श्रावक और श्रमण।।
जिनवर की स्तुति, हो-हो-2, सब विघ्न नशाये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'**जयदु जिणागम पंथो**' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्मकल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ '**जिनागम पंथ**' है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' का प्रतीक '**जिनागम पंथ**' सन्मार्ग है।

'श्री रयणसार जी' ग्रंथ आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव द्वारा रचा गया एक ऐसा श्रेष्ठ ग्रंथ है, जिसमें श्रावक और श्रमण, सागार और अनगार, गृहस्थ और साधु दोनों की आचार संहिता का विवेचन किया गया है। मोक्षमार्ग में हम अपना कदम कैसे रखें? अपने जीवन में धर्म की शुरुआत कहाँ से करें? इसकी व्याख्या आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस ग्रंथ में करते हैं।

अक्सर लोग कहते हैं–महाराज श्री! हमारे लिये धर्म की शुरुआत करनी है। हम सबसे पहले क्या करें? कौन सी क्रिया करें? अपने जीवन में आचरण कैसे ढालें? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव रयणसार जी ग्रंथ में हमारे लिए यही मार्ग बताते हैं। अगर श्रावक को धर्म की शुरुआत करनी है तो उसे अपने जीवन में क्या करना चाहिये? और यदि श्रमण को अपने श्रमण धर्म का निर्विघ्न रीति से पालन करना है तो उस श्रमण के लिये भी अपने जीवन में क्या लक्ष्य निर्मापित करना चाहिये?

बंधुओ! श्री रयणसार जी ग्रंथ यहाँ प्रारंभ हो रहा है। हम सभी आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव द्वारा प्रदत्त इस रयणसार की नौका में बैठकर आत्मधर्म की सैर करेंगे, आत्मधर्म की यात्रा करेंगे और अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने का सफल पुरुषार्थ करेंगे। आचार्य भगवंतों ने ग्रंथ के प्रारंभ में सर्वप्रथम मंगलाचरण की बात कही है।

णमिदूण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार धम्मीणं।।1।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव मंगलाचरण करते हुए कह रहे हैं **परमप्पाणं** अर्थात् परमात्मा को। कौन परमात्मा को? **वड्ढमाणं जिणं**- वर्द्धमान जिनेन्द्र को। **णमिदूण**-नमस्कार करके। किस प्रकार से नमस्कार करके? **तिसुद्धेण**-मन, वचन और काया इन तीनों की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करके। **सायारणयार धम्मीणं**-सागार अर्थात् गृहस्थ और अनगार यानि मुनिराज, उनके धर्म का व्याख्यान करनेवाले। **रयणसारं**-रयणसार ग्रंथ को। **वोच्छामि**-मैं यहाँ पर कहता हूँ।

इसप्रकार आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने यह मंगलाचरण किया है। अब रयणसार जी ग्रंथ के मंगलाचरण में थोड़ा सा प्रवेश करते हैं।

बंधुओ! हम अपने जीवन में बहुत से कर्म करते हैं, कार्य करते हैं और प्रत्येक कर्म का फल भी हम प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो कर्म तो करे लेकिन उसके फल को न चाहे। अकारण कोई भी कार्य नहीं करना चाहता। प्रत्येक जीव अपने द्वारा कृत कार्य का कुछ न कुछ फल अवश्य चाहता है। विद्यार्थी वर्षभर मेहनत करता है। वह चाहता है, परीक्षा परिणाम मुझे पास (Pass) के रूप में मिले। एक दुकानदार अपनी दुकान को चलाने के लिये

दिन-रात एक कर देता है। अपने व्यापार को बढ़ाने के लिये मेहनत करता है। किसलिए? जिससे मुझे कुछ लाभ हो। मेरा व्यापार अच्छा चले। मैं सुखी, समृद्ध व साधन सम्पन्न जीवन जी सकूँ।

इसीप्रकार संसार में जितने भी जीव हैं, वे कोई न कोई कर्म अवश्य करते हैं। अनेक प्रकार की चेष्टायें, आचरण अपनाते हैं और अच्छे फलों की आकांक्षा रखते हैं पर विचार करने योग्य यह है सुखी जीवन जीने के लिए मात्र आचरण की नहीं अपितु मंगल आचरण की आवश्यकता है।

एक व्यक्ति किसी संत के पास पहुँचा। कहने लगा-भगवन्! मैं भी आपकी तरह परम शांति चाहता हूँ। आपकी तरह परम सुख का अनुभव करना चाहता हूँ। संत महात्मा जी ने पूछा- भो भव्य! तुमने अभी तक अपने जीवन में किया क्या है?

उसने कहा-भगवन्! जब मैं सुबह उठता हूँ तो मुझे अपने व्यापार की चिंता लग जाती है। फिर खेत की ओर चला जाता हूँ। फिर दूध लेने चला जाता हूँ क्योंकि परिवार की, बच्चों की चिंता रहती है। फिर बच्चों का हाथ पकड़कर चौराहे पर जाता हूँ क्योंकि स्कूल बस (School bus) की चिंता रहती है। ऐसे ही अनेक कार्य मैं अभी तक करता आ रहा हूँ। संत महात्मा जी बोले- भो भव्य! तुमने अपने जीवन में अभी तक कोई मंगल आचरण नहीं किया। तुम्हारा जितना भी आचरण है वह गृहस्थ आचरण है। आज तक तुमने कभी कोई धर्मकार्य मंगल आचरण नहीं किया। आचार्य भगवंत जब भी कोई ग्रंथ लिखते हैं तो सबसे पहले मंगलाचरण लिखते हैं। जब भी कोई शास्त्र स्वाध्याय करता है तो सबसे पहले मंगलाचरण करता है। अगर कोई मंगलाचरण को छोड़कर शास्त्र स्वाध्याय करे तो उसे शास्त्र स्वाध्याय का जो फल मिलना चाहिए वह फल प्राप्त नहीं हो सकता। कोई स्वाध्यायी मंगलाचरण को छोड़कर शास्त्र स्वाध्याय करता है तो वह भले ही विद्वान बन जाये, बड़ा शास्त्री बन जाये, किंतु स्वाध्याय का फल प्राप्त नहीं कर सकता।

इसलिए आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने जब 'श्री रयणसार जी ग्रंथ' की रचना की तो सबसे पहले मंगलाचरण रचा। मंगलाचरण का अर्थ है मंगल आचरण। आप विचार कीजिएगा, मंगल आचरण हमने अपने जीवन में आज तक किया है या नहीं। सुबह से व्यापार, दुकान, फैक्ट्री (Factory) की चिंता करना क्या मंगल आचरण है? खेती-बाड़ी की चिंता करना क्या मंगल आचरण है? अरे इसमें तो निरंतर हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पाप ही पाप हुआ

करते हैं। जबकि मंगल कहते हैं-**मलं पापं गालयति विध्वंसयति इति मंगलम्**। जो मल को यानि पाप को **गालयति**-गला देता है नष्ट कर देता है। **विध्वंसयति**-जो पाप का विध्वंस कर देता है उसका नाम मंगल है। और **मंगं**-अर्थात् सुख, पुण्य, **लाति**- लाता है। जो सुख को पुण्य को लाता है वह मंगल कहलाता है।

''मंगं लाति मलं च गालयति यन्मुख्यं ततो मंगलं।''

मंगलाचरण एक माध्यम है अपनी श्रद्धा, विनय और भक्तिभाव को अपने आराध्य के चरणों में समर्पित करने का। भक्ति की तरंगों द्वारा आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का। इष्ट से अभीष्ट की प्राप्ति का। मंगलाचरण की महिमा बतलाते हुए कहा है कि-

पढमे मंगल करणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति।
मज्झिम्मे-णीविग्घं विज्जा विज्जाफलं चरिमे।।29-1 ति.प.।।

अर्थात् शास्त्र के आदि में मंगलाचरण करने पर शिष्य जनशास्त्र के पारगामी होते हैं। मध्य में करने पर विद्या की निर्विघ्न प्राप्ति और अंत का मंगलाचरण विद्या का फल प्राप्त कराता है।

एक सच्चा आराधक अपने आराध्य का नाम लेकर अपने हर कार्य की शुरुआत करता है। जिसप्रकार हम किसी से वार्तालाप प्रारंभ करते हैं तो अभिवादन से, आदर सम्मान सूचक शब्दों के द्वारा करते हैं इससे हमारी शालीनता, सभ्यता झलकती है। और ऐसा न करने पर असभ्यता, अविनय और अविवेक ही झलकता है।

सर्वप्रथम मंगल को ध्याओ, जीवन को मंगल बनाओ। यदि आपने उठते ही व्यापार की चिंता की, तो विचार कीजिएगा, व्यापार में पुण्य का अर्जन होता है या पाप का। एक व्यक्ति बोला-महाराज श्री! मैं रोज सुबह से दुकान खोल लेता हूँ और शाम तक खोलकर बैठा रहता हूँ खूब श्रम-परिश्रम करता हूँ इसके बावजूद मेरी दुकान ठीक तरह से नहीं चलती। इसका कारण क्या है? दूसरा व्यक्ति बोला-महाराज श्री! मैं तो 10-11 बजे दुकान पर पहुँचता हूँ और शाम को 6 बजे अपनी दुकान बंद कर देता हूँ। मुझे अपने जीवन के लिए जितना धन चाहिये वह धन मुझे उतने समय में ही प्राप्त हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति वह है जो सुबह उठकर कोई धार्मिक मंगलकार्य शुभ क्रिया तो करता नहीं किंतु उसका फल प्राप्त करना चाहता है। जिसकी सुबह चिंताओं से

शुरु होती है उसकी शाम भी तनाव भरी होती है। पुण्य के प्रताप से ही जीवों को अनुकूलताएँ प्राप्त होतीं हैं। वहीं दूसरा व्यक्ति अपने दिन की शुरुआत परमात्मा के स्मरण से करता है। सर्वप्रथम अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन करता है, तदुपरांत जीवन निर्वाह के लिए, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रसन्नतापूर्वक अपनी दुकान पर जाता है, अपने व्यापार को सँभालता है और साँझ होते ही मन में संतोषवृति को धारणकर प्रसन्नतापूर्वक घर लौट आता है। फिर परमात्मा का स्मरण कर रात में चैन की नींद सो जाता है।

अक्सर लोग शिकायत भी करते हैं कि महाराजश्री ! मैं मंदिर भी जाता हूँ, पूजन-पाठ भी करता हूँ फिर भी मेरी दुकान अच्छी नहीं चलती, जबकि मेरा पड़ौसी न कभी मंदिर जाता है, न पूजा-पाठ ही करता है, न संतों की सभा में जाता है, और न ही आहारदान देता है। वह कोई भी धर्म का कार्य नहीं करता, लेकिन उसकी दुकान पर तो ग्राहकों का ताँता लगा रहता है। इसका मतलब तो यही हुआ कि दुकान धर्म करने से नहीं अपितु धर्म न करने से चलती है।

कई बार आप भी ऐसा सोचने लग जाते होंगे। कभी-कभी तो ऐसा विचार आ ही जाता होगा कि एक व्यक्ति धर्म नहीं कर रहा है फिर भी उसकी दुकान अच्छी चल रही है और मैं धर्म करता हूँ फिर भी हमारे जीवन में संकट ही संकट परेशानी ही परेशानी खड़ी हो रही हैं। ध्यान रखना, उस व्यक्ति ने इस पर्याय में तो धर्म नहीं किया। भगवान की पूजन नहीं की। गुरुजनों के दर्शन नहीं किये। प्रवचन नहीं सुने। न ही आहारदान दिया। लेकिन उस जीव ने पूर्व पर्याय में जो पुण्य संचित किया है वह पुण्य ही वर्तमान में उदय में आ रहा है। इसलिए उसकी दुकान वर्तमान में चलती हुई दिखाई दे रही है किंतु उसे वर्तमान की धर्महीनता का फल नहीं जानना चाहिये।

बिना बीज के कभी वृक्ष नहीं उगते। पिताजी ने अगर बीज बो दिया है और उनकी मृत्यु के बाद वह वृक्ष फले-फूले। उस वृक्ष से फलों की प्राप्ति पुत्र के लिये हो रही है तो वह आज का नहीं अपितु पूर्व में बोए गये बीज का ही फल है। आचार्य भगवन् अमितगति स्वामी सामायिक पाठ में कहते हैं-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।।30।।

अर्थात् हे आत्मन्! तुम्हारे द्वारा पूर्व में जो जैसे कर्म किये गये हैं। उन्हीं कर्मों के फलस्वरूप यह शुभ अथवा अशुभ रूप फल प्राप्त होते हैं।

जिस व्यक्ति ने वर्तमान में धर्मध्यान नहीं किया, फिर भी उसका हर कार्य सफल हुआ नजर आ रहा है। उसका जीवन फलता- फूलता नजर आ रहा है तो इसका कारण यही जानना कि उसने पूर्व में कोई पुण्य के बीज बोए हैं। और यदि तुम वर्तमान में खूब धर्मध्यान भी कर रहे हो। पूजा आराधना भी कर रहे हो। फिर भी तुम्हें हर क्षेत्र में असफलता प्राप्त हो रही है तो उसे अपने द्वारा कृत वर्तमान के धर्मध्यान का फल मत जानना। अपितु पूर्व में किए हुए पापकर्म का फल जानना। यही श्रद्धा रखना कि पूर्व में मेरे द्वारा कृत अशुभ कर्मों का ही यह फल है। अन्तराय कर्म है, जो उदय में आ रहा है। किसी के जब लाभान्तराय कर्म का उदय होता है तब व्यक्ति श्रम तो बहुत करता है लेकिन उसे फल की प्राप्ति नहीं होती। लाभ में हमेशा अंतराय पड़ता रहता है। इसलिये वर्तमान में धार्मिक क्रियाओं में लीन रहनेवाला व्यक्ति अगर विपत्तियों में फँसा हुआ दुखी दिखाई दे, तो कभी विपरीत चिंतन मत कर लेना कि यह व्यक्ति धर्म करते हुए भी दुखी है, और मैं तो कभी धर्मध्यान नहीं करता फिर भी आज सुखी हूँ अत: धर्म करने से क्या होता है। ऐसी अज्ञानता कुछ लोगों के अंदर व्याप्त हो जाती है। लेकिन ध्यान रखना, धर्म करने से पुण्य वृद्धि होती है जिससे हमारे सारे कार्य सम्पन्न होते हैं।

''धर्मात् सौभाग्यं अद्भुतं''

अर्थात् धर्म से अद्भुत सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

विचार करना, एक व्यक्ति ईमानदारी से जी रहा है और एक व्यक्ति चोरी करता है। रात्रि में अंधकार का लाभ उठाकर दूसरों के घरों में घुसता है, चोरी करता है, और अपने परिवार का संचालन करता है। आश्चर्य की बात है वह चोरी भी इतनी सफाई से करता है कि कभी पकड़ा भी नहीं जाता। अब एक बात बताइयेगा भले ही वह चोरी करके धन लाता है, पकड़ा नहीं जाता, तो भी उसे अंदर ही अंदर भय रहता है कि कोई देख न ले, कोई असावधानी न हो जाये, मैं कहीं पकड़ा न जाऊँ। उसे यह भय रहता है कि नहीं? उसकी आत्मा काँपती है या नहीं? और कोई व्यक्ति ईमानदारी से भले ही दो पैसे कमाता हो, तो भी वह निर्भय होकर अपना जीवन जीता है। सुख की नींद सोता है। लेकिन चोर के लिये इस बात का भय लगा रहता है

कि कहीं पुलिस (Police) हमारे घर न आ जाये। मुझे पकड़कर न ले जाये। फिर मेरे परिवार का क्या होगा? ईमानदार व्यक्ति को ऐसी कोई चिंता नहीं होती। इसका तात्पर्य यह है कि वर्तमान में चोर कितना भी सफल हो रहा हो फिर भी भीतर भय रहने के कारण दुखी है, और जिस दिन वह पुलिस (Police) के हत्थे चढ़ गया उसकी सारी सफलता धरी की धरी रह जायेगी। इसलिये किसी चोर को सफल होते हुए देखें तो मन में न सोचें, यह चोरी करता है और ऐशो-आराम की जिंदगी जी रहा है। अब तो मैं भी इसी की तरह जीवन जिऊँगा, चोर बनूँगा। बन जाओगे क्या चोर?

सुख-शांति तो ईमानदारी में है। धर्म का पालन करने में ही है। चोर कितने भी ऐश-आराम के साधन जुटा ले तो भी रात को नींद नहीं आती। क्यों? क्योंकि उसके दिमाग में यही रहता है कि फलाने के यहाँ चोरी की थी पुलिस (Police) तहकीकात कर रही है कहीं मैं पकड़ा न जाऊँ। उसे यह भय लगा ही रहता है।

बंधुओ! अगर आज कोई धर्महीन व्यक्ति व्यापार आदि में सफल हो रहा है तो वह पूर्व पुण्य के कारण ही हो रहा है, वर्तमान धर्महीनता के कारण नहीं। वर्तमान की धर्महीनता का फल तो उसे आगे दिखाई देगा। और जो व्यक्ति वर्तमान में धर्म कर रहा है कदाचित् वह थोड़ा दुखी भी है व्यापार में उसे सफलता नहीं मिल पा रही है परिवार में इतनी सुख समृद्धि भी नहीं है परिवारीजनों के हित के प्रति चिंतित भी रहता है। यह सब उसके पूर्व में किये गये पापकर्म का ही फल जानना। और वर्तमान में वह जो धर्म कर रहा है, उसके प्रताप से वह पाप भी धीरे-धीरे नष्ट हो जायेगा। उस धर्म का फल उसे अवश्य ही आगे दिखलायी देगा।

'धर्मात् सुखं' अर्थात् धर्म से सुख होता है।

एक गरीब व्यक्ति भी एक दिन बहुत बड़ा सेठ बन जाता है। और एक बहुत बड़ा सेठ भी देखते ही देखते दर-दर की ठोकरें खाते नजर आता है। किस कारण से ऐसा हुआ? एकमात्र मंगलाचरण करने और न करने से। एक वह व्यक्ति है जिसने अपने जीवन में मंगलकारी आचरण रूप मंगलाचरण किया। और एक वह व्यक्ति है जिसने हमेशा अमंगल आचरण किया। अमंगल आचरण का फल भविष्य में दरिद्रता के रूप में प्राप्त होता है और मंगल आचरण का फल सुख, शांति समृद्धि होती है।

बंधुओ! राम और रावण थे। राम जिन्हें अपने पुण्यकर्म के योग से राजमहल की प्राप्ति हो रही थी। लेकिन कब पुण्य का क्षय हो और कब पाप का उदय आ जाये, कहा नहीं जा सकता। कुछ क्षण पहले पुण्य का उदय था तो राजतिलक की तैयारियाँ चल रहीं थीं। और अगले ही क्षण पापकर्म का उदय आया तो राम को वनवास दिया गया। राम ने वर्तमान जीवन में कोई अमंगल आचरण किया था क्या? जिस कारण से उन्हें वनवास मिला। राम ने वर्तमान में ऐसा कोई अमंगल आचरण नहीं किया था। अतीत में अपने द्वारा कृत कर्म का फल ही वर्तमान में उन्हें वनवास के रूप में मिला। राजमहल को छोड़ 14 वर्ष तक वे सीता और लक्ष्मण को साथ ले वनवास के लिये निकल पड़े।

ध्यान रखना! धर्मात्मा जीव का लक्षण है वह संकट की स्थिति में कभी अपने मंगल आचरण को नहीं छोड़ता। और अज्ञानी जीव अनुकूलताओं में भी धर्म नहीं कर पाता, धर्म को छोड़ देता है। रावण के पास तीन खण्ड का साम्राज्य है जो राम के पास नहीं है। राम अगर राजा भी बन जाते, तो भी तीन खण्ड के अधिपति नहीं बन पाते। लेकिन रावण का पुण्य इतना तीव्र था कि वह त्रिखण्डाधिपति बना। वहीं राम राजमहल को छोड़कर के वनवास में कभी वृक्ष के नीचे, तो कभी पर्वत की चोटी पर, तो कभी खण्डहर स्थानों में, कभी जली हुई भूमि पर, तो कभी कंकड़ पत्थरों के बीच में अपनी रात व्यतीत करते हैं। राम की यह विशेषता रही इन विषम परिस्थितियों में कभी उन्होंने अपने मंगल आचरण को नहीं छोड़ा।

दूसरी ओर है वह रावण, जो राजमहल में है। हर प्रकार के सुख, साधन, वैभव सब कुछ उसके पास है। फिर भी परस्त्री पर आसक्त हो उसका हरणकर उसने अमंगल आचरण किया। यह जो रावण का अमंगल आचरण है, उसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि वह त्रिखण्डाधिपति है। वर्तमान में उसका पुण्य का उदय चल रहा है। सभी शासक उसके सामने नतमस्तक रहते हैं। उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। भले ही पुण्य के प्रताप से रावण सीता को हर लाया। उसके लिए सीता का संयोग बन गया। तो भी वर्तमान का जो उसका अमंगल आचरण है उसका फल रावण को अंत में मिला। और पूर्व में उसने जो मंगल आचरण किया था उस पुण्य के कारण वह त्रिखण्डाधिपति बना। अब कोई ऐसा गलत न समझे कि रावण ने सीता का हरण किया, फिर भी तीन खण्ड के राजा उसके आगे सिर झुकाते थे। इसलिये अब मैं भी ऐसे ही किसी सीता का हरण करूँगा। रावण को सीता हरण का फल क्या मिला? दुर्गति,

मृत्यु। उसका राज्य वैभव, सुख-सम्पदा सब कुछ नष्ट होना। यह है उसके द्वारा कृत अमंगल आचरण का फल। त्रिखण्डाधिपतिपना उसके पूर्वकृत पुण्यकर्मों का फल था। किसी ने कहा है-

रावणो खेचराधीशः श्री रामो भूमि गोचरः।
निर्जितस्तेन रामेण यतो धर्मस्ततो जयः।।सर्वो।।

अर्थात् रावण विद्याधरों का अधिपति था और श्रीराम भूमिगोचरी थे, फिर भी राम के द्वारा रावण जीता गया सो ठीक ही है जहाँ धर्म है वहाँ जय है।

बंधुओ! अपने जीवन में हमेशा मंगलाचरण करना। संत ने उस आगंतुक श्रावक से पूछा- 'तुम सुबह-सुबह क्या करते हो?' वह बोला-महाराज श्री! सुबह उठते ही मुझे व्यापार की चिंता लग जाती है परिवार के भरण पोषण की, बच्चों के सुखमय भविष्य की, रिश्ते-नातेदारों की चिंता लग जाती है। संत ने कहा- यह सब तुम्हारा गृहस्थ आचरण है। और यह आचरण जीवन में कभी सच्ची सुख-शांति और सुकून नहीं दे सकता है। सच बात बताना, तुम अपने परिवार की इतनी पूर्ति करते हो, तो भी क्या कभी पूर्ण रूप से पूर्ति हो पाती है? शक्कर का डिब्बा कभी पूरा भरता है क्या? ध्यान रखना! घर में रखा हुआ छोटा सा डिब्बा अगर तुम अपनी पूरी लाइफ (Life) में भी भरना चाहो, तो भी पूरा नहीं भर सकते। वह शक्कर का डिब्बा पिताजी भी भरते थे। पिताजी के पिताजी भी भरते थे। वे भी उसे पूरा भरने का प्रयास करते रहे, तो भी शक्कर का डिब्बा पूरा नहीं भर पाया। आज भरा कल खाली हो जाता है। फिर भरा फिर खाली हो गया। फिर भरा फिर खाली हो गया। ऐसे भरते-भरते पूरा जीवन लग जाता है फिर भी वह पूरा नहीं भर पाता। इसीप्रकार परिवार की चिंता करनेवाले परिवार की पूर्ति करते-करते अपना पूरा जीवन लगा देते हैं तो भी परिवार की कभी पूर्ति नहीं होती किंतु उस पूर्ति के लिये तुम्हें क्या-क्या करना पड़ता है? झूठ बोलना, चोरी करना, हिंसा करना, परिग्रह का संचय करना ये सब पुण्य है या पाप? और इनके लिये किया गया आचरण मंगल आचरण है या अमंगल।

इसलिये बंधुओ! अपने जीवन में मंगलाचरण करना सीखें। शास्त्रों के मंगलाचरण तो हमने बहुत किये होंगे। **जब तक जीवन में मंगलाचरण नहीं होता तब तक तुम्हारा शास्त्र**

का मंगलाचरण निरर्थक है। बहुत सारे लोग शास्त्री बन जाते हैं लेकिन अपनी आत्मा से अपरिचित रहे आते हैं। **जीवन का मंगलाचरण देवशास्त्र गुरु की भक्ति के साथ शुरु होता है।**

संत ने कहा– "तुम अपने परिवार की चिंता करते हो। खेती बाड़ी, बच्चों की चिंता करते हो। क्या तुम कभी देवशास्त्रगुरु का भी स्मरण करते हो? सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु का चिंतन करते हो क्या? तुमने जीवनभर अपने परिवारजनों की चिंता की फिर भी पूर्ति नहीं हुई। यदि तुमने कभी किसी संत की चिंता करली होती तो जीवन में कभी पूर्ति की चिंता करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। सुबह उठे और विचार किया, आज तो मुझे मुनिराज को अपने घर लाना है, तो तुम मुनिराज को घर में नहीं लाओगे, पुण्य का पिटारा घर में लाओगे। आज मुझे अपनी सुबह की शुरुआत देवशास्त्र गुरु की भक्ति से करनी है। अगर ये भाव तुम्हारी आत्मा में आया है तो तुमने सुबह से ही मंगलाचरण शुरु कर दिया है। किस भाव के साथ–"**यतो धर्मस्ततो जयः।**"

अब आपके दैनिक जीवन से थोड़ा जुड़ने का प्रयास करता हूँ। सिखाना चाहता हूँ कि हमारे जीवन में मंगलाचरण कैसे आये। आप सुबह उठते हैं, उठने के बाद हो सकता है आप पंच परमेष्ठी मंत्र का स्मरण कर लेते हों, और हो सकता है कभी कभी भूल भी जाते हों। उठने के बाद आप स्नान करते हों। स्नान करना श्रावक के लिये अनिवार्य है। एक व्यक्ति वह है जो शरीर को स्वच्छ बनाये रखने, स्वस्थ बने रहने के लिये स्नान करता है। शरीर की स्वच्छता के लिये किया गया स्नान पाप है, हमें पाप से जोड़ता है क्योंकि जिनागम में कहा है कि पानी की एक बूँद में असंख्यात जीव होते हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं पानी की एक बूँद में 36450 जीव होते हैं। लेकिन जो जिनागम में कहा गया है वह अकाट्य सत्य है। जब वैज्ञानिक मान्यतानुसार एक बूँद पानी में 36450 जीव होते हैं, और आपने अपनी देह को स्वच्छ करने के लिए एक बाल्टी जल से स्नान किया है कितने जीवों की विराधना हुई होगी। विचार करना आपने पुण्य किया है या पाप?

किसी ने पूछा–महाराज श्री! दिगंबर जैन मुनि स्नान क्यों नहीं करते। मुनिराज ने कहा– बेटा! मैं तो रोज स्नान करता हूँ। वह व्यक्ति बोला– आगम में तो ये लिखा है कि मुनिराज स्नान नहीं करते। मैंने कहा– आगम में ये लिखा है कि मुनिराज नितप्रति स्नान करें। चाहे दिन हो या

रात, सुबह हो या शाम, वे स्नान ही स्नान करते रहें। वह बोला-यह तो हमने कहीं नहीं पढ़ा। मैंने कहा- तुम तो दिन में एक बार ही स्नान करते हो लेकिन साधु तो 24 घंटे स्नान करता है। कैसे महाराज? जिनागम रूपी निर्मल जल से साधु सदा स्नपित होता रहता है जिनागम में कहा गया है-

"ब्रह्मचारी सदा शुचि"।।का.व्या.।।

ब्रह्मचारी कैसा होता है? सदा पवित्र रहा करता है। जो ब्रह्मचर्य की उपासना करनेवाला है वह 24 घंटे स्नान करता है। और जिसके पास ब्रह्मचर्य नहीं है वह चाहे जितनी बार जल से स्नान कर ले तो भी उसकी आत्मशुद्धि न होने के कारण वह अशुद्ध ही है। मुनिराज कभी स्नान नहीं करते, क्योंकि वैज्ञानिक जल की एक बूँद में 36450 जीव कहते हैं। वे किसी भी जीव की विराधना करना नहीं चाहते इसलिये जीवन पर्यंत अस्नान व्रत के धारी होते हैं। किंतु श्रावक बिना स्नान किए रह नहीं सकता।

विचार कीजिएगा, आपको स्नान तो करना ही है अब ये आप पर निर्भर करता है कि आप किस प्रयोजन से स्नान करते हैं। एक प्रयोजन यह है मुझे अपने शरीर को स्वच्छ रखना है और दूसरा प्रयोजन यह भी हो सकता है कि मुझे शरीर की पूर्ण शुद्धिकर शुद्ध वस्त्र धारणकर भगवान का अभिषेक पूजन करना है। **यदि आपका प्रयोजन धर्म है तो आपका स्नान भी धर्मस्वरूप हो जायेगा, पुण्य रूप हो जायेगा।** यदि मात्र तन को स्वच्छ करने का प्रयोजन है तो तन धुल जायेगा पर मन न धुल पायेगा। वह पाप में ही कारण बनेगा। इसलिये भक्त क्या कहता है भगवान से-

अनादिकाल से जल से स्वामिन्, तन को अपने नहलाया।
धर्म की पावन गंगा से, मन की शुद्धि करने आया।।

बंधुओ! जीवन में मंगलाचरण करना सीखें। यह हुआ आपकी दैनिक क्रियाओं का मंगलाचरण। माताएँ घर में भोजन बनाती हैं। किसलिये? हमारा परिवार और हम भोजन कर सकें, कोई भूखा न रहे। किंतु धर्मात्मा जीव का लक्षण यह होता है मैं अपने चौके में पहले किसी निर्ग्रंथ मुनिराज के लिये निरंतराय आहार दूँ। मेरे चौके में कोई निर्ग्रंथ मुनिराज आ जायें। अगर मुनिराज न मिल सके तो अन्य पात्रों को, त्यागी व्रती को, आहार देने के बाद ही आहार

करूँ। जिसके ऐसे परिणाम होते हैं भाव होते हैं उसके लिये भोजन भी धर्म का साधन बन जाता है। वही भोजन अमंगल आचरण रूप भी हो सकता है। शुद्ध प्रासुक सात्विक भोजन मंगलाचरण रूप भी हो सकता है। एक भोजन कर्मबंध में कारण और एक कर्मक्षय में। इसलिये हमें चाहिए हम अपने जीवन में मंगल आचरण करना सीखें।

संत ने कहा- बेटा! तुम सबकी चिंता करते हो लेकिन कभी अपने धर्म की, आत्मा की चिंता नहीं करते। और धर्म से विमुख जीवन में कभी मंगलाचरण नहीं हो सकता। जिसके जीवन में मंगल आचरण नहीं, उसके जीवन में कभी विघ्नों की शांति नहीं हो सकती है। आचार्य भगवंतों ने कहा है कि जब भी कोई ग्रंथ प्रारंभ हो, तो छह बातों का ध्यान रखना चाहिये।

मंगल निमित्त हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं।
वागरिय छप्पि पच्छा, वक्खाणउ सत्थ-माहरिया।।

मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता। इन छह अधिकारों का व्याख्यान करके आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करें।

सबसे पहला है मंगल। **मलं पापं गालयति विध्वंसयतीति मंगलम्।** जो मल को पापों को गला दे नष्ट कर दे ध्वंस कर दे उसका नाम मंगल है अथवा **मंगं-सुखं-तल्लाति आदत्त इति वा मंगलम्** जो सुख को लाये प्राप्त करे वह मंगल है अर्थात् हमारी आत्मा को सुखी बनाये वह मंगल है। मंगल कितने होते हैं? आचार्य भगवन् कहते हैं—**चत्तारि मंगलम्** अर्थात् मंगल चार होते हैं। आपको अपना मंगल करने के लिये ये चार साधन मिले हुए हैं। आप चाहें तो इन चारों का आश्रय करके अपने जीवन में मंगल की प्राप्ति कर सकते हैं। यानि अपने पापों का गालन प्रक्षालन कर सकते हैं और आत्मा को निर्मल सुखी बना सकते हैं।

चत्तारि मंगलम्- मंगल चार होते हैं।

अरिहंता मंगलम्- अरिहंत भगवान लोक में मंगल हैं।

सिद्धा मंगलम्- सिद्ध भगवान लोक में मंगल हैं।

साहू मंगलम्- आचार्य, उपाध्याय, और साधु लोक में मंगल हैं।

केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम्- केवली भगवान द्वारा कथित श्रावक-श्रमण धर्म मंगल है।

जो इन चारों का आश्रय, भक्ति, स्तुति करता है उसके जीवन में मंगल का उदय होता है। यदि आपने अरिहंत भगवान का भावपूर्वक स्मरण किया, तो दो घटनाएँ होंगी, एक तो आपके पापों का क्षय होगा, दूसरा पुण्य की आपको प्राप्ति होगी।

बंधुओ! आपने खूब अच्छे से सुना है णमोकार मंत्र के श्रवण करने मात्र से अनेकों जीव पुण्य को प्राप्त हुए। णमोकार मंत्र को भावपूर्वक श्रवण करनेवाले और श्रवण करानेवाले दोनों ही अपने पापों से मुक्त होते हैं छूटते हैं। जीवंधर कुमार एक रास्ते से गुजर रहे थे। एक स्थान पर विद्वानों के द्वारा यज्ञ का आयोजन हो रहा था। एक श्वान (कुत्ता) उस यज्ञशाला के पास जहाँ हवन की सामग्री रखी थी पहुँचा। अब कुत्ते की आदतें तो सब समझते ही हैं। जहाँ भी वह पहुँच जायें तो अपने स्वभाव के अनुसार उसको जो करना होता है सो वही उसने किया और आगे बढ़ने लगा। यज्ञशाला में उपस्थित विद्वानों के लिये कुत्ते की ऐसी हरकत देख इतना अधिक क्रोध आया कि सभी ने एक-एक डंडा हाथ में लिया और कुत्ते को मारना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने उस भूखे-प्यासे असहाय प्राणी को इतना अधिक मारा कि वह लहुलुहान हो गया। उसके बचने की उम्मीद भी नजर नहीं आ रही थी। उस घायल प्राणी का दीन, करुण क्रन्दन सुनकर जीवंधर कुमार का ध्यान उस ओर गया। ऐसा दर्दनाक दृश्य देख उनका हृदय करुणा से भर गया। उन्होंने विद्वानों को रोककर कहा-आप इस तिर्यञ्च प्राणी के लिए क्यों पीट रहे हो? यह अकेला प्राणी और तुम इतने सारे लोग। उस पर भी डंडों से पीट रहे हो। आखिर क्यों? विद्वान बोले- 'इस चाण्डाल कुत्ते ने हमारी यज्ञ की सामग्री को छू लिया है अपवित्र कर दिया है।' जीवंधर कुमार बोले- इसने तो सिर्फ तुम्हारी यज्ञ की सामग्री को छुआ। लेकिन तुम सभी को तुम्हारे भीतर के चाण्डाल क्रोध ने छूकर अपवित्र कर दिया है। जब यज्ञ की सामग्री छूने के कारण तुम इसको पीट रहे हो तब तुमने तो क्रोध को छुआ है तुम्हारी गति क्या होगी? यह सुन सभी विद्वानों के लिये विवेक जागृत हुआ।

बाहर की विद्वता होना अलग बात है भीतर का मंगल आचरण होना अलग है। दुनिया में विद्वान तो बहुत मिल सकते हैं लेकिन मंगल आचरण वाले विद्वान मिलना बहुत दुर्लभ हैं। जैसे ही जीवंधर कुमार ने यह कहा, विद्वान लज्जित हो गए। डंडे को छोड़ दिया और यज्ञशाला के अंदर चले गये।

उधर वह श्वान डंडों से बुरी तरह पीटा जाने के कारण मृत्यु के निकट पहुँच अपनी अंतिम सांसें ले रहा था। जीवंधर कुमार का मन दया से भीग गया। उनके मन में विचार आया कि लोक में चार मंगल हैं। अगर इन चार मंगलों का स्मरण जीव को हो, तो उसके पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और पुण्य की प्राप्ति होती है। यदि जीवन के अंतिम क्षणों में इस जीव को मैं भगवान अरिहंत का नाम सुना दूँ तो इसका भी भला हो सकता है।

जीवंधर कुमार उस कुत्ते के निकट बैठ गये और सुनाने लगे-

णमो अरिहंताणं।

णमो सिद्धाणं।

णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं।

णमो लोए सव्व साहूणं।

णमोकार मंत्र का अंतिम पद सुनते ही उस कुत्ते ने अपनी अंतिम श्वाँस ली। णमोकार मंत्र को भावपूर्वक सुनकर वह कुत्ता मरणकर पुण्य के प्रभाव से देव बना।

विचार करना, एक बार णमोकार मंत्र सुनने का यह फल कि कुत्ता स्वर्ग का देव हुआ। तुम तो रोज णमोकार मंत्र बोलते हो, सुनते हो। क्या तुम्हारी आत्मा में मंगल की श्रद्धा हो पाती है? क्या तुम्हें यह स्मृति रह पाती है कि यह णमोकार मंत्र हमारे लिये मंगल है, हमारे पापों को गलाने वाला और पुण्य को लानेवाला है? हम कहते हैं-

एसो पञ्च णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलम्।।

जिस दिन तुम्हें मंगल की इस रूप श्रद्धा हो जायेगी, उस दिन जब तुम भगवान अरिहंत का दर्शन करोगे तो तुम्हारी आत्मा अपूर्व आल्हाद का अनुभव करेगी। उस दिन तुम सिद्धों को देखोगे, संत-साधुओं को देखोगे, जिन प्रणीत धर्म, आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव द्वारा कहा गया यह धर्म सुनोगे तो तुम्हारी आत्मा से यह आवाज आयेगी, इस समय मेरा मंगल हो रहा है। मेरे पापों का क्षय हो रहा है। मुझे पुण्य की प्राप्ति हो रही है।

धर्मश्रुतेः पापमुपैति नाशं, धर्मश्रुतेः पुण्य-मुपैति वृद्धिं।।सर्वो.।।

वह कुत्ता मरकर स्वर्ग में देव हो गया। अवधिज्ञान के द्वारा जब अपने पूर्वभव का ज्ञान हुआ तो उसका हृदय कृतज्ञता से भर उठा। वह सोचने लगा, अहो! धन्य हैं जीवंधर कुमार, जिन्होंने मुझ पर इतना बड़ा उपकार किया। अपने पूर्वभव में जब श्वान की पर्याय में था और निर्दयी विद्वानों के द्वारा बुरी तरह पीटा जा रहा था तब उन्होंने आकर मुझे बचाया और णमोकार मंत्र सुनाकर मेरे मरण को सुधारा। उस समय मैंने उन्हें अपना सच्चा हितैषी जाना। उनके द्वारा सुनाये गये महामंत्र को एकमात्र शरणभूत स्वीकार कर शांतिपूर्वक अपने प्राणों को छोड़ा। उसी पुण्य के प्रताप से आज मैं इस दिव्य पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ। यक्षेन्द्र बना हूँ। जो जीव किसी अन्य जीव पर उपकार करता है तो वह उसके उपकार को कभी भूलता नहीं है। यक्षेन्द्र भी अपने परम उपकारी जीवंधर कुमार के पास पहुँचा और कहने लगा- हे महानुभाव! आप ने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया। जीवंधर कुमार उससे अनजान, अपरिचित होने के कारण पूछते हैं- हे भाई! तुम कौन हो? और मैंने तुम्हारे साथ ऐसा क्या किया? यक्षेन्द्र बोला- हे कुमार! मैं वही हूँ जिसे आपने मरणासन्न अवस्था में णमोकार मंत्र सुनाया था। अगर आप न होते तो आज मैं इस देव पर्याय में न होता। हे मित्र! आप मेरे परम उपकारी हो। अब से आप मुझे अपना सेवक जानिये। बताइए मैं आपकी क्या सेवा करूँ।

जीवंधर कुमार ने कहा- हे यक्षेन्द्र! मुझे जब आवश्यकता हो तब आप मेरा सहयोग अवश्य करें।

यक्षेन्द्र बोला- आप जब भी मुझे स्मरण करेंगे मैं तुरंत आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।

इधर एक बार काष्ठांगार (जो जीवंधर कुमार के पिता को मारकर राजा बना था) का हाथी नगर में उत्पात मचा रहा था तब जीवंधर कुमार ने उसे रोकने के लिये मुष्ठियों का प्रहार उसके मर्मस्थल पर किया, जिससे वह हाथी घायल हो कुछ ही क्षण में शांत हो गया। और अपने स्थान पर पहुँच गया। किंतु उसने खाना-पीना छोड़ दिया। काष्ठांगार जब आया तब उसने हाथी की वह दशा देखी। वह समझ गया, हाथी अपने अपमान के कारण भोजन नहीं कर रहा है।

ध्यान रखना, जैसी आत्मा अपने इस शरीर में है, वैसी ही आत्मा हाथी के शरीर में भी है। जैसे हम चिंतन, विचार, मंथन करते हैं। ऐसे ही वे जीव भी चिंतन, मंथन करते हैं। हाथी ने अपने आप को अपमानित हुआ जान भोजनपान सब छोड़ दिया। हाथी की यह दशा देखकर काष्ठांगार को बहुत गुस्सा आ गया। उसने आदेश दिया– 'सैनिको जाओ और जिसने मेरे प्रिय हाथी की यह दशा की है उसे पकड़कर लाओ।' जीवंधर कुमार को पकड़कर लाया गया। काष्ठांगार ने उनके लिए फाँसी की सजा दे दी। जीवंधर कुमार को फाँसी के फंदे के पास खड़ा कर दिया गया। किंतु फिर भी कुमार घबराए नहीं। उनके मन में विचार आया कि मैंने जिस पर उपकार किया था क्यों न उसका स्मरण किया जाये। जीवंधर कुमार ने जैसे ही यक्षेन्द्र का स्मरण किया वह तत्काल ही आ खड़ा हुआ। यक्षेन्द्र तुरंत ही समस्त घटना समझ जीवंधर कुमार को वहाँ से अदृश्य कर ले गया। यक्षेन्द्र ने आकर जीवंधर कुमार की सहायता क्यों की? क्योंकि जीवंधर कुमार उसे श्वान की पर्याय में णमोकार मंत्र सुनाते हुए उसके पापक्षय में कारण बने। साथ ही मंगल का स्मरण करने से वे भी मंगलस्वरूप को प्राप्त हुए। उनका भी पुण्य बढ़ा। तभी यक्षेन्द्र ने आकर उनकी रक्षा की। "**धर्मश्रुतेः पुण्यं उपैति वृद्धिम्।**"

कहने का तात्पर्य यह है कि इस सम्पूर्ण लोक में चार मंगल हैं। इन चार मंगलों का जो भी अपने जीवन में आश्रय करता है भक्ति, स्तुति, स्मरण करता है उसके पापों का क्षय होता है पुण्य की प्राप्ति होती है।

पुण्य दो प्रकार का होता है- सातिशय पुण्य और निरतिशय पुण्य। सातिशय पुण्य की विशेषता है—जो पुण्य संसार में रहनेवाले जीवों को सब प्रकार के सुख, साधन, वैभव दे और साथ ही साथ मोक्षमार्ग की साधना में भी अनुकूलता दिलाये उसका नाम है सातिशय पुण्य। यह जीवों को भोगों में आसक्त नहीं कराने के कारण संसार का कारण नहीं अपितु परंपरा से मोक्ष का कारण माना जाता है। **दूसरा है-निरतिशय पुण्य**। पंचपरमेष्ठी के स्मरण बिना, धर्म पालन के बिना, मात्र परोपकार के कार्यों जैसे भूखे को भोजन करा देना, गाय-भैंस आदि के लिये चारे आदि की व्यवस्था करना आदि से जीव के लिये जो पुण्य बँधता है, वह निरतिशय पुण्य कहलाता है। यह पुण्य भी जीव के लिये संसार के सुख प्राप्त कराता है लेकिन कभी विरक्ति नहीं होने देता। जीव को भोगों में आसक्त बनाये रखने के कारण यह पुण्य संसार का

ही कारण कहलाता है। इस पुण्य के फलों को भोगते-भोगते जीव मृत्यु की गोद में समा जाता है परन्तु अपने जीवन में वैराग्य को प्राप्त नहीं हो पाता।

सातिशय पुण्य का जो बंध करता है, वह सातिशय पुण्य का अधिकारी जीव संसार के सुख वैभव को भोगता है और एक दिन मुक्ति, निर्वाण के फल को भी प्राप्त कर लेता है।

धर्मार्थी सर्व कामार्थी।।सर्वो.।।

अर्थात् धर्मार्थी मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त होता है।

इसलिये बंधुओ! कोई भव्य पूछता है इस मंगल का फल क्या है? तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं संसार सुख देना और परमार्थ का भी सुख प्रदान करना, ये मंगल का फल है। इसलिये आचार्य भगवन् ने मंगलाचरण में सबसे पहले नमस्कार किया है। क्या कहते हैं आचार्य भगवन्? "**णमिदूण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं**" वर्द्धमान जिन अर्थात् अंतिम शासननायक भगवान महावीर स्वामी के लिये नमस्कार करके। भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार क्यों किया? क्योंकि भगवान महावीर स्वामी अरिहंत थे और अरिहंत परमेष्ठी हमारा मंगल करनेवाले हैं। हम कहते हैं "**अरिहंता मंगलम्**"।

इसलिये ध्यान रखना! ये चार मंगल हमारे लिये चारों गतियों से मुक्ति दिलानेवाले हैं। चार कषायों से छुड़ानेवाले हैं। पंचमगति दिलानेवाले हैं। भगवन् कुंदकुंद देव ने वर्धमान स्वामी के लिये नमस्कार किया है। और नमस्कार की विशेषता बताते हुए उन्होंने इस गाथा में एक बात कही है- "**तिसुद्धेण**" मन से, वचन से और काया से, इन तीनों योगों की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ।

कोई व्यक्ति काया से नमस्कार करता है मन से नमस्कार नहीं करता। कोई वचनों से नमस्कार करता है मन से नहीं करता। कोई व्यक्ति मन से वचन से नमस्कार करता है काया से नहीं करता। एक व्यक्ति वह है जो मन से नमस्कर कर रहा है वचन से नमस्कार कर रहा और काया से भी नमस्कार कर रहा है। अर्थात् अपने हाथों को झुकाता है पंचांग अथवा साष्टांग नमस्कार करता है। कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो मन से चाह रहा है नमस्कार करना, वचन से बोल भी रहा है नमोऽस्तु। लेकिन उसके शरीर पर कपड़े ऐसे हैं जो उसे झुकने नहीं देते। **आजकल जीन्स (Jeans) चलता है। इस जीन्स (Jeans) ने आदमी के अंदर धर्म का**

(Gene) बदल दिया है। इस जीन्स (Jeans) के कारण वह झुककर नमस्कार नहीं कर पाता। इस प्रकार वह तीनों लोकों के नाथ के सामने काया से विनयपूर्वक नमस्कार करने से वंचित रह जाता है। कोई व्यक्ति काया से नमस्कार करता है किंतु मन में कुछ, वचन में कुछ, और काय की चेष्टा कुछ। आचार्य भगवन् कहते हैं इस प्रवृत्ति का फल मंगल नहीं अमंगल ही है इसलिये मन, वचन और काय इन तीनों को सँभालकर शुद्धकर हे प्रभु! मैं आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ। क्योंकि आपको भावपूर्वक नमस्कार करने से अनेक भवों के बँधे पाप छूट जाते हैं।

कुत्ते के जीव ने मरते समय कितने व्रत, नियम, संयम पाले थे? कितना धर्म पालन किया था? कितनी पूजाएँ, कितना शास्त्र स्वाध्याय किया था? कितनी मालाएँ फेरी थीं? वह कुछ भी तो नहीं कर पाया। मात्र णमोकार मंत्र को श्रद्धापूर्वक, परम मंगलकारी और एकमात्र शरणभूत मानकर श्रवण किया। और नमस्कार में अपनी बुद्धि लगा दी। इतने मात्र से वह ऐसे उत्तम फल को प्राप्त हुआ। इसलिये नमस्कार करने का बहुत बड़ा उत्कृष्ट फल हुआ करता है।

आचार्य भगवन् कहते हैं जिसने इन तीन शुद्धिपूर्वक भगवान के चरणों में नमस्कार किया है वह अपने पापकर्म से मुक्त होता है साथ ही सातिशय पुण्य की प्राप्ति करता है। मैंने पुण्य के दो भेद बताये–सातिशय पुण्य और निरतिशय पुण्य। निरतिशय पुण्य तो संसार में सभी जीव बाँधते रहते हैं लेकिन सातिशय पुण्य का बंध वही जीव करते हैं जो यह श्रद्धा रखते हैं कि ''**चत्तारि मंगलं**'' लोक में चार ही मंगल हैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान जिस जीव के होता है वह सातिशय पुण्य का अधिकारी बनता है। वह संसारावस्था में सुख वैभव को भोगता है और एक दिन निर्वाण महाफल को भी प्राप्त कर लेता है।

इसलिए बंधुओ! आचार्य भगवन् कह रहे हैं अपने जीवन के हर पल का स्वागत मंगलाचरण से करना। अपने हर कार्य का शुभारंभ मंगलाचरण से करना।

किसी भव्य ने प्रश्न किया- भगवन्! यह मंगलाचरण किस उद्देश्य से किया जाता है? आचार्य भगवन् वृहद् द्रव्यसंग्रह की टीका में कहते हैं–

नास्तिकत्वपरिहारस्तु शिष्टाचार प्रपालनम्।
पुण्यवाप्तिश्च निर्विघ्नः शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः।।

अर्थात् शास्त्र के प्रारंभ में मंगलाचरण पंचपरमेष्ठी की स्तुति स्मरण करने का कारण– नास्तिकता का परिहार करने के लिये, शिष्टाचार का पालन करने के लिए, पुण्य की प्राप्ति के लिये और विघ्न विनाश के लिए।

भगवान का स्मरण, स्तुति आस्तिक ही कर सकता है नास्तिक नहीं। भगवान का स्मरणरूप मंगलभाव हमारे आस्तिक्य भाव को वृद्धिंगत करता है। जिस तरह भीषण गर्मी का मौसम हो और किसी नन्हें पौधे को जल न मिले तो वह सूख जाता है। किंतु प्रारंभ से ही जल मिलने पर वह पौधा हरा-भरा होकर बढ़ने लगता है। उसीतरह प्रभुभक्ति रूपी जल से आस्तिक्यभाव रूपी पौधा जीवंत बना रहता है।

आपने सुना होगा, दो मित्र थे। एक मित्र के पास खूब धन-सम्पदा थी दूसरा मित्र गरीब था। गरीब मित्र धर्म के प्रति आस्थावान था धर्मात्मा था। वहीं अमीर मित्र धन के मद में चूर था। सुबह उठते ही मदिरालय जाता और साँझ होती तो वेश्यालय। ऐसा व्यक्ति जिसे सुबह मदिरालय और साँझ वेश्यालय दिखाई देता हो उसका वर्तमान जीवन भले ही पुण्योदय से सम्पन्न हो किंतु बुरे कृत्यों का फल कभी अच्छा नहीं हो सकता अतः भविष्य बुरा ही होता है। गरीब मित्र रोज सुबह उठता। अष्ट द्रव्य की थाली लेकर जिनमंदिर जाता। भगवान की पूजा आराधना करता। एक दिन वह मंदिर से लौट रहा था कि अचानक उसके पैर में एक काँटा चुभ गया। वह लँगड़ाते हुए जैसे-तैसे अपने घर आया। काँटा चुभने की वजह से वह दर्द के कारण बेचैनी का अनुभव कर रहा था अतः चारपाई पर लेट गया।

उधर धनवान मित्र सुबह-सुबह जब वेश्या के घर से लौटकर अपने घर की ओर आ रहा था तब उसे रास्ते में एक सुंदर सी थैली पड़ी दिखी। उस युवक ने वह थैली उठा ली और खोलकर देखा तो उसमें सोने के सिक्के रखे हुए थे। वह सिक्कों से भरी थैली लेकर चल पड़ा। रास्ते में अपने मित्र का घर देख उसने सोचा-चलो आज का दिन बहुत अच्छा है। आज इतना धन अकस्मात् मिल गया। क्यों न अपने गरीब मित्र के भी हालचाल पूछते चलें। देखें क्या दशा है उस धर्मात्मा की? वह अपने मित्र के घर पहुँचा और उसे चारपाई पर लेटा देखकर उसने पूछा-अरे भाई ! क्या हुआ? बीमार पड़ गये हो क्या? उसने कहा-नहीं भाई? बीमार नहीं पड़ा। मंदिर से लौटते समय काँटा लग गया था। बहुत दर्द हो रहा है इसलिये लेटा हुआ हूँ। तुम खड़े क्यों हो बैठो ना। उसकी बात सुन वह बोला- अरे तू भी क्या ये मंदिर-मंदिर लगाये रहता है।

देख, मैं वेश्यालय से आ रहा था और मदिरालय जा रहा था। मुझे सोने के सिक्कों से भरी थैली मिली और मंदिर से लौटने पर तुझे रास्ते में क्या मिला? ये काँटे की चुभन, दर्द, पीड़ा। इसलिये मैं तुझसे कहता हूँ कि धर्म-वर्म कुछ नहीं होता। तू क्यों इन फालतू के चक्कर में पड़कर अपने जीवन के आनंद को खो रहा है। देख, वेश्यालय और मदिरालय जाने का फल क्या है? और तेरे मंदिर जाने का फल क्या है।

वह मित्र गरीब जरूर था लेकिन उसके पास जिनेन्द्रदेव के प्रति आस्तिक्य भाव रूपी अपार सम्पदा थी। उसने प्रेम से अपने मित्र से कहा–मित्र! मैं तो कुछ समझता नहीं। चलो हम एक काम करते हैं नगर में एक बहुत ही श्रेष्ठ मुनिराज पधारे हैं। बड़े ज्ञानी ध्यानी संत हैं। निरन्तर अपनी आत्मा के वीतरागस्वरूप में स्थिर रहने का अभ्यास करते हैं। चलो उनके पास चलते हैं। यह सुन वह बोला–मैं तो नहीं जाता। क्या मिलता है इन संतों के पास। कुछ नहीं मिलता। उसने समझाते हुए कहा–कोई बात नहीं, हमें रास्ते में ही उनके दर्शन हो जायेंगे, फिर तुम मदिरालय चले जाना।

दोनों मित्र संत के पास पहुँचे। संत ज्ञानी थे। उन्होंने दोनों के चेहरे देखते ही उनके मनोभाव को पढ़ लिया। संत बोले- बेटा तुम दोनों मेरे पास इसलिये आये हो कि तुममें से एक को काँटा लगा और एक को सोने के सिक्कों से भरी थैली मिली है। हमारे पास तुम अपने कुछ विचार लेकर आये हो। दोनों ने जब गुरुमुख से यह सुना तो आश्चर्य में पड़ गये। जो धर्मात्मा, आस्तिक भाववाला मित्र था, उसने कहा- भगवन्! मैं रोज मंदिर जाता हूँ। जिनेन्द्र भगवान की आराधना करता हूँ फिर भी मुझे काँटा लगा। और मेरा यह मित्र भगवान को नहीं मानता। इसे स्वर्ण सिक्कों से भरी थैली मिली। क्यों? मैं यह मानता हूँ मेरे पैर में काँटा चुभा यह मेरे पापकर्म का फल है। किंतु मेरा मित्र कहता है तुझे धर्मफल के रूप में यह काँटा मिला। मुनिराज बोले–''**धर्मो हि मूलं सर्वासां धनर्द्धि सुख सम्पदाम्।**'' अर्थात्- धर्म सब धन-वैभव सम्पदा और सुख का मूल है। बेटा! तुमने पूर्व जन्म में ऐसा तीव्र पापकर्म का बंध किया था कि उसके उदय में तुम्हारे लिये आज सूली प्राप्त होना थी लेकिन तुमने जिनेन्द्र भगवान के प्रति आस्था रखी। उस आस्तिक्य भाव के कारण पापकर्म निरंतर क्षीण होता गया और सूली आज एक काँटे के रूप में बदल गयी। पुण्यकर्म के प्रभाव से वह छोटे रूप में बदल गई। यह है तुम्हारे द्वारा किये धर्म का फल। और तुम्हारा मित्र, इसे स्वर्ण सिक्कों की भरी थैली मिली है। इसके लिये आज

राजसिंहासन की प्राप्ति होनेवाली थी लेकिन वेश्यालय और मदिरालय जाकर अपने दुष्ट आचरण के कारण इसने अपना समस्त पुण्य नष्ट कर दिया और आज वह पुण्य एक विशाल राजकोष के स्थान पर चंद सोने के सिक्कों में बदलकर रह गया है। अगर इसने अपने जीवन में मित्र की तरह मंगल आचरण अपनाया होता तो आज राजतिलक हो रहा होता। जैसे ही उस नवयुवक ने यह बात सुनी। मुनिराज के प्रति हृदय में श्रद्धा का प्रदुर्भाव हुआ और इतना ही नहीं मुनिराज से उसने नियम भी ले लिया, आज के बाद मैं मदिरालय-वेश्यालय नहीं जाऊँगा। अब अपने मित्र के साथ रोज जिनालय जाऊँगा। सम्यक्त्व कौमुदी में कहा है-

पापाद् दुखं धर्मात् सुखमिति सर्वजन सुप्रसिद्ध मिदं।
तस्माद् विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मं।।283।।

पाप से दुख और धर्म से सुख होता है यह सर्वजनों में सुप्रसिद्ध है। इसलिये सुख के इच्छुक मनुष्य को पाप छोड़कर सदा धर्म का आचरण करना चाहिए। ऐसे धर्ममय मंगलाचरण को अपनाने से नास्तिकता का परिहार हो जाता है।

दूसरा है शिष्टाचार। मंगलाचरण करने से शिष्टाचार का पालन होता है। जब आप अपने घर परिवार में होते हैं और कोई अतिथि आकर आपके दरवाजे पर खड़ा हो तो आप उसे कैसे बुलाते हैं? हाथ जोड़कर निवेदन तो करते ही हैं। यह बात अलग है कि शिष्टाचार की परंपरा अलग-अलग हो सकती है। भारतीय संस्कृति में तो हाथ जोड़कर अभिवादन करने की परंपरा रही है। अब वर्तमान में वह शिष्टाचार हाथ जोड़ने की अपेक्षा हो सकता है हाथ मिलाने की ओर बढ़ गया हो लेकिन शिष्टाचार तो है ही। ऐसे ही जो मंगलाचरण करता है वह भगवान के चरणों में हाथ जोड़कर नमस्कार करता है तो शिष्टाचार का भी पालन होता है।

जीवन में भ्रष्टाचार तो बहुत है अब शिष्टाचार लाने की आवश्यकता है। प्रथम शिष्टाचार क्या है? सच्चे देव शास्त्र गुरु के लिये नमस्कार करना यह प्रथम शिष्टाचार है।

तीसरा है 'पुण्य प्राप्ति'। मंगलाचरण करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। और चौथा है 'निर्विघ्न समाप्ति' अर्थात् आप जिस कार्य को लेकर मंगलाचरण कर रहे हैं उस उद्देश्य को लेकर अगर आपने मंगलाचरण किया है तो आपका यह कार्य शीघ्र ही निर्विघ्न सम्पन्न होता

है। इसलिये इन चार कारणों की प्राप्ति जिनेन्द्र भगवान की स्तुतिरूप मंगलाचरण करने से होती है।

बंधुओ! मैं आपको कल कुछ बातें और बताऊँगा। जैसे अक्सर ये देखा जाता है कि कोई व्यक्ति अपनी नई दुकान खोलता है अथवा नये गृह में प्रवेश करना होता है तो सबसे पहले उद्घाटन करता है। इसीप्रकार से आप वंदनवार आदि बाँधते हैं। क्यों बाँधते हैं? यह सब क्या आगम अनुसार है या लोक परंपरा है? इन प्रश्नों के समाधान कल इसी मंगलाचरण के अंतर्गत हम आपके लिये आगम-जिनागम से बताएँगे। इनको समझकर आगम के अनुसार अपने व्यवहारिक जीवन को बनाना और पारमार्थिक जीवन को पाने का प्रयास करना।

वर्द्धमान जिन नमन नमन, मन वच काया से वंदन।
रयणसार को कहता हूँ सुन लो श्रावक और श्रमण।।
जिनवर की स्तुति, हो-हो-2, सब विघ्न नशाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 1
(द्वितीय प्रवचन)

जैन वंदनवार की मांगलिकता

03.08.2013

भिण्ड

(मंगलाचरण)

णमिदूण वड्ढमाणं, परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं, सायार-णयार-धम्मीणं।।1।।

* अन्वयार्थ *

(**परमप्पाणं**) परमात्मा (**वड्ढमाणं**) वर्धमान (**जिणं**) जिनेन्द्र को (**तिसुद्धेण**) मन, वचन, काय तीनों की शुद्धिपूर्वक (**णमिदूण**) नमस्कार करके (**सायारणयार**) सागार-अनगार (**धम्मीणं**) धर्म के व्याख्यान करने वाले (**रयणसारं**) रयणसार-नामक ग्रन्थ को (**वोच्छामि**) कहता हूँ।

अर्थ-मैं (कुन्दकुन्द), वर्तमान शासनाधिपति परमात्मा वर्धमान जिनेन्द्र को मन-वचन-काय त्रिशुद्धिपूर्वक नमस्कार करके सागार-गृहस्थ और अनगार-मुनि धर्म का व्याख्यान करनेवाले रयणसार ग्रन्थ को कहता हूँ।
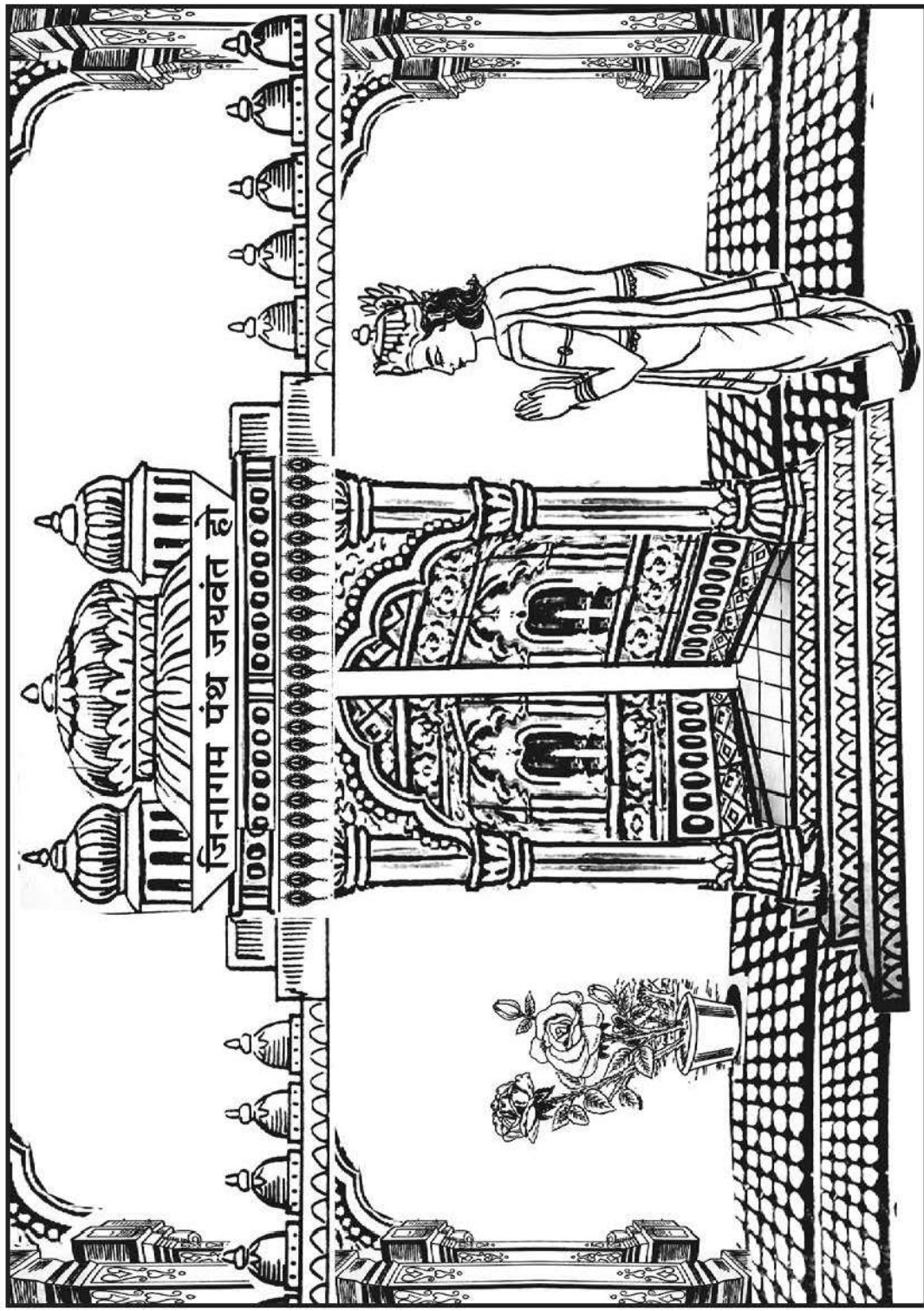
राजमहल के मुख्यद्वार पर चौबीस तीर्थंकर का प्रतीक चौबीस पत्रवाला वंदनवार और वंदनामुद्रा में चक्रवर्ती भरत

3

रयणोदय

प्रथम मंगलाचरण करो, फिर आहार विहार करो।
मोक्षमार्ग अपनाओ या, कोई लोक व्यवहार करो।।
मंगल से जीवन, हो-हो-2, मंगल बन जाये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

एक सम्राट था। जो सम्राटों का सम्राट था। छः खण्ड का अधिपति था। नाम था सुभौम चक्रवर्ती। पूर्व पर्याय में उसके द्वारा धर्म का महान् आयोजन किया गया। उत्कृष्ट धर्म के पालन हेतु निर्ग्रंथ मुनि मुद्रा को धारण किया। श्रेष्ठ पुण्य का संचयकर वह जीव चक्रवर्ती बना।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि जितने भी पद होते हैं वे जीवों के लिए पुण्य से ही प्राप्त होते हैं। चक्रवर्ती सुभौम धर्म के प्रति महान आस्थावान था। वह जब कभी एकांत में बैठता अथवा राजपाट के कार्यों से समय बचता तो मन ही मन णमोकार महामंत्र को बोलता, पढ़ता रहता।

हम अनादिकाल से इस संसार में रहते आ रहे हैं। कभी कोई अपना शत्रु तो कभी वही जीव अपना मित्र बन गया। मित्र बनाना और शत्रु पैदा करना दोनों ही हमारे व्यवहार पर निर्भर करता है। यदि किसी व्यक्ति का व्यवहार अच्छा हो। सभी से अच्छे मीठे बोल बोलता हो। सभी का भला सोचता हो। सभी के प्रति प्रेम व सहयोग की भावना से भरा हुआ हो। उसके अपने आप मित्र ही मित्र बनते चले जायेंगे। और यदि कर्कश स्वभाववाला हो। सामनेवाला मीठे बोल बोल रहा और वह अपशब्द बोले तो निश्चित रूप से मित्र कम और शत्रु अधिक बनते चले जायेंगे। और जो मित्र होंगे वे भी अपना साथ छोड़ देंगे। किस कारण? एकमात्र हमारे कटु व्यवहार के कारण।

बंधुओ! इस तरह इस संसार में जितने जीव हैं वे अपने व्यवहार से कहीं शत्रु तो कहीं मित्रों को जन्म देते रहते हैं। किंतु जो अपना भला चाहते हैं परभव को सुखी बनाना चाहते हैं। संतजन उनसे यही कहते हैं बेटा! जब इस दुनिया से जाना तो सबको मित्र बनाकर जाना। किसी के शत्रु मत बने रह जाना। यदि तुम मित्र बनाकर जाओगे तो परभव में भी तुम्हारा कोई सहयोगी बन सकता है। कोई उपकारी मिल सकता है। अगर तुम किसी को अपना शत्रु बनाकर चले गये तो परभव में वह तुमसे बदला अवश्य लेगा। अत: जीवन में हम प्रतिपल यही भावना भायें-

शत्रु अगर कोई हों, संतुष्ट उनको करदूँ।
समता का भाव धरकर, सबसे क्षमा कराऊँ।।स.भा.।।

प्रथमानुयोग में जितने भी कथानक आते हैं, वे कुछ ऐसी ही शिक्षा हमें देते हैं कि जीवन कैसे जीना चाहिए? अगर आज हमारा कोई शत्रु बना है तो अकारण नहीं बना। हमने पूर्वभव में उसके साथ शत्रुता का भाव रखा। कटु व्यवहार किया। इस कारण वह आज हमारे प्रति दुर्व्यवहार कर रहा है। दुर्भावना से भरा हुआ है। सिद्धान्त भी यही कहता है-

पुराकाल में किये शुभाशुभ, कर्म आत्मा ने जैसे।
यहाँ इस समय हुये उसी को, प्राप्त शुभाशुभ फल वैसे।। सा.पा.।।

सुभौम चक्रवर्ती राजसभा में सिंहासन पर विराजमान था। दरबार लगा हुआ था। उधर स्वर्ग में एक देव के मन में विचार आता है कि पूर्व जन्म में जिसके कारण मेरी मृत्यु हुई वह मेरा शत्रु कहाँ है? देव तो अवधिज्ञानी होते हैं उसने तुरंत अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह जीव जो राजदरबार के मध्य राजसिंहासन पर चक्रवर्ती बना बैठा है यही मेरा शत्रु है। वह देव बदला लेने की भावना से भर उठा। तुरंत एक व्यापारी का रूप धारण कर कुछ भेंट लेकर सुभौम चक्रवर्ती के दरबार में पहुँच गया। जैसा कि सम्यक्त्व कौमुदी में कहा है–

रिक्तपाणिर्नैव पश्येद् राजानं देवता गुरुम्।
नैमित्तिकं विशेषेण फलेन फलमादिशेत्।।12।।

नीतिकार कहते हैं चार स्थानों पर कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये, क्योंकि फल की प्राप्ति फल से ही होती है। जो इन चार स्थानों पर खाली हाथ जाते हैं वे खाली हाथ ही लौटते हैं। वे चार स्थान हैं- देव, राजा, गुरु और निमित्तज्ञानी। यहाँ निमित्तज्ञानी के स्थान पर वर्तमान में वैद्य अथवा डॉक्टर (Doctor) भी लिए जा सकते हैं।

हमें देव के पास यानि जिनमंदिर में कभी भी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। जैनकुल की यह परंपरा है जब सुबह भगवान जिनेन्द्र के दर्शन पूजन के लिये जिनमंदिर जाते हैं तो घर से डिब्बी में अथवा हाथ में चावल आदि सामग्री लेकर ही जाते हैं खाली हाथ नहीं जाते। और कोई विशेष पर्व, दिन हो तो श्रीफल आदि भी लाते हैं। देवाधिदेव के दर्शनार्थ कुछ न कुछ अवश्य लेकर जाना चाहिये।

दूसरा गुरु के पास यदि आप प्रथम बार पहुँच रहे हो तो कुछ न कुछ अवश्य ही समर्पित करने के लिये लाना चाहिये। भले ही जेब में बादाम रख लो। तीर्थवंदना में अथवा जहाँ-जहाँ निर्ग्रंथ गुरु मिलें वहाँ श्रद्धाभक्ति पूर्वक अर्घ बोलकर देवपत-खेवपत दोनों भाइयों की भाँति अपनी भेंट समर्पित कर देना।

सम्राट के पास जायें तो खाली हाथ नहीं जाया जाता। अन्यथा राजा कुपित हो सकता है। क्योंकि यह शिष्टाचार के अन्तर्गत आता है। अतः शिष्टाचार के पालन हेतु कोई न कोई भेंट अवश्य ही साथ ले जाना चाहिए।

निमित्तज्ञानी, डॉक्टर (Doctor) या वैद्य के पास जाओ तो खाली हाथ मत जाओ। यदि तुम किसी को गंभीर हालत में लेकर डॉक्टर (Doctor) के पास पहुँचे और उसने चैकअप (Check up) करने से पहले रसीद बनवाने को बोला, और तुम्हारे हाथ में उस समय कुछ भी नहीं है तो कोई भी परिस्थिति बन सकती है। और यदि तुमने जाते ही सबसे पहले यह काम कर लिया तो वैद्य भी खुश, डॉक्टर (Doctor) भी खुश।

अगर आप किसी की दुकान पर जाते हो तो खाली हाथ नहीं जाते। जेब गर्म करके ले जाते हो। लेकिन जिनेन्द्र देव और गुरु के पास आपकी खाली-भरी जेब का कोई महत्त्व नहीं। उनके पास तो आपके भक्तिभाव का महत्त्व है। यदि आपके अंदर भक्ति है तो आप मांगलिक द्रव्य लेकर अवश्य ही जाओगे। अगर तुम अपनी जेब गर्म करके संत के पास पहुँच कर कहने लगे- कहो महाराज, कितना? तो महाराज कहेंगे बेटा! जितना तुम्हारी जेब में है जितनी सम्पदा तुम्हारे पास है और जितनी धन-दौलत समस्त संसारी जीवों ने जोड़ रखी है वह सब तो मैंने दीक्षा लेते ही छोड़ दी। हमारा इन सबसे अब क्या प्रयोजन? तुम्हारे हाथों की मांगलिक द्रव्य व उसके साथ जो तुम्हारे मांगलिक भाव हैं हम उनसे कुछ प्रयोजन अवश्य रखते हैं। जिससे तुम्हारी भाव विशुद्धि और बढ़े, धर्मवृद्धि हो, कल्याण हो। इसलिए इन चार जगह कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये।

वह देव सम्राट सुभौम को अपना शत्रु मानकर उसके राजदरबार में पहुँचा। वह एक व्यापारी का वेश धारणकर आया और सम्राट को समर्पित करने हेतु अत्यंत मिष्ट फल हाथ में लाया। सम्राट की उचित विनय, सम्मान कर उसने वह फल भेंट कर दिया। उस देव ने अपनी ऋद्धि के प्रभाव से उस फल को अत्यंत आकर्षक और मिठास युक्त बना दिया था। जैसे ही सुभौम चक्रवर्ती ने उस विशेष फल को चखा, तो मन ही मन सोचने लगा, मैं इतने उत्तमोत्तम व्यंजनों का स्वाद चखता हूँ लेकिन इस मिष्ट फल जैसा कोई भी व्यंजन मेरे चखने में नहीं आया। सुभौम चक्री के हृदय में उस मिष्ट फल की चाह पैदा हो गई। वह उस व्यापारी से बोला- भो वणिक्! तुम किस देश से आये? और कहाँ से इतना उत्तम फल लेकर आये हो? हमारे लिये यह मिष्ट फल अत्यंत प्रिय लगा।

वह देव जो व्यापारी का रूप धरकर आया था, बोला- राजन्! अगर आपको यह फल इतना प्रिय लगा, और इससे भी अत्यंत उत्तम फलों को आप प्राप्त करना चाहते हो तो हमारे

साथ चलो। मैं आपको एक ऐसे देश में ले चलता हूँ जहाँ ऐसे अनेकों मिष्ट फल के वृक्ष लगे हुए हैं। वहाँ आप जी भरकर उत्तमोत्तम फलों का आनंद लेना।

संसारी जीव इन्द्रियों के वशीभूत होकर निरंतर अपना अमंगल ही अमंगल करता रहता है। कल चार मंगल बताये थे—अरिहंत परमेष्ठी मंगल हैं, सिद्ध परमेष्ठी मंगल हैं, साधु परमेष्ठी मंगल हैं, और केवलिप्रणीत धर्म मंगल है।

श्रावकों की तो किसी मंगल में कोई गिनती ही नहीं है। श्रावकों को किसी मंगल में क्यों नहीं रखा गया? क्योंकि जो इन्द्रिय विषयों में लीन रहता है उसे कभी मांगलिक नहीं कहा जा सकता। ये इन्द्रिय विषय अमांगलिक आचरण पैदा करनेवाले हैं। पाप को देनेवाले हैं। इसलिये जिनेन्द्रदेव ने कहा—इन पंचेन्द्रिय के विषयों से छूटकर मंगलरूप साधुपद में स्थित होना चाहिए। अगर जीवन मांगलिक बनाना है तो अमांगलिकता का त्याग आवश्यक है।

सुभौम चक्रवर्ती जैसा पुण्यात्मा विद्वान जीव भी रसना इन्द्रिय के वशीभूत हो गया। ऐसे सुभौम चक्रवर्ती केवल एक नहीं है घर-घर में हैं। किसी को डायबिटीज (Diabetes) हो गई, डॉक्टर ने कहा- मीठा नहीं लेना है तो घर में ऐसे भी लोग हैं जो यदि पत्नी मीठा बनाकर नहीं देती तो बाजार में जाकर मिठाई खा आते हैं। इन्हें अपने जीवन की भी परवाह नहीं है। और जिस व्यक्ति को अपने जीवन की परवाह न हो उसे धर्म की परवाह कहाँ हो सकती है? क्योंकि सभी प्राणियों के लिये अपने प्राण ही सबसे प्रिय होते हैं। और जो अपने जीवन की परवाह न कर इन्द्रिय विषयों को ही प्रिय माने, उससे बड़ा अज्ञानी और मूढ़ व्यक्ति कौन होगा अर्थात् कोई नहीं।

वह सुभौम चक्रवर्ती रसना इन्द्रिय के विषय में आसक्त हो गया। एक मिष्ट फल को पाने के लिये वह वणिक् के साथ चलने को तैयार हो गया। विचार कीजिएगा, अगर प्रधानमंत्री के लिये कचौड़ी पसंद हो तो क्या वे हलवाई की दुकान पर पहुँच जायेंगे? अरे वो देश के प्रधानमंत्री हैं। संपूर्ण देश में कोई भी, कैसा भी पदार्थ क्यों न हो, वह अपने स्थान पर बैठे-बैठे हासिल कर सकते हैं। ये उनका स्वाभिमान है। किंतु चक्रवर्ती सुभौम छह खण्ड का अधिपति होते हुए भी अपने स्वाभिमान को भूल गया, कि मैं षट्खण्डाधिपति हूँ। कहीं भी, कोई भी, कैसी भी वस्तु क्यों न हो मैं वहाँ से मँगा सकता हूँ। जब व्यक्ति इन्द्रिय विषयों के वशीभूत होता है तो वह सब कुछ भूल जाता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। उसे क्या करणीय है क्या अकरणीय है इस बात का कुछ ख्याल ही नहीं रहता। कुरल काव्य में ऐलाचार्य जी कहते हैं-

अनुचित कार्यों को करे, तब हो नर का नाश।
योग्यकर्म यदि छोड़ दे, तो भी सत्यानाश।।

चक्रवर्ती सुभौम उस व्यापारी के साथ चलने को तैयार हो गया। तभी मन में विचार आया, क्यों न अपनी प्राणप्रिय पटरानी को अपने साथ ले चलूँ। वहाँ हम दोनों एक साथ मिलकर उन उत्तमोत्तम फलों के सेवन का सुख भोगेंगे। कहते हैं–'**विनाशकाले विपरीत बुद्धि**' जब व्यक्ति का विनाशकाल आता है तब उसकी बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। चक्रवर्ती अपनी पटरानी के साथ चल दिया। रास्ते में समुद्र पार जाने के लिये वह नौका में सवार हो गया। किंतु जैसे ही नौका समुद्र के बीचों बीच पहुँची, वह देव व्यापारी का छद्मवेश धारण कर सुभौम के साथ ही था। जैसे वह देव व्यापारी का रूप रखकर सुभौम को ठगने आया था, वैसे ही घर परिवार में सभी बहुरूपिये होते हैं। और इन्हें जो अपना मान लेता है वह सुभौम चक्री की भाँति दुर्दशा को प्राप्त होता है। चक्रवर्ती भरत, बाहुबली को अपना भाई कहते थे। और कामदेव बाहुबली, भरत के बिना रह नहीं पाते थे। लेकिन जब समय आता है तब अपने ही दगा देने से नहीं चूकते। इंसान को सबसे ज्यादा धोखा अगर मिलता है तो अपनों से ही मिलता है। परायों के प्रति तो वैसे ही अपनी पराई दृष्टि रहती है। जिन्हें हम अपना कहते हैं, जिनसे उम्मीदें बाँधे रखते हैं, धोखा अक्सर वे ही दे जाते हैं। इसलिए बंधुओ! इस दुनिया में सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के अलावा किसी को भी अपना मत समझना। क्योंकि इस दुनिया में सब बहुरूपिये लोग बसते हैं। जो सुबह तो अपनापन दिखाते हैं और साँझ होने पर लूटने से भी बाज नहीं आते। मैंने लिखा था–

क्या जमाने की बात करते हो।
पागलखाने की बात करते हो।।

न वफा, प्रेम शराफत दिल में।
दिल लगाने की बात करते हो।।

अपने अपनों को लूटते हों जहाँ।
उस जमाने की बात करते हो।।ज़ाहिद की ग़ज़लें।।

सुभौम चक्रवर्ती जैसे ही समुद्र के बीचोंबीच पहुँचा, वह देव अपने असली रूप में प्रकट हो गया और सुभौम से बोला–रे सुभौम! मैं तेरा शत्रु हूँ शत्रु। मुझे पहचान, आज मैं तुझसे बदला लेकर रहूँगा। रे दुष्ट! आज मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं हूँ। सुभौम को अब सारी सच्चाई नजर आ गयी। उसे समझते देर न लगी कि यह सारा मायाजाल इस देव का रचा हुआ है।

सुभौम को तो सारी सच्चाई स्पष्ट नजर आने लगी लेकिन भिण्ड वालो! तुम्हें जीवन की सच्चाई कब नजर आयेगी। परिवार की सच्चाई से तुम कब वाकिफ़ होओगे। बाह्य सम्पदा की सच्चाई को कब पहचानोगे? जब जीवन का अंत आ जायेगा, तब। जो जीते जी सत्य को पहचान लेता है उसका जीवन सँवर जाता है। और जो असत्य के अँधेरों में जीवन खो देते हैं वे अमांगलिकता को ही प्राप्त होते हैं।

सुभौम चक्रवर्ती समझ गया कि ये मेरा शत्रु देव है। जिसने व्यापारी का रूप रखकर मुझे छला है। ओ हो! एक छोटे से तुच्छ फल के लिये मैंने अपने जीवन को, अपने परिवार और प्रजा को खतरे में डाल दिया। बंधुओ! चक्रवर्ती सुभौम ने जिस तुच्छ फल के लिए अपने प्राणों को, परिवार और समस्त प्रजा को संकट में डाल दिया वह कम से कम मिठास से तो भरा था। लेकिन आप विचार कीजिएगा, गुटखा, तंबाकू जैसी तुच्छ वस्तु के लिये आप पूरा जीवन दाँव पर लगा देते हो। अपने परिवार की सुख शांति और समृद्धि को दाँव पर लगा देते हो। कभी ये विचार नहीं करते, कि इसके साथ एक चेतावनी दी जा रही है सँभलने के लिये, जागरूक होने के लिये। एक वैधानिक चेतावनी तुम्हारे उस गुटखे के हर पाऊच के ऊपर लिखी रहती है कि 'तंबाकू चबाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।' यह शौक अनेकों रोगरूपी विपत्ति अपने साथ लाता है। मुख का कैंसर (Cancer), पथरी, लिवर (Liver) संबंधी अनेकों रोग तुम्हारे उस शौक की देन है। तंबाकू में रहनेवाला निकोटीन स्लो पॉइजन (Nicotin Slow Poison) हमें बार-बार उसे खाने को मजबूर कर देता है। और उसे खाते ही किया हुआ भोजन भी जहरीला हो जाता है। फिर वह हमारे शरीर का पोषण भी नहीं कर पाता और शरीर सूखकर काँटे जैसा होता जाता है। रसना इन्द्रिय में इतनी आसक्ति कि ऐसी तुच्छ, हेय वस्तु के लिये हम अपना पूरा जीवन, अपने परिवार का जीवन, दाव पर लगा दें यह कहाँ की समझदारी है।

इन पदार्थों के सेवन से अगर तुम्हारा पेट भी भरता हो, तो भी माना जा सकता है कि चलो शरीर पोषित होता है। किंतु इनके सेवन से स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि मुख भी ठीक से नहीं खुलता। मसूड़े बेजान हो जाते हैं। जबड़े काम करना बंद कर देते हैं। व्यक्ति ठीक प्रकार से बोल नहीं पाता। मुख में कैंसर (Cancer) हो गया, अब तो भोजन क्या, गुटखा तक भी नहीं खा सकता ऐसी स्थिति बन जाती है। माता-पिता ने जो भी धन सम्पदा जोड़-जोड़कर परिवार के सुखमय भविष्य के लिये रखा था, वह सारा धन तुम्हारे उस मुख में ही चला गया। गुटखा जैसी एक तुच्छ वस्तु के लिये अपना जीवन बरबाद किया। परिवारी जनों को दुखी परेशान

किया। समस्त धन-सम्पदा नष्ट कर दी। ऐसी वस्तु को दूर से ही छोड़ देना चाहिए। त्याग कर देना चाहिये। यदि कोई खाता नहीं तो भी उसे त्याग अवश्य ही कर देना चाहिये। क्योंकि त्याग करने पर ही उसका फल हमें प्राप्त होता है। मैं भगवान् महावीर के चरणों में यही भावना भाता हूँ कि हे भगवन्! सभी जीवों का जीवन मांगलिक बने। उनके घरों में कभी कोई ऐसा अमांगलिक तत्व न पहुँचे। उनके जीवन में कभी कोई अमांगलिकता न घटे। सभी परिवार हमेशा सुखी और समृद्ध रहें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।।

बंधुओ! सुभौम चक्रवर्ती एक तुच्छ फल की चाहत में समुद्र में पहुँच गया। देव ने अपना असली रूप दिखाया और सुभौम से बोला-'रे चक्री! आज तुझे मृत्यु से कोई नहीं बचा सकता।' सुभौम चक्रवर्ती मन ही मन विचार करने लगा, यह देव अपनी शक्ति से कुछ भी कर सकता है। अब हमारी रक्षा करनेवाला कोई है तो वह है महामंत्र णमोकार। कहते हैं ना-

जब कोई नहीं आता बड़े बाबा आते हैं।
मेरे दुख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं।।

पंच परमेष्ठी में जितने भी परमेष्ठी हैं। वे अपने आप में बड़े बाबा हैं। और जो इस पंच-परमेष्ठी मंत्र का स्मरण करने लग जाता है उसका कभी कोई बिगाड़ नहीं कर पाता। सुभौम चक्री के हृदय में णमोकार मंत्र के प्रति सच्ची श्रद्धा थी, वह जानता था कि मैंने पढ़ा है-

अरिहंता मंगलं।

सिद्धा मंगलं।

साहू मंगलं।

केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

संसार में अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ही मंगलकारी है और हर अमंगल का नाश करनेवाला है।

'एसो पञ्च णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं।।'

यह पंचनमस्कार मंत्र प्राणीमात्र के लिये शरणभूत है। क्योंकि यह समस्त पापों का नाश करनेवाला है। सभी मंगलों में प्रथम मंगल है। इसका पवित्र मन से श्रद्धापूर्वक जो भी स्मरण करता है उसके जीवन में सब मंगल ही मंगल होता है।

सुभौम चक्रवर्ती मन ही मन पंचपरमेष्ठी मंत्र का स्मरण करने लगा। उस देव ने अपनी विक्रिया से भयंकर आँधी तूफान खड़ा कर दिया। समुद्र की लहरें सुनामी की तरह भयंकर वेग के साथ उठने लगीं। वह देव सुभौम को मार डालने के लिये संकट पर संकट पैदा कर रहा था किंतु चक्री सुभौम ने इन संकटों के मध्य भी णमोकार मंत्र रूप रक्षाकवच को धारणकर रखा था।

चक्रवर्ती की नौका लहरों पर ऊपर-नीचे होने लगी। लेकिन उसने मन ही मन निश्चित कर रखा था कि संकट की इन घड़ियों में मंगलकारी रक्षक तो एकमात्र भगवान जिनेन्द्र की भक्ति ही है। इधर सुभौम भगवान की भक्ति में लीन था। उधर वह देव सोच में पड़ जाता है कि आखिर कारण क्या है? मेरे द्वारा इतना प्रचण्ड तूफान लाने पर भी इस सुभौम की यह नाव डूब क्यों नहीं रही है? तब उसने अपने अवधिज्ञान से यह पता लगाया कि यह सुभौम चक्रवर्ती अपने मन में महामंगलकारी, पंचपरमेष्ठी, णमोकार महामंत्र का स्मरण कर रहा है और जब तक यह स्मरण करता रहेगा तब तक इसका कुछ भी अमंगल होनेवाला नहीं है।

उस देव ने एक युक्ति सोची और सुभौम से बोला– भो चक्रवर्ती! अगर तू अब अपने प्राणों को बचाना चाहता है तो एक काम कर। णमोकार मंत्र को पानी पर लिखकर यदि उस पर अपना पैर रख देगा तो ही तू बच सकता है। अन्यथा अब तुझे बचानेवाला कोई नहीं। उस देव ने सुभौम के लिये उसके प्राणों का प्रलोभन दिया। आदमी एक जगह कमजोर पड़ जाता है। एक बार वह अपनी सारी संपदा को भी छोड़ने को तैयार हो सकता है लेकिन अपने जीवन, अपने प्राणों के नाम पर वह कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। उस सुभौम चक्री की अवस्था-दशा भी कुछ इसी प्रकार की हो गई। कहते हैं ना– **'विनाशकाले विपरीत बुद्धि'** जब आदमी का विनाशकाल आता है तब बुद्धि विपरीत चलने लगती है। वह सोचने लगा– चारों तरफ संकटों का घेरा है ऐसे में णमोकार मंत्र लिखकर पैर रखने के बदले में यदि मेरे पुण्य से यह मुझे छोड़ने को तैयार है तो मुझे यह स्वीकार कर अवसर का लाभ ले लेना चाहिए।

लेकिन ध्यान रखना, धर्म को छोड़ने के नाम पर कितना भी बड़ा लाभ का अवसर क्यों न मिले उसे अवसर मत समझना। वह अवसर नहीं अपितु निश्चित रूप से तुम्हारे पतन का कारण ही है। अगर कोई कहे मैं तुम्हें इतनी धन-संपदा, सुख- साधन दूँगा तुम बस ये धर्म

करना छोड़ दो। तो तुम निर्भीक होकर कह देना मुझे तुम्हारी यह धन-संपदा, सुख-साधन कुछ नहीं चाहिये। मैं तो अपना जीवन धर्म के साथ बिताऊँगा, क्योंकि जहाँ धर्म होता है वहाँ यह बाह्य धन-संपदा तो स्वयमेव चरणों की दासी बनकर रहती है। मेरा पुण्ययोग होगा तो स्वतः ही मुझे सब प्राप्त हो जायेगा। इसलिये धर्म के लिये मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ पर अपना धर्म नहीं छोड़ सकता।

'धर्म सच्चा सहाई बन सदा ही काम आयेगा।
धन की ख़ातिर जो छोड़ा धर्म तो ठोकर ही खाएगा।।'

अरे! सुभौम चक्रवर्ती की श्रद्धा जीवन के नाम पर डोल गई। और वह पानी पर महामंत्र णमोकार लिखने को तैयार हो गया। **'विनाश काले विपरीत बुद्धि'** उसका विनाशकाल आ चुका था इसलिये उसकी बुद्धि भी निरंतर विपरीत होती जा रही थी। उसने पानी के ऊपर णमोकार मंत्र लिख दिया और जैसे ही उसके ऊपर अपना पैर रखा वैसे ही उसकी नौका जल में डूब गई और वह मरकर सीधे सातवें नरक में जाकर नारकी हुआ।

विचार करना, सुभौम चक्रवर्ती की मृत्यु का कारण वह देव था या वह स्वयं। उस देव की कोई ताकत नहीं थी कि वह सुभौम को मृत्यु के मुख में पहुँचा सके, क्योंकि धर्म के आगे दैवीय शक्तियाँ भी अपना प्रभाव नहीं दिखा पाती। किंतु वह चक्रवर्ती उस देव की चाल में स्वयं फँसा। अगर वह देव के कहे अनुसार नहीं चला होता अर्थात् महामंत्र की श्रद्धा नहीं छोड़ता, तो उसकी नौका नहीं पलटती।

व्यक्ति अपनी सुबुद्धि से अपने जीवन को मांगलिक बनाता है। और अपनी कुबुद्धि से अमांगलिक बनाता है। इसलिये जब तक सुभौम के हृदय में णमोकार मंत्र की श्रद्धा थी। महामंत्र ही एकमात्र शरणभूत है ऐसी आत्मा में आस्था थी। उसी के अनुरूप वचन थे। तब तक देवकृत कोई भी विघ्न, संकट उसकी मृत्यु में कारण नहीं बने अपितु महामंत्र की शक्ति ने देव की शक्ति को भी निष्प्रभ कर दिया। किंतु जैसे ही उसने लोभ में पड़कर अपनी आस्था को तोड़ा, वैसे ही नौका के साथ उसकी जीवन नौका भी डूब गई और दुर्गति रूपी गर्त में समा गया।

इसलिए आचार्य भगवतों ने कहा है यदि अपने जीवन को मांगलिक बनाना है तो सर्वप्रथम जीवन में सच्चे देवशास्त्रगुरु की सच्ची भक्ति, सच्ची श्रद्धा लानी होगी। उनके प्रति नमस्कार का भाव रखना होगा।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने 'रयणसार जी' ग्रंथ के मंगलाचरण में भगवान महावीर स्वामी के लिये नमस्कार किया है और जहाँ अंतिम को नमस्कार किया जाता है वहाँ प्रथम से अंतिम पर्यंत जानना चाहिये।

कल आपको बताया था, आप जब भी अपने नूतन गृह में प्रवेश करते हो अथवा दुकान का उद्‌घाटन करते हो तब कोई मांगलिक कार्य कराते हो। इनमें सर्वप्रथम मांगलिक क्रिया कराने के पीछे भी प्रयोजन होता है। 'श्री जयधवला जी' ग्रंथ में स्पष्ट आया है कि जब भी कोई व्यवहारिक कार्य करें तो उसमें भी सबसे पहले मंगल क्रिया अवश्य ही करना चाहिये। गृहप्रवेश अथवा दुकान के उद्‌घाटन के समय भी कोई मांगलिक क्रिया जैसे णमोकार मंत्र का पाठ, भक्तामर जी का पाठ आदि कुछ न कुछ अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि उससमय वह श्रावक अपने मन में यही भावना करता है– हे भगवन्! मैं जो गृहप्रवेश कर रहा हूँ केवल अपने परिवार को संरक्षित करने के लिये नहीं अपितु इस गृह में सदैव धर्म और धर्मात्मा जन निवास करें, इसलिए यह धार्मिक क्रिया सर्वप्रथम कर रहा हूँ। घर में धर्मीजीव प्रवेश करें, निवास करें, हमारे घर कुलवंश में ऐसी संतानों का जन्म हो, जो धर्म का पालन करनेवाले हों, धर्मात्माजनों की सेवा परिचर्या करनेवाले हों। इसलिये गृहप्रवेश के समय धार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं।

इसीतरह प्रतिष्ठान प्रारंभ करने के पहले कोई धार्मिक, मांगलिक क्रिया करवाने का भी यही प्रयोजन होता है। वह गृहस्थ भावना भाता है–हे प्रभु! हमारे इस प्रतिष्ठान से जो भी अर्थ की प्राप्ति हो, वह हमेशा हमारे लिये धर्मध्यान में साधक बने। श्रावक के चार पुरुषार्थ होते हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म पहला पुरुषार्थ है और अर्थ दूसरा। एक सद्‌गृहस्थ भावना भाता है कि भगवन्! मैं अर्थ कमाऊँगा लेकिन धर्म को साथ लेकर। जिससे हमारे जीवन में हमेशा धार्मिकता मांगलिकता बनी रहे। जो धर्म को छोड़कर अर्थ कमाते हैं पुण्योदय से उन्हें कदाचित् धन की प्राप्ति हो भी जाये तो भी उनके कुलवंश में ऐसी संतानें जन्म लेती हैं, कि धीरे-धीरे समस्त धन-वैभव को चौपट कर देती हैं।

इसलिये बंधुओ! जीवन में मंगल का बहुत बड़ा महत्त्व है। पंचपरमेष्ठियों का महान स्थान है। अगर जीवन के हर कदम पर हम मंगल करते हैं तो हमारे विघ्नों का अवश्य ही नाश होता है हमारे आचार्य भगवंतों ने मंगल दो प्रकार का कहा है–

1. मुख्य मंगल 2. गौण मंगल

मुख्य मंगल- पंचपरमेष्ठी भगवान का नाम स्मरण करना, गुणगान करना यह तो मुख्य मंगल कहलाता है।

गौण मंगल- गौण अथवा अमुख्य मंगल निमित्त की अपेक्षा से जानना चाहिये। जैसे- सिद्धार्थ, पूर्ण कलश, वंदनवार, श्वेत वर्ण, दर्पण, राजा, बाल कन्या, उत्तम जाति के घोड़े आदि इन्हें गौण मंगल के अंतर्गत रखा गया है।

कई बार हम देखते हैं जब कोई व्यक्ति किसी विशेष कार्य के लिये अपने घर से बाहर निकल रहा हो और सामने से कोई महिला अपने सिर पर भरा हुआ कलशा लेकर आ रही हो तो वह क्या कहता है अरे! ये तो बड़ा मंगल हो गया। यानि उस निमित्त की अपेक्षा से हमें यह निर्णय हो जाता है कि संभवतः अब हम अपने कार्य में सफल होंगे। यह गौण मंगल कहलाते हैं। सिद्धार्थ का तात्पर्य होता है-सफेद सरसों।

अत्यंत मांगलिक कार्यों व मंत्र सिद्धि आदि के कार्यों में इनका उपयोग किया जाता है। अष्टकर्मों का नाशकर जिन्होंने परमात्म दशा को प्राप्त किया उनकी सिद्ध ऐसी संज्ञा है नाम है। इसलिये लोक में सिद्धार्थ यानि सफेद सरसों को भी मांगलिक माना जाता है। पूर्ण कलश, जिस तरह अरिहंत भगवान पूर्ण ज्ञानमय हैं। केवलज्ञानरूपी जल से परिपूर्ण हैं। उसी तरह जल से भरा कलश अरहंत के समान मंगल के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त है, अर्थात् आत्मा की पूर्णज्ञानमय अवस्था के प्रगट हो जाने का प्रतीक है मंगल कलश। इसलिये धार्मिक अनुष्ठानों के प्रारंभ में महिलाएँ घटयात्रा में कलशों को जल से भरकर लाती हैं और उन मंगल कलशों के माध्यम से वे धार्मिक क्रियायें सफलतापूर्वक सानंद सम्पन्न करती हैं। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में इन मंगल कलशों को अत्यंत उत्तम व महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

तीसरा है वंदनवार अथवा वंदनमाला। दीपावली, रक्षाबंधन आदि पर्व, उत्सव- महोत्सव अथवा शादी विवाह का समय आता है तो आप अपने घर के बाहर बहुत सुंदर-सुंदर आकर्षक वंदनवार बाँधते हो। यह आपके लिये एक सजावट का साधन मात्र बनकर रह गया है किंतु इसके प्रयोग के पीछे एक प्रयोजन है जिसे आप जानते नहीं, समझते नहीं। सर्वप्रथम वंदनमाला का प्रयोग भरत चक्रवर्ती ने किया था। उसने अपने राजमहल के मुख्य द्वार पर एक 24 पत्तों वाली वंदनमाला को बँधवाया था। वह चौबीस पत्रों वाली वंदनमाला 24 तीर्थंकरों का प्रतीक थी। भरत चक्रवर्ती जब भी अपने महल से बाहर निकलता तो वह उस वंदनमाला को देख प्रसन्नचित्त होकर 24 तीर्थंकरों का स्मरण करते हुए निकलता था। और जब महल में प्रवेश

करता तो उस वंदनमाला को देख 24 तीर्थंकर भगवानों का स्मरण करते हुए प्रवेश करता था। इसप्रकार घर से आते-जाते 24 तीर्थंकर के स्मरण से वंदनवार को जीवन में मांगलिक माना जाता है।

अब ध्यान रखना, अपने घर के दरवाजे पर 24 पत्रों वाली वंदनमाला ही लगानी है। जिस दुकान पर वंदनवार मिलती है उस दुकानदार के पास अभी से जाना शुरु कर देना। कहना, भाई साहब! जैन वंदनवार है। वह दुकानदार कहेगा, जैन वंदनवार। आज तक तो किसी ने जैन वंदनवार नहीं माँगी। वह आपको तरह-तरह की वंदनवार दिखाने लग जायेगा। सुंदर से सुंदर, कीमती से कीमती। आप सुंदरता न स्वीकरना। सुंदरता के साथ-साथ मांगलिकता को स्वीकारना। आप कहना-भाईसाहब! आपके पास 24 पत्रोंवाली जैन वंदनवार हो तो निकालिए, हमें ऐसी वैसी वंदनवार नहीं चाहिए। फिर वह दुकानदार अपनी समझदारी दिखाते हुए स्वयं कहेगा, भाईसाहब! अभी तो मेरे पास नहीं है। लेकिन आपके लिये मैं ऑर्डर (Order) देकर बनवा सकता हूँ। इस तरह 24 पत्रोंवाली वंदनवार जैन वंदनवार के नाम से मार्केट (Market) में मिलने लग जायेगी। क्योंकि वंदनवार लगाने का प्रयोजन यही है घर में आते-जाते समय उसे देखकर 24 तीर्थंकरों का स्मरण हो और हमारा मन विशुद्ध परिणामों से धर्ममय परिणामों से भर जाये इससे हमारा हर कार्य निर्विघ्न सानंद सम्पन्न होगा। घर में सुख, शांति और समृद्धि बनी रहेगी।

श्वेत छत्र भी मांगलिक माना जाता है। अरिहंत-सिद्ध परमेष्ठी सभी जीवों के कल्याण में निमित्त हैं और वे छत्र के समान शरणरूप हैं इसलिए श्वेत छत्र मंगल के रूप में प्रसिद्ध है।

शुक्लध्यान, शुक्ललेश्या और पुण्य इनकी उपमा को धारण करने वाला श्वेत वर्ण होता है इसलिये आचार्य भगवंतों ने श्वेतवर्ण को भी मंगलस्वरूप कहा है। दर्पण को भी आचार्य भगवंतों ने मंगलस्वरूप माना है। जिनेन्द्र भगवान के केवलज्ञान में जिसप्रकार लोक और अलोक प्रतिभासित होता है उसी प्रकार दर्पण में पदार्थों का प्रतिबिंब झलकता है अत: केवलज्ञान के समान दर्पण को मंगलस्वरूप माना है। इसलिये जितने भी विशिष्ट अनुष्ठान होते हैं उनमें भी दर्पण का प्रयोग किया जाता है। आगे उत्तम घोड़ा, राजा और बाल कन्या ये भी लोक में मंगलस्वरूप माने जाते हैं उत्तम जाति के घोड़े को मंगलस्वरूप माना जाता है जिसे देखकर लगे कि यह मुझे जिताने में सहयोगी हो सकता है। जिसे देखकर लगे कि अब मेरी भी विजय

हो सकती है। कहने का तात्पर्य यह है लोक में इन सभी को मंगल रूप माना है और इनके निमित्त से हमारे अंदर यह भाव आते हैं कि मेरा भी जीवन मंगलमय बनेगा।

बंधुओ! 'श्री रयणसार जी' ग्रंथ के इस मंगलाचरण में हम सभी ने यह जानने का प्रयास किया कि हमारा जीवन मांगलिक कैसे बने? अगर हम जिनेन्द्रदेव, पंचपरमेष्ठी का सतत् स्मरण करेंगे तो हमारा जीवन अवश्य ही मंगलमय होगा।

मंगल के बाद आता है निमित्त। शास्त्र रचना में निमित्त कौन है? भगवान सर्वज्ञदेव की वाणी इसमें निमित्त है अथवा कोई भव्यात्मा शास्त्र रचने में निमित्त होता है। इसके बाद आता है हेतु। हेतु का अर्थ होता है फल। शास्त्र किस उद्देश्य से रचा गया है। आचार्य भगवन् कहते हैं फल दो प्रकार का होता है।

1. प्रत्यक्ष फल 2. परोक्ष फल।

शास्त्र स्वाध्याय से अज्ञान का नाश होता है। सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। और जिस समय हम भावपूर्वक शास्त्र स्वाध्याय करते हैं प्रवचन सुनते हैं उस समय असंख्यात गुणश्रेणी रूप पापकर्मों की निर्जरा होती है। यह तो होता है साक्षात् फल, प्रत्यक्ष फल। परोक्ष फल में आचार्य भगवन् कहते हैं जिसके पास शास्त्रज्ञान होता है उसे परंपरा से शिष्यों और प्रशिष्यों के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। क्योंकि शिष्यगण जहाँ भी जाते हैं गुरु नाम अवश्य ही स्मरण करते हैं। कहते हैं हमने गुरुमुख से इस शास्त्र को पढ़ा, सुना और जाना है। हमारे गुरुदेव का हम पर उपकार है। शिष्य जब अपने गुरु का स्मरण करता है तो गुरु का यश वृद्धिंगत होता है। शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा पूजा जाना, प्रशंसा होना, शिष्यों की संख्या में वृद्धि होना आदि परोक्षफल है। कुछ लोग कहते हैं उनके तो शिष्य बढ़ते ही चले जा रहे हैं। वे तो शिष्यों को बढ़ाने में लगे हैं। अरे भाई! शिष्य बढ़ने के पीछे कोई कारण भी तो होगा। हर किसी के पास शिष्य क्यों नहीं बढ़ते? आचार्य भगवन् कहते हैं–जिन संतों के पास शास्त्र स्वाध्याय होगा, उनके पास शिष्य-प्रशिष्य अपने आप बढ़ते चले जायेंगे। अज्ञानीजन मूल कारण नहीं देख पाते और व्यर्थ ही निंदाकर पापकर्म बाँधते रहते हैं।

यह परोक्ष फल भी दो प्रकार का होता है-

1. अभ्युदय सुख 2. मोक्ष सुख।

अभ्युदय सुख अर्थात् भोग, संपदा, ऐश्वर्य आदि का प्राप्त होना। राजाधिराज, महाराज, अर्द्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलिक, अर्धचक्री, चक्री, इन्द्र और तीर्थंकर इत्यादि पदों को प्राप्त होना। और मोक्ष सुख अर्थात् मोक्ष महाफल को प्राप्त होना, यह परोक्ष फल है।

मंगल, निमित्त, हेतु के बाद परिमाण। श्री रयणसार जी ग्रंथ का परिमाण एक सौ अड़सठ गाथा प्रमाण है। अगला है नाम। इस ग्रंथ का नाम क्या है? इस ग्रंथ का नाम 'श्री रयणसार जी' है। अंतिम है कर्ता। इस ग्रंथ के कर्त्ता कौन हैं? आचार्य भगवन् कहते हैं कर्ता तीन प्रकार के होते हैं-

1 मूलग्रंथकर्त्ता, 2 उत्तरग्रंथकर्त्ता, 3 उत्तरोत्तर-ग्रंथकर्त्ता

मूलग्रंथकर्त्ता तो सर्वज्ञ भगवान हैं क्योंकि समवशरण सभा में सर्वज्ञदेव ने जो दिव्यध्वनि में कहा है वही इस ग्रंथ में आया है। उत्तरग्रंथकर्त्ता हैं गणधर परमेष्ठी। जो भगवान की वाणी को झेलते हैं। द्वादशांग की रचना करते हैं। और उत्तरोत्तर ग्रंथकर्त्ता जितने भी गणधर परमेष्ठी के बाद होने वाले आचार्य परमेष्ठी हैं। इसप्रकार इस ग्रंथ के मूलकर्त्ता सर्वज्ञ भगवान, उत्तरग्रंथकर्त्ता श्री गणधर परमेष्ठी और उत्तरोतर-ग्रंथकर्त्ता आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव हैं अर्थात् ग्रंथ की रचना करनेवाले हैं।

ग्रंथ के विषय में इतनी जानकारी अवश्य होनी चाहिये फिर ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिये। यहाँ हमने रयणसार जी ग्रंथ के विषय में इन सब बातों को जानने का प्रयास किया। मंगलाचरण के साथ यह ग्रंथ अब प्रारंभ होगा जिसमें श्रावकधर्म और श्रमणधर्म दोनों का युगपत् यानि एक साथ कथन किया गया है। इन दोनों धर्मों की व्याख्या करनेवाला यह एक बहुत ही श्रेष्ठ ग्रंथ है। श्रावक और श्रमण धर्म का कथन करनेवाले पृथक-पृथक ग्रंथ अनेक हैं, लेकिन यह रयणसार एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें हमें दोनों ही धर्मों का श्रवण करने को मिलेगा।

अंतिम बात आपको यह बताना चाहता हूँ कि जब भी धर्मसभा प्रारंभ होती है तो सबसे पहले मंगलाचरण किया जाता है। मंगलाचरण का तात्पर्य यह नहीं कि आप कोई भी भजन गीत लेकर आये और सुना दिया। इसका नाम मंगलाचरण नहीं है। मंगलाचरण का तात्पर्य होता है जिस भजन या गीत में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और सर्वज्ञ प्रणीत धर्म को नमस्कार किया गया हो। वह गीत मंगलाचरण है जिसमें किसी एक, दो, तीन, चार अथवा पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया हो। अब कोई मंगलाचरण करने आया और शाकाहार का गीत सुनाकर चला गया तो ये कोई मंगलाचरण नहीं है।

आप एक काम कर सकते हैं भजन बोलने से पहले णमोकार मंत्र बोल दिया। पंचपरमेष्ठी को नमस्कार रूप मंगलाचरण हो गया अब आप अपना भजन बोल लीजिएगा। इस बात का ज्ञान हम सभी को अवश्य होना चाहिये, **जिसमें पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया जाता है, वही मंगलाचरण कहलाता है।**

आप सभी के जीवन में ऐसा ही मंगलाचरण हो। आप रसना इन्द्रिय के वशीभूत होकर तुच्छ वस्तुओं का सेवन न करें। अपने शरीर की रक्षा करें। प्राणों की भी रक्षा करें। परिवार की रक्षा करें। धन को व्यर्थ नष्ट होने से बचायें। अगर आपको जिनवाणी हितकारी, कल्याणकारी लग रही हो तो सच्ची श्रद्धा रखते हुए ऐसी वस्तुओं का परित्याग कर देना। जिन-जिन लोगों ने आज यहाँ त्याग किया, उनका जीवन मांगलिक बने। और जो यह सोच रहे हैं पता नहीं हमसे यह त्याग हो पायेगा या नहीं। तो आप स्वयं अपने कर्त्तव्यों का विचार कीजिएगा। जो वस्तु किसी काम की नहीं, प्राणलेवा है, परिवार की सुख-शांति नष्ट करनेवाली है, सम्मान प्रतिष्ठा को गिरानेवाली, दीन-हीन आसक्त बनानेवाली है उसे छोड़ने के लिये यदि इतना विचार करोगे तो कभी धर्मक्षेत्र में बढ़ नहीं पाओगे। कर्त्तव्यपालन-धर्मपालन में बढ़ें और पूर्ण निष्ठा के साथ उसे निभायें। आपके जीवन में धर्मध्यान बढ़े, सुख शांति रहे। आप सभी के लिये यही मांगलिक भावना भाता हूँ।

प्रथम मंगलाचरण करो, फिर आहार विहार करो।
मोक्षमार्ग को अपनाओ, श्रेष्ठ लोक व्यवहार करो।।
मंगल से जीवन, हो-हो-2, मंगल बन जाये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा – 2
(प्रवचन)

•

जिनागम वक्ता ही सम्यग्दृष्टि

04.08.2013

भिण्ड

(सम्यग्दृष्टि की पहिचान)

पुव्वं जिणेहि भणिदं, जहट्ठिदं गणहरेहि वित्थरिदं।
पुव्वाइरियक्-कमजं, तं बोल्लदि जो हु सद्दिट्ठी ।।2 ।।

* अन्वयार्थ *

(**जो**) जो (**पुव्वं**) पूर्वकाल में (**जिणेहि**) जिनदेवों के द्वारा (**भणिदं**) कहा गया (**गणहरेहि**) गणधरों के द्वारा (**वित्थरिदं**) विस्तृत किया गया (**पुव्वाइरियक्कमजं**) पूर्वाचार्यों के क्रम से प्राप्त (**जहट्ठिदं**) ज्यों का त्यों यथावस्थित (**तं**) उसको ही (**बोल्लदि**) बोलता है (**हु**) निश्चय से (**सद्दिट्ठी**) वह सम्यग्दृष्टि है।

अर्थ–जो जीव पूर्वकाल में जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रतिपादित, गणधरों के द्वारा विस्तार से बताया गया और जो पूर्वाचार्यों के क्रम से–पूर्वाचार्यों की परम्परा से प्राप्त हुआ है उसको ज्यों का त्यों यथावस्थित, वास्तविक सत्य प्रतिपादन करता है, कहता है, वास्तव में निश्चय से वही सम्यग्दृष्टि है। अत: हमें पूर्वाचार्यों के कथन का श्रद्धान करना चाहिये।

परम वीतरागी मुनिराज और जिनागम पंथी श्रावक-श्राविकाएँ

4

रयणोदय

जिनवर ने जिस को बोला, गणधर ने जिसको खोला।
सभी पूर्व आचार्यों ने, अन्तरंग से जो तोला।।
आगम वाणी ही, हो-हो-2, समदृष्टि सुनाये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'**जयदु जिणागम पंथो**' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ '**जिनागम पंथ**' है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' का प्रतीक '**जिनागम पंथ**' सन्मार्ग है।

बंधुओ! महान् पुण्य के उदय से भगवान जिनेन्द्रदेव की महामंगलकारी वाणी, महाकल्याणकारी देशना श्रवण करने को मिलती है। जितनी दुर्लभ जिनवाणी है उतनी ही दुर्लभ है जिनवाणी सुननेवाली इस पर्याय की प्राप्ति। संसार में ऐसे अनंतानंत जीव हैं जिन्हें जिनेन्द्रदेव

की वाणी सुनने को नहीं मिल पाती है। बहुत ही विरले जीव इस अमृतमयी उपकारी वाणी का श्रवण कर पाते हैं। आचार्य भगवन् सोमदेव स्वामी 'श्री यशस्तिलकचम्पू ग्रंथ' में कहते हैं-

तन्नास्ति यदहं लोके सुखं दुःखं च नाप्तवान्।
स्वप्नेऽपि न मया प्राप्तो जैनागम सुधारसः।।641।।

अर्थात् लोक में वह सुख अथवा दुःख नहीं है जिसे मैंने प्राप्त न किया हो किंतु जिनवाणी रूपी अमृत का रस मैंने स्वप्न में भी प्राप्त नहीं किया।

इसलिये कहा है-

मिला नरतन बड़ा दुर्लभ, अरे कुछ तो जतन कर ले।
मिटाता क्लेश दुख सबका, शरण उस ज्ञान की वर ले।।

मानव पर्याय पाना जितना दुर्लभ है उससे भी दुर्लभतम है जैनकुल में जन्म पाना। हम सभी ने एक ऐसी श्रेष्ठ पर्याय प्राप्त की, जिसमें सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की सन्निधि मिली। हमने अपने इस जीवन में देव, शास्त्र, गुरु का परिचय तो पाया किंतु उनके अनुसार अपना जीवन न बनाया। जीवन में सम्यक् परिवर्तन का नाम है साधना।

पाना नहीं जीवन को बदलना है साधना।
धुएँ सा जीवन मौत है जलना है साधना।।

संसार में सब जीव दुखी हैं। निर्ग्रंथ तपोधन ही सुखी हैं क्योंकि निर्ग्रंथों ने अपना जीवन जीने का तरीका बदला। सुख पाना है दुःख खोना है तो जीवन बदलना होगा। जिनेन्द्र देव और गुरु के अनुसार चलना होगा। उनके वचनों का श्रवण करना होगा। ऐसे शब्द ब्रह्म का पालन विरले जीव ही कर पाते हैं। आचार्यों ने ज्ञान की महिमा का बखान करते हुए परमानंद स्तोत्र में कहा है-

निर्विकल्पसमुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमंजुलिं कृत्वा तत्पिबंति तपस्विनः।।5।।

अर्थात् निर्विकल्प दशा से उत्पन्न ज्ञान ही अमृतरस के समान है निर्ग्रंथ तपस्वी योगीराज विवेकरूपी अंजुलि बनाकर उसका पान करते हैं।

उस सहजज्ञान को पाने में निमित्त कारण है जिनश्रुत। परमोपकारी जिनवचन, गुरुवचन हमारे जीवन में प्रज्ञा, विवेक, संस्कार लाते हैं और यह प्रेरणा देते हैं कि मानव बने हो तो मानवता निभाना। यह हमारी जीवन शैली पर, हमारे विवेक पर निर्भर करता है कि यह उत्तम पर्याय मिली है तो धर्मपालन कर सार्थक बनानी है या आधुनिकता में भोगों में फँसकर व्यर्थ गँवानी है। यह मानव तन मिला। जानने, देखने, विचारने की शक्ति प्राप्त हुई। कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति हुई। दो कर्ण सभी के पास हैं लेकिन कुछ जीव ऐसे भी हैं जो अपने कानों में ईयरफोन (Earphone) लगाये रहते हैं और रागरंग से भरे फिल्मी गीत सुनते रहते हैं तो कुछ ऐसे भी संस्कारवान जीव होते हैं जो इन कुवचनों को न सुनकर भगवान जिनेन्द्र के सुवचनों, प्रवचनों को सुनते हैं।

इस पंचमकाल में इन्द्रियों के विषय समृद्धि को प्राप्त हैं और धर्म के साधन बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं। इन्द्रियों के विषय सुलभ भी और रुचिकर भी। यदि आप कहीं जा रहे हैं। बाइक (Bike), कार अथवा किसी भी साधन में सवार हैं और आपको टाइमपास (Time pass) करना है तो आप क्या करते हो? तुरंत कानों में ईयरफोन (Earphone) लगाया और फिल्मी गीत सुनने लगे। मन में रागद्वेष उत्पन्न करनेवाले शब्दों का मद्य पीने लगे और निरंतर अशुभ कर्मों का आस्रव बंध करने लगे। विचार कीजिएगा, उन्हीं कर्णों के द्वारा भगवान जिनेन्द्र की सुखकारी वाणी का श्रवणकर अपने अशुभ कर्मों की निर्जरा कर सकते थे। दु:ख मुक्त हो सकते थे। शांति और सुकून की अनुभूति कर सकते थे।

पहले मनोरंजन के इतने साधन नहीं थे तो व्यक्ति कम से कम इन पापास्रवों से तो बचा रहता था। भौतिक साधनों की सुलभता से पापास्रव भी सुलभ हो गये हैं। रात्रि में वैयावृत्ति के समय जो युवा साथी आते हैं कहते हैं–महाराज श्री! जब से आप भिण्ड आये हैं और आपने अपना ये **'जीवन है पानी की बूँद'** भजन सुनाया है तब से हर जगह उसी भजन की गूँज सुनायी देती है। अब लोग फिल्मी गीत भूलते जा रहे हैं, उनको सुनने की अपेक्षा **'जीवन है पानी की बूँद'** भजन सुनने में रस आता है। मोबाइल (Mobile) की रिंगटोन (Ringtone) में, किसी की दुकान पर, तो किसी घर से, तो कहीं शादी में बजता सुनायी देता है। यह भजन सुनकर उल्लास आता है हृदय पर एक छाप छोड़ जाता है।

बंधुओ! हमारे आचार्य भगवन् कहते हैं अगर किसी को जिनवाणी सुनने में रस, आनंद और उल्लास आने लग जाये तो समझ लेना उस जीव की होनहार अच्छी है। यदि जिनवाणी सुनने में अरुचि हो, मन न लगे और राग-द्वेष वाणी सुनने में रुचि हो तो समझ लेना उस जीव की होनहार अच्छी नहीं है। यह बात सुन प्रसन्नता हुई कि जो लोग विरागोदय देशना स्थल पर प्रत्यक्ष रूप से बैठकर जिनवाणी सुन रहे हैं और दुकानों पर बैठकर परोक्ष में भी जिनवाणी का श्रवण कर रहे हैं। वे सभी कम से कम उससमय तक तो पापास्रव से बचे हुए हैं। इसलिये ज्ञानी गुरु कहते हैं-

'धर्मश्रुतेः पापमुपैति नाशं।'

एक सज्जन बोले-महाराज श्री! अब तो हमारी यह स्थिति हो गई कि सुबह से उठता हूँ तो जीवन है पानी की बूँद, नहाने जाता हूँ तो जीवन है पानी की बूँद, भोजन करने बैठता हूँ तो जीवन है पानी की बूँद, दुकान पर जाता हूँ तो जीवन है पानी की बूँद, जहाँ देखो वहाँ बस एक ही लाइन (Line) हमारे मन में चलती रहती है, बोलने में आती है। हमने कहा-भैया! यह तो तुम्हारा पुण्य का उदय है जो रागद्वेषमय व्यर्थ की वाणी सुनने की अपेक्षा उपयोग सहज ही भजन में लग रहा है।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि आपको जो यह श्रवण इन्द्रिय मिली है उसका सदुपयोग हो अर्थात् जिनवाणी श्रवण हो। हम जतारा में थे तब बिहारी जी मंदिर के एक पंडित जी वैयावृत्ति के लिये आते थे। उन्होंने जब **'जीवन है पानी की बूँद'** भजन सुना तो उन्हें इतना अच्छा लगा कि तब से अब तक बिहारी जी के मंदिर में रोज सुबह 4 बजे से **'जीवन है पानी की बूँद'** भजन शुरू हो जाता है।

बंधुओ! आचार्य भगवन् हम सभी के लिये इस मनुष्य पर्याय की पाँचों इन्द्रियों की दुर्लभता का बोध कराते हुए कहते हैं कि यह श्रवण इन्द्रिय मिलना दुर्लभ है। चक्षु, घ्राण, रसना इन्द्रिय मिलना दुर्लभ है। अगर सुलभ है तो एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय ही प्राणिमात्र के लिये सुलभ है। क्योंकि जितने भी एकेन्द्रिय जीव हैं वे सभी एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय के धारी होते हैं यही सुलभ है अन्य इन्द्रियों की प्राप्ति दुर्लभ है। छहढालाकार श्री दौलतराम जी कहते हैं-

दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।

यह जीव अनादिकाल से निगोद में रहा। वहाँ से बड़ी मुश्किल से निकला तो स्थावरों में जन्म लिया। जिस तरह चिन्तामणि रत्न पाना दुर्लभ है उसी तरह अत्यंत दुर्लभता से इस जीव ने दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय की पर्याय धारण की। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हुआ। और किसी पुण्योदय से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव बना।

'दुर्लभ है निगोद से थावर अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसें सो दुर्लभ प्राणी।।'

आप सभी कौन हो, संज्ञी पंचेन्द्रिय या असंज्ञी पंचेन्द्रिय? असंज्ञी का तात्पर्य मन रहित और संज्ञी का तात्पर्य है मन सहित। आप सभी कौन हैं? संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव। क्योंकि आपके पास मन है। मन का कार्य क्या है? हित-अहित का विचार करना। अब यदि आप अपने हित और अहित का विचार करते हैं तो ही मन वाले हो। अन्यथा हिताहित का विचार न होने से मन होने पर भी असंज्ञी जैसे ही हो।

हित और अहित का विचार कौन कर सकता है? जो भगवान जिनेन्द्र की वाणी को सुनता है और भगवान जिनेन्द्र की वाणी को ही बोलता है। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव श्री रयणसार जी ग्रंथ की इस दूसरी गाथा में सम्यग्दृष्टि जीव की वक्तापने की अपेक्षा से पहचान बता रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव क्या बोलता है। हम पहले गाथा पढ़ लें फिर गाथा में अवगाहन करेंगे, प्रवेश करेंगे।

पुव्वं जिणेहि भणिदं, जहट्ठिदं गणहरेहि वित्थरिदं।
पुव्वाइरियक्कमजं, तं बोल्लदि जो हु सद्दिट्ठी।।2।।

आचार्य भगवन् कहते हैं-इस जीव को बड़ी दुर्लभता से वचन वर्गणाएँ प्राप्त होती हैं। अनंतकाल निगोद में बिताया। वनस्पति आदि स्थावर, एकेन्द्रिय की पर्याय में बिताया। और किसी महान पुण्य का संचयकर पुण्योदय से दो इन्द्रिय जीव हुआ। एकेन्द्रिय जीव तक की अवस्था में तो वचन वर्गणाएँ प्राप्त ही नहीं होतीं, वचनबल प्राप्त ही नहीं होता। दो इन्द्रिय जीव को वचनबल प्राप्त होता है। उनको वचनबल भले ही प्राप्त हुआ है लेकिन उसका कोई उपयोग

नहीं है। कभी आप झिंगुर आदि को देखो। वह चार इन्द्रिय जीव है। वह अगर रात को बोलने लग जाये तो खूब बोलता है सीटी लगाता है। विकलेन्द्रिय ऐसे जीव हैं जो सुनाते तो हैं पर सुनते नहीं अर्थात् उन्हें कर्णेन्द्रिय प्राप्त नहीं हुई इसलिये बोलते तो हैं लेकिन सुनने का लाभ नहीं हो पाता। वे बोलते भी ऐसा हैं कि सुननेवाले परेशान हो जायें। अगर रात का समय हो। आपको नींद आ रही हो। ऐसे में झिंगुर बोलने लग जाये तो कैसा लगता है? भगाओ इनको। इन जीवों को वचन वर्गणा तो प्राप्त हुई लेकिन इनके वचनों का कोई उपयोग नहीं है।

बंधुओ! पुण्योदय से आप सभी के लिये भी यह वचन वर्गणा मिली है। आप उसका कितना सदुपयोग करते हैं विचार कीजिएगा। यदि आप अपनी वचन वर्गणा का उपयोग गाली देने में, अपशब्द बोलने में, व्यर्थ की गप्पबाजी करने में करते हैं तो इसतरह दुरुपयोग करने से आपकी वचन वर्गणाएँ व्यर्थ जा रही हैं। **धर्मात्मा, सम्यग्दृष्टि, विवेकी जीव अपनी वचन वर्गणाओं की सुरक्षा करता है। उतना ही बोलता है जितना उपयोगी होता है। व्यर्थ की बकवास अज्ञानीजन करते हैं ज्ञानी नहीं।** वे तो वचन वर्गणायें प्राप्त होने पर भी बहुत थोड़ा ही बोलना पसंद करते हैं क्योंकि वे जानते हैं इन वचन वर्गणाओं के द्वारा हमारे लिये बहुत पापास्रव होता है इसलिये धर्मात्माजन अक्सर मौन नजर आते हैं। क्योंकि वचन वर्गणाओं के सदुपयोग के साथ-साथ वे मौन के माहात्म्य को भी जानते हैं। ज्ञानीजन कहते हैं-

मौखर्यं लघुतां धत्ते मौनमुन्नति कारणम्।
मौखर्यान् नूपुरं पादे हृदि हारो विराजते।।11।। सर्वो.

मौखर्यता (बकवास) लघुता उत्पन्न करती है और मौन उन्नति का कारण है। मौखर्यता के कारण नूपुर पैरों में रखा जाता है और चुप रहने से हार हृदय पर सुशोभित होता है।

अज्ञानी जीव मौन रख पाना दुःसाध्य मानते हैं। उन्हें एहसास ही नहीं होता कि इन वचन वर्गणाओं का उपयोग करने में हमारी कितनी ऊर्जा खर्च होती है। बोलने में अपनी बहुत ऊर्जा लगती है। अभी तो आपकी काया निरोगी है इसलिए आप बोलते चले जाते हो। यदि आपको 105^{0} बुखार हो जाये। आप घर पर लेटे हुए हों। और आपसे कोई मिलने आये। कहे- काय भइया! आपका स्वास्थ्य खराब हो गया? कब से स्वास्थ्य खराब है? कैसे खराब हो गया?

आपने खाने-पीने में कोई गड़बड़ी कर दी थी क्या? डॉक्टर (Doctor) को नहीं दिखाया क्या? क्या कहा डॉक्टर ने? औषधि समय पर ली थी या नहीं? बुखार की स्थिति में इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने को कोई कहे तो आपको कैसा लगेगा? मन ही मन आप कहने लगोगे कि भैया! शांत रहो और मुझे भी शांत रहने दो। उससमय आपको पता चलेगा कि बोलने में कितनी ऊर्जा नष्ट होती है।

उससमय आप किसी से बात करना पसंद नहीं करते। आप एकांत में आँखें बंद कर लेटे रहना ही चाहोगे। और किसी ने आपसे ज्यादा बुलवाने की कोशिश की तो आपको खीज पैदा होगी। उससमय आप बातें करना तो दूर सुनना भी पसंद नहीं करते।

और जब आप स्वस्थ होते हैं तब देख लो, आप किस तरह से मित्रों के साथ मिलकर एक दूसरे के साथ हँसी ठिठोली करते हो, गप्पबाजी करते हो। आप अपना कितना समय व्यर्थ में बोल-बोलकर नष्ट करते हो। और पापकर्म का आस्रव बंध करते हो। अपने मान-सम्मान को खोते हो। ज्यादा बोलनेवाले लोगों पर कोई जल्दी विश्वास नहीं करता। इसलिये कहते हैं-

'मौखर्यं लघुतां धत्ते'

धर्मात्मा जीव, सम्यग्दृष्टि जीव बहुत सोच सोचकर बोलता है। जैसे कोई व्यक्ति कहीं स्टेट (State) से बाहर गया है और उसके मोबाइल (Mobile) में रोमिंग (Roming) चल रही है उसे यदि बात करनी है तो क्या वह पहले की तरह घंटों बातें करेगा? नहीं, उसे लगेगा कि दो शब्दों में ही बात पूरी हो जाये तो बढ़िया है। बंधुओ! तुम्हारी रोमिंग (Roming) तो कभी-कभी ही चलती है लेकिन सम्यग्दृष्टि जीव यह विचार करता कि हमारी रोमिंग कन्टीन्यू (Roming Continew) चल रही है। इसलिये वह कम बोलना पसंद करता है। वह ज्यादा नहीं बोलना चाहता क्योंकि तुम्हारा तो रोमिंग (Roming) में पैसा खर्च होता है और सम्यग्दृष्टि अपने समय की कीमत पहचानता है वह अपनी ऊर्जा को व्यर्थ में नष्ट न करके आत्मा के कल्याण में, ध्यान में लगाना चाहता है इसलिए विज्ञजन वचन संयम को, मौन साधना को उत्तम मानते हैं।

'मौनमुन्नति कारणम्'

अर्थात् वचन संयम रखना, मौन धारण करना उन्नति का कारण है।

किसी ने बताया, महाराज श्री! कुछ समय के बाद तो ऐसा हो जायेगा कि मोबाइल (Mobile) पर बात करने, सुननेवालों के लिये कंपनियाँ पैसा देंगी। मैंने कहा–ऐसा क्यों? बोला–जितनी देर तक बात करेगा सुनेगा, मैसेज (Message) आदि पढ़ेगा, तो मोबाइल कंपनियाँ बीच-बीच में उस पर अपने विज्ञापन भेजेंगी और वे विज्ञापन उसे सुनने पड़ेंगे। इस तरह मोबाइल कंपनियों की यह नई स्कीम (Scheem) होगी।

ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव अगर जिनवाणी बोलता है वह घंटों भी बोले तो उसके लिये कोई हानि नहीं अपितु लाभ ही लाभ होता है। जिनवाणी बोलने से पुण्यलाभ होता है। कर्म निर्जरा होती है। सम्मान विश्वसनीयता बढ़ती है, एक ये स्कीम (Scheem) है। आप जिस स्कीम (Scheem) का लाभ लेना चाहें, वैसा लाभ लें। पर हम तो उस स्कीम (Scheem) का लाभ लेते हैं जिसमें **'बोलो भी—पुण्य भी कमाओ'**। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कहा है–

धर्मोपदेश संयुक्तं, वाक्यं भूत हितावहम्।
विकथादि विनिर्मुक्तं, भवेत् सत् पुण्यकर्मणे।।69-2।।

अर्थात् धर्मोपदेश से सहित, प्राणियों का हितकारक एवं विकथा आदि से रहित वचन बोलने से पुण्यकर्म का बंध होता है।

सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा आगम के अनुसार बोलता है। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं–**जो आगम के अनुसार बोलता है वह जीव सम्यग्दृष्टि है।** यह सम्यग्दृष्टि जीव की स्थूल पहचान है। और जो आगम न बोलकर यद्वा-तद्वा बोले, स्वच्छन्द, अपने मन से बोले। ऐसे जीव की चर्चा आचार्य भगवन् अगली गाथा में करेंगे।

आचार्य भगवन् कहते हैं–जिसकी आत्मा में जिनेन्द्रदेव के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हुई है। जिनवाणी माँ, निर्ग्रंथ गुरुओं के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हुई है। छह द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और शुद्ध आत्मा की सच्ची श्रद्धा हुई है तो उस जीव के मुख से जब भी निकलेगी, जिनवाणी ही निकलेगी। संतजन कहते हैं भगवान जिनेन्द्र की वचनरूपी गंगा ही संसारी आत्माओं को पवित्र करती है।

साँची तो गंगा यह वीतराग वाणी।
अविछिन्न धारा निजधर्म की कहानी।।

सप्त तत्त्व जहँ तरंग उछलत सुखदानी।
सन्त चित्त मराल वृन्द रमैं नित्य ज्ञानी।। साँची...

जब कोई व्यक्ति दर्शनार्थ आते हैं, कुछ चर्चा करने की भावना हमारे समक्ष रखते हैं तो यही विचार मन में आता है कि ये जीव धार्मिक आध्यात्मिक चर्चा से दूर, अपने घर-परिवार की, दुकान-व्यापार की, सुख- दुख की, ऐसी रागद्वेषमयी चर्चा ही करेंगे। क्योंकि उनका चिंतन ही उसीप्रकार का होता है। तब मैं जैसे ही किसी ऐसे जीव को आते देखता हूँ तुरंत उतनी देर के लिये मौन ले लेता हूँ। वह आकर थोड़ी देर तक बोलता रहता है उधर मैं मौन लिये बैठा रहता हूँ। कुछ समय बाद वह पूछता है-महाराजश्री! आपका मौन है क्या? मैं भी मुस्कुराकर सिर हिलाकर स्वीकार कर लेता हूँ। फिर वह हाथ जोड़कर कहता है ठीक है महाराजश्री! जब आपका मौन खुल जायेगा तब हम आयेंगे। हम शाम को आयेंगे। हम कहते हैं तुम कभी भी आओ भैया, तुमको देखते ही हमारे मुख पर ताला लग जाता है क्योंकि हम जानते हैं-

वाचं यमः पवित्राणां गुणानां सुखकारिणाम्।
सर्वेषां जायते स्थानं मणीनामिव नीरधिः।।23।। सर्वो.

अर्थात् मौन रखनेवाला मनुष्य पवित्र एवं सुखकारी समस्त गुणों का स्थान उसतरह होता है जिसतरह समुद्र मणियों का।

धर्मात्मा जीव व्यर्थ की वार्ता नहीं करना चाहता क्योंकि उसे अपना एक-एक समय बहुत कीमती मालूम पड़ता है। रयणसार जी ग्रंथ की इस गाथा में आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि चतुर्थकाल में समवशरण सभा में जिनेन्द्र भगवान ने भव्य जीवों के लिये जो उपदेश दिया। गणधर भगवंतों ने जिसे सबके लिये विस्तार दिया और पूर्वाचार्यों के द्वारा जो आज हम तक पहुँचा है ऐसे धर्मोपदेश को ही सम्यग्दृष्टि जीव बोला करते हैं।

पं. दौलतराम जी छहढाला ग्रंथ में लिखते हैं-

'पे कछु कहुँ कही मुनि यथा'

ऐसा नहीं है कि मैं अपनी तरफ से कुछ कह रहा हूँ दौलतराम जी कहते हैं कि जैसा मुनिराजों ने कहा उसी के अनुसार मैं कुछ कहूँगा। यही आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव आचार्य भगवंतों के द्वारा जो क्रम से प्राप्त हुआ धर्मोपदेश, तत्त्वोपदेश है उसी को बोलता है स्वच्छंद होकर अपनी तरफ से कुछ नहीं बोलता।

बंधुओ! इस पंचमकाल में ऐसे अनेकों अज्ञानी जीव मिल सकते हैं। जो अपने आप को श्रेष्ठ वक्ता कहते हैं। बहुत अच्छी-अच्छी बातें करते हैं। सुनने में वे बातें कर्णप्रिय हो सकती हैं मगर आगमानुसार हैं अथवा नहीं इसका निर्णय आपको ही करना होगा। **हमेशा उस वक्ता से धर्मोपदेश सुनना चाहिये जो आगम वाणी बोलता हो।**

और यदि किसी साधु-विद्वान ने बहुत अच्छा प्रवचन किया। आपको रुचिकर लगा क्योंकि वह आपकी रुचि के अनुसार था। उसमें चर्चा आई आपके घर-परिवार की। आपका व्यापार कैसे बढ़े? नौकरी कैसे लगे? ऐसी चर्चा जो आगम में नहीं कही गई। इस तरह के प्रवचन के बाद सभा समापन में क्या जिनवाणी स्तुति करना योग्य है? जब जिनवाणी बोली ही नहीं गई तो स्तुति किसकी करोगे?

इसलिए जब भी सुनने की चाह हो जिनवाणी सुनना और जिनवाणी ही कहना। ऐसे संतों के प्रवचन सुनो, जो जिनवाणी सुनाते हों। उनके प्रवचन सुनकर अपने मित्रवर्ग आदि के साथ चर्चा करो, भैया! गुरुदेव ने आज शास्त्र जी से ऐसी उत्तम बात बताई। सुनकर अपूर्व शांति और आनंद का अनुभव हुआ। हमें भी अपना जीवन जिनागम अनुसार परिवर्तित करना चाहिये। धर्म में लगना चाहिये। ऐसी धार्मिक चर्चा करते हुए आप फिर घर में रहें या दुकान पर, चाहे कहीं भी हों, आप जिनधर्म की प्रभावना कर रहे हो।

जिनवाणी सुनाना लेकिन कभी मनवाणी को जिनवाणी न कहने लग जाना। जिनसूत्र न सुनाया। यद्वा तद्वा बातें कीं और कह दिया ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। आजकल बहुत से विद्वानों की यही दशा हो रही है। बात बोलते हैं अपनी और कहते हैं भगवान जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है। अरे भाई! प्रमाण तो दो, जिनेन्द्र भगवान ने ऐसा कब और कहाँ कहा है।

आजकल पत्र-पत्रिकाएँ बहुत चलती हैं। कोई चार विद्वान मिलकर पत्र पत्रिका निकालते हैं। उनके बीच आपस में कोई खटपट हो गई, तो दो विद्वान एक तरफ और दो विद्वान दूसरे तरफ हो गये। अब दोनों तरफ से अलग-अलग पत्रिका निकलने लगी। जैसे पहले हीरो होन्डा (Hero Honda) चलती थी। फिर कुछ गड़बड़ हो गई तो हीरो (Hero) अलग हो गया और होन्डा (Honda) अलग हो गई। इसलिये अब हीरो अलग है और होन्डा अलग है। तो दोनों ओर से पत्र-पत्रिकायें भी निकलने लगीं और विद्वान लोग अपने-अपने विचार उन पत्रिकाओं में प्रस्तुत करने लगे। आप सोचते हैं, अरे! ये तो बड़े विद्वान पुरुष हैं। ये तो बड़ी बातें कहेंगे ही कहेंगे। लेकिन किसी बड़े विद्वान ने कोई बात कह दी, वह वास्तव में आगम अनुसार है या नहीं, इसका निर्णय करना आवश्यक है। अगर आगम के अनुसार बोलता है तो वह बड़ा विद्वान हो सकता है, और आगम के अनुसार नहीं बोलता है तो कितना भी ख्याति प्राप्त क्यों न हो, वह तो अपने घर के नौकर से भी गया बीता है। क्योंकि घर का नौकर कम से कम तुम्हारे अनुसार तो चलता है लेकिन जो भगवान जिनेन्द्र को अपना स्वामी आराध्य मानता है किंतु उनके अनुसार कथन नहीं करता, उस जीव का संसार ही फलता है। आचार्य भगवन् अमितगति स्वामी महान ग्रंथ श्री योगसार जी प्राभृत में कहते हैं-संसारी जीवों का संसार विषय भोग है और विद्वानों का संसार शास्त्र है।

संसारः पुत्र दारादिः पुसां समूढ़चेतसाम्।
संसारो विदुषां शास्त्र-मध्यात्म-रहितात्मनाम्।।44-7।।

अर्थात् जो मनुष्य अच्छी तरह मूढ़चित्त अर्थात् शास्त्रज्ञान से रहित है उनका संसार स्त्री पुत्रादिक है और जो विद्वान अध्यात्म से रहित है अर्थात् अपनी आत्मा के शुद्धस्वरूप को नहीं पहचानते हैं, उनका संसार शास्त्र है। वे शास्त्रों का शास्त्रीपन करते-करते ही अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। किञ्चित् भी आत्महित नहीं कर पाते।

बहुत समय पहले सुना था किसी बड़े विद्वान ने कहा है-कि भगवान जिनेन्द्र के अभिषेक करने में हिमालय पर्वत पर रहनेवाले जीवों की हिंसा के बराबर पाप लगता है। मैंने सोचा इसकी मति खराब हो गई है साथ ही गति भी खराब हो गई है। क्योंकि जिनागम में कहा गया

है भगवान का अभिषेक करनेवाला अपने पापकर्मों की निर्जरा करता है। और ये विद्वान महाशय कह रहे हैं भगवान जिनेन्द्र के अभिषेक में यदि एक दो बूँद जल भी लग जाता है तो हिमालय के समान पाप का भागी होता है। विचार करना, विद्वानों के ऐसे वचन सुनने के बाद तुम्हारी भी मति बदल जाये, तुमने उसे ही सत्य समझ लिया, तो बतलाइए आपने जिनवाणी की श्रद्धा की या विद्वान वाणी की। बंधुओ! बोलनेवाला चाहे कोई भी हो, सदा जिनवाणी पर श्रद्धा रखना, विद्वत् वाणी पर नहीं।

भगवान महावीर कहते हैं मैंने जीवादि तत्त्वों का स्वरूप कहा है तो तुम केवल यह मानकर मत बैठ जाना कि भगवान ने कहा है इसलिये सत्य है। ऐसा तो प्रथम पायदान में मानना पड़ता है। भगवान कहते हैं–प्रथम श्रद्धान करो फिर अनुभव से ज्ञान करो। वस्तु स्वरूप को अनुभव से जानना इससे तुम्हारे लिये उस तत्त्व की सच्ची श्रद्धा हो जाएगी। जैसे किसी प्रबुद्ध व्यक्ति से आपने सुना कि फलाने फलाने कूप का जल बहुत मीठा और ठंडा है। अब कोई सज्जन, भला, प्रबुद्ध व्यक्ति यह बात कह रहा है तो आपने भी विश्वास कर लिया। अभी तो आपने उस व्यक्ति के वचनों पर श्रद्धा की है परन्तु मन में यह विचार आ सकता है कि उन्होंने ऐसा कहा तो है पता नहीं वास्तव में कैसा होगा? चलो देखते हैं। आप उस व्यक्ति के द्वारा बताये गये कूप के पास पहुँचे, और लोटे द्वारा पानी निकालकर छानकर पी लिया। अब स्वयं पीकर उस जल की मिठास और शीतलता का अनुभव करके आपकी श्रद्धा उस प्रबुद्ध व्यक्ति के वचनों के प्रति गहरी होगी या नहीं? तुम स्वयं विचार करोगे कि वे सज्जन बिल्कुल सही कह रहे थे। इसे कहते हैं अनुभव से जानना।

भगवान महावीर कहते हैं हमारी वाणी भी आप स्वानुभव से जानना। क्योंकि स्वानुभव से जानी हुई वाणी अकाट्य हो जाती है। और जिसने भगवान अरिहंत की वाणी को सच्ची श्रद्धा से स्वीकार कर लिया हो फिर वह कभी भी यद्वा तद्वा नहीं बोल सकता। भगवान के अभिषेक में इतना पाप है यदि ऐसे स्वच्छंद वचन स्वाध्याय हीन सामान्य लोग पढ़ लेवें तो वे भी स्वच्छंद हो जायेंगे। मंदिर जाना ही छोड़ देंगे। ऐसे स्वच्छंद कुतर्क देने लग जायेंगे। उन सभी स्वच्छंदवादियों से मैं यही कहता हूँ कि अगर भगवान के अभिषेक में इतनी हिंसा है तो तुम्हारी पत्रिका छपने में कितनी हिंसा होती है। अरे भाई! विवेकपूर्ण बोलने की बात है।

भगवान का अभिषेक तो सब जीवों के लिये पापक्षय का कारण है। क्या बोलते हो हिन्दी अभिषेक पाठ में-

पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरिहंत का मानो न्हवन परसन करूँ।।

अहो! भगवान अरिहंत देव का अभिषेक करते समय अभिषेक कर्त्ता के मन की विशुद्धि इतनी वृद्धिंगत हो जाती है कि वह भगवान के चरणों में अपने भाव रखते हुए कहता है '**पापाचरण तजि**' पापाचरण को छोड़ करके। '**न्हवन करता**' हे प्रभु! मैं आपका यह महामांगलिक अभिषेक करता हूँ। '**चित्त में ऐसे धरूँ**' और चित्त में ऐसे परिणाम रखता हूँ। '**साक्षात् श्री अरिहंत का मानो न्हवन परसन करूँ**'। जैसे कि मैं साक्षात् अरिहंत देव का ही अभिषेक और उनके चरणों का स्पर्शन कर रहा हूँ अर्थात् मेरी आत्मा को ऐसी अनुभूति हो रही है।

अभिषेक के काल में ऐसे उत्तम पवित्र परिणाम क्या हिंसा के कारण हैं। मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ कि विद्वान ऐसे वाक्य कैसे बोल देते हैं? क्या उन्हें इस बात का भय नहीं है कि जिनवाणी के अवर्णवाद से मिथ्यात्व का आस्रव बंध होता है अत: हमें कभी भी जिनवाणी के विरुद्ध नहीं बोलना चाहिये, और अवर्णवाद से हमेशा बचना चाहिये।

बंधुओ! एक बात ध्यान रखना, कई बार ऐसा हो जाता है कि आप शास्त्र स्वाध्याय करते हैं और कोई-कोई विषय एकदम कठिन, गूढ़ आ जाता है अथवा गणित का कुछ ऐसा विषय आ जाता है कि आपकी समझ से ऊपर जा रहा है। स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। तब आपके मन में ऐसा भाव आने लग जाता है कि 'पता नहीं ऐसा है भी या नहीं, हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा'। ऐसे भाव कभी मत लाना। उस समय तो ऐसे भाव रखना चाहिए कि अहो! धन्य हैं भगवान् अरिहंत देव का यह पूर्णज्ञान, जिसमें ऐसे ऐसे सूक्ष्म विषय प्रकाशित हुए हैं। यह तो मेरी बुद्धि, मेरे क्षयोपशम की कमी है जो मैं आज इसे समझने में असमर्थ हूँ क्योंकि छद्मस्थ हूँ। कहीं तुम ज्यादा बुद्धिमान मत बन जाना। और भगवान की वाणी के ऊपर अपनी बुद्धि मत लगा देना। नहीं तो सोचने लग जाओ कि शास्त्र में ऐसी बात आयी है लेकिन विश्वास नहीं होता कि ऐसा हो सकता है।

तुम किस ज्ञान से यह निर्णय कर रहे हो कि विश्वास नहीं होता? तुम्हारे पास ऐसा कौन सा उत्कृष्ट ज्ञान है? अरे तुम्हें तो यह कहना चाहिये कि जिनवाणी में जो आया है वही सत्य है। जैसा जिनवाणी कहती है वैसा ही है न अन्य है न अन्य प्रकार से है ऐसी बुद्धि होनी चाहिये। ऐसी निशंक बुद्धि सम्यग्दर्शन का आधार है। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में प्रथम निःशंकित अंग है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं–

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ।।11 ।।

अर्थात् भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा तत्त्व का स्वरूप जैसा कहा गया है वह वैसा ही है न अन्य है न अन्य प्रकार से है। इसप्रकार सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु के विषय में तलवार की धार पर रखे हुए पानी के समान अटल श्रद्धान होना सम्यग्दृष्टि जीव की पहचान है। वह सदैव सन्मार्ग में निशंक श्रद्धा रखता है।

सम्यग्दृष्टि जीव सोचता है मेरे ज्ञान का क्षयोपशम इतना नहीं इसलिये कुछ विषय मुझे अभी समझ में नहीं आ रहा है। मैं उसे ज्ञानीजनों से समझने का प्रयास करूँगा। मैं जिनवाणी के विपरीत कभी नहीं जा सकता। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव भी यही बात कह रहे हैं कि जो पूर्व में जिनेन्द्र भगवान ने कहा, गणधर भगवंतों के द्वारा विस्तार को प्राप्त हुआ, पूर्वाचार्यों के क्रम से आज हम तक पहुँचा है। सम्यग्दृष्टि जीव उसी आगम को अपने मुख से बोलता है कभी आगम के विपरीत नहीं बोलता। आगम के विरुद्ध नहीं जाता। यदि कोई आगम के विपरीत कथन करता है तो वह श्रुत का अवर्णवाद करता है और श्रुत का अवर्णवाद करने पर नियम से अपने संसार को बढ़ाता है मिथ्यात्व का पोषण करता है। आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज तत्त्वार्थ सूत्र जी में कहते हैं–

केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।।13-6।।

अर्थात् जिनेन्द्रदेव, जिनश्रुत, चतुर्विध संघ, केवलि प्रणीत धर्म और देवों के विषय में अवर्णवाद करने से दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव बंध होता है। जिस कारण यह जीव जन्म-मरण की संतति का, मिथ्यात्व का पोषण करता है और कुयोनियों में जाकर दुखों को भोगता है।

श्रद्धा और विवेक से युक्त श्रावक कभी मिथ्यात्व बढ़ानेवाली क्रिया नहीं करता। वह सदा जिनागम पंथ का अनुगामी होता है इसलिये आज हम सभी को बिल्कुल पक्के हो जाना है, इस बात का निर्णय कर लेना है, कि अगर हम किसी से सुनेंगे तो जिनवाणी। गृहवाणी, परिवार वाणी, व्यापार वाणी न सुनेंगे। क्योंकि परिवार में सुख, गृह में शांति और व्यापार आदि में समृद्धि तो पुण्य से होती है। अगर आपने अपना पुण्य बढ़ाया है तो आपके गृह में सहज शांति होगी। यदि आपका पुण्योदय नहीं है तो आप घर में रहें या घर से बाहर तो भी आपको शांति मिलनेवाली नहीं है।

कई बार श्रावक कहने लग जाते हैं महाराज घर में तो शांति ही नहीं है आप तो हमें अपने संघ में रख लो। अरे भगोड़ो! संघ में तो वैरागी लोग आते हैं जिन्हें संसार, शरीर और भोगों के यथार्थस्वरूप का बोध हुआ हो, विचार हुआ हो, वे जीव ही संघ के, वैराग्य मार्ग के, मोक्षमार्ग के योग्य होते हैं। अब कोई व्यक्ति घर की अशांति से घबराकर महाराज को अपना दुखड़ा सुनाये। महाराज को बताये। घर में बिल्कुल शांति नहीं है। पति घर में आता है चार बातें सुनाता है। सासु ढंग से बोलती नहीं है आप हमें संघ में रख लोगे ना? अरे भैया यह संघ है कोई धर्मशाला नहीं। तुम परिस्थितियों से घबराये हुये हो। वैराग्य से युक्त नहीं हो। परिस्थितियों से घबराया हुआ व्यक्ति वैरागी नहीं कहलाता। वास्तविक वैरागी जीव ही मोक्षमार्ग के अनुकूल हैं और संघ में भी रह सकते हैं।

एक दिन एक महिला आकर कहने लगी, महाराज श्री! आप मुझे अपने संघ में ले लो। हमने कहा–तुम्हारा तो परिवार होगा। बोली परिवार तो है लेकिन कोउ कोउ की न सुनत है। हमने कहा–जब कोउ कोउ की न सुनत तो हम कैसे सुन लेंगे। पुन: बोली, पहले भी एक महाराज आये थे, उनसे भी हमने जेइ बात कही कि आप हमें अपने संघ में रख लो, तो उनने भी मना कर दई थी। हमने कहा–सब ही मना कर देंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कई बार परिवार में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, तो लगता है महाराज के पास चलो। लेकिन जब तक जीवन में वैराग्य न हो तब तक मोक्षमार्ग पर आने के बाद भी घर से बाहर निकल जाने के बाद भी, जीवन में शांति नहीं आती। **जब तक भीतर रागद्वेष भरा हुआ है तब तक जीवन में शांति नहीं आ सकती।** और घर, परिवार, व्यापार

में, सुख शांति समृद्धि पुण्य से होती है भागने से नहीं होती। मुनिराज सब जीवों के लिये धर्म की, आगम की, तत्त्व की बात ही सिखाना चाहते हैं।

बंधुओ! जीव ने सब सुना, कभी भावपूर्वक रुचिपूर्वक जिनेन्द्र वाणी नहीं सुनी। इन्द्रभूति गौतम भगवान से शास्त्रार्थ करने आया और जैसे ही भगवान का स्वरूप देखा, देखते ही भीतर का अज्ञान समाप्त हो गया। स्वरूप देखने मात्र से जब भीतर का अज्ञान समाप्त हो सकता है तो साक्षात् जिनेन्द्र भगवान की वाणी जिनवाणी सुनने से क्या अज्ञान दूर नहीं होगा? अवश्य होगा।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने इस गाथा में हमें मानसिक रूप से तैयार किया और बताया कि कोई भव्य जीव विचार करता है कि मैं कहाँ जाऊँ? किससे सुनूँ धर्म की दो बातें? तो आचार्य भगवन् कहते हैं जहाँ जिनवाणी बोली जा रही हो तुम उसे ही सम्यग्दृष्टि वक्ता समझना और उससे ही तत्त्व की बात सुनना। इसमें तुम्हारा ही भला है। और यदि तुम भी सम्यग्दृष्टि हो तो वही धर्म की, तत्त्व की, बात करोगे। हित की बात बोलोगे।

एक तथाकथित सम्यग्दृष्टि जीव बोला—फलाने महाराज ऐसा कर रहे थे। यदि तुम सम्यग्दृष्टि हो तो उन मुनिराज की निंदा करोगे या उन में जो कमी है उसको दूर करने का प्रयास करोगे ? यदि सच्चा सम्यग्दृष्टि जीव होगा तो कभी मुनिराज तो बहुत उत्कृष्ट हो गये, किसी परजीव की भी निंदा नहीं करेगा। जिसे जिनसूत्र की हृदय से श्रद्धा होती है वह जानता है कि परनिंदा करने से नीचगोत्र का बंध होता है। यथा–आचार्य भगवन् उमास्वामी जी महाराज श्री तत्त्वार्थसूत्र जी ग्रंथ में कहते हैं–

परात्मनिंदा-प्रशंसे सदसद्-गुणोच्छादनोद्-भावने च नीचैर्गोत्रस्य।।25-6।।

अर्थात् दूसरों की निंदा और अपनी प्रशंसा करने से, दूसरों के विद्यमान गुणों को ढाकने और अपने में अविद्यमान गुणों को प्रगट करने से जीव नीचगोत्र का बंध करता है।

सम्यग्दृष्टि जीव निंदक नहीं अपितु उपगूहन अंग का धारी होता है। धर्मीजन, गुणीजन, साधुजनों को किसी विपत्ति में देख उसे दूर करने का प्रयास करते हैं। यह धर्मात्माओं का लक्षण है। धर्मी जीव धर्मात्माओं को देखकर प्रमुदित आल्हादित होता हुआ उनकी स्तुति आराधना करता है। क्यों? क्योंकि उनके अंदर जिनवाणी है और जिसके अंदर जो होता है वह वही

बोलता है। रागीद्वेषी जीव रागद्वेष की बात बोलेगा और जिनवाणी से भरा जीव जिनवाणी बोलेगा। **जो जीव धर्मात्माओं की, साधर्मियों की निंदा करे, वह कितना भी बड़ा शास्त्रज्ञ क्यों न हो, सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता।** यह मैं नहीं कह रहा, आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं। हमारे लिये बोध करा रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि सदैव जिनवाणी सुनाता है कहता है।

कोई जीव रास्ते में घायल अवस्था में पड़ा हो, मृत्यु की ओर हो, तो क्या सुनाओगे? णमोकार मंत्र सुनाओगे। यही सम्यग्दृष्टि की पहचान है। अज्ञानी जीव उसे देखकर कहेगा, क्या आवारा लोग इधर उधर पड़े रहते हैं ये अज्ञानियों की भाषा है। ज्ञानी होगा तो कहेगा, ओ हो! यह जीव इस पर्याय को छोड़नेवाला है इसको जिनेन्द्र भगवान के दो शब्द, जिनवाणी के रूप में, णमोकार मंत्र के रूप में सुना दो। वह जिनवचनों को सुनानेवाला सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीव है इसलिये बंधुओ जब भी मुख से बोलो जिनवाणी ही बोलो।

अगर तुम्हारा बेटा क्रोध करे तो कहना- 'बेटा! जिनेन्द्र भगवान ने कहा है क्रोध करने से जीव नरकगति का पात्र बनता है।' फिर कभी जब आपको किसी विपरीतता-प्रतिकूलता के कारण क्रोध आने लगे तो तुम्हारा बेटा कहेगा, मम्मी-मम्मी जो क्रोध करता है उसे नरकगति में जाना पड़ता है इसलिये आप इस समय क्रोध मत कीजिए। क्षमाभाव को धारण कीजिए। जिनेन्द्र भगवान का दिया हुआ यह सूत्र तुम्हारे लिये मृत्युकाल में भी समाधि का कारण बन सकता है। इसलिये जब भी बोलो जिनवाणी बोलो।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने हम सभी को एक सम्यग्दृष्टि जीव की पहचान बताई है जिसके माध्यम से हम भी सम्यग्दृष्टि जीव हैं या नहीं इसका निर्णय कर सकते हैं। **यदि हमें जिनवाणी सुनने में रुचि, उसको बोलने में चर्चा में आनंद आये समझ लेना सम्यग्दृष्टि हो, भगवान अरिहंत के कुल में जन्मे हो। मनुष्य कुल में आना सरल है लेकिन अरिहंत के कुल में जन्म लेना बहुत दुर्लभ है।** मनुष्य कुल में तो अनेकों जीव जन्म लेते हैं लेकिन अरिहंत कुल पाकर जिनवाणी का रसपान विरले ही करते हैं।

भगवान जिनेन्द्र की यह अमृतवाणी आपके जीवन में ऐसा रस घोले, कि फिर आप जहाँ भी रहें आपके हृदयरूपी कुंभ से सदैव जिनसुधा रूपी निर्मल जल छलके। आप चाहे घर में

हों या दुकान पर। खाते-पीते, सोते-उठते हर जगह भगवान की वाणी याद आये। भगवान महावीर ने कहा- अगर जिनवाणी हर परिस्थिति में आपका सहारा बनी रहेगी याद रहेगी, तो आपकी यह पर्याय सार्थक हो जायेगी। अन्यथा आधी तो चली गई, आधी और यूँ ही बीत जायेगी।

जिनवाणी का एक सूत्र भी यदि आपने अपने जीवन का आधार बना लिया। उसी को अपने जीवन का सिद्धान्त बना लिया। उसे अपने अमल में ला दिया, तो इतने मात्र से भी जीव का कल्याण हो जाता है।

आपने यह जान लिया कि कषायें चार होती हैं। चारों ही कषायें आत्मा के सुख का घात करती हैं दुख उत्पन्न करती हैं चलो आज मैं इनमें से एक कषाय को जीतूँगा । आज मैं क्रोध नहीं करूँगा। इस चिंतन के साथ कि मुझे ज्यादा धर्म-कर्म तो आता नहीं, मैं अधिक तो कुछ कर नहीं पाऊँगा, लेकिन एक नियम बना लेता हूँ मैं कभी क्रोध नहीं करूँगा। हमेशा क्षमाभाव धारण करूँगा। यदि तुमने यह अपने जीवन का सिद्धान्त बना लिया। तो फल क्या मिलेगा? धीरे-धीरे केवल क्रोध ही नहीं चारों कषायें ही शांत होने लग जायेंगी।

जब आप यह चिंतन करोगे कि मुझे क्षमाभाव धारण करना है। कैसे? जैसे स्कूल (School) अथवा कॉलेज (College) में पढ़ते समय किसी भी सब्जेक्ट (Subject) का एक निश्चित टाइम, पीरियड (Time, Period) होता था। उतने समय तक केवल वही सब्जेक्ट (Subject) पढ़ाया जायेगा अन्य नहीं। उसी प्रकार हमने भगवान जिनेन्द्र की यूनिवर्सिटी (University) में, विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया है। अपने नियम-संयम के माध्यम से यहाँ पर दसधर्मों के पीरियड (Period) चलते हैं। रत्नत्रय की डिग्री (Digree) मिलती है तो अब जब भी क्रोध आये तो चिंतन कर लेना। अभी तो मेरा क्षमा का पीरियड (Period) चल रहा है इसलिये मुझे क्षमाभाव में ही रहना है। जब कोई तुम्हारे मान को आघात पहुँचाये तो विचार करना मैं तो अपना क्षमा का पीरियड अटैण्ड (Period Attend) कर रहा हूँ। कोई मायाचारी करे तो मन में यही भाव आये उसके भाव उसके कर्म उसके साथ, मेरा क्षमाभाव मेरे साथ। कोई लोभ लालच दिखलाये तो मन से आवाज आये मेरे पास क्षमाधर्म की अनमोल सम्पदा है इसतरह तुम्हारा पूरा जीवन ही क्षमा का पीरियड (Period) बन जायेगा।

ध्यान रखना, अगर जीवन में एक जिनसूत्र भी आ जाता है। हमारे जीवन का मूलभूत सिद्धान्त बन जाता है तो आत्महित वहीं से प्रारंभ हो जाता है। इतना ध्यान रखना, जब किसी वक्ता से सुनो तो जिनवाणी सुनना। जब भी मुख से बोलो तो जिनवाणी बोलना। अगर कहीं व्यर्थ की वार्ता चल रही हो तो मौन हो जाना। व्यर्थ की गपशप मत करना। क्यों? क्योंकि यह वाणी बड़ी दुर्लभता से मिली है।

एक व्यक्ति बस (Bus) से सफर कर रहा था। खाली बैठा हुआ था। करने को कोई काम न था। उसने तुरंत अपनी जेब में हाथ डाला। सिगरेट (Cigarette) की डिब्बी निकाली। एक सिगरेट (Cigarette) सुलगाई और पीने लगा। दूसरी निकालकर बगल में बैठे यात्री की ओर मुस्कुराते हुए बढ़ा दी। बगल में बैठे उस व्यक्ति ने उससे पूछा कि आप सिगरेट (Cigarette) क्यों पी रहे हैं। बोला, खाली बैठा हूँ टाइम पास (Time Pass) करने के लिये सिगरेट (Cigarette) पी रहा हूँ। तो उस बगलवाले व्यक्ति ने कहा–कुछ गलत करते हुये टाइम पास (Time Pass) करने की अपेक्षा कुछ भी न करते हुए टाइम पास (Time Pass) करना अच्छा है। अपने सहयात्री की यह बात सुन वह युवक झेंप गया।

इसीप्रकार यदि आपके पास धर्म के सूत्र हों, तो बढ़िया है। अगर न भी हों तो व्यर्थ की बातें करके टाइम पास (Time Pass) करना अच्छा नहीं है इसलिये कभी व्यर्थ की गपशप न करना। हँसी-मजाक में न उलझना। कई बार इन व्यर्थ की बातों और हँसी-मजाक से ही बड़े वाद-विवाद प्रारंभ होते हैं। आपको पता होगा महाभारत का युद्ध कैसे हुआ? क्या पहले से प्लानिंग (Planning) कर ली थी दोनों ओर के लोगों ने, कि अपने को महाभारत करना है? कोई प्लानिंग (Planning) नहीं थी। केवल वचन वर्गणाओं का ही प्रभाव था। दुर्योधन राजमहल के अंदर जा रहा था। रास्ते में ऐसी शिल्पकला थी कि वहाँ पानी तो नहीं था लेकिन दूर से देखने पर ऐसा लग रहा था जैसे कि सुंदर सा एक छोटा तालाब हो। आज की भाषा में स्वीमिंग पूल (Swiming Pool) हो। यह देख दुर्योधन यहाँ जल है ऐसे भ्रम में पड़कर धीरे-धीरे आराम आराम से उतरने लगा। कहीं गिर न जाऊँ। राजमहल की खिड़की में खड़ी द्रोपदी यह सब देख रही थी। हँसी-हँसी में उसने कह दिया **'अंधों के अंधे ही होते हैं।'** अर्थात् भो दुर्योधन! तुम धृतराष्ट्र के पुत्र हो इसलिये तुम्हें दिखायी नहीं दे रहा है कि यहाँ वास्तव में पानी नहीं अपितु फर्श का रंग ही ऐसा है।

इतना सा शब्द कि '**अंधों के अंधे होते हैं**' हृदय में चुभ गया और इन वचन वर्गणाओं के कारण महाभारत का युद्ध खड़ा हो गया। इसलिये बंधुओ! कभी व्यर्थ का हँसी-मजाक नहीं करना, गपशप नहीं करना। कई बार ऐसा हो जाता है कि आपने तो कोई बात हँसी-हँसी में कही और सामनेवाला उसे सत्य मानकर बैठ जाता है। आपका जानी दुश्मन बन जाता है। जब भाई-भाई दुश्मन बन जाते हैं तो मित्र-मित्र कहाँ ठहरते हैं।

इसलिये इन वचन वर्गणाओं का सदुपयोग करना। बोलना है तो जिनवाणी बोलना। अगर आप जिनवाणी बोलोगे तो भगवान जिनेन्द्र की कृपा स्वत: तुम्हारे ऊपर बरसेगी। बंधुओ! आज हमने जाना कि सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा जिनवाणी बोलता है सुनता है। इसलिये जब भी बोलो जिनवाणी बोलो।

जिनवर ने जिसको बोला, गणधर ने जिसको खोला।
सभी पूर्व आचार्यों ने, अन्तरंग से जो तौला।।
आगम वाणी ही, हो-हो-2, समदृष्टि सुनाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 3
(प्रवचन)

•

जिनागम बाह्य पंथ जिन प्रवचन नहीं

05.08.2013

भिण्ड

(मिथ्यादृष्टि कौन ?)

मदिसुदणाण-बलेण दु, सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्गलग्गरवो।।3।।

* अन्वयार्थ *

(**जो**) जो जीव (**जिणुद्दिट्ठं**) जिनेन्द्रदेव कथित तत्त्व को (**मदि-सुद-णाण-बलेण दु**) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से (**सच्छंदं**) स्वेच्छानुसार, स्वच्छन्द (**बोल्लदि**) बोलता है (**सो**) वह (**कुदिट्ठी**) मिथ्यादृष्टि (**होदि**) होता है वह (**जिण-मग्ग-लग्गरवो**) जिनमार्ग में संलग्न जीव का वचन (**ण**) नहीं (**होदि**) होता है।

अर्थ- जो जीव जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित वस्तुतत्त्व को मति-श्रुतज्ञान के बल से स्वेच्छानुसार-स्वच्छन्द रूप से बोलता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसका वचन जिनमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति का वचन नहीं है। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

चंद्रगुप्त ने स्वप्न में सछिद्र चंद्रमा देखा, जिसका फल जिनमत में अनेक मत उत्पन्न होंगे।

5

रयणोदय

जो कोई मति-श्रुतज्ञानी, बोले गर स्वछंद वाणी।
मिथ्यादृष्टि कहलाता, है यह कुंदकुंद वाणी।।
जिनमार्गी का, हो-हो-2, नहिं वचन कहाये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

आचार्य परंपरा के अनुसार जो जिनेन्द्र भगवान के वचनों को बोलता है उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। ऐसा हमने 'श्री रयणसार जी' ग्रंथ के माध्यम से कल जानने का प्रयास किया। भगवान जिनेन्द्र के द्वारा जो पूर्व में उपदेश दिया गया, गणधर भगवंतों के द्वारा जो विस्तृत किया गया और आचार्य भगवंतों के माध्यम से हम तक पहुँचा, अगर कोई जीव उस वाणी को अपने

मुख से नहीं बोलता है, तो वह कौन कहलाता है? इसका समाधान आचार्य भगवन् तीसरी गाथा में हम सभी को बताते हैं। हम पहले गाथा पढ़ लें फिर विशेष जानने का प्रयास करते हैं–

मदि-सुद-णाण-बलेण दु, सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्ग-लग्गरवो।।3।।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि (**जो**) जो व्यक्ति, (**मदिसुद- णाणबलेण दु**) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से (**सच्छंदं बोल्लदे**) स्वछंद बोलता है। मन: कल्पित इच्छानुसार बोलता है। (**सो**) वह व्यक्ति, (**होदि कुद्दिदट्ठी**) मिथ्यादृष्टि होता है। (**ण होदि जिणमग्ग लग्गरवो**) वह जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरुढ़ व्यक्ति का वचन नहीं है (**जिणुद्दिदट्ठं**) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

एक था चक्रवर्ती, जिसका नाम था भरत। तीर्थंकर आदिनाथ का प्रथम पुत्र और चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती था। वह इतना पुण्यात्मा जीव था कि उसे भी मनु यानि कुलकर की संज्ञा दी गई। वह चक्रवर्ती भरत इतना धर्मध्यानी था कि लोक में चर्चा होती, **'चक्रवर्ती भरत घर में वैरागी'**।

इस संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। रागी और वैरागी। विचार करना थोड़ा, घर में वैरागी जीव रहता है क्या? **वैराग्य की भावना करनेवाला तो घर में रह सकता है वैरागी जीव घर में नहीं रह सकता**। अगर वैरागी जीव घर में रहने लग जाये तो तुम उसे वैरागी कहोगे क्या?

अगर मैं तुमसे कहूँ, मैं तुम्हारे घर में रहूँगा, तो तुम कहोगे क्या? कि महाराज! आप तो हमारे घर में खूब रहो। हम रोज आपकी पूजा करेंगे। अरे तुम ये कहोगे कि महाराज श्री! जिनागम में जिनेन्द्र भगवान ने कहा है इस पंचमकाल मे निर्ग्रंथ साधुजन भले ही जंगलों में न रहें लेकिन जिनालयों में, वसतिकाओं में, नगरों के समीप शून्य स्थानों में, धर्मशालाओ में रहें लेकिन घर में रहने की अनुमति भगवान जिनेन्द्र ने किसी भी वैरागी को नहीं दी। अगर कोई वैरागी घर में रहने की सोचने लग जाये तो आप उसे फिर वैरागी नहीं कहोगे। घर में रागी रहता है या वैराग्य की भावना करनेवाला घर में रह सकता है। वैरागी घर में नहीं रह सकता।

जानते हो, चौबीस तीर्थंकरों में पाँच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी थे। वासुपूज्य भगवान, मल्लिनाथ भगवान, नेमिनाथ भगवान, पार्श्वनाथ भगवान और शासन नायक भगवान महावीर

स्वामी। ये पाँच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी हुए हैं। यदि कोई गृह चैत्यालय का निर्माण कराता है, तो आचार्य भगवंतों ने कहा, इन पाँच तीर्थंकरों की प्रतिमा अपने गृह चैत्यालय में स्थापित मत करना। उन्नीस तीर्थंकरों में से किसी भी तीर्थंकर की प्रतिमा विराजमान कर लेना लेकिन इन पाँच बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमा अपने गृह चैत्यालय में विराजमान मत करना।

क्यों कहा ऐसा? क्योंकि आचार्य भगवंतों ने बताया कि इन पाँच तीर्थंकरों का वैराग्य उत्कृष्ट है और यदि ये घर में आ गये तो सब जीवों के परिणाम भी वैराग्य के बनने लग जायेंगे। इसलिये गृह चैत्यालय में पाँच बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरों को विराजमान नहीं किया जाता। वैसे वैराग्य हो जाये ये बात तो अच्छी है। लेकिन जिन्हें अपनी कुलवंश परंपरा को आगे बढ़ाना है उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये।

जब जिनका वैराग्य उत्कृष्ट है वे तीर्थंकर गृह चैत्यालय में नहीं रह सकते हैं तो फिर वैरागी जीव घर में कैसे रह सकता है?

वैरागी जीव का तात्पर्य है, जो दीक्षित हो चुके हैं। वैराग्य की भावना करनेवाले नहीं। आचार्य भगवन् कहते हैं कि जो दीक्षित हो चुके हैं, ऐसे वैरागी जीव घर में न रहें। लेकिन भरत चक्रवर्ती के विषय में क्या कहा जाता है कि- 'भरत जी घर में वैरागी'।

इसका तात्पर्य यह है कि भरत चक्रवर्ती रहता तो घर में ही था। अपने समस्त कर्त्तव्यों का पालन करता था। चाहे वह नैतिक कर्त्तव्य हो अथवा धार्मिक। वह सभी कर्त्तव्यों का पालन करता था। और भावना करता था कि ऐसा कोई पुण्ययोग बने, मैं भी अपने पिता के समान मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ूँ। उनके कदमों पर ही चलूँ यानि मैं भी निर्ग्रंथ मुनिदीक्षा अंगीकार करूँ। ऐसी भावना करता था कि जब तक ऐसा सुयोग नहीं आया तब तक घर में रहकर ही अपनी धर्मसाधना करता रहूँ।

इसतरह लोक में भरत जी के विषय में यह चर्चा चल पड़ी कि भरत जी घर में वैरागी हैं। ऐसा ही इस पंचमकाल में भी कुछ लोग कहने लग जाते हैं कि जब भरत जी घर में वैरागी रह सकते हैं तो हम भी घर में वैरागी होकर रह सकते हैं।

ये स्वच्छंद लोगों की वाणी है। चक्रवर्ती भरत इतना उत्कृष्ट पुण्य लेकर आया था कि उस पुण्य को उसे भोगना पड़ रहा था। तुम्हारा इतना पुण्य है क्या? फिर अपनी तुलना किससे करते

हो, चक्रवर्ती से। जैसे भरत जी घर में वैरागी बनकर रहे ऐसे ही हम भी घर में वैरागी बनकर रहेंगे। ध्यान रखना, जैसी वैराग्यता चक्रवर्ती भरत के अन्तरंग में थी वैसी विरागता तुम्हारे अंदर कहीं नजर भी नहीं आयेगी।

चक्रवर्ती भरत निज शुद्ध आत्मा की रुचि रखता था। उसी का ध्यान करता था लेकिन जिस काल में वह अपने आप को शुद्ध आत्मा के ध्यान करने में असमर्थ पाता था। उस काल में वह चक्री भी भगवान जिनेन्द्र की महामंगलकारी पूजन करता था। निर्ग्रंथ मुनिराजों के लिये द्वार पर खड़े होकर हाथों में मांगलिक द्रव्य ले पड़गाहन करने के लिये खड़ा होता था अर्थात् अपने पूजा और दान इन आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करता था।

ऐसा नहीं था कि उसने पूजन और दान करना छोड़ दिया हो। वह स्वच्छंद प्रवृत्ति का नहीं था। **यदि कोई गृहस्थ होकर यह कहे कि मैं तो चक्रवर्ती भरत के समान घर में वैरागी का जीवन जी रहा हूँ। एकमात्र शुद्ध आत्मा का ध्यान करना ही मेरा कर्त्तव्य है। मैं तो उसी का ध्यान करता हूँ। ऐसा विचार कर अगर वह भगवान जिनेन्द्र की पूजन और दान जैसे कर्त्तव्यों को छोड़ देता है। तो ध्यान रखना, न तो वह भरत के समान आचरण को अपनाता है और न ही जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन करता है, अपितु वह तो स्वच्छंद प्रवृत्ति वाला व्यक्ति है।**

चक्रवर्ती भरत अपनी आत्मा को जानता हुआ भी दान, पूजन करता था। ऐसा नहीं कि उसने अपने इन कर्त्तव्यों को छोड़ दिया हो। आजकल ऐसे भी लोग अपने को सम्यग्दृष्टि मान रहे हैं जो दान-पूजन आदि कर्तव्यों का पूर्व में पालन करते थे। फिर शुद्धात्मा का ज्ञानकर कहने लगे दान, पूजन करना कोई धर्म नहीं है। ओ हो! क्या चक्रवर्ती भरत को शुद्ध आत्मा का ज्ञान नहीं था। क्या भगवान राम जब अपनी पूर्व पर्याय में थे तो क्या वे अपने स्वरूप को नहीं जानते थे? क्या पांडव आदि जब अपनी गृहस्थ अवस्था में थे तो क्या वे नहीं जानते थे? अरे! जानते तो वे भी थे। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव थे। ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जिनके विषय में स्पष्ट घोषणा थी कि ये सम्यग्दृष्टि जीव हैं। और वर्तमान के इन सम्यग्दृष्टियों का तो कोई भरोसा भी नहीं है कि सम्यक्त्व है भी अथवा नहीं।

इसके बावजूद भी **अगर कोई 'मैं शुद्ध आत्मा हूँ, मैं अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करता हूँ' ऐसा मतिश्रुतज्ञान के बल से अगर स्वच्छंद बोलता है तो वह मिथ्यादृष्टि है।**

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि भाई! अगर कोई व्यक्ति स्वाध्याय करता है तो यह आवश्यक नहीं कि वह सम्यग्दृष्टि हो ही। उसका क्षयोपशम बढ़ सकता है। क्षायोपशमिक ज्ञान संसार का और मुक्ति का भी कारण है। ज्ञान पाँच प्रकार के होते हैं। आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज श्री तत्त्वार्थसूत्र जी ग्रंथ में कहते हैं-

मतिश्रुतावधि मनःपर्यय केवलानि ज्ञानम्।।9-1।। अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

इन पाँच ज्ञानों में समस्त संसारी जीवों के मति और श्रुतज्ञान अवश्य ही होते हैं। वह मतिज्ञान कैसा होता है? तो आचार्य भगवन् उमास्वामी जी कहते हैं-

तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तं।।14-1।।) अर्थात् वह मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है। और '**श्रुतं मतिपूर्वं**' अर्थात् जो ज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है वह श्रुतज्ञान कहलाता है।

यह दो ज्ञान सब संसारी जीवों को होते हैं। यदि मिथ्यात्व के साथ मति-श्रुतज्ञान होता है तो उसे कुमति-कुश्रुतज्ञान कहते हैं। और यदि सम्यग्दर्शन के साथ होता है तो 'कु' शब्द हट जाता है। मात्र मतिज्ञान और श्रुतज्ञान कहलाता है। **ध्यान रखना, आचार्य कुंदकुंद देव कह रहे हैं कि जो व्यक्ति मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छंद अर्थात् मनः कल्पित बोलता है। कैसे? 'मैं तो अपनी आत्मा का ही ध्यान करता हूँ। आत्मा का ध्यान करने से ही आत्मा का हित हो सकता है। पूजा-दान आदि ये धर्म नहीं हैं' और जिसने यह कह दिया कि पूजा-दानादि धर्म नहीं है, समझ लेना वह मिथ्यादृष्टि जीव है। क्यों? क्योंकि सर्वज्ञदेव ने दान-पूजादि को व्यवहार धर्म कहा है।**

माता-पिता होते हैं या नहीं? यह रिश्ता होता है या नहीं? पति-पत्नी, माँ-बेटा, पिता-पुत्र ये रिश्ते होते हैं या नहीं? होते हैं, तो पति-पत्नी का, पिता-पुत्र का, माँ-बेटे का, सास-बहू का, जैसे ये रिश्ते हैं इन्हें सर्वथा झूठा नहीं कहा जा सकता। ये रिश्ते व्यवहार से होते हैं निश्चय से तो आत्मा का किसी से कोई रिश्ता होता ही नहीं, उसीप्रकार दान-पूजादि को भी व्यवहार धर्म कहा गया है।

जैसे व्यवहार से ये रिश्ते सत्य हैं ऐसे ही सर्वज्ञ भगवान ने दान-पूजा आदि को श्रावक का धर्म कहा है। यदि कोई कहता है कि यह धर्म नहीं है। एकांत से ऐसी घोषणा करता है तो समझ लेना उसका यह वचन मिथ्यादृष्टि का वचन है।

चक्रवर्ती भरत शुद्धात्मा का ध्यान भी करता था। और जब उपयोग नहीं लगता था तो भगवान जिनेन्द्रदेव की महापूजा भी करता था। पात्रों के लिये दान भी करता था। और श्रावक के समस्त कर्त्तव्यों का पालन बड़े हर्ष उल्लास पूर्वक करता था। विचार करिएगा, एक चक्रवर्ती अपने राजमहल के बाहर पड़गाहन के लिये खड़ा है। किंतु जब कोई पात्र न मिला तो आँखों से झर-झर अश्रु धारायें बहने लगी। जिह्वा दोनों हाथों को निरर्थक कहने लगी। आज मेरे हाथों की कोई उपयोगिता ही न रही। शोभा न रही। धन्य है वह चक्रवर्ती जिसकी अपने कर्त्तव्यों के प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति थी। **यदि कोई अपने कर्त्तव्यपालन से विमुख हो जाये और कहने लग जाये कि दान-पूजा करने से कुछ नहीं होता। ये कोई धर्म नहीं है समझ लेना कि यह व्यक्ति स्वच्छंद हो चुका है। न तो इस जीव के पास सम्यक्त्व है और न ही धर्म।**

एक समय ऐसा था जबकि दिगंबर धर्म ही प्रवर्तमान था। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु इस धरा पर 24000 मुनिराजों के साथ संघ का प्रतिनिधित्व करते हुये विचरण किया करते थे। एक दिन आचार्य भद्रबाहु किसी गृह में आहार चर्या हेतु पहुँचे। जैसे ही उन्होंने प्रवेश किया, पालने में एक बालक लेटा हुआ था। और अपने मुख से बोल रहा था, जा जा, जा जा।

यदि निर्ग्रंथ मुनिराज किसी के गृह में पहुँचें और कोई उन्हें गृह में प्रवेश करने से मना करे। कह दे कि आप गृह से जाइये तो मुनिराज तुरंत लौट जाते हैं। उस गृह में प्रवेश नहीं करते। तुम जब मुनिराज को पड़गाहन कर ले जाते हो तो सबसे पहले द्वार पर खड़े होकर बोलते हो-हे स्वामिन्! मम गृह में प्रवेश कीजिए। जब तुम उन्हें अनुमति देते हो तभी मुनिराज तुम्हारे घर में प्रवेश करते हैं। अगर तुमने इसप्रकार बोलकर अनुमति न दी तो गृह प्रवेश नहीं करेंगे।

जैसे ही आचार्य भगवन् ने 'जा-जा' यह सुना तो वे वहीं ठहर गये। निमित्तज्ञानी थे अत: मन में विचारने लगे, यह बालक जा-जा शब्द क्यों बोल रहा है क्या कारण है? उन्होंने अपने निमित्तज्ञान से जाना, ओ हो! इस उत्तरभारत में 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़नेवाला है। मुनिराज तुरंत लौटकर आये और उन्होंने श्रमणसंघ व श्रावक समूह को संबोधित करते हुए कहा-'चूँकि उत्तर भारत में 12 वर्ष का अकाल पड़नेवाला है इसलिये संघ दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान करेगा।' निर्ग्रंथगुरु के उपासक, मुनिभक्त अनेक धर्मात्माजनों, श्रेष्ठीजनों ने आकर मुनिसंघ व आचार्य भद्रबाहु स्वामी से निवेदन किया-भगवन्! 12 वर्ष का अकाल पड़ने दो। हम आपकी चर्या में किसीप्रकार की कोई कमी बाधा नहीं आने देंगे। श्रावक का धर्म है साधु

की परिचर्या में किसी भी प्रकार की कोई बाधा न आये, और अगर कोई बाधा आती है तो उसे दूर करना यह श्रावक का कर्त्तव्य है तो श्रेष्ठीजनों ने धनपतियों ने आकर निवेदन किया, भगवन्! आप चिंता न करें सम्पूर्ण संघ की अनुकूल व्यवस्था होगी। हमारे पास अनाज के भंडार हैं। 12 वर्ष तक किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं आने देंगे। इधर आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने विचार किया, जब इस धरा पर भयंकर अकाल पड़ेगा तब यहाँ पर बहुत सी अनहोनी घटनायें घटेंगी। घर में कोई विपरीत परिस्थिति घट जाये, कोई भी संकट हो जाये तो फिर गृहपति का ध्यान उसी ओर लग जाता है।

आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने अपने सम्पूर्ण संघ को संबोधित किया और संघ उनके साथ दक्षिण भारत जाने के लिये तैयार हो गया। लेकिन कुछ साधु ऐसे भी रहे जिन्होंने कहा–अरे! जब यहाँ धनपति लोग, श्रेष्ठी लोग बोल रहे हैं कि कहीं कोई परेशानी आनेवाली नहीं है तो फिर दक्षिण भारत की यात्रा करने की क्या आवश्यकता है?

ध्यान रखना, जिन्हें गुरु के वचन प्रमाण होते हैं उनके जीवन में आती हुई बाधा भी दूर हो जाती है। और जो गुरु वचनों का उल्लंघन करते हैं उनके जीवन में संकट न भी हो तो भी संकट की स्थिति खड़ी हो जाती है। इसलिये शिष्यों के द्वारा गुरु के वचनों का सदा आदर और सम्मान होना चाहिये।

आचार्य भद्रबाहु ने उन शिष्यों को बहुत समझाया लेकिन वे फिर भी न माने। जब बुद्धि स्वच्छंद हो जाती है तब विवेक नष्ट हो जाता है। सम्यक्त्व कौमुदी में कहा भी है–

न निर्मिता कैर्न च पूर्व दृष्ट्वा, न श्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, विनाशकाले विपरीत बुद्धि।।46।।

गुरु ने बहुत समझाया फिर भी समझ न आयी। आचार्य भगवन् भद्रबाहुस्वामी अपने संघ को लेकर दक्षिण भारत चले गये और कुछ साधु इसी उत्तर भारत में ठहर गये।

धीरे-धीरे अकाल पड़ना शुरु हुआ। धनपतियों ने संतों से कहा–आप लोग चिंता न करें, सब अनुकूलता है। जैसे ही अकाल बढ़ना शुरु हुआ तो लोग एक-दूसरे के यहाँ लूटपाट करने लगे। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि एकबार कोई मुनिराज आहारचर्या के लिये निकले। जब गृहस्थ के घर से आहार करके आये, रास्ते में भूख से व्याकुल उद्दण्ड लोगों ने देखा। ओ हो!

ये साधु तो पेट भरके आ रहा है तो उन्होंने साधु को पकड़कर उनका पेट फाड़ दिया और आहारनली में जो भोजन था सब निकालकर खा गये। स्थितियाँ विपरीत होने लगीं। साधुओं ने सोचा अब क्या करें? धनपतियों ने कहा–महाराज श्री ! आप लोग रात को भोजन लेने के लिये निकला करें और अपने स्थान पर जाकर ग्रहण कर लिया करें। तभी हम ऐसी विकट परिस्थितियों से बच पायेंगे। वे साधु ऐसा करने को मान गये। एक दिन वे रात्रि को भोजन लेने हेतु निकले। कुत्ते आदि जानवरों को भगाने के लिये वे अब एक डंडा भी रखने लगे थे। उनकी परछाई से डरकर एक गर्भवती महिला चीख पड़ी और उसका गर्भ गिर गया। सेठ लोग बोले–महाराज श्री ! आप लोग अपने तन पर वस्त्र आदि डालकर निकला करें। जिससे कोई विपरीत घटनायें न घटें। इसतरह वस्त्र आदि धारणकर उन्होंने अपने आपको मुनि कहलवाना शुरु कर दिया।

इधर आचार्यश्री भद्रबाहुस्वामी विहार करते हुए दक्षिण भारत पहुँचे। आचार्य भगवन् ने अपने ज्ञान से जाना कि अब उनका आयुकाल अत्यंत अल्प है। इसलिये उन्होंने संघ को आज्ञा दी कि तुम लोग और आगे विहार करो। मैं अब इसी स्थान पर ठहरकर अपनी धर्मसाधना करूँगा।

आप लोगों ने सम्राट चन्द्रगुप्त का नाम सुना होगा। सम्राट चन्द्रगुप्त बड़ा प्रतापी सम्राट हुआ। आचार्य भद्रबाहु से जिनदीक्षा अंगीकार की और वह निर्ग्रंथ मुनि बन गया। गुरु के साथ विहार करते–करते दक्षिण भारत पहुँचा।

आचार्य भगवन् के आदेश से समस्त संघ आगे विहार कर गया। चन्द्रगुप्त ने कहा–गुरुदेव ! आपका समाधि का काल है मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। आचार्य भगवन् भद्रबाहुस्वामी समाधि साधना में लगे हुए हैं। एक दिन उन्होंने मुनि चन्द्रगुप्त को आज्ञा दी, बेटा! आहारचर्या हेतु निकलो क्योंकि देह को चलाने और संयम की रक्षा के लिए आहार करना आवश्यक है। **निर्ग्रंथ मुनिराजों के लिए श्रावक आहार नहीं देता अपितु आहार के रूप में संयम देता है**। संयम की रक्षा में सहयोगी बनता है।

गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर मुनि चन्द्रगुप्त एक दिशा की ओर नियम लेकर निकले कि मैं इस दिशा में जाऊँगा, अगर मुझे कोई आहार देनेवाला मिलेगा, मेरी विधि मिलेगी, तो ग्रहण करूँगा

अन्यथा लौटकर आ जाऊँगा। जब वे निकले तो उस दिशा में तो चारों तरफ जंगल ही जंगल था। उन्होंने देखा, यहाँ कुछ भी नहीं तो वे लौट आये गुरु चरणों में। अगले दिन गुरु ने पुनः आज्ञा दी जाओ बेटा! आज दूसरी दिशा में जाना। मुनि चन्द्रगुप्त गुरु के कहे अनुसार आहारचर्या के लिये दूसरी दिशा में निकले। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक बहुत अच्छा सुंदर नगर बसा हुआ है और भोजनपान सब कुछ रखा हुआ है लेकिन देनेवाला कोई नहीं है।

कोई सामान्यजन हों तो सोचें यह तो बहुत अच्छा अवसर है, बढ़िया है, यहाँ कोई दिखायी भी नहीं दे रहा है, आराम से खूब छक करके खाओ-पिओ मस्त रहो। लेकिन वे दिगंबर मुनिराज थे। दिगंबर साधु की यह चर्या होती है कि वे बिना किसी के दिये कुछ लेते नहीं हैं। चन्द्रगुप्त मुनि पुनः लौटकर आ गये। गुरुदेव से जाकर सब कह दिया कि गुरुदेव मैं दूसरी दिशा की ओर गया था। वहाँ बस्ती थी भोजनपान रखा हुआ था लेकिन वहाँ देनेवाला कोई न था। गुरु बोले–अच्छा बेटा।

तीसरे दिन फिर गुरु ने आज्ञा दी। बेटा! आज तीसरी दिशा में जाना। चन्द्रगुप्त तीसरी दिशा में गये। उन्होंने देखा कि नगर बसा हुआ है और आहारदान के लिये एक श्राविका बाहर पड़गाहन के लिये खड़ी है।

ध्यान रखना, निर्ग्रंथ मुनिराज अकेली महिला से कभी नहीं पड़गते। मैं देखता हूँ कभी-कभी अकेली महिला पड़गाहन कर रही है। मैं देखकर आगे बढ़ जाता हूँ। क्यों? क्योंकि अकेली महिला से मुनिराज कभी पड़गते नहीं हैं। जिसमें मैं तो अकेली महिला क्या, अगर महिलायें महिलायें ही पड़गाहन करने के लिये खड़ी हों तो भी नहीं पड़गता हूँ जब तक कि चौके में कोई पुरुष न हो। मुनि चन्द्रगुप्त तुरंत लौटकर आ गये और गुरुदेव से कहा–गुरुदेव! आज बस्ती भी थी लेकिन पड़गाहन के लिये एक अकेली श्राविका खड़ी थी, इसलिए मैं लौटकर आ गया।

गुरुदेव ने चौथे दिन पुनः आज्ञा दी, जाओ बेटा! आज इस दिशा में जाना। चन्द्रगुप्त मुनि उस दिशा में गये। देखा, ओ हो! कितना स्वच्छ सुंदर नगर बसा हुआ है। पड़गाहन करनेवालों की तो लाइन (Line) लगी हुई है। जैसे ही मुनिराज गये उनका पड़गाहन हुआ और निरंतराय आहार हुआ। मुनिवर लौटकर आये और बोले–गुरुदेव! इस दिशा में तो बड़े उत्तम श्रावक रहते

हैं जिनके रूप, रंग, सौन्दर्य को देख आश्चर्य होता है और बड़े भक्तिवान भी हैं। आज निरंतराय आहार हुये गुरुदेव!

इसप्रकार चन्द्रगुप्त मुनिराज की परिचर्या ऐसे ही होती रही। आचार्य भगवन् भद्रबाहु स्वामी की समाधि हो गई। धीरे-धीरे बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया। जो संघ आगे निकल गया था बारह वर्ष बाद वह संघ लौटकर आया। उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ पर मुनि चन्द्रगुप्त विराजमान थे। उन्हें देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। मुनिसंघ तो यह सोच रहा था कि गुरु की समाधि हो गई होगी साथ शिष्य की भी। क्योंकि इतने समय में यहाँ जंगल में मंगल करनेवाला कोई है ही नहीं।

लेकिन ध्यान रखना, 'जहाँ साधु होता है वहाँ जंगल में भी मंगल होता है।' चन्द्रगुप्त मुनिराज के पास संघ लौटकर आया, और कहा-तुम अभी तक मुनिपद पर हो। यहाँ कहीं कोई आहार देनेवाला तो दिखायी नहीं देता। मुनिराज चन्द्रगुप्त बोले- आहार देनेवाला दिखाई देगा, आप लोग शुद्धि कीजिये। मुनिराजों ने शुद्धि की और आहारचर्या के लिये निकले तो देखा कि एक बहुत विशाल बस्ती है नगरी है और हे स्वामिन्! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु, अत्र-अत्र तिष्ठ तिष्ठ पड़गाहन की आवाजें आ रही हैं। इतना विशाल संघ और इतने श्रावक पड़गाहन करने के लिये खड़े हैं यह देख सभी साधु आश्चर्य में पड़ गये। सभी का निरंतराय आहार हुआ। आहार करके वे सब योग्य स्थान पर आ गये।

ऐसा कहते हैं कि एक मुनिराज का कमण्डलु वहीं छूट गया। इसलिये मैं तो तुरंत कहता हूँ, भाई! हमारा कमण्डलु कहाँ है? साथ में लाओ। अरे! लौटना नहीं पड़े अपने को।

जिन मुनिराज का कमण्डलु छूट गया वे जब लेने गये तो देखा, जहाँ पर एक विशाल नगरी बसी थी वहाँ तो अब कुछ भी नहीं है। चारों तरफ जंगल ही जंगल दिखायी दे रहा है। और देखा कि एक स्थान पर कमण्डलु रखा हुआ है। वे मुनिराज आश्चर्य में पड़ गये अभी तो इतने श्रावक थे। इतनी विशाल नगरी थी। सुंदर-सुंदर मार्ग थे। और अब यहाँ पर कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा। मात्र कमण्डलु रखा है। उन्होंने उठाया अपना कमण्डलु और चल दिये। आकर तुरंत संघ के लिये बताया-जहाँ संघ की आहारचर्या हुई थी उस स्थान पर अब कोई नगरी नहीं है। सब नगरी गायब हो गई। अब वहाँ न कोई श्रावक, न कोई घर, न कोई बाग-बगीचा। सब गायब

हो गया। जिसने भी यह सुना वे सब वहाँ देखने के लिये पहुँचे। लेकिन उन्हें भी वहाँ कुछ न मिला। सब एक-दूसरे को देखने लगे। सब आश्चर्य में पड़ गये। अरे! ये क्या मामला है? लेकिन बात समझते देर न लगी कि यह सब मुनि चन्द्रगुप्त के पुण्य के प्रताप से था। मुनिराज चन्द्रगुप्त का पुण्य विशिष्ट था। जंगल में जहाँ उनको आहार करानेवाला कोई न था, वहाँ उनकी आहारचर्या करवाने स्वर्ग के देवगण उतर आये। उन्होंने आकर नगरी बसा दी और श्रावक बनकर उन्हें आहार दिया।

निर्ग्रंथ मुनिराज एक श्रावक से तो आहार ले सकते हैं लेकिन देवताओं से आहार नहीं लेते। सभी मुनिराजों को आश्चर्य हुआ, अहो! निर्ग्रंथ मुनिराजों की चर्या देवताओं ने करा दी। ओ हो! यह उत्कृष्ट पुण्य भी देखो। समस्त साधुवृन्द चन्द्रगुप्त की श्रद्धा-भक्ति देख अत्यंत प्रसन्न हुये। लेकिन देवताओं ने आहार दिया है तो चर्या में दोष लगा है इसलिये सभी ने प्रायश्चित स्वीकार किया।

संघ लौटकर उत्तर भारत की ओर आया। उन साधुओं को देखा जिनको छोड़कर गये थे। वे दिगंबर की जगह वस्त्रधारी हो चुके थे।

आचार्य भगवन् चन्द्रगुप्त स्वामी जिनका विशाखाचार्य नाम था उन्होंने समझाया कि जो हुआ सो हुआ। 'सुबह का भूला अगर शाम को घर लौट आये तो उसे भूला नहीं कहते' इसलिये कोई बात नहीं आपकी दीक्षा तो समाप्त हो चुकी है इतना जरूर है अगर आप अपनी आत्मा का हित करना चाहते हैं तो पुनः दीक्षित होकर मोक्षमार्ग को स्वीकार करो।

लेकिन उन साधुओं में अब तक पूरी तरह से स्वच्छंदता आ चुकी थी। उन्होंने विशाखाचार्य के अनुसार चलने से मना कर दिया और कहा कि हम अब भी साधु ही हैं मुनिराज ही हैं। **आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं कि 'वस्त्रधारी कभी दिगंबर साधु, मुनिराज, निर्ग्रंथ साधु नहीं हो सकता। जिनमार्गी नहीं हो सकता। फिर भी जो अपने आप को साधु कहता है, वह मतिश्रुत ज्ञान के बल से स्वच्छंद बोलता है। वह मिथ्यात्व का ही पोषक कहलायेगा। सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता।**

धीरे-धीरे कुछ और परिवर्तन हुए। किसी ने मुख पर पट्टी बाँधनी शुरु कर दी। तीर्थंकर भगवान की पूजन का निषेध कर दिया। कहने लगे-तीर्थंकर देव, जिनेन्द्र देव की पूजन नहीं

करना चाहिये। उनसे पूछा गया–क्यों नहीं करना चाहिये? बोले–तीर्थंकर पूजन करते थे क्या? क्या तर्क दिया? तीर्थंकरों ने कभी पूजा की क्या? अहो! भूल कर दी। अपनी तुलना तीर्थंकरों से कर दी। तीर्थंकरों से कभी किसी की तुलना नहीं की जा सकती। इस संसार में सबसे उत्कृष्ट पुण्य तीर्थंकरों का होता है। स्वयंबुद्ध, स्वयंभू ऐसे वे तीर्थंकर किसी के सामने झुकते नहीं। किसी की पूजा नहीं करते। लेकिन सिद्धों की आराधना करते हैं।

तीर्थंकर पूजा नहीं करते थे इसलिये हमें भी पूजा नहीं करना चाहिये ऐसे स्वच्छंद लोग तीर्थंकर भगवान के उपदेश को भूल गये। तीर्थंकर भगवान का उपदेश है, श्रावक को जिनेन्द्र देव की पूजन अवश्य करनी चाहिये। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं कि जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छंद बोलता है वह सम्यग्दृष्टि नहीं है उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। वह जिनमार्ग से बाह्य है। इसलिए बंधुओ! ध्यान रखना, ये पंचमकाल है और इस पंचमकाल में अपने को अनेकों प्रकार के जीव देखने को मिलेंगे।

चन्द्रगुप्त ने सोलह स्वप्न देखे थे। उन सोलह स्वप्नों में एक स्वप्न था अनेक छिद्र सहित चन्द्रमा। उन्होंने अपने गुरुदेव भद्रबाहु से पूछा, भगवन्! इस स्वप्न का क्या फल है? आचार्य भगवन् बोले– बेटा! अब इस पंचमकाल में एक जिनधर्म रूपी चन्द्रमा में अनेकों मत रूपी छिद्र उभर आयेंगे। यानि एक जिनमत में अब अनेकों मत प्रकट हो जायेंगे, पंथ बन जायेंगे। और सब अज्ञानता के कारण अपने-अपने मार्ग का, मत का, पंथ का पोषण करेंगे।

बंधुओ! जैनमत में एक पंथ चलता है, तारण पंथ। इस पंथ में जिनेन्द्रदेव के मंदिर नहीं होते। यद्यपि चैत्यालय बनाते हैं परन्तु जिनेन्द्र देव की प्रतिमा विराजमान नहीं करते। जिनप्रतिमा क्यों विराजमान नहीं करते, इसका सम्यक् समाधान प्राप्त नहीं होता। जबकि जिनप्रतिमा का निषेध करने से अकृत्रिम जिन चैत्य-चैत्यालय के निषेध का भारी दोष प्राप्त होता है। चैत्यालय में वेदी पर तारणस्वामी के चौदह शास्त्र विराजमान करते हैं किन्तु मूल जिनागम विराजमान नहीं करते। यद्यपि स्वाध्याय मूल जिनागम का भी करते हैं किन्तु मूल जिनागम का वह बहुमान नहीं जो तारणस्वामी कृत ग्रंथों का है। जबकि इस काल में मूल ग्रंथों के बिना अन्य ग्रंथों का लेखन संभव ही नहीं है। ऐसा करने से इनकी श्रद्धा जिनेन्द्रदेव में कम तारणस्वामी में ज्यादा झलकती है। इस पंथ के अनुयायी द्रव्यपूजा नहीं करते, भावपूजा करते हैं। जबकि जिनेन्द्रदेव ने श्रावक को द्रव्य-भावपूर्वक दान-पूजा करने का उपदेश दिया है। ऐसी परम्परा क्यों है?

इसका कोई उचित समाधान नहीं मिलता। यदि इस पंथ के अनुयायी जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापित कर द्रव्यपूजा करते हुए मूल जिनागम परम्परा का पालन करें, तो यह मानव जीवन सफल हो। यहाँ कोई प्रश्न करे - जिन प्रतिमा पूजा का लोप करने पर दोष होता है, ऐसा कोई जिनागम में प्रमाण प्राप्त होता है क्या?

तत्त्वार्थसार ग्रंथ में कहा है—

तपस्वी गुरुचैत्यानां पूजा लोप प्रवर्तनम्।।55-4।।

अर्थात् तपस्वी, गुरु और जिनप्रतिमाओं की पूजा न करने की प्रवृत्ति चलाना अंतराय कर्म के आस्रव का कारण है। यद्यपि इस पंथ के अनुयायी दिगम्बर जैन मुनियों के प्रति आस्थावान हैं। अच्छा हो जिनप्रतिमा की स्थापना कर चैत्यालय संज्ञा को सार्थक करें, क्योंकि शास्त्र का नाम चैत्य किसी भी जिनागम में नहीं आया। इस तरह की मान्यता से एक नया तारणपंथ खड़ा हो गया। तारण पंथ कहाँ से निकला? जैनमत से निकला।

वर्तमान में तेरह पंथ, बीस पंथ, उसमें भी शुद्ध तेरह पंथ, साढ़े सोलह पंथ, न जाने कितने-कितने मत मतान्तर खड़े होते चले जा रहे हैं। जबकि इन पंथों के नाम जिनागम में कहीं भी उल्लिखित नहीं है। इनकी उत्पत्ति का कारण भी परस्पर रागद्वेष, वाद-विवाद, अपने को विशिष्ट मानने-जानने रूप अहंकार है। ये सभी पंथ या मत सादि-सानिधन हैं। जबकि जिनागम पंथ यानि जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया आत्म हितकारी मार्ग अनादि-अनिधन है। ये पंथ या मत सर्वज्ञ देव के द्वारा कथित न होकर छद्मस्थ साधुओं या विद्वानों के द्वारा स्थापित किये गये हैं। इसतरह यह मत व्यक्ति विशेष के स्वचिंतन से फलते फूलते हैं और मूढ़ मिथ्यादृष्टियों के समर्थन से प्रकाश में आते हैं। फिर एक अखंड जैनसमाज में बिखराव, विघटन और विरोध पैदा करते हैं। लेकिन जो जिनागमपंथी श्रावक होते हैं, सच्चे साधु संत होते हैं वे ही इन मत-मतान्तर रूपी घुसपैठियों पर अपनी निर्भीक वाणी से प्रहार कर पाते हैं। समाज में बढ़ रहे पंथवाद को देखते हुए मैंने लिखा-

तेरह और बीस पंथ, उलझे हैं श्रावक संत,
कोई तेरा कोई बीस, करते बढ़ाई हैं।

करते हैं राग-द्वेष, जाने नहीं धर्म लेश,
मंदिरों में खींचतान, करते लड़ाई हैं।।
कर रहे धर्म लोप, मानते हैं धर्म गोप,
एक दूसरे की, अहंकार की चढ़ाई है।
तेरह बीस के बयान, जैसे हिंद पाकिस्तान,
हाय जैन एकता भी, आज लड़खड़ाई है।।

चन्द्रगुप्त ने स्वप्न देखा था कि एक जिनमत में आगे चलकर अनेक पंथ खड़े हो जायेंगे।

बंधुओ ध्यान रखना! जिनमत तो जैसा है वह वैसा ही है। न अन्य है न अन्य प्रकार से है। और ये जितने भी मत खड़े हुए हैं ये सब मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छंद बोलनेवालों के मत हैं इसलिये जीवन में सच्ची श्रद्धा लाना। और जो मत-मतान्तरों से प्रभावित होकर अर्हंत भगवान के द्वारा प्रतिपादित, जिनागम पंथ अथवा निश्चय-व्यवहार धर्म को छोड़ देता है वह निश्चित रूप से जिनमत से बाह्य हो जाता है।

इसलिये हमें जो मतिश्रुत ज्ञान प्राप्त हुआ है उसका उपयोग आगम विरुद्ध नहीं करना। हमें भले ही ज्यादा ज्ञान न हो कम भी हो तो भी चलेगा। जिनेन्द्र भगवान ने जो कहा है वह सत्य ही कहा है अगर जीव की ऐसी श्रद्धा होती है तो वह जीव सम्यग्दृष्टि होता है।

आजकल कोई-कोई मति-श्रुतज्ञान के क्षयोपशम से अपने आप को बड़ा ज्ञानी विद्वान मानकर स्वच्छंद भाषण कर रहे हैं। धार्मिक क्रियाओं का निषेध कर रहे हैं, जैसे-पूजा करते समय ठोने की कोई आवश्यकता नहीं होती।'। अरे! ठोने की आवश्यकता नहीं है तो थाली की क्या आवश्यकता है। अगर थाली की आवश्यकता है तो ठोना भी आवश्यक है। क्यों? क्योंकि यदि थाली पुष्प आदि द्रव्य क्षेपण के लिये आवश्यक होती है तो ठोना आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरण के पुष्प क्षेपण के लिये आवश्यक होता है।

इसप्रकार किसी ने इसकी कोई आवश्यकता नहीं है ऐसा कहकर ठोने का निषेध कर दिया। ये क्या हुआ? मतिश्रुत ज्ञान के बल से किया गया स्वच्छंद भाषण ही हुआ। जिनधर्म की क्रियाओं को नष्ट करना हुआ। इसलिये अज्ञानता में मत जीना। आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने समझाया है कि कभी ऐसे स्वच्छंद वचन न बोलें।

मुनिराज के उपदेश करते-करते मुख से कोई आगम विपरीत वचन निकल जाये। उदाहरण के लिए–मैं एक जगह प्रवचन कर रहा था। प्रवचन करते मुख से ऐसा निकल गया कि समाधि के समय अधिक से अधिक 38 साधुओं की आवश्यकता होती है जबकि सही वचन था 48 साधुओं की आवश्यकता पड़ती है। मैं अपने भावों से तो 48 ही बोल रहा था लेकिन मुख से 38 निकल गया। दूसरे दिन फिर प्रवचन शुरु हुआ तो पुराना विषय थोड़ा रिपीट (Repeat) किया। इस बार 48 ही बोला। यह सुन एक श्रावक खड़ा हो गया। बोला–भगवन्! कल तो आपने 38 कहा था आज 48 कह रहे हैं कल क्या कहेंगे? मैं बोला–मैं तो 48 ही बोलूँगा क्योंकि मैंने कल भी 48 ही कहा था। वह श्रावक बोला–महाराज श्री! कल तो आपने 38 ही कहा था। वहाँ और भी श्रावक श्रोता बैठे थे, वे भी बोले–महाराज! श्री आपके मुख से तो 38 ही निकला था। तब मैंने कहा– 'मैं अपना सुधार करता हूँ ये वाणी का स्खलन मात्र है। अधिकतम साधुओं की संख्या तो 48 ही है।'

इसप्रकार **यदि किसी साधु के मुख से कदाचित् छद्मस्थ होने के कारण या चूक से कोई विपरीत कथन निकल जाये और कोई आकर कहे कि गुरुदेव आगम में तो ऐसा कथन आया है तो वे मुनिराज उसी समय अपने शब्दों को वापस ले लेते हैं और जो आगम में लिखा है वही सत्य है, ऐसा वे तुरंत घोषित करते हैं तो वे सम्यग्दृष्टि बने रहते हैं।** आचार्य भगवन् नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती भी श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड में ऐसे जीव को सम्यग्दृष्टि कहते हैं–

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।27।।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है, और अज्ञानतावश गुरु के उपदेश से विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है अर्थात् अरहंतदेव का ऐसा ही उपदेश है ऐसा समझकर यदि कोई पदार्थ का विपरीत श्रद्धान भी करता है तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही है।

पुन: यदि आगम प्रमाण को स्वीकार न करके यह कहने लग जाये कि जो मैंने तुम्हें बताया है कहा है वही सत्य है तो आचार्य भगवन् श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड में कहते हैं कि वह साधु भी क्यों न हो, उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि।।28।।

गणधरादि कथित सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा भले प्रकार समझाये जाने पर भी यदि वह जीव उस पदार्थ का समीचीन श्रद्धान न करे तो वह जीव उस ही काल से मिथ्यादृष्टि हो जाता है अर्थात् आगम प्रमाण दिखाकर समीचीन पदार्थ के समझाने पर भी यदि वह जीव पूर्व में अज्ञानता से किये हुए अतत्त्वश्रद्धान को न छोड़े तो वह उसीसमय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

क्यों? क्योंकि **जो आगम प्रमाण देखकर भी अपनी बात को ही सत्य साबित करने पर तुला हुआ है अपनी बात मनवाने को आतुर है वह स्वच्छंद भाषण करता है फिर वह सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु का श्रद्धानी नहीं रह जाता। वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।**

छहढालाकार श्री दौलतराम जी ने निर्ग्रंथ मुनिराज के वचनों के विषय में कहा–

जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम रोगहर जिनके वचन मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं।।

निर्ग्रंथ गुरु के ऐसे वचन होते हैं जो **जग** अर्थात् सम्पूर्ण जगत के प्राणियों का **सुहितकर**–यानि हित करनेवाले हैं, **सब अहितहर**–जिसके माध्यम से निमित्त से संसारी प्राणियों का अहित हो रहा है ऐसे उस अहित को हरनेवाले अर्थात् मिथ्यात्व रूपी ज्वर को हरनेवाले अमृतमयी वचन होते हैं।

निर्ग्रंथ मुनिराज कहते हैं भो भव्य जीवात्माओ! मिथ्यात्व को त्यागो। असंयम को त्यागो। प्रमाद को त्यागो। कषायों को त्यागो। क्यों? क्योंकि इनसे आत्मा का अहित होता है। ध्यान रखना, मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, प्रमाद ये वो कारण हैं जिनके कारण आत्मा अनंतकाल से अपना अहित करता आ रहा है। निर्ग्रंथ मुनिराज कहते हैं कि भो भव्य आत्माओ! सम्यग्दर्शन का पालन करो। सम्यक्त्व को अपनी आत्मा में प्रगट करो। असंयम का त्याग करके संयम को धारण करो। कषाय को त्यागकर अकषाय स्वभावी आत्मा का आश्रय करो। और प्रमाद का त्यागकर अपनी आत्मा के आनंद का अनुभव करो।

निर्ग्रंथ मुनिराजों के वचन कैसे हैं? **जग सुहितकर** अर्थात् संसार के जीवों का हित करनेवाले हैं। और कैसे होते हैं? **श्रुति सुखद**-सुनने में अत्यंत सुखदायक लगते हैं। जीवन में वचनों का बड़ा महत्त्व हुआ करता है। एक वचन वे होते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति को अत्यंत कष्ट हो जाता है दुख हो जाता है पीड़ा हो जाती है और दूसरे वचन वे होते हैं जो घावों पर मल्हम की तरह कार्य करते हैं। सारे बैर-विरोधों की दीवारें गिरा देते हैं। सभी के हृदय में परस्पर प्रेम, करुणा, मैत्री और वात्सल्य के झरने बहा देते हैं।

अरिहंतों के लघुनंदन निर्ग्रंथ भगवंतों के वचन कैसे होते हैं? सदैव सुखद लगते हैं। जो भी भव्य आत्मा सुने, मनुष्य तो दूर तिर्यञ्च भी जब निर्ग्रंथों के वचनों का श्रवण करते हैं तो उन्हें भी अपूर्व सुखप्रद, शांतिप्रद लगते हैं।

अहो! भगवान महावीर का जीव जब सिंह की पर्याय में था। तिर्यञ्च पर्याय में था। उनके लिये मुनिराज का संबोधन मरुस्थल में अमृत की वर्षा जैसा लगा। भगवान पार्श्वनाथ का जीव जब वज्रघोष हाथी की पर्याय में था तब निर्ग्रंथ मुनिराज ने उन्हें संबोधित किया कि भो भव्य! तुम ये क्या करते हो? अपने पूर्वभव का स्मरण करो जिसमें तुम एक बड़े धार्मिक, सज्जन, मरुभूति के नाम से जाने जाते थे। तुम्हारे द्वारा मंत्रीपद सुशोभित होता था। लेकिन तुम्हारे ही भाई ने तुम्हारे ऊपर शिला पटक दी और तुम संक्लेश परिणामों से मरकर इस तिर्यञ्च पर्याय को प्राप्त हुये हो। अपनी आत्मा को जानो, पहचानो उसी समय वज्रघोष हाथी ने मुनिराज से अणु व्रत धारण करने का दृढ़ संकल्प लिया। अहो! आँखों से झर-झर अश्रु धारा बहने लगी। नतमस्तक, समर्पित हो गया गुरु चरणों में। इस तरह एक मुनिराज की करुणामयी दृष्टि पाकर अणुव्रतों को पालने लगा एक तिर्यञ्च।

अहो! निर्ग्रंथ भगवंतों के वचन केवल मनुष्यों के लिये नहीं अपितु प्राणीमात्र के लिये सुख-शांति प्रदान करनेवाले होते हैं। यदि निर्ग्रंथों के वचन ही सुखदायी की जगह शल्यदायी शूलदायी हो जायें तो समझ लेना कि ये वचन निर्ग्रंथ वचन नहीं हैं।

व्यवहार की बात को व्यवहारात्मक पक्ष से समझा देते हैं और निश्चय की बात को निश्चयनय की अपेक्षा से। वे निशंक योगिराज सदा अनेकान्त की भूमि पर, धरातल पर खड़े होकर सदा स्याद्वाद का सिंहनाद करते नजर आते हैं। वे सम्यग्दृष्टि निर्ग्रंथ साधक सदैव सापेक्ष कथन के द्वारा वस्तुस्वरूप को समझाते हैं। वस्तु के वास्तविक स्वरूप का यथार्थ स्वरूप का

बोध कराते हैं। क्यों? क्योंकि, यदि अपेक्षा से कथन नहीं किया गया तो श्रोता के हृदय में संशय उत्पन्न हो जाता है। यदि संशय उत्पन्न हो गया तो वे निर्ग्रंथ वचन नहीं कहला सकते क्योंकि निर्ग्रंथों के वचन तो '**सब संशय हरैं**'।

निर्ग्रंथ भगवंतों की निर्मलवाणी संशय उत्पन्न नहीं कराती अपितु अनादिकाल से हमारी आत्मा में व्याप्त भ्रमबुद्धि को, संशयों को, दूर कर देती है। यद्यपि आचार्य भगवंतों ने कहा है कि उपदेशपात्र को देना चाहिये। किसको देना चाहिये? पात्र के लिये। पात्र कौन होता है? जिसे निश्चय-व्यवहार का ज्ञान होता है वह पात्र है। क्यों? क्योंकि कब मुनिराज व्यवहार की बात कर रहे हैं कब निश्चय की। श्रोता अगर निश्चय व्यवहार का ज्ञाता होगा तो तुरंत समझ जायेगा कि यह बात मुनिवर ने व्यवहार से कही है और ये असद्भूत व्यवहार से या यह निश्चय से कही है इत्यादि। वह तुरंत ही उस विषय को सम्यक् रूप से समझ लेगा। इसलिये आचार्य भगवंतों ने कहा कि उपदेश हमेशा पात्र को ही देना चाहिये। अहो! निर्ग्रंथ मुनिराजों के वचन कभी संशय पैदा नहीं करते। वे तो- '**सब संशय हरैं**' ऐसे होते हैं।

'भ्रम रोग हर जिनके वचन'

और उनके वचन कैसे है? **भ्रम रोग हर**-मिथ्यात्व रूपी रोग को हरण करनेवाले हैं। यह जीव संसार में भ्रमण क्यों कर रहा है? मिथ्यात्व के कारण। मुनिराज के वचन कैसे होते हैं? इस मिथ्यात्व रूपी रोग को हरण करनेवाले होते हैं। और सम्यग्दर्शन से पवित्र है हृदय जिनका, उन भव्य जीवात्माओं के लिये निर्ग्रंथ साधकों के ऐसे अमृतमयी जिनवचन ऐसे लगते हैं जैसे-

मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं

जैसे साक्षात् अमृत झर रहा हो।

ध्यान रखना! यदि कोई मति-श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छंद वचन बोलने लग जाता है। मनःकल्पित बोलने लग जाता है। तो उससे श्रावकों के अंदर संशय पैदा होना शुरु हो जाता है। और यदि साधु के वचनों से संशय पैदा हो रहा हो, अश्रद्धा पैदा हो रहीं हो, समझ लेना कि अभी यह साधु सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं है।

निर्ग्रंथ साधक कभी किसी सामान्य व्यक्ति की बात को सुनकर सहसा विश्वास नहीं करते। अन्यथा क्या हो जायेगा? श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छंद बोलना शुरु हो जायेगा। निर्ग्रंथ मुनिराज

जिनवाणी के निमित्त से प्रगट, अपने निजज्ञान से सम्यक् निर्णय करते हैं और फिर जिनागम के अनुकूल वचन प्रकृति को अपनाकर स्वपर के हित में तत्पर रहते हैं।

लेकिन जो स्वमत स्वचिंतन के आधार से स्वच्छंद भाषण करते हैं। वे मिथ्यादृष्टि भगवान जिनेन्द्र के मार्गानुगामी नहीं, ऐसा जानना चाहिये। विचार करना, आजकल अनेक प्रकार से स्वच्छंद वचनों की बहुलता धीरे-धीरे होती चली जा रही है। निर्ग्रंथों से जब भी करो जिनसूत्रों पर चर्चा करो। जब भी सुनो जिनवाणी सुनो। सात तत्त्वों की बात सुनो। पाँच अस्तिकायों की बात, नौ पदार्थों की चर्चा, छह द्रव्यों का स्वरूप सुनो। निर्ग्रंथों से जब भी सुनो प्रथमानुयोग सुनो, करणानुयोग सुनो, चरणानुयोग सुनो, द्रव्यानुयोग सुनो। इसके अलावा स्वच्छंद अनुयोग मत सुनो। जिनशासन में चार ही अनुयोग हैं। और कभी स्वच्छंद वचन सुने हों तो उनकी श्रद्धा मत करो। अपने ज्ञान से भी कुछ निर्णय करना सीखो।

भगवान महावीर ने समवशरण सभा में उपदेश दिया लेकिन उन्होंने ये नहीं कहा कि जो मैंने बताया तुम आँखे बंद करके उसे स्वीकार लो अपितु उन्होंने आज्ञा दी कि तुम अपने सम्यग्ज्ञान की कसौटी पर कसकर उन्हें स्वीकार करो यानि अपना भी कुछ उपयोग लगाओ। इसलिये कहा गया- आगम श्रद्धान, युक्ति श्रद्धान और स्वानुभव श्रद्धान। अपने अनुभव से भी कुछ जानो। ऐसा करने से स्वच्छंद कथन स्वत: ही छूट जायेगा और जिनसूत्र जीवनसूत्र बन जायेंगे। इसलिये आपके पास जो मतिश्रुतज्ञान है उसका सदुपयोग करके जीवन का उत्थान करो।

श्रुतज्ञान को कैवल्यज्ञान का बीज कहा है। अगर भावश्रुतज्ञान निज शुद्धात्मारूपी भूमि में वपन किया जायेगा तो ही कैवल्यज्ञान रूपी वृक्ष की प्राप्ति होगी अन्यथा स्वच्छंद वाणी रूपी भूमि में डालकर संसार की दुखमय बेलें ही वृद्धिंगत होंगी। फिर श्रुतज्ञान का दुरुपयोग दुर्गति रूप में ही फलित होगा। मिथ्यात्व का ही बीज बनेगा।

जिनागमवाणी जीवन में साधुता लाती है। साधु बनाती है। और स्वच्छंद वाणी स्वच्छंद साधु बनाती है। जीवन को लघुता और पतन के मार्ग पर ले जाती है। इस प्रकार आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने यह समझाया कि सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव के वचनों में क्या अंतर होता है। उनकी पहचान हम सबके लिये बतलाई।

बंधुओ! कभी आगम प्रमाण की अवहेलना नहीं करना चाहिये। अन्यथा तुम्हारा वह मति-श्रुतज्ञान जो तुम्हारे लिये कर्म निर्जरा में कारण है। मोक्षमार्ग का साधन है। वह मिथ्यात्व के साथ संसार का कारण बन जायेगा। दुर्गति में भटकाने का कारण, दुख का कारण बन जायेगा। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने यहाँ पर श्रावक और श्रमण दोनों को संबोधित करते हुए कहा- कभी भी आगम विरुद्ध वचन मत बोलना। वाणी में सदैव जिनवाणी हो। स्वच्छंद वाणी न हो।

आपने साधु की आँख देखी क्या कभी? आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने साधुओं की चर्म की आँख को साधू की आँख नहीं कहा। श्री प्रवचनसार जी में आचार्य भगवन् कहते हैं-

'आगम चक्खु साहू'

साधु की आँख क्या है? आगम है, शास्त्र है, जिनवाणी है अर्थात् निर्ग्रंथ साधकों को आगम के अनुसार ही अपनी दृष्टि बनाना चाहिये। जिनागम में जो कहा गया है उसके अनुसार अपनी चर्या बनानी चाहिये, साधना करनी चाहिये।

अगर कोई आगम विरुद्ध चर्या करता है तो अपना ही अहित करता है। अपने ही संयमभाव से धर्ममार्ग से च्युत होता है। सोनू भैया! शाम को तुम्हीं पूछ रहे थे न कि महाराजश्री! पंखा चलाने में क्या दोष है? क्या आगम में इस विषय में कुछ कहा गया है? भैया! जब आगम बना था न, तब ये पंखा नहीं चलता था। लेकिन आगम में मुनिराजों के लिये षट्काय के जीवों की रक्षा करने को कहा है अर्थात् मुनिजन, संतजन षट्काय के जीवों की रक्षा करते हैं। षट्काय यानि पाँच स्थावर- पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पति तथा एक त्रसकाय-दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इन छहकाय के जीवों की रक्षा करना साधु के प्राणि संयम के अन्तर्गत आता है। प्राणि संयम कहलाता है। और अगर पंखा चलायेंगे तो वायुकायिक जीवों की विराधना होगी तब उसका दोष साधू को लगेगा। उनके संयम में दोष आयेगा इसलिये साधुजन इन सबसे दूर रहते हैं। क्योंकि संयम की रक्षा करना ही साधु का धर्म है।

यदि साधु मति-श्रुतज्ञान के बल से अपनी कमजोरी को पंचमकाल का हवाला देकर कहने लग जायें कि भैया! ये तो पंचमकाल है और इस पंचमकाल में इतना तो चलता है। तो ध्यान रखना, साधु चाहे चतुर्थकाल का हो या पंचमकाल का। उनके मूलगुणों में कभी कोई

परिवर्तन नहीं आता। जो मूलगुण चतुर्थकाल में साधु पालते हैं वे ही मूलगुण पंचमकाल में साधुओं के होते हैं।

पंचमकाल का साधु विशेष उत्कृष्ट तपस्या नहीं कर सकता। वह आतापन योग, अभ्रावकाश योग, वृक्षमूलयोग आदि रूप विशिष्ट तप नहीं कर सकता, यह आगम की आज्ञा है। ये साधुजन उत्कृष्ट तप की धुरा को धारण नहीं कर सकते, ऐसा शब्द जिनागम में आया हुआ है। उत्कृष्ट तप नहीं कर सकते, तो मत जाओ पहाड़ों पर तपस्या करने, मत जाओ शीत ऋतु में नदिया के किनारे तप करने, मत लगाओ वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान, मत करो वर्षा ऋतु में चार माह का योग धारण (यानि चातुर्मास काल पर्यन्त साधुजन एक स्थान पर रहकर अपनी साधना किया करते थे) आज आप इतना उत्कृष्ट तप करने में समर्थ नहीं हो तो मत करो। लेकिन वसतिका में रहकर तुम शक्तितः तप का पालन करते हो, अपने मूलगुणों का पालन करते हो, तो भी तुम उत्कृष्ट तपस्वी हो, श्रेष्ठ साधक ही हो। और तुम्हारी विशिष्ट निर्जरा ही होगी। लेकिन ये मत कह देना कि पंचमकाल है। अब इतना तो सब चलता है अपितु यह कहना, अहो! निर्ग्रन्थ साधु की वीर चर्या को जानता हुआ भी मैं आहार, विहार, समिति पालन आदि में कदाचित दोष को प्राप्त हो जाता हूँ। जैसा भी है वैसा अपराध-बोध हो। अपनी कमजोरी को कमजोरी कहो। उसे राजमार्ग मत बना दो। अगर आज तुमने उसको राजमार्ग बना दिया तो पीछे आनेवाले जितने भी साधु हैं, वे सब भी उसी का अनुसरण करने लग जायेंगे। क्योंकि सुखशीलता कौन नहीं चाहता?

इसलिये आगम कथित मार्ग को, मोक्षमार्ग को, जो कभी भी किसी के द्वारा अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। कोई भी जिसके ऊपर प्रश्नचिन्ह खड़ा नहीं कर सकता। उसे ऐसा मार्ग मत बना देना जिससे उसपर प्रश्न चिन्ह खड़ा हो जाये।

अपनी कमजोरी को कमजोरी कह देना। इसमें तुम्हारा सम्मान रह जायेगा। बहुमान हो जायेगा। क्योंकि तुम सत्यधर्म का पालन कर रहे हो। सत्यधर्म को, मार्ग को मलिन नहीं कर रहे हो। लेकिन अपनी कमजोरी के लिये आगम द्वारा प्रमाणित मत कर देना। यदि आगम से प्रमाणित कर दिया तो तुमने मोक्षमार्ग का ही नाश कर दिया। क्योंकि मोक्षमार्ग में दोषपूर्ण परिचर्या नहीं कही गई है।

कहने का तात्पर्य यह है श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह साधु सेवा करे। साधुजन की निर्विघ्न साधना में सहयोगी की भूमिका निभाये, यह श्रावक का धर्म है। हमारे संघ में पंखा नहीं चलता तो तुम सेवा करने आ जाते हो कि नहीं? और अगर चलता होता तो क्या तुम सेवा करने आते? फिर तुम क्या कहते, अब सब साधन हैं तो, इससे तुम्हारे अंदर धर्मपालन का, सेवा करने का, निर्मल मोक्षमार्ग के पथिकों के प्रति अनुराग का भाव जाग्रत नहीं हो पाता। साधुओं की सेवा से तुम्हें भी पुण्य लाभ होता है। वैयावृत्ति का भाव भी हिलोरें मारता है और इस तरह श्रावक और साधु दोनों ही निर्बाध रूप से मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ते जाते हैं। जिनाज्ञा का पालन श्रमण व श्रावक दोनों को ही कल्याण के पथ पर आगे बढ़ाता है। जीवन को सुखमय शांतिमय बनाता है अब अपना समय हो चुका है।

कहने का तात्पर्य यह है मति–श्रुतज्ञान के बल से कभी स्वच्छंद भाषण मत करना। यदि तुमने स्वच्छंद भाषण कर दिया तो तुम मिथ्यादृष्टि हो। भले ही तुम जैनधर्म के अनुयायी हो। जैनकुल में जन्मे हो। जैनधर्म को जाननेवाले हो। भले ही तुम जैन कुलाचार का पालन भी क्यों न करते हो। अगर तुमने आगम विरुद्ध कोई भी वचन कह दिया और स्वच्छंदता अपना ली, तो ध्यान रखना, तुम सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते। मिथ्यादृष्टि ही रहोगे। मिथ्यामार्गी ही रहोगे। कभी मोक्षमार्गी नहीं हो सकते।

जो कोई मति श्रुत ज्ञानी, बोले गर स्वछंद वाणी।
मिथ्यादृष्टि कहलाता, है यह कुन्दकुन्द - वाणी।।
जिनमार्गी का, हो-हो-2, नहिं वचन कहाये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 4

(प्रथम प्रवचन)

●

सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है

06.08.2013

भिण्ड

(मोक्ष का मूल)

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छयववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-महारुक्खमूलं**) मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल (**सम्मत्त-रयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छय-ववहार-सरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेदवाला (**जाणिज्जदि**) जाना जाता है।

अर्थ-मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन रत्न ही सारभूत है, ऐसा कहा गया है। वह सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन रूप से दो भेदवाला जाना जाता है।

(1) रत्नशौकीन राजा और उत्तम रत्न लिये जौहरी।

(2) सम्राट को सम्यक्त्वरत्न से परिचय कराते मुनिराज।

(3) परम वीतरागी मुनिराज के साथ वैरागी सम्राट।

(4) भगवती जिनदीक्षा उपरान्त निजानंद रस लीन नवोदित मुनिराज।

6

रयणोदय

सम्यग्दर्शन सार कहा, शिवतरु का आधार कहा।
यह सम्यग्दर्शन भैया, निश्चय व व्यवहार कहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, रत्नों को पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

एक सम्राट था। वह रत्नों का शौकीन था। नगर में जितने भी जौहरी थे सभी के लिए सम्राट ने आदेश दे रखा था कि जब भी आप लोगों के पास श्रेष्ठ से श्रेष्ठ, उत्तम से उत्तम रत्न उपलब्ध हों तो आप उन्हें लेकर राजदरबार में उपस्थित हों। श्रेष्ठ लोग श्रेष्ठ वस्तु को ही स्वीकारते हैं और क्षुद्र लोग क्षुद्र वस्तु में ही संतुष्ट रहते हैं।

यदि कोई व्यक्ति श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ है तो उसे अपने श्रेष्ठ कुल का आचरण ही अच्छा लगता है और यदि कोई निम्न कुल में पैदा हुआ है तो वह अपने घर-परिवार, कुटुंब में जैसा आचरण देखता आया है उसे वैसा ही आचरण रुचिकर लगता है। कदाचित् निम्न कुल में जन्म लेनेवाले को पुण्योदय से श्रेष्ठ कुलवालों का संग मिल गया, उनके बीच उठने-बैठने का अवसर मिल गया, तो वह भी कदाचित् कभी श्रेष्ठ वस्तु- श्रेष्ठ आचरण की चाह करने लग जाता है कहते हैं ना- 'जैसी संगत वैसी रंगत'।

यद्यपि ऐसे जीव बहुत विरले हैं जो निम्न कुल में जन्मे हों और श्रेष्ठ कुल की, श्रेष्ठ वस्तु की, श्रेष्ठ आचरण की, चाह पैदा कर पाते हों। अन्यथा जो जिस वातावरण में जन्मा है, रहता है और जिसने बचपन से जो वातावरण देखा है धीरे-धीरे उसके जीवन में वैसा ही व्यवहार, वैसा ही आचरण, वैसे ही संस्कार आते चले जाते हैं।

सुना है एक मछुआरा (धीवर) था। वह रोज अपने हाथ में जाल ले कर समुद्र तट पर जाता था। जाल फैलाता और मछलियों को पकड़ता था। इसतरह अपना जीवनयापन करता था। उसने अभी तक अपने घर-परिवार में केवल मछली पकड़ना ही देखा था। उसी से अपने परिवार का भरण-पोषण निर्वाह करना सीखा था। विचार करना, वह धीवर रोज समुद्र पर जाता है। समुद्र तट पर पहुँचता है। और समुद्र तट पर जाकर मछलियाँ तो पकड़ता है लेकिन समुद्र में रहनेवाले एक भी रत्न को ग्रहण नहीं कर पाता। क्यों? क्योंकि उसने समुद्र में रहनेवाले रत्नों को जाना ही नहीं, पहचाना ही नहीं। उसने तो अपने परिवार में यही देखा था कि वहाँ जाकर मछलियाँ पकड़ना चाहिये।

एक दिन की बात है। वह धीवर समुद्र तट पर पहुँचा। लेकिन वह अपने जीवन निर्वाह के लिये कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका। जो जीव अपने सुख के लिये अन्य प्राणियों को दुख पहुँचाता है वह कभी सुखी नहीं हो सकता। यह जीव क्षणमात्र के इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति के लिये कितने जीवों को मौत के घाट उतरवा देता है। इसका उसे स्वयं ज्ञान नहीं होगा। संसार में जितने भी कत्लखाने खुले हैं इन जिह्वा लोलुपियों की देन है। न जाने कितने असहाय निर्बल तिर्यञ्च जीवों को क्षणमात्र में दर्दनाक अमानवीय दिल दहला देनेवाले ढंग से निर्दयी क्रूर जीवों के द्वारा मारा जाता है। **धिक्कार हो ऐसे माँस भक्षियों को जो दूसरे प्राणियों के प्राण लेकर आनंद मनाते हैं। उनके रक्त से अपनी रसना इन्द्रिय को तृप्त करते हैं।** ऐसे भी जीव

हैं इस संसार में जिन्हें मानव कहने में भी शर्म महसूस हो। जिन्हें देखकर मानवता भी रो पड़े। जो जिंदा जानवरों के माँस के शौकीन हैं। ऐसे विषय भोगी, माँस भक्षी, वास्तव में धर्म भक्षी होते हैं।

इस संसार में कर्म किसी को नहीं छोड़ते, चाहे वे तीर्थंकर जैसी महान आत्माएँ ही क्यों न हों। जो जैसी करनी करता है, उसे उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। भगवान महावीर ने बताया कि संसार में रहते हुए जीवन कैसे जियें। उन्होंने जीने की कला सिखाते हुये एक सूत्र दिया '**जिओ और जीने दो**'। जितनी प्यारी हमें अपनी जान होती है उतने ही प्यारे हर प्राणी के लिये अपने प्राण होते हैं। इस संसार में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों को समान रूप से जीने का अधिकार है। इस संसार में रहते हुए हमारा अन्य जीवों के साथ कैसा व्यवहार हो? इसके उत्तर में आचार्य भगवन् कहते हैं–'**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' सभी जीव एक दूसरे का उपकार करते हुए जीवन जियें, न कि असहाय निर्बल जीवों पर अत्याचार करते हुए। आचार्य भगवन् कहते हैं–

मत मारो बुध भूलकर, लघु से भी लघु जीव।
वह ही उज्जवल मार्ग है, जिसमें दया अतीव।।

सदाचरण की यह शिक्षा, धर्म का ज्ञान, उच्च कुलों में सिखाया जाता है। निम्नकुल में जन्मा वह धीवर इन सबसे अनजान था। दिन भर प्रयास करने के बाद भी जब उसे कुछ न मिला, तो वह समुद्रतट से लौट आया। रास्ते में उसकी मुलाकात एक पुराने मित्र से हो गई। उसका वह मित्र जाति से माली था। बागवानी करता था। उसने अपने गृहक्षेत्र में बहुत अच्छे-अच्छे पौधे लगा रखे थे। जिनमें बहुत ही सुगंधित पुष्प खिला करते थे। वह बागवान जो उसका मित्र था उसने कहा–भो मित्र! आज तुम इतने निराश क्यों नजर आ रहे हो? उसने कहा–क्या करूँ, आज समुद्रतट पर गया था, कुछ भी न मिला। घर जाऊँगा तो पत्नी नाराज होगी। इसी उधेड़बुन में हूँ। करूँ तो क्या करूँ? उसका मित्र बोला– अच्छा चलो एक काम करते हैं आज तुम मेरे घर चलो। भोजन और रात्रि विश्राम वहीं करना। बहुत दिन हो गये मिल बैठकर दो बातें नहीं हुईं। यह अच्छा अवसर है। बागवान मित्र उस धीवर को अपने घर ले गया। घर ले जाकर उसे बड़ी आत्मीयता के साथ भोजन कराया और रात्रि विश्राम के लिये सुंदर व्यवस्था कर दी। जैसे ही रात्रि हुई धीवर शयनकक्ष में पहुँचा। उस माली मित्र ने उसके पास जो था अपने मित्र को दे दिया।

बागवान के पास क्या होंगे? फूल थे। सुंदर-सुंदर सुगंधित पुष्प उस माली मित्र ने धीवर के लिये सिरहाने लगा दिये और कहा-मित्र! अब तुम विश्राम करो। सुबह पुनः मिलते हैं। वह धीवर बोला-ठीक है मित्र और जाकर अपने स्थान पर लेट गया। वह थका हुआ तो था लेकिन आश्चर्य की बात थी कि जितनी रात्रि बढ़ रही थी उसकी आँखों से निद्रा दूर होती चली जा रही थी।

उसे नींद नहीं आ रही थी। वह शयनकक्ष से बाहर निकला और इधर-उधर घूमने लगा। किसी के चलने की आहट सुन उस माली मित्र की नींद खुल गई। वह सोचने लगा इतनी रात गये ये किसके चलने की आवाज आ रही है। कहीं कोई घुस तो नहीं आया। चलो उठकर देखते हैं। जैसे ही उसने कमरे का दरवाजा खोला तो देखा सामने ही उसका मित्र टहल रहा है। उसने कहा- भो मित्र! क्या बात है कोई परेशानी है क्या? आपको नींद नहीं आ रही है? धीवर ने कहा-मुझे नींद इसलिए नहीं आ रही क्योंकि कमरे में बदबू बहुत है।

मित्र ने कहा- बदबू, मैंने तो तुम्हारे स्वागत में तुम्हारी शय्या के सिरहाने से सुंदर और सुगंधित पुष्प रखे थे। और आप कहते हो कि मुझे बदबू के कारण नींद नहीं आ रही है। उसने पूछा- तुम्हीं बताओ कि क्या उपाय किया जाये जिससे तुम्हें नींद आ जाये। धीवर बोला- मित्र! एक बात बताओ, मैं जो अपने साथ मछली पकड़ने वाला जाल और टोकरी लाया था वह तुमने कहाँ रख दिया है? मित्र ने कहा- वह तो मैंने दरवाजे के पास बाहर रख दिया है। वह धीवर तुरंत जाता है अपनी टोकरी और जाल लाता है। फूलों को हटाकर अपने सिरहाने उस टोकरी और जाल को रखकर लेट जाता है। और जैसे ही लेटता है उसे तुरंत ही नींद आ जाती है। वह खर्राटे लेने लगता है।

माली मित्र यह सब देख रहा था। वह मन में विचार करने लगा, जो व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसे उसी में अच्छा लगता है। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं उन्हें श्रेष्ठ वस्तु अच्छी लगती है। और क्षुद्र व्यक्तियों को क्षुद्र वस्तु ही भाती है। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश ग्रंथ में कहते हैं-

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिं।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।।43।।

अर्थात् जो जीव जहाँ जिस वातावरण परिवेश में रहता है, वह वहाँ से फिर नहीं जाता। चाहे ज्ञानी हो या अज्ञानी।

वह मित्र सोचने लगा कि कहाँ तो ये फूलों की सुगंध जो मेरे मित्र को अच्छी नहीं लग रही और कहाँ ये जाल जिसमें से मछलियों की दुर्गंध आ रही है वह इसे अच्छी लग रही है। ज्ञानी गुरु कहते हैं कि यही दशा हम सभी संसारी जीवों की है। उनके लिये क्षुद्र वस्तुएँ, क्षुद्र पदार्थ, पाँच इन्द्रियों के विषयभोग ये तो अच्छे लगते हैं लेकिन शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञायक भगवान आत्मा में रुचि नहीं लगती। अपने आप में उपयोग नहीं जाता। किंतु जिस दिन इसकी रुचि अपनी आत्मा में हो गई उस दिन यह जीव परद्रव्यों से उपयोग हटाकर निज आत्मस्वरूप के यथार्थ ज्ञानपूर्वक श्रद्धानपूर्वक सम्यग्दृष्टि इस अवस्था को प्राप्त हो जाएगा। छहढाला ग्रंथ में श्री दौलतराम जी निश्चय सम्यग्दर्शन की परिभाषा बतलाते हुए कहते हैं-

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।

अनादिकाल से इस जीव में पर की ओर आकर्षित होने के संस्कार पड़े हुए हैं। परपदार्थों में बुद्धि के कारण पर में ही रुचि बनी रहती है। संसार अवस्था में यह जीव जिस वातावरण में रहता है उसे वही वस्तु अच्छी लगने लग जाती है। यदि कभी संतों का सान्निध्य ले, सत्संग का अवसर मिले, जिनवचन रूपी अमृत का रसपान करने को मिले, शास्त्रसभा में बैठने को मिले, तो धीरे-धीरे भगवान जिनेन्द्र की वाणी अत्यंत रुचिकर लगने लग जायेगी। सत्संगति के विषय में कहते हैं-

पुण्यात्मा को स्वर्ग में, ले जाता जो धर्म।
मिलता वह सत्संग से, करके उत्तम कर्म।।

यदि आप कुसंगति में रहें, संसारी जीवों की संगति में रहें, गप्पबाजों के साथ बैठें तो आपको उनके साथ गप्पबाजी में ही आनंद आयेगा। वही रुचिकर, प्रिय, अच्छा लगेगा। क्यों? क्योंकि वातावरण ही वैसा है। श्रेष्ठ पुरुष श्रेष्ठ की चाहना करते हैं और क्षुद्र मनुष्य क्षुद्र विषय-वासनाओं में जीते हैं।

वह जो सम्राट था, उसने सभी जौहरियों के लिये कहा कि आप लोगों के पास जो भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रत्न आये उसे लेकर आप राजदरबार में आइयेगा। आपके लिये उसका उचित मूल्य प्रदान किया जायेगा। जौहरियों को और क्या चाहिये था। अगर किसी व्यापारी के लिये स्थायी ग्राहक मिल जाये और वह भी सम्राट के रूप में, तो उनके तो वारे न्यारे हैं। सभी जौहरी सम्राट

के मुख से ऐसा आदेश सुनकर हर्षित हो उठे। अब जैसे ही कोई नया रत्न आता वे उसे लेकर तुरंत राजदरबार पहुँच जाते। उस रत्न के बदले में सम्राट उन्हें मुँहमाँगा धन देता और प्रसन्न करके उनको वापस लौटाता। नगर में अब यह चर्चा चारों ओर होने लगी कि हमारे महाराज के लिये रत्नों में विशेष रुचि है। हमारे राजा रत्नों के शौकीन हैं।

एक दिन उस नगर में संतों का आगमन हुआ। उन्होंने भव्य जीवों के हित के लिये करुणाभाव से धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर सभी श्रावकों का मन धर्म के प्रति उल्लास से भर गया। वे मुनिराज से और भी चर्चा करने को उत्सुक हो उठे। कुछ श्रावकों से उन्होंने सुना कि इस नगर का राजा अत्यंत धार्मिक, न्यायी, प्रजा-वत्सल और रत्नों का शौकीन है। उसने नगर में घोषणा करवा रखी है कि जो भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रत्न हो वह उसके सामने तुरंत पेश किया जाये।

मुनिराज ने सोचा, ओ हो! अगर इस नगर का राजा रत्नों का शौकीन है तो हम भी सम्राट के दरबार में जायेंगे। **ध्यान रखना! यद्यपि संत कभी भी राज और समाज इन दो कार्यों में नहीं उलझते। क्योंकि वे जानते हैं अगर साधु को साधु बने रहना है अपने आत्महित में निरंतर लगे रहना है तो इन दो चीजों से हमेशा दूर रहना चाहिये** क्योंकि ज्ञानीजन वैराग्य भावना भाते हुए कहते हैं-

'राज समाज महाअघकारण बैर बढ़ावन हारा'

कवि ने वैराग्य भावना में लिखा कि भो वैरागियो! भो वैराग्य मार्ग पर चलने वाले, वैराग्य की भावना भाने वाले, भव्य आत्माओ! इन दो बातों का हमेशा ध्यान रखो-**'राज समाज महाअघकारण'** राज और समाज ये महान पाप के कारण हैं। और कैसे हैं? **'बैर बढ़ावन हारा'**। राज में और समाज में सिर्फ बैर बढ़ाने का मार्ग मिलता है इसमें कभी भी श्रेय नहीं मिलता इसलिये कभी भी राज और समाज में मत फँसो।

अगर कोई राजा बन जाये तो क्या सोचेगा? वह सोचेगा कि हमारे राज्य का परिवर्धन होना चाहिये। और राज्य को अगर बढ़ाना है, विकास करना, परिवर्धन करना है, तो सीमाओं को बढ़ाना होगा और उसके लिये अन्य राजाओं पर आक्रमण करके उनसे बैर बाँधना ही पड़ेगा। एक राजा पुरुषार्थी, पौरुषवान तभी कहलाता है जब वह अपनी सीमाओं की वृद्धि करता है।

और सीमाओं को बढ़ाना है तो पड़ौसी राजाओं से बैर बाँधो। राजपाट में फँसा व्यक्ति बैर और पाप को बढ़ाता है। ऐसे ही समाज में उलझा हुआ व्यक्ति भी कभी श्रेय नहीं पाता। भिण्ड के जितने भी स्वयं सेवी, समाजसेवी हों वे स्वयं अपना अनुभव करके बता दें कि आपको समाज सेवा करते-करते कितना श्रेय मिला और कितनी गालियाँ व अपशब्द सुनने को मिले? हाँ, यह बिल्कुल सत्य बात है क्योंकि जो लिखा गया है वह बहुत अनुभव से लिखा गया है कि **'राज समाज महाअघकारण'** ये एक तो पाप के कारण हैं और दूसरा बैर को बढ़ानेवाले हैं। राज्य का समाज का कार्य करनेवाला व्यक्ति कभी श्रेय (प्रशंसा) को प्राप्त नहीं होता। वह कितने भी अच्छे से अच्छे कार्य कर ले लेकिन अगर किसी एक व्यक्ति के मन के अनुकूल नहीं हो पाया तो वह एक व्यक्ति अपनी प्रतिकूल बात को 50 लोगों तक पहुँचा देगा। और 50 लोगों को इकट्ठा करके कहेगा- क्यों भैया! कोई व्यवस्था ही नहीं है। ऐसे व्यक्ति से तो इतना ही कहना उचित है कि भैया! तुम भी तो समाज में रहते हो। जब तुम भी समाज में रहते हो तो तुम्हारा कोई दायित्व नहीं है क्या? लेकिन व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को तो भूल जाता है और दूसरों पर तुरंत उँगली उठाना शुरु कर देता है।

अनार्य पर को दोष देते, छोड़-के लज्जा शर्म।
निज कर्त्तव्य पालना, है श्रेष्ठ आर्यों का धर्म।।

इसलिये निर्ग्रंथ संतों को कहा गया, अगर तुम अपनी निर्विकल्प समाधि चाहते हो तो कभी राज- समाज के कार्यों में मत उलझना, मौन रहना। साधु गर समाज में उलझ गया तो क्या होगा? घर की स्थिति ऐसी होती है कि परिवार में सभी सदस्यों के मत एक जैसे नहीं होते। और समाज तो बहुत बड़ा होता है यदि किसी साधु ने किसी एक व्यक्ति के मतानुसार अपनी बात कह दी तो जितने भी अन्य मत रखनेवाले हैं उनकी दृष्टि में साधु का कोई मूल्य नहीं रहेगा। वे कहेंगे, महाराज तो उन्हीं-उन्हीं की निभा रहे हैं उन्हीं के अनुसार चल रहे हैं अपनी सुनते कहाँ हैं। वाह बेटा! तेरे जैसा गुरुभक्त, साधुभक्त मिल जाये तो साधु का, धर्म का, और तेरा भी बड़ा कल्याण होगा। अरे, तुझे अगर सच्ची श्रद्धा होगी तो तू कभी कुछ भी विपरीत बोल ही नहीं सकता। लेकिन सबसे अच्छी बात तो यह है कि साधु ही समाज और राज के किसी कार्य में न पड़े, दूर ही रहे।

उन मुनिराज ने जब सुना कि सम्राट रत्नों का पारखी है, शौकीन है, तो उन्होंने सोचा कि चलो आज हम भी राजसभा में राजा की पारखी नजर परखेंगे। कभी-कभी कोई श्रेष्ठ संत अपने

ज्ञान से किसी की होनहार को जान लेते हैं और बिना बुलाये भी भव्य जीवों के पास पहुँच जाते हैं। मुनिराज, सम्राट के दरबार में पहुँच गये। सम्राट ने देखा कि ओ हो! राजदरबार में आज तक बड़े-बड़े साधु महात्मा आये लेकिन निर्ग्रंथ दिगंबर योगी आज तक राजदरबार में उपस्थित नहीं हुए। लगता है आज मेरा कोई सौभाग्य जगा है, पुण्योदय हुआ है, जो आज बिना बुलाये ही मुझे ऐसे महान योगी का दर्शन और सान्निध्य प्राप्त हुआ है।

सम्राट तुरंत अपने सिंहासन से नीचे उतरा। सविनय मुनिराज के पास आया और प्रणाम किया। मुनिवर बोले- भो सम्राट! मैंने सुना है कि तुम श्रेष्ठ रत्नों के पारखी और शौकीन हो। नगर के जौहरियों के पास जो भी श्रेष्ठ रत्न आता है तुम उसे धन सम्पदा देकर क्रय कर लेते हो। सम्राट ने कहा- हे मुनिवर! आपने सत्य सुना है। मैं चाहता हूँ कि जितने भी श्रेष्ठ रत्न हैं वे मेरे राजकोष में अवश्य होने चाहिये। मुनिराज ने कहा- आपके पास कौन-कौन से रत्न हैं? सम्राट ने अपने कोषाध्यक्ष को बुलाया और कहा- जितने भी श्रेष्ठ रत्न आज तक हमारे कोषागार में रखे गये हैं आप उन्हें शीघ्र लाइये। तुरंत ही कोषाध्यक्ष रत्न लेकर आया और राजाज्ञा से मुनिराज को बतलाने लगा। यह ऐसा रत्न है यह वैसा रत्न है, यह ऐसा उत्तम गुणवाला है, इसकी खूबी यह है, इसकी विशेषता यह है। सारे रत्नों की उसने खूब लंबी-चौड़ी व्याख्या की। मुनिराज ने कहा- भो राजन्! आपके पास ये जितने भी रत्न हैं। इन सब रत्नों से भी सर्वोत्कृष्ट सर्वश्रेष्ठ रत्न आपके पास है, लेकिन शायद आप उसे पहचानते नहीं हैं। आश्चर्यचकित हो राजा ने पूछा- इन सब रत्नों से श्रेष्ठ ऐसा कौन सा रत्न मेरे पास है जिसे मैं पहचानता नहीं? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव उस रत्न की यहाँ पर व्याख्या कर रहे हैं। बता रहे हैं इस गाथा में। पहले हम गाथा पढ़ लें फिर सम्राट और मुनिराज की कथा को आगे बढ़ायेंगे।

सम्मत्त रयणसारं, मोक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छय-ववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

यहाँ आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं '**सम्मत्तरयणसारं**' सम्यक्त्व रूपी रत्न ही सारभूत है। '**मोक्ख-महारुक्ख-मूलं**' और वह सम्यक्त्व रूपी रत्न मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल है आधार है। '**इदि भणिदं**' ऐसा कहा गया है। **तं जाणिज्जदि णिच्छय-ववहार-सरूवदो भेयं** और वह निश्चय और व्यवहार से दो भेदवाला जाना जाता है। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने सम्यक्त्व रत्न को सारभूत कहा है।

सम्राट ने पूछा- भो मुनीश्वर! वह श्रेष्ठ रत्न कौन सा है? जो मेरे पास है लेकिन मैं उसे आज तक पहिचान नहीं पाया। मुनिराज ने कहा- भो राजन्! ये जितने भी रत्न तुम्हारे पास रखे हुए हैं। इन रत्नों की कीमत तभी तक है जब तक आपके पास श्रद्धा रूपी रत्न है। रत्न तब तक बहुमूल्य लग रहे हैं जब तक आपके पास श्रद्धारूपी रत्न है।

मुनिराज बोले–देखिए यह मूँगा रखा हुआ है। इसकी कीमत कब तक है। जब तक हमारे अंदर इसकी मूंगा रूप में श्रद्धा है। अगर आपकी इसमें वैसी श्रद्धा न हो तो क्या यह रत्न मालूम पड़ेगा? ऐसे ही यह पन्ना है लेकिन यदि हमारे अंदर उसकी पन्ना रूप श्रद्धा न हो तो क्या यह रत्न पन्ना मालूम पड़ेगा? नहीं।

किसी व्यक्ति को रत्नों की पहचान न हो उसके सामने आप ये विभिन्न प्रकार के मूँगा, पन्ना आदि रत्न रख दें, और साथ में कुछ कंकड़ भी रख दें, तो पहचान न होने के कारण वह सबको कंकड़ पत्थर ही कहेगा। क्यों? क्योंकि उसे इन रत्नों की रत्न रूप श्रद्धा नहीं है। मुनिराज ने कहा- भो राजन्! इन रत्नों की कीमत तभी तक है जब तक आप इनका रत्न रूप श्रद्धान रखते हैं मानते हैं। अगर आपके पास यह श्रद्धा रूपी रत्न न हो तो इन रत्नों की आपको कोई कीमत नजर नहीं आयेगी। इसलिये इन रत्नों से भी श्रेष्ठ रत्न कोई है तो रत्नों के प्रति श्रद्धा, विश्वास रखनेवाला तुम्हारा परिणाम है। अगर विश्वास न हो, श्रद्धा न हो, तो इन रत्नों का क्या मूल्य हो सकता है। इसलिये भो राजन्! सबसे मूल्यवान तो तुम्हारा यह श्रद्धान गुण है। श्रद्धा रूपी रत्न है।

'सम्मत्त रयणसारं'

मुनिराज की बात सम्राट को समझ आ गई। वह सोचने लगा- ओ हो! मुनिराज ने आज मुझे ऐसा रत्न दिया है जिस रत्न के होने पर ही इन रत्नों की कीमत नजर आती है, मूल्य नजर आता है। अगर इस रत्न की मुझे खबर न हो, तो वास्तव में इन रत्नों की तो लोक में कोई कीमत ही न होगी।

मुनिराज ने कहा- भो राजन्! तुम्हें इन रत्नों पर इतनी श्रद्धा है अगर यही श्रद्धा तुम्हारी परमात्मा के प्रति हो जाये तो आत्मा को परमशांति देने वाली होगी।

सम्राट, मुनिराज की बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह सोचने लगा कि आज तक इन रत्नरूपी पत्थर के अनेकों जौहरियों ने मुझे रत्न रूप में ये पत्थर तो दिये किंतु आज आत्मतत्त्व के जौहरी मुनिराज मिले जिन्होंने मुझे सम्यक्त्व रूपी रत्न दिया। चैतन्य रूपी सारभूत रत्न को पाने का मार्ग दिखाया। मेरा परिचय इन अनमोल रत्नों से कराया। मुनिराज ने सम्राट के लिये आत्मा के श्रद्धारूपी चैतन्य रत्न से परिचित कराया इसलिये उसे मुनिराज की बातें बहुत रुचिकर लग रही थीं।

मुनिराज ने कहा- भो राजन्! भो सम्राट! यह जो तुम्हारे बाहर के रत्न हैं ये रत्न तो एक दिन छूट जायेंगे। यहीं पड़े रह जायेंगे। तुम्हारे साथ जो जानेवाला है वह तो वस्तुस्वरूप का श्रद्धा रूपी रत्न है। जो श्रद्धान रूपी रत्न कभी छूटनेवाला नहीं है।

एक बात बताना, जब व्यक्ति का मरण होता है तो साथ में क्या-क्या जाता है? कुछ जाता है कि नहीं जाता है? (श्रावकों से) बोलो? साथ में क्या जाता है? निर्मल जी कोठी वाले बोलो तो साथ में क्या जाता है? (बोले- महाराज जी पाप-पुण्य जाता है।) पाप-पुण्य जाता है अहो! एक दिन ऐसा भी आता है जब पाप-पुण्य भी छूट जाता है फिर भी साथ जाने वाला साथ जाता है। मुझे बताओ जो हमेशा साथ-साथ रहता है वह कौन है? सोचो जरा। देखो अरिहंत भगवान हैं। उन्हें जब निर्वाण हुआ तो उन्होंने पुण्य और पाप को भी छोड़ दिया। अब ये बताओ उनके साथ क्या गया?

अहो! एकमात्र उनका आत्मा उनके साथ गया। कौन साथ में गया? आत्मा ही साथ गया। यानि मृत्यु के बाद भी हमारे साथ कोई जानेवाला है तो हमारा आत्मा ही हमारे साथ जानेवाला है आत्मा के अलावा और कुछ भी हमारे साथ जानेवाला नहीं है।

मुनिराज ने कहा- भो सम्राट! तेरे पास इतना राज्य, वैभव, संपदा सब कुछ है ये सब एक दिन तेरा साथ छोड़ देंगे। मिट्टी बन जायेंगे। लेकिन तेरा जो आत्मा है मृत्यु के बाद वही तेरे साथ जायेगा।

सम्राट को मुनिराज की बातें इतनी प्रिय लग रही थीं कि सुन- सुनकर उसे अभूतपूर्व आनंद की अनुभूति हो रही थी। सम्राट ने कहा- भो मुनीश्वर! मैंने आज तक इन पत्थर के रत्नों

का मुँहमाँगा मूल्य दिया है। आपने मुझे जो अपने आत्मा रूपी बहुमूल्य रत्न से परिचय कराया है जो हमारा भव-भव का साथी था। भव-भव का साथी है। और भव-भव का साथी रहेगा। और भवों की इस यात्रा में मुक्त होने के बाद भी जो मेरे साथ ही रहेगा। ऐसे आत्मतत्त्व से आपने मेरा परिचय कराया है। कहिए, मैं आपको भी मुँहमाँगा इनाम दूँगा।

मुनिराज ने पुनः राजा को धन सम्पदा की नश्वरता और रत्नत्रय रूपी धर्म सम्पदा की स्थिरता का बोध कराते हुए कहा-

तुम्हारे पास दौलत है, हमारे पास दौलत है।
तुम्हारी छूट जायेगी, हमारी साथ जायेगी।।आ. विमर्शसागर।।

मुनिराज ने कहा- भो सम्राट! हम निस्पृही साधक हैं। जब तुम्हारे साथ यह नश्वर धन-वैभव कुछ भी जानेवाला नहीं है तो मेरे साथ भी क्या जायेगा? इसलिये आपके इस धन, संपदा, वैभव में मुझे रंचमात्र भी रुचि नहीं है। मुझे तुम्हारी संपदा से क्या लेना देना? मैं तो अपने रत्नत्रय रूपी वैभव को पाकर धन्य हो उठा हूँ। अपनी आत्मविभूति को पाकर कृतार्थ हो गया हूँ। राजन्! तुम्हारी सम्पदा तुम्हारा साथ छोड़ देगी, लेकिन मेरी यह शाश्वत विभूति, मेरी यह अनुपम रत्नत्रयरूप आत्म सम्पदा, सदाकाल मेरे साथ रहेगी। भो सम्राट! अगर तुम मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो मैं तुमसे बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम इन रत्नों को छोड़कर मेरे द्वारा दिखलाये गये इन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूपी तीन रत्नों को जानकर, पहचानकर स्वीकार करो। और जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र है वह तू मेरे निकट त्याग कर दे।

बंधुओ! एक स्कूल (School) में पढ़ानेवाला टीचर (Teacher) अपने विद्यार्थियों से क्या चाहता है? वह सिर्फ इतना चाहता है कि मुझसे ज्ञान तू ले ले और अपना अज्ञान त्याग दे। विचार करना! गुरुजन श्रेष्ठ क्यों होते हैं? गुरुजन इसलिये श्रेष्ठ होते हैं क्योंकि वे क्षुद्र वस्तु के बदले में श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करते हैं। लोक में ऐसा व्यवहार अन्यत्र कहीं नहीं होता। अन्यत्र तो हर व्यक्ति अपनी क्षुद्र वस्तु के बदले में भी श्रेष्ठ वस्तु चाहता है लेकिन एकमात्र गुरुजन ऐसे होते हैं जो क्षुद्र वस्तु को स्वीकार करके श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करते हैं।

बंधुओ! मुनिराज ने कहा- भो राजन्! तू मेरे निकट मिथ्यादर्शन-ज्ञानचारित्र त्याग दे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्नों को अपनी आत्मा में स्वीकार कर।

सम्राट ने कहा- भो मुनिवर! आज तक मैंने इन क्षुद्र पत्थरों के लिये सभी को मुह माँगा इनाम दिया। परन्तु आपने मुझे मेरी आत्मा के कल्याण का मार्ग दिखाया है इसलिये मैं आपके द्वारा दिया जानेवाला रत्नत्रय स्वीकार करने की भावना करता हूँ।

सम्राट ने कहा- भो मुनिश्रेष्ठ! आपने जिस सम्यक्त्व रूपी रत्न की बात कही है चर्चा की है उस सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है?

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस चतुर्थ गाथा में यही बात कह रहे हैं कि **'सम्मत्तरयणसारं'** सम्यक्त्व रत्न ही सब रत्नों में सारभूत रत्न है। और कैसा है? **'मोक्खमहारुक्ख मूलम्'** मोक्षरूपी महान वृक्ष का मूल है जड़ है।

सम्यग्दर्शन क्या है। **'सम्यग्दर्शन मूलं'** सम्यग्दर्शन मूल है जड़ है। किसकी? धर्म की। मोक्षरूपी महावृक्ष की यह जड़ कहा गया है। क्या बिना मूल के, जड़ के कभी वृक्ष खड़ा हो सकता है? नहीं हो सकता। इतना तो आप सब लोग समझते हो। भिण्ड वालो! तुम धर्म का वृक्ष अपने घर में लगाना चाहते हो कि नहीं? किसका वृक्ष लगाओगे? पीपल का, नीम का, जामुन का, अशोक का, बबूल का, आम का या धर्म का वृक्ष लगाओगे। भावना भाओ कि-

अपना घर छोड़ कहीं और न जाया जाये।
अपने घर में ही नया बाग लगाया जाये।।आ. विमर्शसागर।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं अगर आपके लिये अपने घर को सुंदर बनाना है तो आप अपने घर में मेरे घर जैसा बाग लगाओ। सबने अपना-अपना घर देखा है ना। आप प्रवचन सभा में भगवान जिनेन्द्र की वाणी सुनकर हर्षित होते हुये कहाँ जाओगे? अपने अपने घर जाओगे। तुमने ईंटों के घर को अपने घर की पहचान दे रखी है। आप यहाँ से जायेंगे तो अपने घर जायेंगे। लेकिन संत जहाँ भी जाता है अपने घर को साथ लेकर जाता है। और तुम जहाँ भी जाते हो अपने घर को छोड़ करके जाते हो। अपने घर का तात्पर्य क्या है, बाग कहाँ लगाना है? आप अपने घर में तो अनेक प्रकार के पेड़ पौधे, बाग बगीचे सब कुछ लगा सकते हो, लेकिन मैं रत्नत्रयधारी साधु ये कह रहा हूँ कि अपने घर यानि अपनी आत्मा में, बाग यानि रत्नत्रय का बगीचा लगाना सीखो।

अपने आत्मा रूपी घर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय का बाग लगाओगे तो निश्चित ही उस बाग में एक दिन केवलज्ञान और मोक्षरूपी बहार आयेगी। आयेगी या नहीं आयेगी? अवश्य आयेगी। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि मोक्षरूपी वृक्ष का मूल है सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन जिस आत्मा ने प्रगट कर लिया, वही धर्मात्मा है। क्योंकि जिसने सम्यग्दर्शन को नहीं पहचाना, वह व्यक्ति धर्म करता हुआ भी धर्म के फल को प्राप्त नहीं कर पाता। इसलिये आचार्य भगवंतों ने सम्यग्दर्शन रूपी मूल का इतना महत्व बताया है। सम्यग्दर्शन का अर्थ है समीचीन श्रद्धा, सही श्रद्धा, सच्ची श्रद्धा। समझ में आ रहा है न।

सम्यग्दर्शन का अर्थ होता है सच्ची श्रद्धा। लेकिन किस पर? पत्नी पर, बच्चे पर, 100 के नोट पर। ये बताओ 100 के नोट पर सच्ची श्रद्धा है कि नहीं है? अगर तुम्हें 100 के नोट पर सच्ची श्रद्धा है तो ये तुम्हारा नोट के प्रति सही श्रद्धान है, सम्यग्दर्शन है। क्यों है? क्योंकि 100 के नोट को ही तुम 100 का नोट कहते हो। एक या दस के नोट को नहीं। तो ये तुम्हारा नोट का सम्यग्दर्शन है। आप पानी को पानी कहते हो। रोटी को रोटी कहते हो। सब्जी को सब्जी कहते हो। ऐसा तो नहीं है कि पपीते को आम कहते हो और भिण्डी को मिर्च, क्योंकि आम भी पीला, पपीता भी पीला, भिण्डी भी हरी और मिर्च भी हरी। कहो ऐसा तो नहीं बोलने लगते कि वृक्ष हो पपीते का और कहने लगो कि अरे देखो इस वृक्ष पर कितने बड़े-बड़े आम लटक रहे हैं, ऐसा तो नहीं कहते।

अरे, आम को आम कहते हो। पपीते को पपीता कहते हो। आलू बुखारे को आलू बुखारा कहते हो। और टमाटर को टमाटर। यह तो हुई आपकी इन पदार्थों के प्रति सही श्रद्धा। अगर आपके सामने कोई मौसमी को नींबू कहे तो आप क्या कहोगे? कहाँ का बुद्धुराम है आप उस पर विश्वास नहीं करोगे क्योंकि वह वस्तु को गलत रूप से कह रहा है, मान रहा है। उसकी श्रद्धा सही नहीं, सच्ची नहीं। किंतु आप उस वस्तु को सही रूप में, वास्तविक रूप में जान रहे हो, मान रहे हो। गलत मान्यता को नहीं स्वीकार रहे तो यह तुम्हारी उस वस्तु के प्रति सच्ची श्रद्धा है।

लेकिन इन पदार्थों पर सच्ची श्रद्धा करने पर भी आपका कभी मोक्ष रूपी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। यदि आप अपने मोक्षरूपी कार्य को सिद्ध करना चाहते हो तो जिसकी श्रद्धा से मोक्षरूपी फल की प्राप्ति होती है श्रद्धा उसी की करनी होगी। इसलिये आचार्य भगवन्

कुंदकुंददेव ने मोक्षरूपी वृक्ष पर जो अतीन्द्रिय सुख रूप फल आता है उसके लिये दो प्रकार की श्रद्धा बतलायी है।

1. निश्चय रूप श्रद्धान 2. व्यवहार रूप श्रद्धान

ध्यान से सुनते जाना, क्योंकि ज्ञान की, धर्म की, तत्त्व की बात कहनेवाले, सुनानेवाले आपको इस पंचमकाल में बहुत कम मिलेंगे। एक बार को आपको हँसानेवाले लोग तो बहुत मिल जायेंगे, मिलते होंगे। लेकिन आपकी आज की थोड़ी सी हँसी भव-भव में आपको ही रुलाने का कारण बनेगी। अगर आपने धर्म की, तत्त्व की, ज्ञान की बात सच्ची रुचिपूर्वक भावपूर्वक श्रवण कर ली तो ध्यान रखना! तुम्हारा भव-भव का रोना शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो जायेगा, मिट जायेगा।

आचार्य भगवंतों ने सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा है। हमने अभी गाथा में पढ़ा था **'णिच्छय ववहारदो भेदा'** सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है। जिनागम में सम्यग्दर्शन के व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन ये दो भेद कहे हैं।

निश्चय सम्यग्दर्शन साध्य है और व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन है। कारण कहो, हेतु कहो, साधन कहो, निमित्त कहो ये सब एकार्थवाची कहलाते हैं। कारण के होने पर ही कार्य सिद्ध होता है। बिना कारण के कार्य सिद्ध नहीं होता।

आप रास्ते से जा रहे हैं और आपकी बाइक (Bike) की हवा निकल जाये तो अब हवा कैसे भरेगी? पम्प (Pump) चाहिए या नहीं चाहिए। कि फूँककर भर दोगे। गुब्बारा थोड़े ही है। जैसे छोटे-छोटे बच्चे गुब्बारे को फूँककर भर देते हैं और गुब्बारा फूल जाता है। बाइक (Bike) का टायर (Tyre) ऐसे फूँक मारने से नहीं भरेगा। उसके लिये कम्प्रेसर (Compressure) चाहिये। अगर वह होगा तो निश्चित रूप से हवा भर जायेगी। बिना कारण के कभी भी कार्य नहीं होता है इस बात को हमेशा याद रखना।

यद्यपि कारण दो प्रकार के होते हैं-

1. निमित्त कारण 2. उपादान कारण

लेकिन इतनी गहन बातें हम अभी नहीं बतायेंगे। धीरे-धीरे बतायेंगे। नहीं तो तुम कहोगे आज तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। महाराज श्री! क्या-क्या बोले जा रहे हैं। अभी तो तुम इतना ही समझ लो कि निश्चय सम्यग्दर्शन कार्य है और व्यवहार सम्यग्दर्शन कारण है।

आज मैं एक प्रश्न छोड़ रहा हूँ समाधान कब करूँगा में नहीं कह रहा हूँ लेकिन समाधान करूँगा जरूर। प्रश्न यह है कि पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है कि निश्चय सम्यग्दर्शन होता है? कोई कहता है कि पहले निश्चय सम्यग्दर्शन होता है उसके बाद व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। कौन पहले होता है कौन बाद में होता है? इसका समाधान मैं आपके लिए आगे जाकर करूँगा। लेकिन करूँगा जरूर। अभी तो मैं यह बताऊँगा कि व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन है और निश्चय सम्यग्दर्शन साध्य है। एक कारण है दूसरा कार्य है।

अगर हमें कार्य प्राप्त करना है तो कारण को अवश्य प्राप्त करना होगा। कारण क्या है? व्यवहार सम्यग्दर्शन कारण है। क्यों? क्योंकि यह जीव अनादि से मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि क्यों है? क्योंकि मोक्षमार्ग का ज्ञान नहीं है। आत्महित का ज्ञान नहीं है। और जिसे आत्मा का, आत्मा के हित का, मोक्षमार्ग का ज्ञान न हो वह जीव मिथ्यादृष्टि है।

एक बात ध्यान रखना, किसी जीव को छह तत्त्वों की श्रद्धा हो लेकिन मोक्षतत्त्व की श्रद्धा न हो तो वह जीव मिथ्यादृष्टि रहता है। तत्त्व सात होते हैं-

जीवाजीवास्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्।।4।।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये सात तत्त्व कहे गये हैं। लेकिन जिस जीव को मोक्षतत्त्व की श्रद्धा न हो, उसे कभी मोक्षतत्त्व की प्राप्ति नहीं होती। और जिसे मोक्षतत्त्व की श्रद्धा हो वह मोक्षमार्ग को प्राप्तकर मोक्षतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। **मोक्षमार्ग क्या है ? संवर निर्जरा का मार्ग मोक्षमार्ग है। इसके विपरीत आस्रव-बंध का मार्ग संसारमार्ग है।** मोक्षतत्त्व और मोक्षमार्ग का श्रद्धान, ज्ञान न होने के कारण संवर-निर्जरा के मार्ग को छोड़कर यह जीव आस्रव-बंध के मार्ग में लगा हुआ है। यथार्थ रूप से यह संसारमार्ग ही मोक्षमार्ग का बाधक है। आचार्य भगवन् समंतभद्रस्वामी धर्ममार्ग और संसार मार्ग का निरूपण करते हुए कहते हैं-

सद्दृष्टि - ज्ञान - वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धति।।3।।

अर्थात् तीर्थंकर देव ने सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तीनों की एकता को धर्म कहा है। और इनसे विपरीत यानि मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को संसार का कारण कहा है।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि यह जीव अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि रहा है। यह बाहर के रत्नों को तो रत्न कहता है लेकिन आत्मा में रहनेवाले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र जैसे चैतन्य रत्नों को नहीं जानता, नहीं पहचानता। इस कारण से यह जीव अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि रहा है।

सम्राट ने कहा- हे करुणामयी पूज्य गुरुदेव! आपने हमारे हित के लिये तीन रत्नों की उत्तम बात कही। उनमें सर्वप्रथम धर्म के मूल सम्यग्दर्शन के स्वरूप को समझाने की कृपा करें। सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है। कृपाकर आप मुझे अवश्य बताइए। मुनिराज ने कहा- भो सम्राट! सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है- व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन।

श्रद्धानं परमार्थाना - माप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढापोढ-मष्टांगं सम्यग्दर्शन-मस्मयम्।।4।।

आचार्य भगवन् समंतभद्रस्वामी 'श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी' ग्रंथ में सम्यग्दर्शन का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का श्रद्धान करना। कैसे करना? '**त्रिमूढापोढमष्टांगं**' तीन मूढ़ताओं को छोड़कर, षट अनायतनों को त्यागकर और आठ अंगों से युक्त होकर तथा आठ मदों से रहित होकर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। सम्यग्दृष्टि 25 मल दोषों से रहित होता है। अभी तो सुनते जाना इन सब बातों को। मैं धीरे-धीरे आपको बताऊँगा कि सम्यग्दृष्टि किन-किन पच्चीस मलदोषों से रहित होता है।

'श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम तपोभृताम्।।'

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अनंतकाल हो गया सच्चे देव को नहीं पहचाना है। हमसे ये नीरज (भिण्ड) कह रहा था 'कि महाराज अन्य

भगवान तो जल्दी-जल्दी दे देते हैं अपने भगवान थोड़ी देर से देते हैं' अब मैं तो रात को मौन रहता हूँ। मुझे खुशी इस बात की होती है कि वैय्यावृत्ति के समय भिण्ड के युवा वैय्यावृत्ति का भी लाभ लेते हैं और प्रवचन सुनने के बाद उनकी आत्मा में जो जिज्ञासा पैदा होती है, वे उसे वैय्यावृत्ति करते-करते धीरे से मुझे सुना भी देते हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि कम से कम ये कुछ जानने का प्रयास तो कर रहे हैं। इनकी जिज्ञासायें इस दिशा में बढ़ रही हैं कि धर्म का स्वरूप क्या है? परमात्मा का स्वरूप क्या है?

सच्चा भगवान कभी किसी को कुछ भी नहीं देता है। अच्छा एक बात बताओ, सूर्य किसी को व्यापार देता है क्या? सूर्य व्यापार नहीं देता। सूर्य तो सिर्फ प्रकाश देता है और उस प्रकाश में तुम ही व्यापार करने का प्रयास करते हो तो तुम्हारे लिये व्यापार फलीभूत हो जाता है। कोई व्यक्ति सूर्य का प्रकाश होने के बाद भी दिनभर यदि हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे तो उसके लिये किसी व्यापार वस्तु आदि की उपलब्धि होगी क्या? नहीं होगी। अब वो यह कहे कि सूर्य ने हमारे लिये कुछ नहीं दिया और दूसरा जो व्यापार कर रहा है वह भी यह कहे कि सूर्य ने तो हमारे लिये खूब अच्छा व्यापार दिया तो क्या यह बात सत्य है? नहीं। सूर्य ने कुछ नहीं दिया। सूर्य के प्रकाश में तुमने ही पुरुषार्थ किया था इसलिए तुम्हारा व्यापार फलीभूत हुआ।

तुम अच्छा करोगे तो अच्छा फल मिलेगा। बुरा करोगे तो बुरा फल मिलेगा। भगवान तो जिनालय में विराजमान हैं। यदि आप उनके पास जाकर निर्मल भक्तिभाव रखोगे तो आपको अच्छा फल मिल जायेगा और यदि आप उनके प्रति भक्तिभाव न रखकर जाकर कुछ भी व्यथा बोलने लगे, अविनय करने लगे, तो आपको बुरा फल मिलेगा। अब ये बताइए कि ये अच्छे-बुरे फल भगवान ने दिये या आपके स्वयं के भावों ने, आपके द्वारा किये कार्यों ने। ध्यान रखना! भगवान ने अच्छा-बुरा फल नहीं दिया। उन्हें निमित्त बनाकर अपने अच्छे-बुरे भावों के द्वारा प्राप्त कर्मोदय से अच्छा-बुरा फल पाया है। कहते हैं-

जैसी करनी वैसी भरनी।
जैसा बोओगे वैसा पाओगे।

इसलिये बंधुओ! ध्यान रखना, भगवान कभी किसी को कुछ नहीं देते। उन्हें निमित्त बनाकर हम जैसे परिणाम करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। फिर भी कहें कि भगवान हमें देते हैं। तो क्या-क्या देते हैं भगवान? अंगूर देते हैं कि पपीता देते हैं। ध्यान रखो, भगवान कुछ नहीं

देते। तुम पैसा खर्च करते हो तो बाजार से अंगूर खरीद लाते हो। आम, सेब सब कुछ खरीद लाते हो। भगवान थोड़े ही देते हैं। और अगर कोई ऐसे ही भगवान भरोसे बैठ जाये तो कुछ मिलेगा क्या?

भगवान के भरोसे मत बैठ जाना अन्यथा कुछ मिलनेवाला नहीं है। लेकिन भगवान पर भरोसा किये बिना भी कुछ मिलनेवाला नहीं है। इसलिये भगवान पर तो भरोसा करना ही होगा। परमात्मा के प्रति विश्वास करना ही होगा। सच्चे देव का स्वरूप तो समझना ही होगा।

आज अपना समय हो गया है, इसलिये कल सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु का स्वरूप आपके लिये प्रतिपादित करूँगा। क्योंकि जिनके श्रद्धान से व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है उन देवशास्त्रगुरु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होना भी अत्यंत आवश्यक है। जब तक स्वरूप का बोध नहीं तब तक सच्चा श्रद्धान नहीं। इसलिये कल हम व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन के स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना कभी आत्मा का हित नहीं होता है। ठीक है न-

सम्यग्दर्शन सार कहा, शिवतरू का आधार कहा।
यह सम्यग्दर्शन भैया, निश्चय व व्यवहार कहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, रत्नों को पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 4

(द्वितीय प्रवचन)

कुलदेवता की मान्यता मिथ्यात्व है

07.08.2013

भिण्ड

(मोक्ष का मूल)

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छयववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-महारुक्खमूलं**) मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल (**सम्मत्त-रयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छय-ववहार-सरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेदवाला (**जाणिज्जदि**) जाना जाता है।

अर्थ-मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन रत्न ही सारभूत है, ऐसा कहा गया है। वह सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन रूप से दो भेदवाला जाना जाता है।
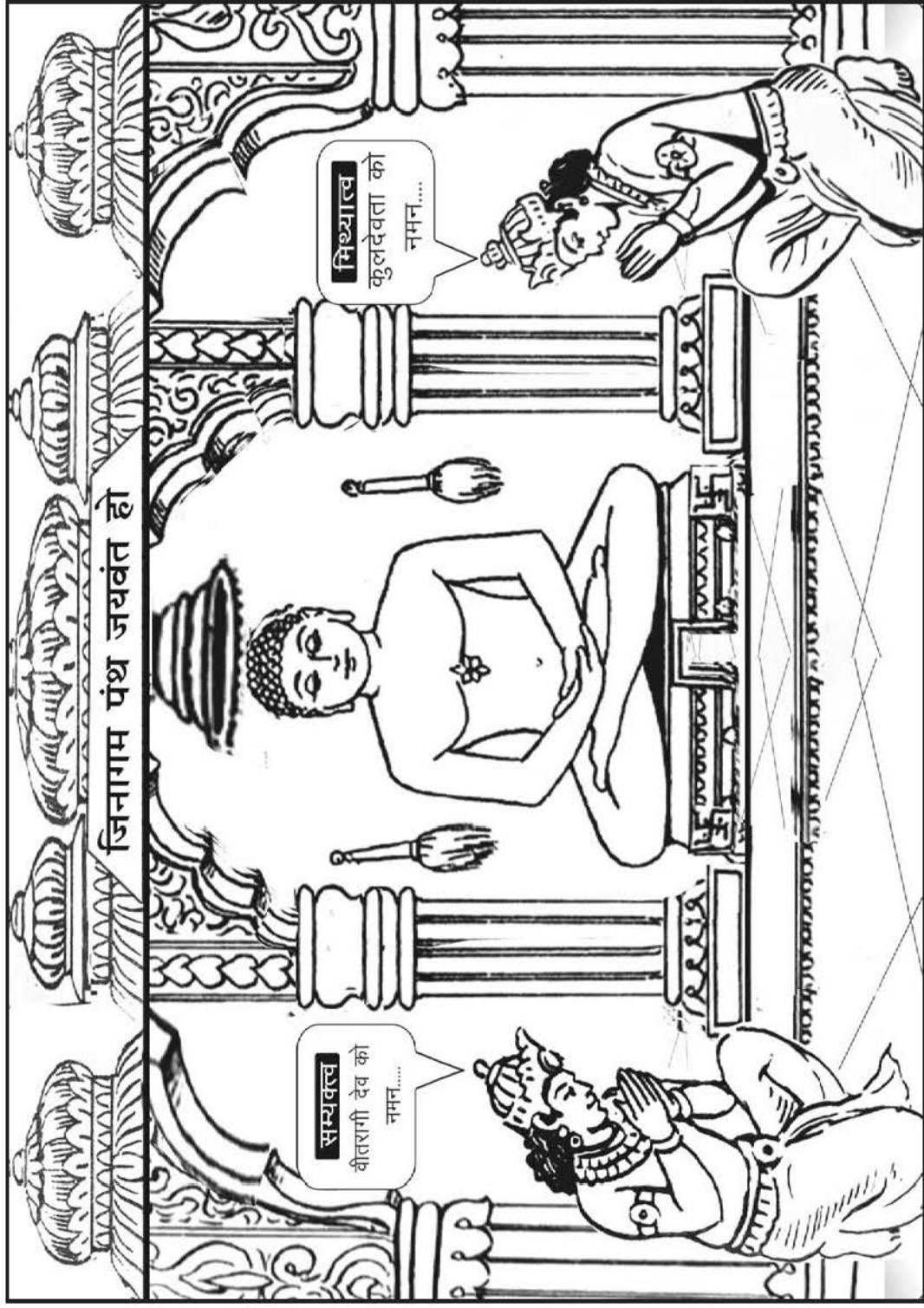
समकिती देव जिनप्रतिमा को कर्मक्षय के निमित्त और मिथ्यादृष्टि देव कुलदेवता मानकर पूजते हैं।

7

रयणोदय

मोक्षमार्ग अपनाना है, सम्यग्दर्शन पाना है।
आतमरुचि जगाने को, भेदज्ञान प्रगटाना है।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जिन्हें अपनी शक्ति का विश्वास होता है, अपनी शक्ति पर श्रद्धान होता है अपनी शक्ति का भरोसा होता है वे कभी भाग्य के भरोसे नहीं बैठते। ऐसा नहीं सोचते जो भाग्य में होगा सो हो जायेगा। वे अपनी शक्ति के विश्वास से अपने बिगड़ते हुए कार्य को भी बना लेते हैं। असफलताओं

में भी सफलतायें खोज लेते हैं और जिन्हें अपनी शक्ति का विश्वास नहीं होता। जिन्हें अपनी शक्ति का परिचय नहीं होता उनके जीवन में हर समय असफलता और परेशानी ही रहा करती है।

बंधुओ! हम सभी अपने जीवन में एक ऐसे असफल प्राणी हैं जिन्होंने कभी सफलता का स्वाद चखा ही नहीं। ऐसी कोई पर्याय नहीं रही जिस पर्याय में हम असफल न हुए हों। यदि आज हम सभी संसार में दु:ख भोग रहे हैं तो अपनी असफलताओं के कारण भोग रहे हैं। यदि आज हमने अपनी शक्ति को पहचाना, जाना, अनुभव किया तो वह सफलता प्राप्त होगी, जो प्रभु महावीर ने प्राप्त की। **निज सहज शक्ति की श्रद्धा ही सफलता और अश्रद्धा ही असफलता है।**

महारानी लक्ष्मीबाई की मात्र 23 साल की उम्र थी और युद्ध करने के लिये घोड़े पर सवार होकर चल दी। घोड़ा भी ऐसा कि सामने कोई नाला आ जाये तो छलांग लगाकर आगे निकल जाता था क्योंकि उस घोड़े को अपनी शक्ति पर विश्वास था। अंग्रेज देखते रह जाते थे। पीछा करते हुए नाले पर खड़े रह जाते थे। वे योजना बनाते थे कैसे इस नाले को पार किया जाये? लक्ष्मीबाई आगे बढ़ती जाती थीं क्योंकि उस घोड़े को अपने आप पर विश्वास था।

लेकिन जब लक्ष्मीबाई का पुराना घोड़ा मृत्यु को प्राप्त हो गया, वीरगति को प्राप्त हो गया तो उन्होंने नया घोड़ा लिया। और कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने लिखा- **घोड़ा अड़ा नया घोड़ा था इतने में आ गये सवार।** जैसे ही आगे एक नाला आया तो नाले को देखकर लक्ष्मीबाई का घोड़ा ठिठक गया। क्यों? क्योंकि उसे अपने आप पर अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं था इस कारण घोड़ा ठिठक गया। पीछे से अंग्रेज सैनिक तुरन्त वहाँ पहुँचे और लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हुईं। ऐसे ही संसारी जीव भी अनन्तकाल से आज तक वीरगति को प्राप्त होते आ रहे हैं लेकिन आज तक कभी वीरमरण को प्राप्त नहीं हुये। यह मरण हमारा क्यों होता आ रहा है? क्योंकि हमने आत्मशक्ति का आश्रय नहीं किया।

जब तक अपनी आत्मशक्ति का विश्वास नहीं होगा तब तक दु:ख मिटनेवाले नहीं है इसलिए अपनी आत्मशक्ति का श्रद्धान करना। आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कह रहे हैं कि जब

तक इस जीव को सम्यग्दर्शन नहीं होता, तब तक यह जीव संसार के बंधनों से छूटने में समर्थ नहीं हो पाता। बंधन से मुक्त नहीं हो सकता। चारगति रूप संसार से भी निकल नहीं सकता। संसार में भ्रमण का कारण क्या है? छहढालाकार ने लिखा–

ऐसे मिथ्यादृग्ज्ञानचरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहुँ बखान।।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र इनके वश होकर यह जीव अनंतकाल से इस संसार रूप चार गतियों में ही परिभ्रमण करता आ रहा है। किसके कारण? मिथ्यादर्शन के कारण। मिथ्यादर्शन यानि गलत श्रद्धा, विपरीत श्रद्धा, उल्टी श्रद्धा। जब मिथ्या मान्यता, गलत मान्यता, गलत अभिप्राय, विपरीत श्रद्धा हो तो व्यक्ति किसी भी कार्य में सफल कैसे हो सकता है? आपको भूख लगी है सामने सुस्वादु व्यंजन रखे हुए हैं यदि आपको उस व्यंजन में ऐसी मान्यता हो जाये कि इसको खाने पर मेरी मृत्यु हो जायेगी, अब बताइएगा आप उस व्यंजन को ग्रहण कर पायेंगे? नहीं। क्यों नहीं? क्योंकि आपकी ऐसी मान्यता बन पड़ी है कि इस भोजन को करने से हमारा मरण हो जायेगा, हमारी मृत्यु हो जायेगी, मुझे दुख भोगना पड़ेगा। ऐसी मान्यता आपने किसमें कर रखी है? भोजन में कर रखी है जबकि भोजन आपकी भूख को मिटाने का कारण है। आपकी इस मान्यता को सही मान्यता कहेंगे या गलत मान्यता कहेंगे, क्या कहेंगे? गलत मान्यता कहेंगे।

आपको प्यास लगी है पानी सामने रखा है लेकिन आपकी मान्यता ऐसी है कि मैं इस पानी को पिऊँगा तो मुझे और अधिक प्यास लग आयेगी जबकि पानी तो प्यास को मिटाता है शान्त करता है। यदि आप ऐसी श्रद्धा लिये बैठे हैं विपरीत श्रद्धा लिये बैठे हैं तो क्या आपकी यह मान्यता यह श्रद्धा सही कही जा सकती है? सही नहीं कही जा सकती। वह मान्यता सही है कि गलत है? गलत मान्यता है।

ऐसे ही जबतक यह जीव संसार में विपरीत मान्यता को, गलत मान्यता को नहीं छोड़ता है, तबतक संसार से मुक्त नहीं हो सकता। कैसी गलत मान्यता? सच्चेदेव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु ये सब जीवों के लिये हित के कारण हैं यदि कोई जीव इनको अपने लिये सुख का

कारण न जानकर दु:ख का कारण माने तो उसकी यह सही मान्यता है कि गलत मान्यता है? गलत मान्यता है। सही श्रद्धा है कि गलत श्रद्धा है? गलत श्रद्धा है। क्योंकि जिन सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान से हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है सही श्रद्धा की प्राप्ति होती है उन्हीं के माध्यम से हम अपने को दु:खी मान रहे हैं और जो मिथ्या यानि झूठे देव, झूठे शास्त्र और झूठे गुरु जिन्हें मिथ्या देव-शास्त्र-गुरु कहते हैं उनमें यह जीव सुख की मान्यता करे, शान्ति की मान्यता करे, हित की मान्यता करे कि इनसे हमारा बहुत भला होगा, बहुत भला होता है, बहुत भला होता आया है उसकी यह मान्यता सही मान्यता है कि गलत मान्यता है? गलत मान्यता है।

इसलिए आचार्य भगवन्तों ने कहा है कि सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए पहले तुझे मिथ्यादर्शन यानि मिथ्यात्त्व को भी पहचानना होगा। अगर मिथ्यात्व का ज्ञान नहीं है तो सम्यग्दर्शन को भी तुम कभी पहचान नहीं पाओगे। इसलिए कल आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने सम्यग्दर्शन के दो भेद कहे थे-एक व्यवहार सम्यग्दर्शन और दूसरा निश्चय सम्यग्दर्शन। अभी अपने को व्यवहार सम्यग्दर्शन को समझना है और व्यवहार सम्यग्दर्शन को समझने के पहले हमे मिथ्यादर्शन को भी समझना होगा।

प्रथम अवस्था में व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप सच्चे देवशास्त्रगुरु का श्रद्धान करना कहा था। सीधी-सी बात हो गयी जो मिथ्या देवशास्त्रगुरु हैं उनका श्रद्धान नहीं करना। अगर आप उनका श्रद्धान करते रहेंगे यानि उनके माध्यम से अपना हित मानते रहेंगे, जानते रहेंगे तो आप कभी सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान नहीं कर सकते। क्यों? क्योंकि दोनों में एक जैसी श्रद्धा नहीं हो सकती। मिथ्या देव, मिथ्या शास्त्र और मिथ्या गुरु में हम सबसे पहले कुदेव के स्वरूप को जानें। कौन है कुदेव-

जे रागद्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादि जुत चिन्ह चीन।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव।।

सबसे पहले कुदेव को पहचानना। कौन है कुदेव? **'जे रागद्वेष मल करि मलीन'** संसार में भगवान नाम की संज्ञा रखनेवाले अनेकों पाषाण हैं कोई कहता है कि ये भगवान हैं। पहले

कोई भव्य जीवात्मा यथार्थ मार्ग पर चलता था, तप के मार्ग पर चलता था, साधना के मार्ग पर चलता था, आत्मा को पहचानता था इसतरह यथार्थ तप के मार्ग पर चलकर भगवान बनता था। आजकल तो अज्ञानी जीव किसी को भी भगवान बना देते हैं।

विचार करना, आप जैनधर्मी हैं न। जिनधर्म में जो चेतन आत्मा भगवान बनता है वो मोक्षमार्ग पर चलकर भगवान बनता है और यदि पाषाण को भगवान बनाना हो तो उसकी विधि है पंचकल्याणक प्राण-प्रतिष्ठा। इसके माध्यम से पाषाण भगवान संज्ञा को प्राप्त हो जाता है और उन्हें मंदिरों में विराजमान किया जाता है। जिनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा नहीं हुई और कदाचित् वे लोक में भगवान संज्ञा को प्राप्त हो जायें तो क्या तुम उन्हें भगवान स्वीकार करोगे? नहीं। क्योंकि भगवान बनने के दो ही मार्ग हैं। चेतन आत्मा तो **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** ऐसे रत्नत्रयस्वरूप निज आत्मा का आश्रयकर भगवान बनता है और पाषाण के लिए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा अनिवार्य है। कोई भगवान की प्रतिमा विराजमान करना चाहता है और जयपुर से प्रतिमा लेकर आ जाये, मंदिर में या कहीं भी किसी भी स्थान पर उसको रख दिया जाये। लेकिन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा नहीं हो तो क्या आप उसे भगवान मानकर पूजेंगे? नहीं पूजोगे, निर्णय पक्का है।

ध्यान रखो! यदि उसी प्रतिमा की पंकल्याणक प्रतिष्ठा हो जाए तो आप उसे भगवान मानकर पूजेंगे कि नहीं पूजेंगे? अवश्य ही आप उनको नमन-वंदन करेंगे। अर्चा-पूजा करेंगे। क्यों करेंगे? क्योंकि जिस विधि से भगवान बनाया जाता है वह विधि संपूर्णतया यहाँ पर सम्पन्न की गयी है। इसके अलावा जहाँ-जहाँ यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न नहीं की गई है वहाँ-वहाँ क्या भगवत् संज्ञा है? नहीं है। जहाँ भगवत् संज्ञा ही नहीं वहाँ हम भगवान मानकर के नमस्कार कैसे कर सकते हैं?

एक बात और ध्यान रखना, जिन जीवात्माओं ने पूर्व में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को अंगीकार करके भगवत्ता को प्राप्त किया है, भगवान संज्ञा को प्राप्त किया है उन्हीं की पाषाण में प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न की जाती है। जिन्होंने ऐसे मोक्षमार्ग को स्वीकार नहीं किया है और जो संसारी हैं। और कैसे हैं? **जे रागद्वेष मल करि मलीन**। जो रागी हैं, द्वेषी हैं, क्रोधी हैं, मोही हैं, लोभी हैं इन सब दोषों से युक्त हैं। यदि आपका पड़ौसी आपके साथ राग-द्वेष रखता

हो तो आपको वह भला आदमी मालूम पड़ेगा क्या? नहीं पड़ेगा। यदि कोई देव, भगवान की संज्ञा भी धारण करे और राग-द्वेष भी करे, जब तुम्हें अपना पड़ौसी अच्छा नहीं लगता है तो वह देव तुम्हारे लिए भला करनेवाला कैसे हो सकता है? इसलिए कहा है- **'जे राग-द्वेष मल करि मलीन'** जो रागी हैं द्वेषी हैं, क्रोधी हैं, मोही हैं, लोभी हैं, मायावी हैं, छल-कपट मायाचार सबका उपयोग करते हैं।

जब कभी आपको अपना काम निकालना होता है तो आप क्या बोलते हो? अपना काम बनता तो...। ये ही तो कहते हो। ऐसे ही जो देव संज्ञा को धारण करनेवाला अपने काम को बनाने के लिए छल-कपट, मायाचार, धोखा सबका उपयोग करे बताइये वो भगवान हो सकता है? देव और देवाधिदेव दोनों में अन्तर है। ध्यान रखना! अच्छे से समझ लेना क्योंकि मिथ्यात्व को त्यागे बिना, सम्यग्दर्शन को प्राप्त किये बिना इस आत्मा का न कभी हित हुआ है और न कभी होनेवाला है। जो राग-द्वेष मलों से मलिन हैं ऐसे क्रोधी, मोही, लोभी, अठारह दोषों से युक्त देवसंज्ञा धारी भगवान कैसे हो सकता है? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है-

क्षुत्पिपासा जरातङ्क जन्मान्तक भयस्मया।
न राग-द्वेष मोहाश्च, यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।।6।।

यहाँ सच्चे देव का लक्षण कहा गया कि वो अठारह दोष से रहित होना चाहिए। और यदि कोई ऐसा मानें कि क्षुधा भी है, तृषा भी है यानि भूख भी लगती है भगवान को। प्यास भी लगती है भगवान को। बुढ़ापा भी आ जाता है। मरण भी हो जाता है। जन्म भी धारण करते हैं। रोग-बीमारी भी हो जाती है। भय भी लगा हुआ है। अभिमान भी अन्दर बसा हुआ है। राग, द्वेष, रतिभाव बना हुआ है। अरतिभाव बना हुआ है। खेदभाव आता है। चिन्ता होती है। स्वेद आता है, पसीना आता है इत्यादि। अगर किसी व्यक्ति को भयंकर क्रोध आ जाये तो कई बार सर्दियों में भी पसीना आ जाता है। अथवा भयंकर गर्मी पड़ रही हो तो भी पसीना आ जाता है। पसीना तो शरीर से निकलनेवाला तत्त्व है। जो ऐसे शरीर को धारण करनेवाले हैं। राग-द्वेष से युक्त हैं। जनम-मरण करनेवाले हैं। जिन्हें भूख, प्यास, क्षुधा आदि की वेदना, भय आदि सब कुछ लगा हुआ है। ध्यान रखना, वह स्वर्ग का देव तो हो सकता है लेकिन जिसे हम मोक्ष कहते हैं ऐसे मोक्ष में रहनेवाले, मुक्ति को प्राप्त होनेवाले देवाधिदेव को नहीं माना जा सकता है। एक तो होता

है स्वर्ग का देव और दूसरे हैं मोक्ष को प्राप्त देवाधिदेव यानि भगवान। जो स्वर्ग में रहनेवाला देवता है वह तो अपनी तरह ही होता है अन्तर सिर्फ इतना है कि अपने शरीर में अनेकप्रकार के रोग बीमारियाँ ये सब कुछ होता है भावप्राभृत में कहा भी है-

एक्केक्कंगुलिवाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया।।37।।

अर्थात् हे जीव! मनुष्यों के एक-एक अंगुल में छियानवे रोग होते हैं फिर समस्त शरीर में कितने रोग कहे गये हैं सो कह, अर्थात् इसका अनुमान तू स्वयं लगा।।37।।

इसी के अंतर्गत कहा है-

पंचेव य कोडीओ भवंति तह अट्ठसट्ठिलक्खाइं।
णवणवदिं च सहस्सा पंचसया होंति चुलसीदी।।

अर्थात् पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग शरीर में होते हैं।

जो स्वर्ग का देव होता है उसके शरीर को वैक्रियक शरीर कहते हैं। उसके शरीर में अपने शरीर की तरह भले ही रोग बीमारियाँ नहीं होती हों, लेकिन जैसे हम सब जनम-मरण करते हैं ऐसा ही जनम-मरण देव भी करते हैं। जैसे भूख आदि अपने को लगती है ऐसे ही स्वर्ग में रहनेवाले देवताओं को भी भूख आदि की वेदना होती है। जैसे हम सब राग-द्वेष करते हैं ऐसे ही वे देव भी राग-द्वेष करनेवाले होते हैं। जैसा अपने को भय लगने लग जाता है। डर लगने लग जाता है। ऐसा ही भय उन्हें भी लगता है। इसलिए स्वर्ग के देव अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सहित होते हैं। जिसे डर होगा वही तो अस्त्र-शस्त्र रखेगा। जिसे कोई डर नहीं होगा वो अस्त्र-शस्त्र क्यों रखेगा?

ध्यान रखना, जो देवाधिदेव हैं, भगवान हैं उन्हें इसलोक में किसी से अब कोई डर नहीं होता। जिसने मृत्यु को जीत लिया हो अब उसे डर किस बात का? आदमी मरने से ही तो डरता है कि मैं मर न जाऊँ। और जो मरने से डरता है वह अनेक प्रकार के उपाय करता है। भोजन, पानी औषधि भी इसीलिए लेता है। और भी अनेक प्रकार के इंतजाम करता है। यह सब

इसलिये करता है कि मैं मर न जाऊँ। लेकिन संसार में तू है तो तुझे जन्म-मरण करना ही पड़ेगा। आपको यह पता हो कि स्वर्ग में रहनेवाले देव के गले में एक माला पड़ी रहती है और जब उसकी आयु छह माह शेष बचती है। तब गले की माला मुरझा जाती है। और उसे पता चल जाता है, अब मेरी आयु छह माह शेष है। अब मुझे स्वर्ग से च्युत होना पड़ेगा। मेरा यह स्वर्ग का वैभव छूट जायेगा। अब मुझे मरण करना पड़ेगा। जो स्वयं जन्म-मरण रोग से पीड़ित हो। रागद्वेष से जिसका चित्त मलिन रहता हो। जो स्वयं ही भय से ग्रस्त हो वह तुम्हारे कष्टों को, दुखों को दूर कैसे कर सकता है? वह तुम्हारे लिए हितकारी कैसे हो सकता है? वह भगवान की संज्ञा को कैसे प्राप्त हो सकता है? लेकिन तुम तो यही कहते हो न, भगवान तो सब बराबर होते हैं।

अरे ये तो विचार करो, एक तो मोक्षगति को प्राप्त देवाधिदेव हैं। और एक स्वर्ग का देवता है। जिसने अपने किन्हीं भी दोषों का अभाव नहीं किया है। मात्र पुण्य को प्राप्त होने से उसने देव आयु का बंध किया और वहाँ का देवता बन गया।

जे रागद्वेष मल कर मलीन, वनिता गदादि जुत चिन्ह चीन।

स्वर्ग में देव की देवियाँ भी होती हैं। एक-एक देव की अनेकों देवियाँ होती हैं। जैसे यहाँ पर स्त्रियाँ होती हैं। ऐसे ही वहाँ पर देवियाँ होती हैं। अन्तर क्या है? जो मोक्षगति को प्राप्त हुए भगवान हैं उनकी कोई देवियाँ होती हैं क्या? वे तो इन सब प्रकार के दु:खों से दूर हो गये हैं। जिसके भीतर का कामभाव नष्ट हो चुका हो, ध्यान रखना उसे स्त्रियों की कोई आवश्यकता नहीं है। जो काम रोग से पीड़ित हैं वासना से पीड़ित हैं, वे ही स्त्रियों का आश्रय लेते हैं। और जो आत्मा के स्वभाव को प्राप्त होकर ब्रह्मचर्य को प्राप्त हो चुके हैं। स्वभाव में लीन हो चुके हैं। ध्यान रखना, उनके साथ स्त्रियाँ नहीं होती। स्वर्ग में देव अनेक स्त्रियों का स्वामी होता है। यानि देवियों, इन्द्राणियों, अप्सराओं का स्वामी होता है।

विचार करना! जो देवी-देवता अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सुशोभित हो रहे हैं। अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए हैं। आचार्य भगवंत कहते हैं ये मोक्षगति को प्राप्त होनेवाले कोई भी भगवान नहीं हैं। यह देव मोक्षगति को प्राप्त हुए भगवान के उपासक हो सकते हैं। उनके चरणों

के उपासक तो हो सकते हैं। लेकिन ये स्वयं भगवान नहीं हो सकते। इसलिए **'जे हैं कुदेव तिनकी जु सेव'** ऐसे जो कुदेव हैं उनकी जो सेवा करते हैं वे कुदेवोपासक मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

यहाँ प्रश्न है कुदेव और मिथ्यादृष्टि देव में क्या अंतर है ? इसका समाधान यह है कि कुदेव यह चार निकाय के देवों में से व्यन्तर देवों में पाया जानेवाला एक भेद है। सभी देव कुदेव नहीं होते। व्यंतरों का भेद कुदेव यह अत्यन्त विषयाभिलाषी और जिनाराधना के लिए निषिध्य होता है। इन्हें जिनालयों में प्रवेश की आज्ञा नहीं होती है। ये वृक्ष, नदी, वन, पहाड़ आदि स्थानों पर अथवा मिथ्या-आयतनों में रहकर अपनी पूजा करवाते हैं। जबकि मिथ्यादृष्टि देव नवग्रैवेयक तक भी पाये जाते हैं और जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं।

विचार करना, आप लोग कुलदेवता को मानते हैं? कुलदेवता, अरे सोचो जरा तुम जिसे कुलदेवता कहते हो वो तुम्हारे कुल का देवता कैसे हो सकता है? तुम्हारे जैनकुल के देवता कौन हैं? अगर तुम्हें मोक्षमार्ग का ज्ञान हुआ हो और मोक्षमार्ग पर चलने की भावना हो, संसार से छूटने की भावना हो, सच्चे जिनेन्द्रदेव के सच्चे स्वरूप का श्रद्धान हुआ हो, तो तुम्हारे जैनकुल के देवता जिनेन्द्रदेव हैं। और यदि तुम्हें अपनी आत्मा के हित का ज्ञान नहीं हुआ, सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ और तुमने अगर जिनेन्द्रदेव को भी ऐसा माना कि वे हमारे कुलदेवता हैं। तो आचार्य कहते हैं कि तुम अभी सम्यग्दृष्टि नहीं हो। भले ही तुम सच्चे देव को पूजते हो, तो भी तुम सम्यग्दृष्टि नहीं हो। तुम अभी मिथ्यादृष्टि हो।

तिलोयपण्णत्ति में आया कि जैसे ही कोई देव स्वर्ग में उत्पन्न होता है। अन्य परिचारक देव अपने हाथ में स्नान आदि की सामग्री लेकर खड़े हो जाते हैं। कहते हैं- भो देव! आप स्नान करो और चलकर जिनेन्द्रदेव की आराधना करो, पूजा करो। ध्यान रखना, स्वर्ग में रहनेवाले जितने भी देवी- देवता हैं। वे सभी नित्य प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा-अर्चना अवश्य ही करते हैं। क्योंकि प्रत्येक देव के विमान में अकृत्रिम जिन चैत्यालय हुआ करता है। वे उन देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव की नित प्रति पूजा-अर्चना करते हैं। जन्म होते ही उस देव को वे अन्य देव स्नान कराकर जिनालय में ले जाते हैं वहाँ जाकर वह देव भगवान की अर्चा करता है।

सम्यग्दृष्टि देव जिनेन्द्र देव को समक्ष पाकर अत्यन्त रोमाचिंत आनन्दित होता हुआ हमारे पापकर्मों का क्षय हो अथवा हमारे समस्त कर्मों का क्षय हो। ऐसे कर्मक्षय की भावना से आराधना, पूजा, उपासना करता है। किसलिए? हमारे कर्मों का क्षय हो इसलिए। और जो मिथ्यादृष्टि देव होते हैं वे जिनेन्द्रदेव की पूजा-अर्चा तो करते हैं लेकिन उन्हें कुलदेवता मानकर पूजा करते हैं अत: वे मिथ्यादृष्टि बने रहते हैं।

सम्मत्तरयण - जुत्ता, णिब्भर - भत्तीए णिच्चमच्चंति।
कम्मक्खवण-णिमित्तं, देवा जिणणाह - पडिमाओ।।3-53।।

कुलदेवा इदि मण्णिय, अण्णेहिं बोहिया बहुपयारं।
मिच्छाइट्ठी णिच्चं, पूजंति जिणिंद-पडिमाओ।।3-54।।

अर्थात् सम्यक्त्व रत्न से युक्त देव तो कर्म क्षय के निमित्त नित्य ही अत्यधिक भक्ति से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं। किन्तु सम्यक्त्वी देवों से सम्बोधित मिथ्यादृष्टि देव भी कुलदेवता मान जिनेन्द्र प्रतिमाओं की नित्य ही नाना प्रकार से पूजा करते हैं।।53-54।।

बंधुओ ध्यान रखना, अगर तुम्हें चार गतियों-मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति, नरकगति और देवगति का श्रद्धान है और चारों गतियों के जीव अलग-अलग जाति के होते हैं, ऐसा ज्ञान है तो मनुष्य जाति में कुलदेवता कैसे हो सकता है? तुम कहते हो हमारे पुरखे पूर्वज हैं।

अरे जरा सोचो तो, जो व्यक्ति जैसे कर्म करता है उसे उस कर्म के अनुसार ही गति मिलती है। बात पक्की है कि नहीं। जो जैसे कर्म करता है उसे वैसी ही गति मिलती है प्राप्त होती है।

''**कर्म प्रधान विश्व करि राखा- जो जस करहिं सो तस फल चाखा।**'' यह विश्व, कर्म प्रधान है जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है। वह वैसे ही कर्मों के फल को भोगता है। अब ये बताओ? क्या ये बिल्कुल पक्की बात है कि तुम्हारे पूर्वज मरण को प्राप्त हुए और व्यन्तर बनकर तुम्हारे कुलदेवता बन गये।

कैसे व्यक्ति हो तुम? सोचो जरा! तुम्हारे पूर्वज यानि पिताजी, दादाजी जो भी हों विचारे खटिया पर पड़े रहे, उस समय किसी ने कुछ पूछा तक नहीं, कि एक गिलास पानी पी लो।

कभी उनकी सेवा-सुश्रुषा नहीं की। अगर बेचारे को रोग बीमारी हो गई और खाँसने लग गया तो तुमने दो बातें और सुना दीं। बुड्ढा कब तक जीता रहेगा? मरता क्यों नहीं है। उससमय तुम अपने पूर्वजों से ऐसे शब्द बोलते रहे। और जब बेचारा मर गया तो तुम अगरबत्ती लगाकर उसकी पूजा कर रहे हो।

वाह रे बुद्धिमानो! अरे जीते जी उनके लिये तुमने अगर कान में णमोकार मंत्र सुना दिया होता तो उस जीव की सद्गति हो जाती। उन्हें जीते जी तो परमात्मा का नाम नहीं सुना पाये और मरने के बाद चबूतरा बनाकर उनकी पूजा उपासना कर रहे हो। कहीं ये सोचकर तो नहीं करते हो कि हम तुम्हारी कुछ सेवा नहीं कर पाये तो कहीं तुम आ न जइयो। हमें परेशान न करियो।

अरे भाई! उस जीव ने उस गति में रहते हुए जो आयुकर्म बाँधा होगा वो उसी गति में जायेगा। और व्यक्ति अज्ञानता के कारण न जाने कितने कुदेवों को मनाता फिरता है। पूजता फिरता है। ये नहीं सोच पाता कि वास्तव में भगवान हैं कौन? कोई कुलदेवता पूज रहे हैं, कोई पता नहीं कितने देवता पूज रहे हैं? लेकिन फिर भी जीवन में शान्ति नहीं आ रही है। इसलिए भक्तामर स्तोत्र में आचार्य भगवन् मानतुंग स्वामी ने कहा-

मन्ये वरं हरि हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन् मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि।।21।।

आचार्य श्री मानतुंग स्वामी कहते हैं कि हे भगवन्! ये तो अच्छा रहा कि मैंने आप जैसे देवाधिदेव को देखने से पहले दुनिया के जितने भी देवता रहे, या लोकमान्य देव जितने भी रहे मैंने सबको देख लिया। उनको देखने के बाद अब आपको देखा है, इसलिए अब मेरा मन आप में ही सन्तुष्ट हो गया है। "**किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः।**" भगवन्! आपको अगर मैं पहले देख लेता तो फिर मैं अन्य को कैसे देख पाता।

और कई बार ऐसा हो जाता है। किसी-किसी के मन में संशय बना रहता है कि अब भगवान तो पहले ही मिल गये और बाद में उसको ऐसा लगा कि कहीं चमत्कार हो रहा है।

फिर व्यक्ति अपनी श्रद्धा को डावाँडोल करता है। इसलिए मानतुंग स्वामी कहते हैं–हे भगवन्! अच्छा रहा कि मैंने आपको देखने से पहले सबको देख लिया। अब मेरा मन आप में ही संतुष्ट हो गया है और अब जन्म-जन्मान्तर में भी भव-भवान्तर में भी कोई दूसरा देव मेरे चित्त का हरण नहीं कर सकता है।

अगर कोई ग्राहक सब दुकानों पर घूमने के बाद जिस पर वास्तव में क्वालिटी (Quality) मिलती हो उस दुकान पर आ जाये और एकबार अगर वह क्वालिटी (Quality) का माल लेकर चला जाये तो फिर उसे ज्यादा घूमने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर तो वह सीधा सेठजी के पास जाता है। और तो और अपने बच्चों से भी कह देता है, बेटा भिण्ड जाना, फलाने सेठजी के यहाँ से ही सामान लेकर आना। वहाँ क्वालिटी (Quality) से कोई समझौता नहीं है।

ऐसे ही जिसने वीतरागी देव, सच्चे देव, देवाधिदेव की क्वालिटी (Quality) को पहचान लिया हो, ऐसा वह जिनेन्द्र भक्त श्रद्धावान भक्त कहता है। अब क्वालिटी (Quality) के साथ कोई समझौता नहीं। इसलिए बंधुओ विचार करना, चिंतन करना, हमारी आत्मा में अभी सच्चे वीतरागी देव की श्रद्धा है या रागी-द्वेषी मलिन देव की श्रद्धा है।

जे राग द्वेष मल कर मलीन वनिता गदादि जुत चिन्ह चीन।

जो रागद्वेष मल से मलीन है और स्त्री एवं गदा आदि शस्त्र से युक्त है वह कुदेव है।

जो कुदेव हैं उनकी जो सेवा करता है। कौन करता है? मूढ़ जीव करता है। अज्ञानी करता है। इससे कभी भी संसार परिभ्रमण छिदता नहीं है संसार परिभ्रमण मिटता नहीं है अपितु संसार परिभ्रमण और अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। इसतरह यह कुदेव का स्वरूप है।

अब सच्चे देव का स्वरूप जानो। कौन है सच्चा देव?

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।।

'जिसने राग द्वेष कामादिक जीते' जिसने रागद्वेष को जीत लिया है। आप जिनेन्द्र मंदिर में, जिनालय में, भगवान के पास आते होंगे। आप श्रीफल लेकर भी कभी आये होंगे? भगवान के चरणों में आपने श्रद्धाभाव से समर्पित किया होगा लेकिन कभी ऐसा भी हो गया होगा कि आप 2 दिन, 4 दिन, 15 दिन भगवान के पास न भी आये होंगे तो भी भगवान ने न तुम्हें कभी कोई सपना दिया होगा। न तुम्हारा कोई अहित किया होगा। न तुम्हारा कोई बिगाड़ किया होगा।

और यदि तुम अन्य जगह कहीं पर भी जाते थे। जो फिक्स (Fix) दिन था उस दिन तुम जाते थे। और कभी कोई कारण बन गया, घर में कभी कोई प्रतिकूलता बन गई, या तुम भूल गये, प्रमाद हो गया, तुम वहाँ पर नहीं जा पाये, तो तुम कहते हो कुछ गड़बड़ होने लगी। भगवान तो गड़बड़ करता नहीं। और भगवान ही गड़बड़ करने लग जाये तो कैसा भगवान? भगवान किसी को दुख देता नहीं और भगवान ही दुख देने लग जाये तो कैसा भगवान?

अरे भैया! कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे देव की श्रद्धा करो जहाँ जाने पर विपत्ति दूर होती हो। और यदि न भी जा पायें तो विपत्ति आती नहीं हो। ऐसे द्वार का आश्रय करना चाहिये। सच्चे देव का आश्रय करना चाहिये। कैसे हैं सच्चे देव? **जिसने रागद्वेष कामादिक जीते**। जिन्होंने राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध, लोभ, क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा, जन्म-मरण इत्यादि जो अठारह प्रकार के दोष जिनागम में कहे गये हैं इन सब दोषों को जीत लिया है ऐसे वह वीतरागी देव कहलाते हैं।

'सब जग जान लिया' और जिनके ज्ञान में सम्पूर्ण लोकालोक दर्पण में बिम्ब की तरह प्रतिभासित होता हो, झलकता हो, ऐसी सर्वज्ञता को जिन्होंने पा लिया है। स्वर्ग का देव अवधिज्ञान से जानता है। अवधि का तात्पर्य होता है सीमा। तो उसके ज्ञान की एक सीमा होती है। जो देवाधिदेव हैं। केवलज्ञान जिन्होंने प्राप्त कर लिया है। उनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। वे लोकालोक के समस्त पदार्थों को जाननेवाले हैं। इसलिए उनको सर्वज्ञ कहते हैं। क्या कहते हैं? सर्वज्ञ। सम्पूर्ण को जाननेवाले। लोक में ऐसे कोई भी पदार्थ नहीं जिन पदार्थों की द्रव्य-गुण-पर्यायों को केवली भगवान न जानते हों इसलिए सर्वज्ञ हैं।

'सब जीवों को मोक्षमार्ग का' मोक्षमार्ग, दुख से छूटने का मार्ग। चाहे इसभव सम्बन्धी दुख हों, चाहे परभव सम्बन्धी दुख हों। जिन्होंने दुख से छूटने का मार्ग यानि मोक्षमार्ग उसका।

'निस्पृह हो उपदेश दिया' निस्पृह, कोई स्पृहा, चाहना नहीं। यदि आप हमारे लिए 21 दिन आकर पूजोगे तो हम तुम्हारे लिये उपदेश देंगे ऐसी कोई स्पृहा चाहना नहीं है।

इसलिए बंधुओ! जो सच्चे भगवान हैं अरिहंत देव हैं। जो समवशरण में बैठते हैं। जिन्होंने कैवल्यज्ञान प्राप्त किया है। वीतरागता प्राप्त की है। वे ही हितोपदेशी होते हैं। तीन गुण होने चाहिये वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशिता। ये तीन गुण जिनके पास हैं। और जिनके पास न अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र हैं और न कोई स्त्री आदि हैं इन सबसे रहित हैं। अरिहंत भगवान अनंतदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य ऐसे अनंत चतुष्टय से सुशोभित होते हैं। बहिंरग लक्ष्मी समवशरण, अष्ट प्रतिहार्य इनसे युक्त होते हैं। ऐसे अरिहंत देव समवशरण सभा में सच्चे धर्म का उपदेश देते हैं। लेकिन कैसे देते हैं? **'निस्पृह हो उपदेश दिया'** अर्थात् बिना किसी स्पृहा के।

बंधुओ ध्यान रखना! आजकल तो उपदेश भी नोटों में बिकने लगा है। जो उपदेश नोटों से मिलता हो ऐसा उपदेश कार्यकारी नहीं है। मुझे आश्चर्य होता है। **साधु संज्ञा को धारण करनेवाला प्रवचन, उपदेश करता है। वैरागी, सन्यासी, त्यागी इन सब उपाधियों को धारण करता है, विशेषताओं को धारण करता है फिर भी उपदेश देने, प्रवचन करने के लाखों रुपये लेता है। अगर साधु है तो धन की क्या आवश्यकता है? पैसे की क्या आवश्यकता है? वह दूसरों को बताएगा 'लोभ नहीं करना चाहिए।' धन सम्पदा जब तक तेरे साथ है, तब तक परिग्रह है। परिग्रह नरक आयु का कारण है। अहो! गृहस्थ के पास परिग्रह नरक का कारण और साधु-सन्यासी के पास क्या मुक्ति का कारण?** यदि कोई गृहस्थ कह दे, महात्माजी! धन-संपदा जब दुःख का कारण है, तो आप क्यों लेते हैं? ऐसा सुन साधु कहे कि श्राप दे दूँगा।

साधु महाराज और श्राप। हे भगवान्! ये कैसा साधुत्व है? साधु तो वह होता है जो प्रत्येक जीव के कल्याण की भावना रखता है। लेकिन कोई इच्छा, कोई स्पृहा, कोई चाहना, कामना नहीं रखता। अगर कोई गरीब आदमी हो और वो तुम्हारी रसीद नहीं बनवा पाये तो बेचारा उपदेश ही नहीं सुन सकता। उसका कल्याण ही नहीं हो सकता।

ध्यान रखो, साधु वह है जो अपने उपदेश के बदले में धन सम्पदा, पैसे, रूपये की चाह नहीं रखता है। और यदि कोई कहे- कि मेरे उपदेश सुनना है तो पहले इतने की रसीद

बनवालो, तो कह देना, भैया! मुझे उपदेश नहीं सुनना है। इस उपदेश से अच्छा तो उपदेश न सुनना है। क्यों? क्योंकि बीज जैसा होगा वृक्ष भी वैसा ही होगा।

अगर कोई भीतर चाह रखता है तो वो कभी धर्म की बात निर्भीकता से नहीं कह सकता। फिर तो आयोजक उससे जो कहलवाना चाहेंगें उसे वही कहना पड़ेगा। क्यों कहना पड़ेगा? नहीं तो आयोजक, ओ हो! अर्थ का सवाल है। जबकि जिनेन्द्र भगवान का उपदेश कैसा होता है? हितकारी होता है कोई स्पृहा नहीं। **'बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।'** कवि कहता है– फिर तुम किसी भी नाम से पुकार लो, चाहे बुद्ध कह दो, जिन कह दो यानि जिनेन्द्रदेव कहदो, वीर–महावीर कह दो, हरि, हर, ब्रह्मा आप किसी भी नाम से पुकार लो लेकिन ये तीन विशेषताएँ अवश्य होना चाहिए। बात समझ में आ रही है कि नहीं आ रही। ऐसा तो नहीं कि तुम किसी को भी भगवान कह दो।

एक बार मैंने सुना था, कोई व्यक्ति बता रहा था कि महाराज श्री! एक जगह रास्ते से जितने भी ट्रकवाले, वाहनवाले गुजरते हैं। तो उन्हें वहाँ पर भौंपू बजाना पड़ता है। और अगर उसने भौंपू नहीं बजाया तो फिर कोई भी दुर्घटना घट सकती है। मैंने कहा– ये तो भौंपू देव हो गया। अगर ये भगवान है तो कभी दूसरों का बुरा नहीं चाहेगा। इस संसार में धरती पर रहनेवाला एक इंसान अगर दीन–दुखियों का भला करता हो तो उसको भी लोग कहने लगते हैं ये तो भैया इंसान के रूप में भगवान हैं। क्यों? क्योंकि ये हमेशा दीन–दुखी जीवों का भला करते हैं? असहायों की सहायता करते हैं। निराश्रितों के लिये आश्रय देते हैं इसलिए ये तो इंसान के रूप में भगवान हैं। और जो दीन–दुखियों की सहायता करना तो दूर की बात, उनको सता–सताकर, दुख, कष्ट, पीड़ा देकर वसूली करता हो, क्या आप उसे इंसान के रूप में भगवान कहेंगे? आप कहोगे ये तो इंसान के रूप में शैतान है।

फिर विचार करो, जो भौंपू देव दूसरों को पीड़ा, कष्ट, दुर्घटना देता हो, वह भगवान कैसे हो सकता है? उसकी पूजा, अर्चा, आराधना, कैसे की जा सकती है?

'भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो'

इस तरह जो वीतरागी हैं सर्वज्ञ हैं, हितोपदेशी हैं, वही सच्चे देव हैं। हमें सच्चे देव और कुदेव में अंतर ज्ञातकर सच्चे देव का ही श्रद्धान करना चाहिए, और कुदेव में भगवान की मिथ्या मान्यता का त्याग करना चाहिए।

आपने सच्चे देव का स्वरूप जाना। इस कलिकाल में यह आपका परम सौभाग्य है अतः सम्यग्दर्शन में दृढ़ बनना।

मोक्षमार्ग अपनाना है, सम्यग्दर्शन पाना है।
आतमरुचि जगाने को, भेदज्ञान प्रगटाना है।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 4
(तृतीय प्रवचन)

●

द्रव्यलिंग, भावलिंग और कुलिंग में भेद

08.08.2013

भिण्ड

(मोक्ष का मूल)

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छयववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-महारुक्खमूलं**) मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल (**सम्मत्त-रयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छय-ववहार-सरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेदवाला (**जाणिज्जदि**) जाना जाता है।

अर्थ-मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन रत्न ही सारभूत है, ऐसा कहा गया है। वह सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन रूप से दो भेदवाला जाना जाता है।

भावलिंगी, द्रव्यलिंगी एवं कुलिंगी साधक और साधना का फल

8

रयणोदय

सच्चे गुरु को पहचानो, कुगुरु को कुगुरु जानो।
सद्‌गुरु की शरणा पाकर, मोक्षमार्ग सच्चा मानो।।
सद्‌गुरु बिन कोई, हो-हो-2, भवपार न जाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जीवन में सर्व संपदा की प्राप्ति हो जाये, सभीप्रकार के अनुकूल साधन मिल जायें लेकिन सम्यग्दर्शन प्राप्त न हो तो वे सभी साधन जीव के लिए मात्र दु:ख के ही कारण होते हैं। और किसी को बाहरी साधन कदाचित् न भी उपलब्ध हों लेकिन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाये तो

वह जीव अपने को अनंत सुखी बना लेता है। जिसे अपने आत्मा के अनंत सुख का विचार है आत्मा के अनंत सुख का श्रद्धान है ऐसा जीव ही एक दिन संसार के दु:ख से मुक्त हो पाता है।

बंधुओ! आत्मा का आश्रय करने से परमात्मपने की प्राप्ति होती है। लकिन जबतक आत्मा का ज्ञान न हो तब- तक यह जीव अपने निज आत्मा का आश्रय कैसे करे? किसी के पास दौलत है, सम्पदा है और घर में कोई व्यक्ति बीमार है। वह उसका इलाज कराना चाहता है लेकिन उसे घर में रखी हुई धन-सम्पदा का ज्ञान न हो तो क्या वह उस बीमार व्यक्ति का इलाज करा सकता है? ऐसे ही आत्मा के आश्रय से परमात्मा बना जाता है लेकिन जिन्हें आत्मा का ज्ञान ही न हो वे परमात्मा कैसे बन सकते हैं? और आत्मा का ज्ञान करने के लिए आत्मा का श्रद्धान करना आवश्यक है। क्योंकि जब तक श्रद्धान न होगा तबतक ज्ञान भी सच्चाज्ञान नहीं हो सकता। उसमें संशय खड़े हो सकते हैं सन्देह खड़ा हो सकता है। और अगर श्रद्धा होगी तो फिर कोई सन्देह नहीं होगा, कोई शंका नहीं होगी, कोई संशय नहीं होगा।

इसलिए आत्मज्ञान आत्मश्रद्धानपूर्वक होता है और आत्मा का श्रद्धान करने के लिए हमें ऐसे सद्गुरु की तलाश है, ऐसे सच्चे देव की तलाश है, ऐसे सच्चे शास्त्र की तलाश है, जिनके निमित्त से हमें निज आत्मा का ज्ञान हो सके। क्योंकि आत्मा कैसा है? आत्मा का स्वरूप कैसा है? परमात्मा कैसा है? परमात्मा का स्वरूप कैसा है? इन सबका निर्णय, ज्ञान हमें सद्गुरु के निमित्त से ही हो सकेगा।

जीव अनादि से मिथ्यादृष्टि है उसे अपने आत्मा का ज्ञान, आत्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं है। एक तो आत्मा का विचार नहीं है और कदाचित् परमात्मा बनने का विचार कर भी ले, तो जब तक आत्मा का ही ज्ञान नहीं है फिर परमात्मा कैसे बन सकता है? क्योंकि आत्मा ही परमात्मा बनता है।

कोई व्यक्ति किसी घड़े को देखकर मन में विचार करे कि मैं भी घट बनाऊँगा। मैं भी घड़ा बनाऊँगा। लेकिन घड़ा बनाने के लिए उसे मिट्टी का ज्ञान न हो, मिट्टी का चिंतन नहीं हो, मिट्टी का विचार ही न हो तो वह मिट्टी से घड़ा कैसे बना सकता है? कोई व्यक्ति घड़ा देख सोचता हो कि मैं भी ऐसा ही सुन्दर घड़ा बनाऊँ लेकिन घड़ा बनता किससे है? इसका ज्ञान न हो।

जैसे–घड़ा मिट्टी का बनता है अब यदि मिट्टी का ज्ञान न हो तो क्या वह घड़ा बना लेगा? अगर आपको मिट्टी का ज्ञान करना आवश्यक है, और यह बात पक्की है कि मिट्टी ही घड़ा बनेगी रेत घड़ा नहीं बनेगा। तो जैसे मिट्टी ही घट पर्याय को प्राप्त होती है उसी प्रकार आत्मा ही परमात्मा बनता है। परमात्मा कौन बनता है? आत्मा ही परमात्मा बनता है।

ध्यान रखना, जब आत्मा ही परमात्मा बनता है तो परमात्मा बनने के लिए हमें निज आत्मा का ज्ञान करना होगा। और आत्मज्ञान के लिये जिन्होंने आत्मा का ज्ञान किया है, आत्मा का अनुभव किया है, आत्मा का आश्रयकर निज आत्मा को परमात्मा बनाया है उनकी शरण में जाना होगा। क्यों? क्योंकि जबतक उनकी शरण प्राप्त नहीं होती तबतक हमें अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए आचार्य भगवन कुंदकुंद देव ने व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा है– सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, और सच्चे गुरु का श्रद्धान करो। क्योंकि यदि आत्मा में परमात्मा बनने की चाह पैदा हुई और सद्गुरु मिल जायें तो आत्मा का ज्ञान हो सकता है। और यदि सद्गुरु न मिलकर कोई भी खोटा गुरु मिल गया, गुरु नामधारी मिल गया, साधु नामधारी मिल गया या महात्मा नामधारी मिल गया उसमें वास्तव में महात्मापना, साधुपना, गुरुपना नहीं हो, ऐसे गुरु की शरण में चला गया तो उसका कल्याण होनेवाला नहीं है। उसे आत्मा–परमात्मा का ज्ञान होनेवाला नहीं है इसलिए सच्चे गुरु की शरण चाहिये। सच्चे गुरु की शरण प्राप्त करने के लिए सच्चे गुरु का स्वरूप भी जानना होगा और सच्चे गुरु का स्वरूप जानना है तो मिथ्या गुरु, कुगुरु का भी स्वरूप जानना होगा, जिससे निर्णय हो जाये कि कुगुरु और सुगुरु में क्या अन्तर है? इस बात का निर्णय हो जायेगा तो फिर सद्गुरु का जीव आश्रय करेगा और कुगुरु को छोड़ देगा, त्याग देगा।

बंधुओ! इस जीव ने अनेक बार गुरु का आश्रय भी करना चाहा लेकिन सद्गुरु का आश्रय न करके कुगुरु का आश्रय कर लिया। कुगुरु का आश्रय करके पाँच इन्द्रिय विषयों में ही तल्लीन रहा। उन्होंने मार्ग भी बताया तो राग–द्वेष का ही मार्ग बताया। संसार का ही मार्ग दिखाया लेकिन कभी भी मोक्ष का मार्ग नहीं बता पाया। मुक्ति का मार्ग नहीं बता पाया। ध्यान रखना, सद्गुरु का स्वरूप अगर जानना है तो कुगुरु का स्वरूप जानना आवश्यक है। छहढालाकार ने लिखा है–

अंतर रागादिक धरें जेह, बाहर धन अम्बर तें सनेह।
धारें कुलिंग लहि महत् भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।।

अन्तर रागादिक धरें जेह–जो अन्तरंग में राग, द्वेष, मोह का परिणाम रखते हैं और जिसके रागद्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ ये परिणाम हों, क्या वह सद्गुरु हो सकता है? वीतराग मार्ग में उसे सद्गुरु स्वीकार किया ही नहीं जा सकता क्योंकि वीतराग मार्ग में वीतरागता का आश्रय करनेवाला ही सुगुरु कहा गया है। जिसे वीतरागता से प्रयोजन नहीं है रागादिक भावों से ही प्रयोजन है वह बाह्य में कितना भी साधु का भेष धारण करले लेकिन वह अंतरंग से साधु नहीं हो सकता।

इसलिए आचार्य भगवन कहते हैं– कि सद्गुरु और कुगुरु का भेद जानो। जिसके अंतरंग में, हृदय में, मन में रागभाव बस रहा हो, मोहभाव बस रहा हो, द्वेषभाव बस रहा हो वहाँ साधु स्वभाव अर्थात् वीतराग भाव नहीं ठहरता। जहाँ राग होता है वहाँ द्वेष भाव अवश्य ही होता है। **'रागं यत्र पदं धत्ते, द्वेषं तत्र सो निश्चयः'** जहाँ राग अपना पैर रखता है वहाँ द्वेष नियम से होता है इसलिए जिसके अन्तरंग में रागादि भाव हो उसके अन्दर द्वेष आदि भाव भी विद्यमान होता है। महात्मा का भेष, साधु का भेष देखकर कोई यह न समझ बैठे कि यह सुगुरु है। कुगुरु और सुगुरु की पहचान करना सीखो। बुद्धि मिली है तो इस का उपयोग करना सीखो।

एक हुए आचार्य शांतिसागर जी। जिन्होंने दिगम्बरत्व को धारणकर साधुत्व का परिपालन किया। उनके तप–त्याग, ज्ञान की चर्चा सर्वत्र फैलने लगी। वे मुनिराज जिस डगर से जिस नगर से गुजर जाते, लोग उनके साधुत्व की प्रशंसा करने लग जाते। उनके साधुत्व को, उनके त्याग को, तप को श्रवणकर किसी नगर में रहनेवाले व्यक्ति के मन में यह विचार आया कि मैं भी घर–परिवार छोड़कर साधु बन जाऊँ।

जैसे साधु संगति में गुरु की संगति में आने पर तुम लोगों के मन में भी विचार आ जाता है कि हे भगवन्! ऐसी महामांगलिक पर्याय हमारी कब प्रगट हो? मैं भी कब निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा को धारणकर, भगवान महावीर के रूप को धारणकर धरती पर विचरण करूँ? उस व्यक्ति ने

आचार्य भगवन् शान्तिसागर के विषय में सुना तो विचार किया कि जैसे उन्होंने अपने घर का परित्याग कर दिया है वैसे ही मैं भी अपने घर का परित्याग करके साधु बनूँगा।

लोक में दो प्रकार के साधु बनते हैं एक तो जिन्होंने गृहस्थ आश्रम त्याग दिया वे पुनः आश्रम का निर्माण नहीं करते और दूसरे वे जो गृहस्थ आश्रम त्यागकर एक नये आश्रम का निर्माण कर लेते हैं और आश्रम में रहकर ही अपनी साधना करते हैं कहते हैं हम भी साधु हैं। दिगम्बर श्रमण मार्ग में गृहस्थ आश्रम का परित्याग करने के बाद पुनः आश्रम का निर्माण करने की आज्ञा नहीं है। यहाँ अगर एकबार अपने गृहस्थ आश्रम को त्याग दिया तो फिर आप आश्रम का निर्माण नहीं कर सकते।

उस व्यक्ति ने सुना कि शांतिसागर जी बहुत बड़े साधक तपस्वी हैं तो मैं भी गृहस्थ आश्रम को त्यागकर साधु बनूँगा और साधु बनकर मैं भी साधना करूँगा। उसने अपने घर-परिवार सबको त्याग दिया। घर-परिवार में लोगों ने समझाया कि मत जाओ। नहीं, अब तो मैं भी साधू बनूँगा ऐसा कहकर वह जंगल में चला गया और जंगल में उसने एक आश्रम बना लिया। आश्रम में रहते हुए वह अपनी इच्छानुसार तप साधना करने लगा।

एक दिन शांतिसागर जी मुनिराज उसी रास्ते से गुजरते थे तो उस साधु को पता चला। उसने कहा- अरे! जिनके विषय में सुनकर मैंने अपना घर-परिवार सब त्यागा है वो इस रास्ते से गुजरने वाले हैं आज तो मैं उन्हें अपने आश्रम में जरूर लाऊँगा। वह शांतिसागर जी मुनिराज के पास जाकर प्रार्थना करने लगा, निवेदन करने लगा, भगवन्! आप हमारे आश्रम में पधारें। मैंने अपना घर-परिवार, व्यापार, सम्पदा सब त्याग दिया है। आचार्य शांतिसागर जी मुनिराज उसकी बातों को सुनते रहे। जैसे ही उसका आश्रम निकट आया उसने विशेष निवेदन किया कि आप हमारे आश्रम में थोड़ा चलकर विश्राम करलें। मैं भी अपने आपको थोड़ा कृतार्थ समझूँगा। मेरा अहोभाग्य होगा। आचार्य शांतिसागर जी ने मन में विचार किया कि अब ये व्यक्ति इतना लग रहा है चलो थोड़ा सा मार्ग का श्रम है बैठकर उस को दूर करलुँ। आचार्य शांतिसागर जी महाराज उसके आश्रम में पहुँचे। वो तो अत्यन्त आह्लादित आनंदित हुआ।

उसने कहा- महाराज श्री! यहाँ पर मैं अपना भोजन बना लेता हूँ ये हमारा किचिन रूम (Kitchen room) है। और यहाँ पर बैठकर मैं अपनी तप-साधना करता हूँ इसलिए यह

हमारी तपस्थली है। और यहाँ पर मैं शयन-विश्राम करता हूँ इसलिए ये मेरा बेड रूम (Bed room) है। उसने आचार्य शांतिसागर जी महाराज को आश्रम के एक-एक कमरे के विषय में बताया, यहाँ पर बैठकर मैं अध्ययन करता हूँ, यहाँ शयन करता हूँ, यहाँ बैठकर स्नान करता हूँ, यहाँ बैठकर धर्मध्यान करता हूँ।

आचार्य शांतिसागर मुनिराज ने सब देखा और देखने के बाद वहाँ से विहार कर दिया। वह साधु भी पीछे-पीछे मुनिराज के साथ चल रहा था। उसने सोचा कि मैंने महाराज को सब बताया लेकिन महाराज ने कुछ नहीं कहा। जब रहा नहीं गया तो उसने आचार्य शांतिसागर मुनिराज से पूछ ही लिया, महाराज श्री! आप हमारी कुटिया में पधारे, आश्रम में पधारे, ये मेरा बड़ा सौभाग्य रहा। भगवन्! लेकिन एक बात तो बतायें आपको मेरा आश्रम मेरी कुटिया कैसी लगी? आचार्य शान्तिसागर जी मौन रहे आये। उसने सोचा हो सकता है कि अभी परमात्मा के नाम की जाप कर रहे हों इसलिए अभी मौन हो। थोड़ा आगे बढ़े, फिर पूछ लिया- महाराज श्री! आप इतना तो बतायें आपको हमारा आश्रम कैसा लगा? आचार्य शान्तिसागर जी मुनिराज फिर शान्त रहे आये। फिर थोड़ा आगे बढ़े, फिर उसने कहा- महाराज श्री! आपने हमारे आश्रम को हमारी कुटिया को अच्छी तरह से निहारा है देखा है आप एक बात बताइये आपको हमारा आश्रम हमारी कुटिया कैसे लगी? आप अगर दो शब्द भी बोल देंगे तो मेरा जीवन धन्य हो जायेगा।

आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने कहा- तूने एक आश्रम को त्यागकर दूसरा आश्रम बना लिया। तूने एक घर त्यागकर दूसरा घर बना लिया। तूने कौन सा बहुत बड़ा काम कर लिया? तू पहले बस्ती में रहता था अब जंगल में रहता है। वहाँ भी मकान में था यहाँ भी तू उसी घर-मकान में रहता है। तूने अपने इस साधुपन में पाया क्या है?

वो मन में विचार करने लगा कि ओहो! महाराज ने बिल्कुल सही कहा। एक कुटिया छोड़ी तो दूसरी कुटिया बनाली। पहले उस कुटिया में राग था अब इस कुटिया में राग है। अरे, राग तो तेरा ज्यों का त्यों बना हुआ है। तूने साधना के क्षेत्र में अभी प्राप्त किया ही क्या है? उसने सोचा महाराज ने बिल्कुल सही बात कही है। एक कुटिया में पहले मेरा राग था अब दूसरी

कुटिया में राग हो गया। मैं तो वहीं का वहीं हूँ। नहीं चाहिए ऐसी कुटिया। वह तुरन्त दौड़कर आश्रम पहुँचा आश्रम के किचिन रूम में गया। किचिन रूम में आजकल तो लाइटर चलता है माचिस का जमाना रहा हो या चकमक का जमाना रहा हो उसने तुरन्त एक तीली जलाई और जलाकर कुटिया को स्वाहा कर दिया।

जब कुटिया आग में जलकर राख हो गई, वह पुन: आचार्य भगवन् शांतिसागर मुनिराज के पास पहुँचा और बोला- भगवन्! अच्छा रहा आपने मुझे ऐसा सम्यक् उपदेश दे दिया। मैंने उस कुटिया को जला दिया है समाप्त कर दिया है। मुनिराज शांतभाव से सुन रहे थे। फिर वह बोला- महाराज श्री! अब तो मैंने उस कुटिया को जला दिया लेकिन कम से कम आप बता तो दें कि वो कुटिया बनी कैसी थी?

आचार्य शांतिसागर जी ने कहा- बाहर की कुटिया तो तूने जला दी लेकिन अभी तेरे भीतर की कुटिया नहीं जली है और जबतक तेरे भीतर की कुटिया नहीं जल जाती, नष्ट नहीं हो जाती, मिट नहीं जाती तबतक त्याग नहीं कहा जा सकता। तेरा आज भी उस कुटिया में रागभाव बना हुआ है तभी तू पूछ रहा है कि महाराज श्री! बता तो दो कि वह कुटिया कैसी थी? जबतक अन्तरंग में राग है तबतक साधुपना नहीं है। यह कुगुरु का लक्षण है सुगुरु का लक्षण नहीं है। **'अन्तर रागादिक धरें जेह'**, जो अन्तरंग में रागादिभाव को धारण करते हैं।

अगर किसी महिला ने 5000 रू. की साड़ी खरीदी है तो किस कारण खरीदी है? अन्तरंग में रागभाव आया इसलिए वह साड़ी खरीदी है। अगर अन्तरंग में रागभाव नहीं होता, तो इतनी कीमत देकर वह उस वस्तु को क्या खरीदती? ध्यान रखना, जो साधु होकर भी अन्तरंग में पाँच इन्द्रिय विषयक परपदार्थ विषयक रागभाव धारण करता है आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं अभी वह साधु नहीं है। क्या है? कुगुरु हो सकता है, सच्चा गुरु नहीं हो सकता, सद्गुरु नहीं हो सकता। तो **'अन्तर रागादिक धरें जेह, बाहर धन अम्बर ते सनेह'** और बाहर में धन से स्नेह रखता है। साधु बनने के बाद कभी धन को स्पर्श नहीं करना चाहिये। यदि अन्तरंग में धन की चाह है सम्पदा की चाह है रूपये पैसे की चाह है तो ध्यान रखना! वह साधु नहीं हो सकता, सच्चा साधु नहीं हो सकता।

भो श्रावको! कोई साधु तुमसे कहने लग जाये आहारदान के लिए 5100 रु. की रसीद कटा देना। अरे, साधु और आहारदान के लिए राशि लेता है। साधु आहार तो लेता है लेकिन कभी आहारदान में धन नहीं लेता। आहारदान में क्या लिया जाता है? आहारदान में क्या दिया जाता है।? यह विवेक साधु और श्रावक दोनों को होना चाहिए। बोलो, कभी आहारदान में दिया है 500 का नोट कि मुनिराज खड़े हों और कहो-मनशुद्धि, वचन शुद्धि, कायशुद्धि, महाराजश्री! 500 रूपये का नोट लीजिए। लिया जाता है क्या? कोई साधु लेगा क्या?

ध्यान रखो, हम इसे साधु की विकृति कहें या समाज की विकृति। अगर किसी साधु के पास आहारदान का पात्र रखा हुआ हो और तुम सच्चे श्रावक हो, तो उस पात्र को अन्यत्र रख देना, ये तुम्हारी व्यवस्था है। साधु अपनी व्यवस्था स्वयं नहीं कर सकता और जो अपनी व्यवस्था स्वयं करता हो वो साधु नहीं होता श्रावक होता है। इसलिए अगर तुम सच्चे श्रावक हो तो अपने सच्चे श्रावकत्व का परिचय देना। ये व्यवस्था तुम्हारी है साधु की नहीं है। विवेक लाओ, साधु को साधु बनाओ। साधु को सच्चा साधु रहने दो उसे शिथिलाचारी मत बना देना।

अगर आज तुमने आहारदान का पात्र रख दिया तो आहारदान के पात्र में जो आया हो उसे कौन गिनेगा? कौन व्यवस्था करेगा? और कदाचित् कोई उद्दण्ड आदमी आ जाये, उद्दण्ड बालक आ जाये और वो तुम्हारे आहारदान का पात्र उठाकर ले जाने लगे तो उसको कौन पकड़ेगा, कौन बचायेगा, विकल्प कौन करेगा? भाई करना तो पड़ेगा। अब व्यक्ति लेकर जाता है उठाये लिये जाता है। इसलिए तुम श्रावक हो अपने श्रावकपने का परिचय दो।

अगर कोई साधु उपदेश देता है कि आपको धर्मकार्यों में दान देना चाहिये तो ये साधु का उपदेश है लेकिन साधु को ही तुम देने लग जाओ तो यह श्रावक का अविवेक है। फिर क्या करेंगे साधु? कोई तो पिच्छी में लगाकर रखेगा, या कोई पुस्तकों में रखेगा, या फिर पेटी रखनी पड़ेगी तो फिर ये सुनना पड़ेगा पेटी वाले साधु, सुनने में अच्छा लगेगा? ये भगवान महावीर का मार्ग है, इस मार्ग में साधुजन श्रावक साधु को लोभ कषाय से बचाने के लिए त्याग का, दान का उपदेश देते हैं कि श्रावक का भी कुछ भला हो लेकिन श्रावक के द्वारा दिये हुए धनादि को स्वयं अंगीकार नहीं करते हैं।

भो श्रावको! अपने विवेक से जानना महाराजश्री को संयम की साधना में किस वस्तु की आवश्यकता है ? मैं उस वस्तु की पूर्ति करूँगा। ये हमारा धर्म है, वैयावृत्ति है, श्रावक का गुण है। लेकिन इतने धनवान मत बनना कि तुम साधु को भी धन देने लग जाओ। यदि तुमने साधु को धन दिया तो सुगुरु बना दिया या शिथिलाचारी बना दिया। किसने बनाया ? भो श्रावको! तुम धन नहीं देते तो क्या साधु जबरदस्ती तुम्हारी जेब से निकाल लेता ? इसलिए श्रावक को भी विवेकी होना चाहिये।

ध्यान रखो, अगर कोई साधु कदाचित् कह दें हमारे लिए एक गाड़ी चाहिये तो दे मत देना। नहीं तो साधु उसका ड्राइवर (Driver) हो जायेगा। भले ही वह गाड़ी में बैठकर ड्राइविंग (Driving) न करे लेकिन उसका माइंड (Mind) तो ड्राइविंग (Driving) करेगा ही। इसलिए ध्यान रखो, साधु को कभी गाड़ी आदि मत देना। फिर निर्ग्रंथ साधु के पास गाड़ी की कहाँ आवश्यकता है? ये तो पद-विहारी हैं और पद विहारी साधु 10 लाख की, 15 लाख की, 20 लाख की गाड़ी लेकर चले, विचार तो करो थोड़ा। यह श्रावक की अपनी व्यवस्था है कि साधु संघ विहार करता हो तो हमें कैसे कराना है? कैसे व्यवस्था बनानी है? श्रावक अपने आप सोचेगा।

मैं भिण्ड आया था कितनी गाड़ियाँ साथ लाया था? एक भी नहीं। तुम कितनी गाड़ी लेकर जाते थे? ये तुम्हारी व्यवस्था थी। ये श्रावक की व्यवस्था है कि हमें साधु की कैसे परिचर्या कराना है? कैसे सेवा करना है? कैसे वैयावृत्ति करना है? ये तुम्हारा अपना विवेक है। और यदि मैं ही अपनी गाड़ी लेकर चलूँ तो फिर तुम अपनी गाड़ी लेकर आओगे क्या? तुम तो ये कहोगे कि अपन तो चलो, महाराज की गाड़ी है। उसी में बैठकर अपन घूमेंगे सैर करेंगे। तुम तो मजे करने लग जाओगे। तुम साधु की सेवा थोड़े ही करोगे। फिर यह दिगम्बर धर्म, यह निर्ग्रंथ मार्ग, इसमें साधुजन ऐसे परिग्रह का संचय नहीं करते।

साधु की दृष्टि में धन नहीं होता उनकी दृष्टि में तो धर्म होता है। हाँ! उनकी दृष्टि में ज्ञानधन होता है। अगर कोई साधु स्वाध्याय करता हुआ दिख जाये तो कहना, अहोभाग्य! धन्य हैं ये साधक। ऐसे पंचमकाल में, ऐसे कलिकाल में, जिसकाल में निरन्तर भौतिकता की चकाचौंध

है। ऐसे काल में भी मुनिवर का ऐसा ज्ञान-ध्यानमय स्वरूप, मेरा तो बड़ा सौभाग्य है, अहोभाग्य है। धन्य हो गया हूँ मैं।

बंधुओ! जो धन-सम्पदा से स्नेह रखता है। उसे विकल्प किसका चलेगा? धर्म का विकल्प चलेगा कि धन का? विकल्प तो वही चलेगा जो तुम्हारा चलता है। भई तुम्हारा भी तो वही धन का विकल्प चलता है। तो जो विकल्प तुम्हारा चलता है वही विकल्प साधु का चलने लगा, अब साधु में और तुम में क्या अन्तर है? इसलिए श्रावक को साधु का पहरेदार कहा है संरक्षक कहा है।

साधु के धर्म की रक्षा का कर्तव्य एकमात्र श्रावक का है। यदि तुमने यह फर्ज निभा लिया तो तुम एक सच्चे श्रावक हो जाओगे और यदि तुमने यह फर्ज नहीं निभा पाया तो ध्यान रखना, तुम भगवान महावीर के द्वारा प्रदत्त इस मार्ग के भव-भव में ऋणी हो जाओगे।

भिण्ड के श्रावको! एक बात का तो नियम कर लेना यदि कोई साधु कहे कि इस धन की व्यवस्था मैं करूँगा तो चाहे तुम्हें बुरा बनना पड़े तो बुरे बन जाना लेकिन साधु महाराज से कह देना कि इस धन की व्यवस्था आप नहीं कर सकते। आप जिनको कहेंगे हम उसको निश्चित कर देंगे। लेकिन धन की व्यवस्था आपको देकर हम साधुत्व की हत्या नहीं कर सकते।

इसप्रकार किसी को धन से स्नेह है और किसी को अंबर यानि कपड़े से स्नेह है तो वह भगवान महावीर की परम्परा का साधु नहीं हो सकता। अन्य से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन भगवान महावीर की परम्परा में जो निर्ग्रंथ साधु का स्वरूप कहा गया है उसमें अगर कोई वस्त्र से स्नेह रखता है, वस्त्र को धारण करता है, स्वीकार करता है और कहता है कि मैं भी भगवान महावीर की परंपरा का साधु हूँ। तो कह देना, तुम भगवान महावीर की परम्परा के साधु नहीं हो सकते। वह पूछे क्यों? कहना कि जो अंबर से स्नेह रखता है वह साधु का स्वरूप धारण नहीं करता वह कुगुरु कहलाता है।

किसी ने पूछा- मुनिराज! आप वस्त्र के त्यागी क्यों हैं? मैंने कहा- वस्त्र त्याग निर्ग्रंथ लिंग के साथ-साथ विश्वास का प्रतीक है। अगर मैं वस्त्र को धारण करूँगा तो हो सकता है सामान्य जन हमारा विश्वास न करें।

एक घटना सुनाता हूँ। मैं एक जगह पंचकल्याणक महोत्सव में ससंघ उपस्थित था। पंचकल्याणक ठीक तरह से निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हुआ फेरी भी हो गई। फेरी के बाद जो प्रतिमायें जहाँ-जहाँ से आयी थीं सबको दी जाने लगीं। कुछ छोटे-छोटे पंचमेरू रखे हुए थे। एक महिला ने एक मेरु उठाया और चल दी।

मैं उस समय प्रवचन कर रहा था। मेरे पास मंच पर समाचार आया कि एक मेरु चोरी हो गया। किसी ने देख लिया कौन लेकर गया? इतनी भीड़ में किसी न किसी का ध्यान तो चला ही जाता है। तो तुरन्त पता चल गया कि वो मेरु अमुक महिला लेकर गयी है उसे तुरन्त बुलाया गया। यद्यपि वो समझ न पायी थी, जिस समय मेरु को बोली लगाकर वेदी पर स्थापित किया तो उसने सोचा कि अब बोली लगाकर स्थापित किया था तो शायद मंदिर में विराजमान करने की भी मेरी व्यवस्था होगी तो उसने लिया और चल दी।

लेकिन तात्पर्य यह है कि वस्त्रधारी तो अपने वस्त्रों में कुछ भी छिपा सकता है। पर जिसके पास वस्त्र नहीं है वो अपने पास वस्तु को कहाँ छुपाएगा? इसलिए निर्ग्रंथ साधु विश्वास का पात्र होता है। फिर वस्त्र का विकल्प, धोओ, उसके लिए फिर एरियल (Aerial) मँगाओ। अच्छे से साफ नहीं हुआ गंदा रह गया तो उसका भी विकल्प चल रहा है। अगर कहीं से वस्त्र फट गया है और भिण्ड के बंदर, जैसे एक दिन क्षुल्लक जी के चादर को उन्होंने फाड़ दिया था। अगर वस्त्र होगा तो विकल्प होगा। निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा निर्विकल्प साधना का मार्ग है। अगर ये विकल्प के साधन रख लिये तो निर्विकल्प साधना कैसे होगी? इसलिए बंधुओ! भगवान महावीर के मार्ग में वस्त्रधारी को कभी भी मुक्ति नहीं कही। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी सूत्रपाहुड में लिखते हैं-

णवि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो वि मोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।23-3।।

अर्थात् जिनशासन में वस्त्रधारियों को कभी सिद्धि नहीं होती, चाहे वो तीर्थंकर ही क्यों न हों। नग्नता ही मोक्षमार्ग है शेष सभी उन्मार्ग हैं। भगवान महावीर के मार्ग में बाह्य वस्त्र त्याग

के साथ भीतर से भी वस्त्रों का त्याग कर दिया जाता है। ऐसे साधक को ही भगवत्ता कही है परमात्मपना कहा है।

कुगुरु का स्वरूप क्या है ?

मैं भी साधु हूँ ऐसे महात्मापने के भाव से जिन्होंने कुलिंग को धारण किया हो।

थोड़ा सा भावलिंग, द्रव्यलिंग और कुलिंग में अंतर समझ लें। जो भावलिंग है वह सम्यग्दर्शन पूर्वक 28 मूलगुणों को पालन करनेवाला और अपने आत्मा का अनुभव करनेवाला ऐसा निर्ग्रंथ योगी का लिंग है। समझ में आया कि नहीं आया। जिन्होंने बारह कषायों को जीत लिया है अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण। जिनके मात्र संज्वलन कषाय का उदय है। और जो अपने आत्मा के अनुभव में लीन रहते हैं और कदाचित् आत्मा से बाहर आते हैं तो अपने मूलगुणों के पालन में लीन रहते हैं ऐसे साधु को भावलिंगी साधु कहा गया है। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी कहते हैं-

देहादि संग रहिओ माण कसाएहिं सयल परिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू।।भा.प्रा. 56।।

अर्थात् जो शरीरादि परिग्रह से रहित, मान कषाय से सब प्रकार से मुक्त है और जिसका आत्मा, आत्मा में ही रत रहता है वह साधु भावलिंगी है।।56।।

दूसरा होता है द्रव्यलिंग। जो मुनिराज छट्वें गुणस्थान से नीचे आ गये हैं। कषाय वृद्धि के कारण पंचम गुणस्थान में हों, चौथे गुणस्थान में हों अथवा पहले गुणस्थान में हों ऐसे मुनिराज को द्रव्यलिंगी मुनि कहा है। लेकिन द्रव्यलिंगी मुनि को कुलिंगी नहीं कहा, कुगुरु नहीं कहा, ये ध्यान रखना।

अगर कोई अज्ञानी द्रव्यलिंग के धारक मुनिराज को कुलिंगी कहता है तो अभी वह धर्मात्मा नहीं है, सम्यग्दृष्टि नहीं है। आजकल अज्ञानता में क्या कह दिया जाता है ये तो कुगुरु हैं। अरे भाई पहले तू स्वरूप तो पहचान, कुगुरु किसे कहा गया? कुलिंगी को कुगुरु कहा गया। द्रव्यलिंगी को कभी कुगुरु नहीं कहा गया। द्रव्यलिंगी साधु तो सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है।

कषायवृद्धि हो गयी और पंचमगुणस्थान में मुनिराज पहुँच गये सम्यक्त्व से सहित हैं लेकिन 28 मूलगुण रूप जो छट्ठम गुणस्थान था वहाँ से नीचे आ गये हैं द्रव्यलिंगी साधु हैं। पर वे कुलिंगी नहीं हैं।

निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा को धारण करनेवाला साधु कदाचित् द्रव्यलिंगी कहा जा सकता है। लेकिन कुलिंगी, कुगुरु नहीं कहा जा सकता।

क्यों नहीं कहा जा सकता? कोई कारण तो होना चाहिए? क्योंकि कुगुरु के लक्षण में कहा गया है '**ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।**' संसार में वे कैसे हैं? उपल नाव की तरह हैं। इसका तात्पर्य होता है पत्थर की नौका। पत्थर की नौका अगर समुद्र में डाल दी जाए तो स्वयं भी डूबती है और बैठनेवाले को भी डुबा देती है। इसलिए जिन्होंने द्रव्यलिंग धारण किया हुआ है। निर्ग्रंथ मुनिलिंग धारण किया हुआ है। कदाचित् उनके भावलिंग छूट गया तो भी वह द्रव्यलिंगी साधु जिनमत में पूज्यनीय, वंदनीय, अर्चनीय है।

ध्यान रखना, वह सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी साधु उपलनाव नहीं है। क्यों नहीं है उपलनाव? क्योंकि वह स्वयं भले ही अभी संसार सागर से पार न हो पाये लेकिन उसके उपदेशों को सुनकर दूसरा अपना मोक्षमार्ग बना सकता है।

आदिपुराण पर्व 39 में कहा है–

निर्वाणसाधनं यत् स्यात्तल्लिंगं जिनदेशितम्।
एणाजिनादिचिह्नं तु कुलिङ्गं तद्धि वैकृतम्।।28।।

अर्थात् जो साक्षात् मोक्ष का कारण है ऐसा जिनेन्द्रदेव का कहा हुआ निर्ग्रन्थपना ही सच्चा लिङ्ग है। इसके सिवाय मृगचर्म आदि को चिह्न बनाना यह कुलिंगियों का बनाया हुआ कुलिंग है।

कुलिंगी उपलनाव है, स्वयं भी डूबता है और दूसरे को भी डुबा देता है। कुगुरु वो है जो स्वयं भी निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा के मार्ग से दूर अथवा जिनलिंग को छोड़ करके अन्य वेशों को धारण करके साधना कर रहा है। दूसरों को उसी खोटेमार्ग में लगाकर स्वयं भी संसार में डूबता है और

उन्हें भी डुबाता है। लेकिन सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि के उपदेश को सुन अनेक भव्य जीव मोक्षमार्ग में लग जाते हैं। निर्वाण मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए ध्यान रखना, भावलिंग द्रव्यलिंग, और कुलिंग तीनों में अन्तर है।

किसी निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा धारी साधु को कभी अपने मुख से कुगुरु, कुलिंगी मत कह देना। अगर तुमने कुगुरु कह दिया तो तुमने भगवान अरिहंत देव के द्वारा प्रतिपादित व्यवहार द्रव्यलिंग का अनादर कर दिया, अपमान कर दिया। तुम्हें उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। इसलिए द्रव्यलिंग में और कुलिंग में अन्तर जानना। जिन्हें अभी इसका अंतरबोध नहीं है। वे द्रव्यलिंग को भी कुलिंग कह देते हैं।

ध्यान रखना, आज किसी के पास द्रव्यलिंग है। लेकिन परिणामों का क्या पता है। भावलिंग तो परिणामों पर आधारित है। एक क्षण में विवेक जाग्रत हो उठा। उपयोग पलट गया आत्मा के सन्मुख हो गया और उसका भाव सप्तम गुणस्थान के योग्य हो गया। अत: द्रव्यलिंगी के भाव सँभलते ही भावलिंग हो सकता है पर कुलिंगी के त्रिकाल में भी भावलिंग नहीं होता। **यहाँ कोई प्रश्न करे— जो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि है वह तो कुलिंगी है?** नहीं, जिनमुद्रा, खोटा लिंग अर्थात् कुलिंग नहीं है। लेकिन जो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि जिनेन्द्र भगवान के मार्ग से विपरीत कथन करता है। जिनागम पंथ से विपरीत नवीन मार्ग या स्वतन्त्र मत प्रकाशित करता है, सच्चे जिनागम वर्णित मार्ग की श्रद्धा न करके नया पंथ दिखाता है, चलाता है, उसके वचन कुलिंगी के वचन जैसे हैं अत: श्रद्धा योग्य नहीं हैं। ऐसा द्रव्यलिंग कुलिंग सम होता हुआ भी कुलिंग नहीं है द्रव्यलिंग है।

इसलिए बंधुओ! कुगुरु के लक्षण को जानकर उनका आश्रय मत करना। निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा का आश्रय करना। निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा में कदाचित कहीं कोई आपको शिथिलता दिखाई दे और आप विवेकी हों, स्वाध्यायी हों, ज्ञानवान हों, सम्यग्दृष्टि हों, आपके अंदर ऐसी योग्यता हो कि ऐसा होते हुए भी आप मुनिराज की विनय रख सकते हों। इन गुणों से युक्त आप उनका स्थितिकरण तो कर सकते हैं लेकिन कभी निंदा नहीं कर सकते। ये धर्म का, सम्यक्त्व का, मोक्ष का मार्ग है। इस मार्ग में सम्यग्दृष्टि के द्वारा स्थितिकरण तो बताया गया है। सम्यग्दृष्टि स्थितिकरण तो कर सकता है लेकिन निंदा करने का मार्ग भगवान अरिहंत का मार्ग नहीं है।

यदि कोई निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा की निन्दा करता है। तो ध्यान रखना, वह इस भव और परभव में अपने चारित्र मोहनीय को ही बढ़ाता है। भव भव में भी चारित्र धारण करने की योग्यता नहीं मिल सकती।

इसलिए आचार्य भगवन् यह बता रहे हैं कि जैसे सच्चे देव का आश्रय करना। वैसे ही सच्चे गुरु का आश्रय करना। कुगुरु का आश्रय मत करना। कुगुरु यानि निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा को छोड़कर अन्य मुद्रायें। यद्यपि भेषों में धर्म नहीं होता धर्म तो आत्मा में होता है। पर किसी ने अन्य भेष धारण कर लिये हैं, धन अंबर से स्नेह रखते हैं, अन्तर में रागादिक रखते हैं, ध्यान रखना वे साधु नहीं हो सकते। निर्ग्रंथ मार्ग में अगर कोई उपसर्ग भी करदे तो भी समता रखनी होती है। समताभाव धारण करना होता है। और अन्य जगह समताभाव धारण नहीं करते। श्राप दे देते हैं, तेरा सब कुछ....। मैं क्यों कहूँ? तुम स्वयं समझलो। ये मोक्षमार्ग श्राप का मार्ग नहीं है समता का मार्ग है। अगर साधु के लिए किसी ने कुछ कह भी दिया तो साधु समता धारण करे।

मैंने एक सत्य घटना पढ़ी थी। एक भेषधारी साधु किसी आश्रम में बैठकर त्रिशूल धारणकर तपस्या करता होगा। एक वृक्ष पर आम लगे थे तो किसी बालक ने एक पत्थर उठाया और आम गिराने लगा। पत्थर आम को न लगकर उस भेषधारी साधु को लग गया। उसके सिर से रक्त बहने लगा। उस भेषधारी साधु को बहुत गुस्सा आया। इतना आया, इतना आया कि बगल में त्रिशूल रखा था। आकर उस बालक को त्रिशूल मार दिया। इसलिए भेषों में धर्म नहीं अपितु समता में धर्म है।

साधु समता स्वभावी होता है। ऐसे साधु हुए जिनके ऊपर बहुत बड़े भयंकर उपसर्ग हो गये तो भी साधुजनों ने समता रखी। कभी किसी का बिगाड़ नहीं किया ये मोक्षमार्ग है। ये साधु का मार्ग है। ये निर्ग्रंथ मार्ग है। ये सुगुरु का मार्ग है।

ध्यान रखना, ऐसे निर्ग्रंथ गुरु के चरणों में बैठकर आत्मा का स्वरूप समझना परमात्मा बनने का मार्ग समझना। लेकिन पहले सुगुरु का निर्णय कर लेना। कहीं ऐसा न हो जाये कि सोचने लगो– साधु-साधु सब एक ही होते हैं। एक कम्पनी (Company) की चीज हो और एक लोकल (Local) हो, या मेड इन चाइना (Made in China) हो। चीज दोनों एक जैसी हैं।

लेकिन अंतर इतना है कि कम्पनी (Company) की चीज अगर खराब हो जाती है तो कदाचित् ठीक हो सकती है। और मेड इन चाइना (Made in China) तो यूज एण्ड थ्रो (Use & Throw)। इसलिए सुगुरु को पहचानना, सुगुरु का निर्णय करना, कुगुरु का आश्रय मत करना।

अब सच्चे गुरु का स्वरूप कहते हैं–

विषयाशा - वशातीतो निरारम्भो परिग्रहः।
ज्ञानध्यान तपो रक्तः तपस्वी स प्रशस्यते।।10।।

जो पाँच इन्द्रिय विषयों की आशा से रहित हैं। उनकी आशा, कामना, चाह, अपेक्षा नहीं रखते। जो आरम्भ और परिग्रह से रहित हैं। और जो ज्ञान–ध्यान में लीन रहते हैं। आचार्य भगवन् कहते हैं कि– वही साधु प्रशंसनीय हैं। और जो ज्ञान–ध्यान से रहित हैं अर्थात् न उन्हें कभी ज्ञान से मतलब न कभी उन्हें ध्यान से मतलब। परोपकार में लगे हैं। अरे भाई परोपकार तो कर लेकिन पहले अपना उपकार कर। साधु किसलिये बना जाता है। अपने लिये या दूसरों के लिए। अरे भैया पहले तू अपना तो भलाकर, फिर दूसरों का भला करना।

जिनधर्म में, श्रमणमार्ग में, भगवान महावीर के मार्ग में परोपकार के लिए साधु नहीं बना जाता स्व उपकार के लिए बन जाता है और अपना उपकार करते हुए अगर कोई श्रमण का आश्रय करता हो तो उसका उपकार अपने आप हो जाता है। कोई पूछे कि महाराज श्री! आप यह उपदेश हमें दे रहे हैं तो परोपकार कर रहे हैं कि नहीं कर रहे हैं? यह तो ज्ञानी का स्वभाव है ये उपदेश मैं कोरा तुम्हारे लिए नहीं दे रहा हूँ ये उपदेश मैं अपनी आत्मा के लिए दे रहा हूँ। अपने आप को सम्बोधित कर रहा हूँ हमारे साथ आपका भी भला हो जाये यही महावीर मार्ग है।

उपदेश को स्वाध्याय कहा है। स्वाध्याय के पाँच भेद कहे हैं। उसमें धर्मोपदेश नाम का भी एक स्वाध्याय कहा गया है। स्वाध्याय में स्व का प्रयोजन होता है और पर का भी भला हो सो अच्छी बात है।

ध्यान रखना बंधुओ! निर्ग्रंथ योगी अपने आप को सम्बोधित करता है। मेरी श्रमणता हमेशा वर्द्धमान हो। और तुम श्रमण बन पाओ न बन पाओ लेकिन श्रमण के संयोग से श्रावक अवश्य बन जाना। श्रमण के सान्निध्य में अगर श्रावक न बन पाये तो श्रावक कब बनोगे।

अब सच्चे देव, सच्चे गुरु के बाद सच्चे शास्त्र का लक्षण क्या है?

आप्तोपज्ञ - मनुल्लंघ्य-मदृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्त्वोपदेश कृत सार्वं, शास्त्रं कापथघट्टनम्।।9।।

अर्थात् जो आप्त के द्वारा कथित, अनुल्लंघनीय, प्रत्यक्ष-अनुमानादि प्रमाणों के विरोध से रहित, सर्व जीवों के लिए हितकारी उपदेश रूप, कुपथ का नाश करनेवाला है, वह सच्चा शास्त्र कहा गया है।

जिन शास्त्रों में रागद्वेष की बात हो, जिन शास्त्रों में पाँच इंद्रियों के विषयों को भोगते हुए भी धर्म कहा हो, जिन शास्त्रों में हिंसादिक को धर्म कहा हो, वे शास्त्र कभी सच्चे शास्त्र नहीं हो सकते। सच्चे शास्त्र जिसमें वीतरागता की बात हो, राग द्वेष से छूटने की बात हो, पाँच इन्द्रिय विषयों से निकलने त्यागने की बात हो, और जिसमें हिंसा से दूर रहने की बात की जाये अर्थात् अहिंसा धर्म की बात हो ऐसा मार्ग दिखानेवाला सच्चा शास्त्र होता है।

ध्यान रखना, हर पुस्तक शास्त्र नहीं हो सकती। जिसमें जिनेन्द्र भगवान की वाणी हो। जिनवाणी का अर्थ क्या है? जिनेन्द्र भगवान की वाणी। कैसी है जिनेन्द्र भगवान की वाणी? राग संसार का कारण है विराग और वीतरागता मोक्षमार्ग है सो राग को त्याग करके विरागता को धारणकर वीतरागता को प्राप्त करना चाहिये। यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी है, उपदेश है। समयसार जी में कहा भी है-

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विराग संपण्णो।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।।150।।

इसलिए पर पदार्थों में कभी राग नहीं करना चाहिये। जिनवाणी जो राग से निकालकर वीतरागता की ओर ले जाती है। और जो राग की ओर ले जाये सच्चा शास्त्र नहीं हो सकता। वह

सामान्य मनुष्य की वाणी हो सकती है इसलिए सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु इनकी श्रद्धा करना। समझ में आया।

जब बोध हो जाये, ज्ञान हो जाये अपनी श्रद्धा को निर्मल कर लेना चाहिए। सच्चे देव शास्त्र गुरु का आप सभी श्रद्धान करें जिसे सम्यग्दर्शन कहा गया है। कुछ और बाते हैं जो मैं आपको कल बताऊँगा। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने सम्यग्दर्शन के दो भेद कहे हैं- व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन। यह सम्यक्त्व का स्वरूप हमें अवश्य समझना है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही हमारा संसार से पार होना सम्भव हो पाता है।

सच्चे गुरु को पहचानो, कुगुरु को कुगुरु जानो।
सद्‌गुरु की शरणा पाकर, मोक्षमार्ग सच्चा मानो ।।
सद्‌गुरु बिन कोई, हो-हो-2, भवपार न जाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

जिनागम पंथ सूर्य की तरह है, जो लोक को प्रकाशित करता है। तेरह-बीस पंथ राहु-केतु की तरह हैं, जो जिनागम पंथ में कलंक पैदा करते हैं। हम तेरह-बीस पंथ के राहु केतु को हटाकर जिनागम पंथ रूपी सूर्य को प्रकाशित करें।

• आचार्य विमर्श सागर

(मोक्ष का मूल)

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छयववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-महारुक्खमूलं**) मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल (**सम्मत्त-रयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छय-ववहार-सरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेदवाला (**जाणिज्जदि**) जाना जाता है।

अर्थ-मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन रत्न ही सारभूत है, ऐसा कहा गया है। वह सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन रूप से दो भेदवाला जाना जाता है।

गाथा - 4
(चतुर्थ प्रवचन)

●

आत्मा निज सुखशक्ति से सुखी होता है

09.08.2013

भिण्ड
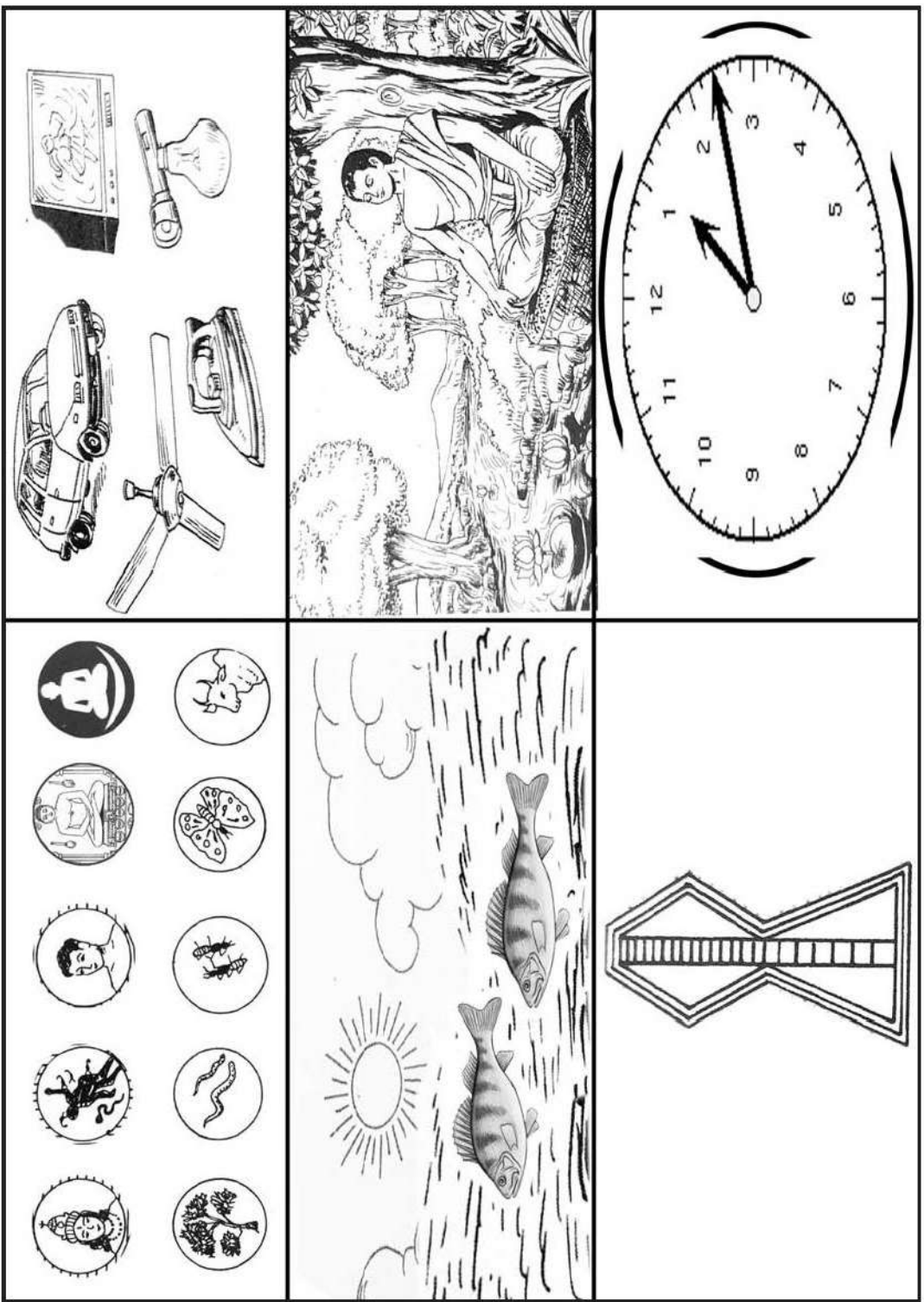
जीवद्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य आकाश द्रव्य और कालद्रव्य का चित्रण

9

रयणोदय

देव शास्त्र गुरु को ध्याओ, सम्यग्दर्शन को पाओ।
तत्त्वों का श्रद्धान करो, स्वात्माभिमुख हो जाओ।।
स्वसंवेदन ही, हो-हो-2, सम्यक्त्व कहाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जो संतचरण में आते हैं उनका प्रयोजन रहता है कि हमारे जीवन में जो बुराईयाँ व्याप्त हैं वे दूर हो जायें। विद्यार्थी अपने अज्ञान को मिटाने के लिए स्कूल (School) जाता है ऐसे ही भव्य जीव संतचरण में आते हैं, जिनवाणी का श्रवण करते हैं, जिनागम का पाठ करते हैं तो

उनका यही प्रयोजन होता है कि हमारे आत्मा में जो अनादि से अज्ञान बना हुआ है वह अज्ञान समाप्त हो जाये। जिनमंदिर में परमात्मा (भगवान) के पास अगर कोई आता है तो उसका प्रयोजन 'मैं भी परमात्मा बन जाऊँ' और जो हमारे परमात्मा बनने में बाधक कारण हैं वे समाप्त हो जायें।

अगर हम अपने जीवन में व्याप्त उन बुराईयों को दूर करने के लिए जिनवाणी का श्रवण करते हैं तो जिनवाणी अपने कल्याण में कारण कहलाती है और यदि जिनवाणी को श्रवण करने के बाद, संतों का सान्निध्य प्राप्त करने के बाद, अरिहंतों की भक्ति-आराधना करने के बाद भी हम अपने भीतर की बुराईयाँ समाप्त न करें, अपने भीतर की गलतियों को न सुधारें तो फिर देव-शास्त्र-गुरु की निकटता सानिध्य व्यर्थ है।

बंधुओ! अन्धकारमय जीवन जीते-जीते अनन्त भव गुजर गये, अब कुछ ऐसी योग्यता मिली है कि हम प्रकाश में जी सकते हैं। प्रकाश में जीने का अर्थ है कि रास्ते में जितने भी कंकड़, पत्थर पड़े हुए हैं, हम उनसे बच-बचकर चलना सीख जायें। यदि कोई प्रकाश में चलता हो और फिर भी पत्थर की ठोकर खाये तो उस व्यक्ति को क्या कहा जायेगा? यही कि तुमने प्रकाश का सही उपयोग नहीं किया। कोई अंधा आदमी या अंधकार में चलनेवाला आदमी कदाचित् ठोकर खा जाये तो मान सकते हैं कि वो व्यक्ति अंधकार में चल रहा था। जो व्यक्ति आँख वाला भी हो, अंधा न हो, प्रकाश मिल जाये फिर भी ठोकर खाये उस व्यक्ति को दुर्भाग्यशाली ही कहा जायेगा।

यदि आपको मूँगफली का दाना चाहिये तो मूँगफली लानी पड़ेगी तब दाना मिलेगा। अरिहंतवाणी कल्याणी है जो अरिहंत के मुख से निकली है इसलिए अरिहंत भगवान इस वाणी के जन्मदाता हैं हमें अरिहंत वाणी चाहिए तो अरिहंत पर भी सच्ची श्रद्धा करनी होगी तभी अरिहंत वाणी का फल मिलेगा। हम अनादि से कुछ बुराईयाँ लिये बैठे हैं जिनके कारण चारों गतियों में कर्मों के फल भोगना पड़ रहे हैं। अगर हम अपनी उन अनादिकालीन बुराईयों को धीरे-धीरे निकालने का प्रयास करें तो कर्मों के फलों को न भोगने से सहज आत्मा के अनुभव को प्राप्त होंगे।

एक बुराई है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व यानि विपरीत श्रद्धा उल्टी श्रद्धा। प्यास किससे बुझती है? पानी से। कोई व्यक्ति कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) पिये तो बताओ उसकी प्यास बुझ जायेगी क्या? नहीं बुझेगी। कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) से प्यास नहीं बुझ सकती, प्यास बुझाने के लिए पानी ही चाहिए। चाहे तुम कितनी भी कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) पी लो, तात्कालिकता में भ्रम पैदा हो सकता है कि हमने कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) पी है तो अब मेरी प्यास शान्त हो जायेगी। लेकिन हो ही नहीं सकती पानी ही पीना पड़ेगा क्योंकि प्यास उसी से बुझती है। जैसे कोई व्यक्ति कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) से अपनी प्यास बुझाना चाहता है लेकिन उससे प्यास बुझती नहीं है। ऐसे ही यह जीव पर-पदार्थों से सुखी होना चाहता है लेकिन पर-पदार्थों से कभी सुखी हो नहीं सकता है। सुखी होने के लिए निज आत्मा का ही आश्रय करना पड़ेगा। प्यास बुझाना है तो पानी का ही आश्रय करना होगा और सुख का अनुभव करना है तो आत्मा का ही आश्रय करना होगा। कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) से प्यास नहीं बुझ सकती और पर पदार्थों से यह जीव कभी सुखी नहीं हो सकता। लेकिन जैसे यह व्यक्ति जानते हुए भी कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) पीता है ऐसे ही यह अज्ञानी जीव कदाचित् ज्ञान न हो तो मान सकते हैं लेकिन कुछ जानते हुए भी और कुछ अज्ञानी भी पर-पदार्थों से अपनी आत्मा को सुखी बनाना चाहते हैं। आत्मा तो आत्मा के आश्रय से ही सुखी होगा।

एक बात बताओ, आपने पानी को ठंडा होने के लिए अपने फ्रिज (Fridge) में रख दिया। थोड़ी देर बाद पानी ठण्डा हो गया। पानी को ठंडा किसने किया? फ्रिज (Fridge) ने पानी को शीतल किया है? निमित्त की अपेक्षा फ्रिज (Fridge) ने पानी को ठंडा किया है। जबकि यथार्थ बात तो यह है कि पानी में जो शीतलता गुण है उसने ही पानी को शीतल किया है। अगर पानी में शीतल होने की शक्ति न होती तो क्या फ्रिज (Fridge) उस पानी को ठंडा कर देता। चलो अच्छी बात है फ्रिज (Fridge) ने पानी को ठंडा कर दिया, एक पात्र में आप अग्नि भरकर फ्रिज (Fridge) के अन्दर रख देना तो क्या फ्रिज (Fridge) अग्नि को ठंडा कर देगा? जिसमें शीतल होने की शक्ति विद्यमान है उसे तो वह निमित्त शीतल कर सकता है। लेकिन जिसमें शीतल होने की शक्ति विद्यमान नहीं है उसे फ्रिज (Fridge) शीतल नहीं कर सकता है।

सुख किसमें है? सुख आत्मा में है। अगर जीव को आत्मा में सुख का श्रद्धान हो जाये तो पदार्थों में सुख की आसक्ति अपने आप छूट जायेगी। क्यों? क्योंकि सुख आत्मा में पाया जा रहा

है। कहने का तात्पर्य यह है कि अगर आत्मा में सुख शक्ति न होती तो कोई भी पदार्थ हमें सुखी नहीं बना सकता, इस बात का अच्छी तरह से निर्णय करना चाहिये। अगर हमें मिथ्यात्व से छूटना है मिथ्यात्व से मुक्त होना है तो हमें अपने आत्मा के यथार्थ वैभव को पहचानना होगा। हमें आत्मा के स्वभाव को जानना होगा, मानना होगा तभी मिथ्यात्व को जीता जा सकता है। क्यों? क्योंकि मिथ्यात्वी पर-पदार्थों से अपने को सुखी मानता है और मैं आपको बता रहा हूँ अगर आत्मा में सुखशक्ति न होती तो कोई भी पदार्थ आपको सुखी नहीं कर सकता था। अगर पदार्थ के निमित्त से सुख का अनुभव हुआ है तो पदार्थ के अभाव में तुम दुखी हो जाओगे। यह मान्यता इस जीव की अनादि से चली आ रही है।

मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।

मिथ्यादृष्टि जीव की ऐसी मान्यता होती है कि मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ। किससे? परपदार्थों से। मैं अपनी आत्मा के आश्रय से सुखी, ये सम्यग्दृष्टि की मान्यता है। और मैं परपदार्थों से सुखी, ये मिथ्यादृष्टि की मान्यता है।

आप किसी स्थान पर निराकुल बैठे हुए हैं। उस समय आपके आस-पास कोई भी नहीं। आप पूर्णत: बाह्य विकल्पों से मुक्त सहजभाव से बैठे हैं। इतने में आपका कोई व्यापारी आया जिसे उधारी के पैसा देना थे, उसने आपको 50,000 रू. दे दिये। आपको कैसा लगा? आपने तुरन्त कोल्ड ड्रिंक (Cold Drink) मँगायी और उसको पीने को दी। क्यों? क्योंकि उसने 50,000 रू. दे दिये। उधारी का पैसा आ गया। आप जब बैठे थे व्यापारी नहीं आया था उस समय आपको कोई विकल्प नहीं था। उस समय भी आप सुखी थे। और जब व्यापारी ने पचास हजार रू. दिये तो उस परपदार्थ से आपको अब विशेष सुख का अनुभव हुआ कि आज 50,000 रू. की उधारी वापस आ गई है तो आपको उस पदार्थ से सुख की अनुभूति हुई। व्यापारी पैसा देकर चला गया। आपने पुन: नोट गिने उसमें 2000 रू. कम निकले। अब क्या हो गया? सुखी हो या दुखी। आपके 2000 रू. कम निकले तो आप दु:खी हो गये। आप इन नोटों से सुखी-दुखी हो रहे हो। जब तक वे नहीं आये थे तब तक तुम सहज भाव से बैठे थे।

भगवान महावीर की यही वाणी है कि परपदार्थों के संयोग से जो सुख मानता है वह परपदार्थों के वियोग से अपने आपको दु:खी भी मानता है और जो अपने आत्मा का आश्रय करता है परपदार्थ के आश्रय से धीरे-धीरे छूटता चला जाता है वह आत्मा के आश्रय से शाश्वत सुखी हो जाता है। क्यों? क्योंकि जहाँ परपदार्थ की अपेक्षा नहीं रही वहाँ तो हमेशा सुख ही सुख है। जब तक व्यापारी नहीं आया था तब तक तुम सुखी थे। अगर एक घंटे और नहीं आता तो क्या नोटों की आकुलता लगती? चाहे सुखरूप हुई हो चाहे दु:खरूप हुई हो, वो नहीं आती। कहने का तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव परपदार्थों के साथ अपने सम्बन्ध को जोड़ता है और सम्यग्दृष्टि जीव पर को पर मानता है और अपने आत्मा को अपना मानता है।

किसी ने प्रश्न किया-महाराज श्री! आपने कहा था कि मरण के समय अपने साथ केवल अपना आत्मा ही जाता है जबकि आत्मा तो अजर-अमर है वो कैसे जाता होगा? ध्यान रहे, हमें इस बात को पहचानना है जानना है कि हम आत्मा ही हैं? हम शरीर नहीं हैं। मिथ्यादृष्टि जीव शरीर को ही आत्मा मानता है। क्या मानता है? शरीर के परिणमन को आत्मा का परिणमन मानता है। शरीर के गुणों को आत्मा के गुण मानता है। जबकि शरीर तो परद्रव्य पुद्गलद्रव्य है। जिनेन्द्र भगवान ने छह द्रव्य कही हैं-जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य। इन छह द्रव्यों में हमें अपनी खोज करना है।

जैसे आपका बालक स्कूल गया था। छुट्टी के बाद स्कूल से सब बालक जा चुके हैं सिर्फ छह बालक बचे हैं उनमें आपको अपने बालक को पहचानना है। ऐसे ही छह द्रव्यों में हमें अपने जीवद्रव्य को देखना है, जीवद्रव्य को पहचानना है, जीवद्रव्य को जानना है। अगर आपने अपने जीवद्रव्य को पहचान लिया तो सन्मार्ग मिलेगा, सुख मिलेगा। जैसे आपको आपका बालक मिल गया तो आनन्द आयेगा सुख मिलेगा। अगर आपको आपका बालक नहीं मिला तो दु:खी रहोगे। अहो! अनादि से आपको अपना पता नहीं है इसलिए आप दु:खी हो रहे हो, यदि आपको इन छह द्रव्यों में पता चल जाये मैं जीवद्रव्य हूँ तो आप सुखी हो जायेंगे।

ध्यान रहे, दूधवाला आया और उसने आवाज दी दूध ले लो। आप बाहर निकले, अपना पात्र आगे किया, उसने दूध डाल दिया। आपने कहा- दूध तो पतला है। आपने कौन सा थर्मामीटर लगा दिया जिससे पता चल गया कि दूध पतला है? किससे जाना आपने कि दूध पतला है? आपने ज्ञान से जाना कि दूध पतला है यानि दूध में पानी मिला हुआ है तो आपने

कहा– क्यों, आज तो दूध में बहुत पानी मिला हुआ है दूध पतला है? तो उसने भी कह दिया– आज हमारी भैंस तालाब में चली गई थी पानी ज्यादा पीकर आई है इसलिए दूध पतला है। लेकिन ये बात भी पक्की हो गई कि दूध में पानी मिला हुआ है दोनों एकमेक हो रहे हैं। जिनके पास विशेष ज्ञान नहीं है इतनी समझ नहीं है वे कहेंगे दूध है, लेकिन जिसके पास थोड़ी समझ है वह कहेगा दूध पतला है इसमें पानी मिला हुआ है।

ऐसे ही शरीर और चेतन आत्मा ये दोनों अनादि से मिले हुए हैं इसलिए अपने को इस शरीर में जीव की यानि आत्मा की मान्यता होती रहती है। क्या सोचते हैं कि ये शरीर ही आत्मा है शरीर ही जीव है ये मैं ही हूँ। अरे भाई! जैसे दूध और पानी मिला हुआ है। ऐसे ही आत्मा और शरीर दोनों अनादि से मिले हुए हैं। जब भी जन्म होता है तो देह के साथ होता है और मरण हो जाता है तो तुम नई देह में पहुँच जाते हो। जन्मते हो तो फिर देह के साथ ही जन्मते हो। शरीर और आत्मा इन दोनों का अनादि सम्बन्ध है इसलिए शरीर को ही आत्मा मानते रहते हैं। शरीर के जो भी परिणमन हैं उन सब को भी हम अपने आत्मा का परिणमन मानने लग जाते हैं। जबकि शरीर का परिणमन आत्मा का परिणमन नहीं हो सकता और आत्मा का परिवर्तन शरीर का परिवर्तन नहीं हो सकता। शरीर आत्मा नहीं है शरीर में आत्मा है। अभी आत्मा कहाँ है शरीर में है लेकिन शरीर नहीं है। गिलास में पानी भरा है तो क्या पानी गिलास हो गया? पानी गिलास नहीं हो सकता। तो जैसे गिलास में पानी है ऐसे ही शरीर में आत्मा है, लेकिन आत्मा शरीर नहीं हो गया। गिलास में से पानी आसानी से निकल आता ऐसे ही जब मृत्यु आती है तो शरीर में से आत्मा भी निकल जाता है, और शरीर यहीं पड़ा रह जाता है। उससमय हमें समझ में आ जाता है कि शरीर में से आत्मा निकल गया यानि आत्मा अलग है शरीर अलग है। अब तुमने शरीर को और आत्मा को, पानी को और गिलास को अलग-अलग कैसे जाना? क्योंकि पानी का लक्षण अलग है गिलास का लक्षण अलग है अत: दोनों को उनके लक्षणों से जान लिया है। दूध और पानी दोनों को अलग-अलग कैसे जाना? क्योंकि दूध का लक्षण अलग है पानी का लक्षण अलग है। ऐसे ही शरीर और आत्मा को पृथक-पृथक् जानने के लिए दोनों के लक्षण को हमें जानना होगा। यदि हम दोनों को लक्षण से जानने का प्रयास करें तो दोनों हमें अलग-अलग दिखाई देंगे।

जिनवाणी सुन रहे हो तो अपनी भूल मिटाना। आत्मा शरीर नहीं है और शरीर आत्मा नहीं है। आत्मा का लक्षण क्या है? "**उपयोगो लक्षणं**" आत्मा का लक्षण उपयोग है। जानना और देखना ये आत्मा का लक्षण है। किससे देखते हो? आँख से देखते होओगे? किससे जानते हो? ज्ञान से कि कान से? आत्मा में एक दर्शन नाम का गुण पाया जाता है। ज्ञानगुण भी आत्मा में है दर्शनगुण भी आत्मा में है तो ज्ञानगुण से जानते हैं और दर्शनगुण से देखते हैं। आँख तो केवल निमित्त है।

जैसे आपकी गली से कोई जुलूस निकल रहा हो और आप आवाज सुनकर अपने कमरे की खिड़की के पास आए और देखने लगे तो ये बताओ, खिड़की देख रही है या तुम देख रहे हो? कौन देख रहा है? देखनेवाले तुम हो, खिड़की तो देखती नहीं है। इसीप्रकार आँख तो खिड़की की तरह है देखनेवाला तो आत्मा है जो आत्मा अपने दर्शनगुण से देखता है और ज्ञानगुण से जानता है।

तो आत्मा का लक्षण क्या है? जानना और देखना। शरीर में आत्मा है। जो जानने-देखनेवाला है वो आत्मा है जो जानता देखता नहीं है वो आत्मा नहीं है आपका शरीर है। जिस समय मृत्यु हो जाती है शरीर पड़ा रह जाता है उस समय वो तो कुछ भी जानता देखता नहीं है क्योंकि शरीर तो अजीव है। जीव अपने ज्ञानदर्शन इस लक्षण से पहचाना जाता है। अगर अपना जीवन है तो अपन आत्मा हैं और शरीर में से जब आत्मा निकलता है तो वह आत्मा भी अपन हैं। तो अपने साथ कौन जाता है? अपना आत्मा ही तो अपने साथ जाता है। कोई आत्मा अलग नहीं है और अपन अलग नहीं हैं। क्या? आत्मा और अपन अलग-अलग नहीं हैं अपन ही आत्मा हैं। और सबका आत्मा अपना-अपना है। तुम्हारा आत्मा हमारा नहीं है हमारा आत्मा तुम्हारा नहीं। शरीर आत्मा नहीं है और आत्मा शरीर नहीं है। शरीर तो पुद्गलद्रव्य है। पंचास्तिकाय में कहा भी है-

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदिय काया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे।।82।।

जो इन्द्रियों के द्वारा उपभोग्य है, वह सब पुद्गल है। स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियाँ, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँचों शरीर, मन, ज्ञानावरणादि आठों

कर्म और इनके सिवाय जो कुछ मूर्त है वह सब पुद्गल है। कौन सी द्रव्य है? पुद्गलद्रव्य, जिसमें स्पर्श पाया जाये, जिसमें रस पाया जाये, जिसमें गंध पाई जाये, और जिसमें कलर (Colour) यानि वर्ण पाया जाये पुद्गलद्रव्य है। अपने शरीर में स्पर्श पाया जाता है, रस पाया जाता है, गंध पायी जाती है। शरीर से सुगंध आती है कि दुर्गंध आती है? शरीर से दुर्गंध ही आती है सुगंध नहीं आती। शरीर से सुगंध के लिए तुम इधर-उधर की वस्तुएँ खोजते फिरते हो। तो जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाये उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं। ये सब किसमें पाये जाते हैं? अपने शरीर में पाये जाते हैं। ये अपनी आत्मा में नहीं होते। जीव का स्वरूप बताते हुए आचार्य कुंदकुंद स्वामी समयसार जी में लिखते हैं-

अरस-मरूव-मगंधं-अव्वत्तं चेदणागुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ संठाणं।।49।।

जीव को रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, अव्यक्त, चेतना गुण वाला, शब्दरहित, इन्द्रियों के अगोचर और अनियत आकारवाला जानो। आत्मा में न स्पर्श होता, न रस होता, न गंध होती और न कोई वर्ण होता इसलिए जब आत्मा इस शरीर में से निकलता है तो किसी को दिखाई नहीं देता। क्यों नहीं दिखाई देता? क्योंकि उसमें कोई वर्ण नहीं पाया जाता। आत्मा जब शरीर में से निकलता है तो आपके घर की छत क्रैक (Crack) हो जाती है क्या? नहीं होती। क्यों नहीं होती? क्योंकि आत्मा में स्पर्श नहीं पाया जाता। अगर स्पर्श होता तो निकलने में दिक्कत हो जाती। आत्मा तो अस्पर्शी है अस्पृष्ट स्वभाववाला है। मैंने लिखा है-

मिले हो हमसे मगर हम तेरी तलाश में हैं।
तू मेरे साथ रहे बस हम इसी आश में हैं।।
तू है अरूप, अरस तू अगंध अस्पर्शी।
तू ज्ञानदर्शमयी तू ही चित्‌विलास में है।। ज़ाहिद की ग़ज़लें।।

ध्यान रखना, जो वर्णादि पाये जाते हैं वे शरीर में पाये जाते हैं, और तुम क्या कहते हो, मैं गोरा हूँ मैं काला हूँ। जबकि गोरा काला कौन है? तुम हो कि तुम्हारा शरीर है? तुम्हारा शरीर गोरा-काला है तुम नहीं हो। क्यों? क्योंकि चैतन्य आत्मा में कोई भी वर्ण नहीं पाया जाता है।

हम शरीर के गुणों को शरीर के धर्मों को ही अपने आत्मा का धर्म मानते रहते हैं इसकारण हम सुखी-दु:खी होते रहते हैं। आचार्य भगवंतों ने कहा- निज शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और सात तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। **जिसे सात तत्त्वों का श्रद्धान न हो उसे निज शुद्ध आत्मा का श्रद्धान नहीं हो सकता।** तत्वार्थ सूत्र में आचार्य भगवन् उमास्वामी लिखते हैं-

''**तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं**'' अर्थात् पदार्थों का स्वरूप सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

अब सात तत्त्वों का ज्ञान हमें कहाँ से होगा? सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु से होगा। इसलिए कहा गया है कि सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। क्या सच्चे देवशास्त्रगुरु का श्रद्धान हुए बिना आत्मा का श्रद्धान किसी को हो सकता है? सात तत्वों का श्रद्धान हो सकता है क्या? नहीं हो सकता। क्योंकि जब तुमने पुस्तक ही नहीं देखी है तो पुस्तक में क्या विषय दिया हुआ है उसका तुम्हें ज्ञान-श्रद्धान कैसे हो सकता है? सबसे पहले तो तुम्हें पुस्तक देखनी पड़ेगी, जिनवाणी देखनी पड़ेगी, शास्त्र देखना पड़ेगा। अब पुस्तकें तो बहुत हैं। कहीं पर पुस्तक मेला लगा हुआ है और आपको जैनधर्म की पुस्तक खरीदना है तो आप क्या करोगे? जहाँ से जैनधर्म की पुस्तक प्रकाशित होती है आप उस प्रकाशन की बात करोगे कि भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन मुझे चाहिए। ऐसे ही अगर आपको सात तत्त्वों की बात जानना है तो आपको जिनवाणी चाहिये। और जिनवाणी कहाँ से प्रकाशित होती है तो जिनवाणी सच्चे देव के मुख से प्रकाशित होती है। बिना सच्चेदेव-शास्त्र और गुरु के श्रद्धान किये बिना कभी तत्त्वों का ज्ञान श्रद्धान होनेवाला नहीं है। आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान होनेवाला भी नहीं है, इसलिए सबसे पहले सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान आवश्यक है।

ध्यान रखना, जिस व्यक्ति की शादी न हुई हो और कोई व्यक्ति उपाय करके उसके विवाह की बात पक्की करा दे तो उस अविवाहित व्यक्ति के लिए वह व्यक्ति भी बहुत प्रिय मालूम पड़ता है। ऐसे ही जिन सच्चेदेव, शास्त्र, गुरु के माध्यम से सात तत्त्वों की बात हमारे लिए मिलती हो, शुद्धात्मस्वरूप की बात हमारे लिये प्राप्त हुई हो, वे सच्चेदेव

शास्त्र और गुरु हमारे लिये बहुत उपकारी मालूम पड़ते हैं। उनका उपकार तब तक विस्मृत नहीं किया जा सकता जब तक आत्मा परमात्मा नहीं बन जाता, इसलिए बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने दर्शन प्राभृत में दो प्रकार का सम्यग्दर्शन कहा-

छद्दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।19।।
जीवादि सद्दहणं सम्मतं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।।20।।

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, जिनवर भगवान ने कहे हैं। जो उनके यथार्थस्वरूप का श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये॥19॥

जिनवर भगवान ने जीवादि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन कहा है किन्तु निश्चय नय से आत्मा ही सम्यग्दर्शन है।।20॥

सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करना अथवा सात तत्त्वों का श्रद्धान करना। छह द्रव्य का श्रद्धान करना नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है और इन सब पदार्थों से भिन्न, सब द्रव्यों से भिन्न, एकमात्र निज शुद्धात्मा का श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। आप कहीं रसोई में पहुँचे और किसी ने कहा- घी का डिब्बा उठा लाओ। क्या उठा लाओ? घी का डिब्बा, आप तुरन्त घी का डिब्बा उठा लाते हो। तो क्या घी का डिब्बा होता है? डिब्बे में घी होता है। घी के कारण डिब्बे को भी घी का डिब्बा कहा जा रहा है। वास्तव में घी का डिब्बा नहीं होता डिब्बा तो धातु का है। मान लो डिब्बा स्टील का है और घी प्रयोजनभूत वस्तु है। लेकिन व्यवहार में घी का डिब्बा कहा जाता है। डिब्बा तो निमित्त है। निमित्त के माध्यम से जो श्रद्धान होता है उस निमित्त को व्यवहार सम्यक्त्व कहा जाता है। व्यवहार कहता है घी का डिब्बा और निश्चय कहता है घी का डिब्बा होता ही नहीं। डिब्बा अलग है और घी अलग है। इसलिए निश्चय मात्र घी को अर्थात् प्रयोजनभूत को स्वीकार करता है।

इस तरह व्यवहार-निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जिस निमित्त-उपादान की मैत्री से होती है, हमें वह प्राप्त करना होगा।

लोक में बहुत से देव हैं बहुत से शास्त्र हैं बहुत से गुरु हैं। किनके निमित्त से हमें तत्त्व की बात मिलेगी? आत्मा की यथार्थ बात सुनने को मिलेगी? किनके माध्यम से हम अपने आत्मा का निर्णय कर पायेंगे? उन निमित्तों का निर्णय करना ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सर्वप्रथम देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना। सात तत्त्व का श्रद्धान करना। लेकिन श्रद्धा भी कैसी हो? निशंक श्रद्धा होनी चाहिए। आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं-

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पाय-साम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ।।11 ।।

जीव कैसा है? ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला। ध्यान रखो, किसी भी द्रव्य का निर्णय उसके गुण से किया जाता है। शक्कर को मिठास से, नमक को उसके खारेपन से जाना जाता है। किसी भी वस्तु का निर्णय उसके गुण से करना पड़ता है। ऐसे ही आत्मा का निर्णय करने के लिए हमें आत्मा के शुद्ध ज्ञान-दर्शनगुण को जानना होगा। मैं कौन हूँ? जानने-देखनेवाला आत्मा हूँ, लेकिन कोई आत्मा को जानने-देखनेवाला ऐसा निज गुणमय शुद्धात्मा न मानकर अन्यरूप माने तो बड़ी भूल है। जैसा कहा है-

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।।

पुद्गल किसे कहते हैं? जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाता है। आँखों से सब पुद्गल दिखाई दे रहा है। क्यों? क्योंकि इनमें वर्ण पाया जाता है ये शरीर भी पुद्गल है। नभ आकाशद्रव्य को कहते हैं। जो सब द्रव्यों को रहने का स्थान देता है उसे आकाश द्रव्य कहते है। धर्मद्रव्य जो जीव और पुद्गल को चलने में सहयोगी होता है। जैसे-ट्रेन पटरी पर चलती है। तो पटरी ट्रेन के लिए चलने में सहायक है लेकिन पटरी ट्रेन से नहीं कहती कि तुम्हें चलना ही पड़ेगा। ट्रेन चलना चाहे तो पटरी उसके चलने में सहायक है, ऐसे ही धर्मद्रव्य प्रत्येक जीव और पुद्गल को चलने में सहायक होता है। अगर जीव-पुद्गल चलना चाहें तो सहायक है, अगर नहीं चलना चाहें तो जबरदस्ती भी नहीं है। अगर धर्मद्रव्य नहीं होता तो तुम घर से यहाँ नहीं आ पाते। लोक में यह धर्मद्रव्य है इसलिए आप वहाँ से यहाँ तक चलकर के आ गये।

अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को ठहरने में सहयोग करता है। अगर ठहरना चाहे तो जबरदस्ती नहीं। कालद्रव्य का काम परिवर्तन में निमित्त होना। वर्तना लक्षणवाला कालद्रव्य होता है। **पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल इनतै न्यारी है जीव चाल**। जीव इन सबसे अलग ही है। वो तो जानने देखनेवाला है। इन द्रव्यों में जानने-देखने की शक्ति नहीं होती। किन्तु विपरीत मान्यतावाला जीव शरीर में अपनी आत्मा की पहचान करता रहता है। शरीर की अवस्थाओं को आत्मा की अवस्था मानता रहता है। और जब तक शरीर की अवस्था को आत्मा की अवस्था मानेगा, तब तक जीवतत्त्व की भूल में है। आज इतना ही।

देव-शास्त्र-गुरु को ध्याओ, सम्यग्दर्शन को पाओ।
तत्त्वों का श्रद्धान करो, स्वात्माभिमुख हो जाओ।।
स्वसंवेदन ही, हो-हो-2, सम्यक्त्व कहाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

तेरह पंथ-बीस पंथ परपोषी हैं, अमरबेल की तरह हैं।
जो अनादि-अनिधन जिनागम पंथ रूपी वृक्ष
पर चढ़कर फल फूल रहे हैं।

• आचार्य विमर्श सागर

गाथा - 4
(पंचम प्रवचन)

●

पुण्य-पाप निजतत्व नहीं

10.08.2013

भिण्ड

(मोक्ष का मूल)

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छयववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-महारुक्खमूलं**) मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल (**सम्मत्त-रयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छय-ववहार-सरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेदवाला (**जाणिज्जदि**) जाना जाता है।

अर्थ-मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन रत्न ही सारभूत है, ऐसा कहा गया है। वह सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन रूप से दो भेदवाला जाना जाता है।

अहो! तत्त्वज्ञानी मुनिराज जिज्ञासु जीवों को तत्त्वभूल त्यागने का उपदेश देते हुए

10

रयणोदय

अपनी भूल सँभालोगे, सम्यग्दर्शन पा लोगे।
देह बसे निज आतम में, परमातम प्रगटा लोगे।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, प्रभु नजर न आये रे...।
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

हम सभी आचार्य भगवन कुंदकुंददेव की वाणी को सुन रहे हैं। जो श्री रयणसार जी में श्रावक और श्रमण के लिए समीचीन हित का मार्ग प्रतिपादित करते हैं। आचार्य भगवन् ने सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की पहचान कराने के बाद सम्यग्दर्शन के दो भेद बताये थे, व्यवहार

सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन। अज्ञानी जीव, मिथ्यात्वी जीव, पर पदार्थ में आसक्त, परपदार्थ को अपना माननेवाला, कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता।

कल हमने यह जाना था कि सात तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। लेकिन सात तत्वों की जब तक भूल नहीं निकलेगी तब तक सात तत्त्वों का सम्यक् श्रद्धान भी कैसे हो? इसलिए जीवतत्त्व की भूल क्या है? अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व की भूल क्या है? निर्णय करना होगा। अगर भूल का ज्ञान हो गया तो भूल से दूर होने में देरी नहीं लगेगी। अगर पता चल गया कि यह फल खराब हो चुका है तो डलिया से बाहर निकालने में देरी नहीं होती। क्यों? क्योंकि सड़ा फल अगर टोकरी में रखा रहेगा तो अन्य फलों को भी खराब कर देगा। यदि इसीप्रकार हमें अपनी भूल का बोध हो, तो उसे निकालने में फिर देरी नहीं होगी। देरी है तो भूल का परिज्ञान करने की।

कल मैंने कहा था कि फ्रिज (Fridge) में अगर पानी रख दो तो ठंडा हो जाता है। पानी ठंडा तो अपनी शीतल गुण शक्ति के कारण होता है। फ्रिज (Fridge) तो निमित्त मात्र है। वह फ्रिज (Fridge) पानी को तो ठंडा कर सकता है। लेकिन मैंने कहा था कि अग्नि को ठंडा नहीं कर सकता। हमसे धनेन्द्र जी बोले, महाराज श्री! ऐसा कैसे हो सकता है? फ्रिज (Fridge) का स्वभाव तो ठंडा करने का है। और अग्नि को आप फ्रिज (Fridge) में रख देंगे तो वह अग्नि को भी ठंडा कर देगा।

ध्यान रखना, जिसके स्वभाव में ही शीतलता न हो उसे कोई कैसे शीतल कर सकता है? फ्रिज (Fridge) में अंगारा रख दोगे तो वो अंगारा बुझ तो सकता है लेकिन शीतल नहीं हो सकता क्योंकि अग्नि का स्वभाव शीतलता है ही नहीं। और अगर तुम बुझने को शीतल कहो तो ये तुम्हारी भूल है। उसमें जब अग्नि है ही नहीं तो वो शीतल तो होगा ही होगा। लेकिन जब तक अग्नि व्याप्त है तब तक उसमें शीतलता नहीं आ सकती। हमें अपनी भूल निकालनी होगी।

मिथ्यादृष्टि जीव भूल में पड़ा रहता है। और भूल को ही वह सत्य मानता है। समीचीन यथार्थ मानता है। मिथ्यादृष्टि की भूल क्या होती है? उसका आप और हम ज्ञान करें। अगर हम वैसे परिणाम करते हैं, तो उन परिणामों को छोड़ने का प्रयास करें और तत्त्व की भूल निकालकर तत्त्व की सच्ची श्रद्धा करें।

भूल क्या है?

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबलदीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण।।

यह इस आत्मा की, इस जीव की भूल बनी हुई है।

कोई भिखारी था, और भिक्षा माँगकर अपना जीवनयापन किया करता था। जंगल में एक छोटी सी झोपड़ी बना रखी थी जिसमें पति-पत्नी निवास किया करते थे। जीवन यापन का और कोई साधन नहीं था। ध्यान रखना जो व्यक्ति जैसे कर्म करता है उसे उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। आज अगर कोई व्यक्ति धनासक्त है। खूब सम्पदा को जोड़ता है। परभव में उतना ही दरिद्री और दुखी होता है।

भिखारी से भी ज्यादा दरिद्र कौन होता है? कोई बन सकता है क्या? जो धनवान हैं फिर भी निरंतर धन की चाह में लगे रहते हैं वे भिखारी से भी ज्यादा दरिद्री होते हैं। ये तो चाह की अपेक्षा से हुआ। लेकिन भिखारी से भी कोई दरिद्री होता है तो नारकी जीव होता है। भिखारी के लिए तो दो पैसे मिल भी जाते है। नारकी को वो भी नहीं मिलते। और नारकी कौन बनते हैं? जो बहुत ज्यादा धन सम्पदा में आसक्त रहते हैं। वे नियम से नरक में नारकी पर्याय को प्राप्त होते है। वहाँ भिखारी से भी ज्यादा दरिद्र होते हैं।

वह भिखारी लोगों के सामने हाथ फैलाता था, लोग उसे गालियाँ देते थे। कभी कोई कुछ दे भी देता था और कोई कुछ भी नहीं देता था। लेकिन जैसा भी था अपना जीवनयापन किया करता था। एक दिन वह भिक्षा माँगकर अपने घर की ओर चला। रास्ते में उसने देखा कि एक कूप है। राह चलते थक गया था अत: जाकर कूप के पाट पर बैठ गया। थका हुआ था अत: पाट पर ही सो गया। कई बार व्यक्ति दुकान पर बैठे-बैठे ही सो जाता है। कुछ ऐसे भी श्रोता होते हैं जो प्रवचनों को सुनते-सुनते भी सो जाते हैं। कुछ लोग प्रवचन सभा में जाकर जाग जाते हैं और कुछ जागे हुए भी लोग प्रवचन में बैठकर सो जाते हैं।

एक बार मेरा कोटा के लिये विहार चल रहा था। कोटा वाले विहार करवा रहे थे। एक श्रावक तेजकुमार जी उन्होंने मण्डाना के स्कूल में आहारचर्या की व्यवस्था की। आहारचर्या चल रही थी वे आहार देकर एक स्तम्भ से टिककर बैठ गये और थोड़ी देर में देखा कि घुर्राटे

आने लगे। देखा कि ये घुर्राटे कहाँ से आ रहे हैं? तो पता चला कि तेजकुमार जी सो रहे हैं। जब आदमी आहार देते हुए भी सो सकता है। फिर थका हुआ हो तो सोना स्वाभाविक है। वह भिखारी भी थका हुआ था, कूप पर बैठते ही उसे नींद आने लगी तो सोचा कि थोड़ा आराम कर लूँ, पास में ही मेरी झोपड़ी है चला जाऊँगा। तो बेचारा आराम से कूप के पाट पर लेट गया और सो गया।

सोनेवाले व्यक्ति दो प्रकार के हाते हैं। एक तो गहरी नींदवाले और दूसरे थोड़ी हल्की नींदवाले। गहरी नींदवाले आराम से सोते रहते हैं। और हल्की नींदवाले कभी-कभी स्वप्न भी देखने लग जाते हैं। वह भिखारी भी हल्की नींदवाला रहा होगा तो नींद आते ही स्वप्न देखने लगा। कई बार जो व्यक्ति दिन में सोचता है वही रात्रि स्वप्न में दिखायी देने लग जाता है। भिखारी ने स्वप्न देखा कि मैं सम्राट बन गया हूँ। चुनाव का समय आनेवाला हो, तो छुट्भैया नेता भी स्वप्न देखने लग जाते हैं। कि मैं भी प्रधानमंत्री बनूँ, सांसद बनूँ, विधायक बनूँ, राष्ट्रपति बनूँ। यद्यपि वे समझते हैं कि बनना मुश्किल है लेकिन फिर भी अपना नामांकन तो दाखिल करा ही दो। चुनाव तो लड़ेगें, भले ही जमानत जब्त हो जाये। फिर भी वह चुनाव तो लड़ते ही हैं। सोचते हैं कि शायद किस्मत खुल जाये। कभी-कभी स्वप्न भी वैसा आ जाता है।

भिखारी के लिए स्वप्न आया कि वह सम्राट बन चुका है। अब सम्राट को किस चीज की कमी, राज-सिंहासन पर बैठा हुआ है। नौकर-चाकर सब आते हैं प्रणाम करते हैं। वह देखता है कि मेरा अपार वैभव है। तभी देखा उसकी रानियाँ सामने से राजदरबार में उपस्थित हो रही हैं। वह सोचता है अहो! अप्सराओं जैसी रानियाँ। मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ? हमारे पास इतना वैभव है। मैं कितना वैभववान् हूँ? मेरी सेना भी कितनी सशक्त है? पड़ौसी राजा भी मेरी सेना से काँपते हैं। थरथराते हैं। मैं अगर चलता हूँ तो नीचे मखमल बिछा दिया जाता है। चारों तरफ सुगंधित वायु फैल रही है। मुझे प्यास लगे तो सुगंधित जल लाया जाता है। सम्पूर्ण राज-वैभव मेरे पास है।

झोपड़ी पास में ही थी। उसकी पत्नी ने सोचा कि पतिदेव आनेवाले हैं। कुएँ से पानी भर लायें। पत्नी ने पानी भरने के लिए अपने घड़े लिये और चल दी कुएँ पर। वहाँ जाकर देखा तो

पतिदेव विश्राम कर रहे थे। वह बोली- वाह, ये यहाँ विश्राम कर रहे हैं और मैं वहाँ घर पर इंतजार कर रही हूँ। जैसे ही वह वहाँ पहुँची तो उसने सोचा अब इन्हें उठा तो दें। उसने कहा- उठिये, पानी भरना है। भिखारी एकदम से उठकर बैठ गया। जैसे ही उठकर बैठा, रानियाँ गायब। महारानी सामने खड़ी थी। उसने पूछा- मेरी रानियाँ कहाँ गयीं? पत्नी ने सुना तो पूछा- कौन-सी रानियाँ? और भी रानियाँ हैं क्या? पत्नी तो पत्नी होती है। उसने कहा-बोलिए किन रानियों की बात कर रहे थे आप? मेरे अलावा भी क्या और हैं तुम्हारी? उसने कहा-मेरी अभी-अभी कितनी सुन्दर रानियाँ थीं। मेरा राज सिंहासन, राज वैभव, राजपाट, धन-संपदा कहाँ चली गई? पत्नी समझ गई कि ये तो मुंगेरीलाल है। स्वप्न देख रहा होगा। रात-दिन यही तो देखते रहते हैं। स्वप्न में राजा बन गये होंगे। पत्नी ने कहा- तुम कहाँ के राजा हो? कौन से राजा हो? झोपड़ी पास में है। अब कुछ समझ आया उसे। अरे! मैं तो स्वप्न देख रहा था। मैं स्वप्न में वैभववान राजा बन गया। सब संपदा मेरी थी। आँख खुली तो सारी सम्पदा समाप्त हो गई।

ध्यान रखना! एक व्यक्ति वह होता है कि जब उसकी आँख खुलती है तो संपदा वैभव समाप्त हो जाता है। और एक व्यक्ति वह होता है जब आँख बंद होती है तो सब संपदा वैभव समाप्त हो जाती है। स्वप्न देखने वाले की आँख खुलते ही संपदा समाप्त हो जाती है। और संसारी लोभी मिथ्यादृष्टि जीवों की आँख बंद होते ही सारी संपदा नष्ट हो जाती है। स्वप्न में वह अपने आप को सुखी मान रहा था और मिथ्यादृष्टि जीव साक्षात् में धन सम्पदा वैभव प्राप्त करके अपने को सुखी मानता है। अनुकूलता नहीं मिले तो मैं दुखी। मैं रंक, मैं गरीब हूँ अथवा मैं राजा हूँ, मेरा धन, मेरा गृह, मेरा गोधन, मेरा बहुत प्रभाव है। जहाँ भी जाता हूँ सब दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मेरा बड़ा प्रभाव है। मैं अगर एक फोन (Phone) कर दूँ हजारों लोग मेरे सामने इकट्ठे हो जाते हैं। मेरे सुत, मेरे पुत्र, मेरी स्त्री, मैं बलवान, मैं दीन, मैं निर्बल, मैं बेरूप, मैं बहुत कुरूप, मैं सुभग, मैं सुन्दर, मैं मूरख, मैं मूढ़, मैं प्रवीण, मैं बहुत चतुर हूँ। ऐसी मान्यता करनेवाला मिथ्यादृष्टि होता है।

विचार करना, अपनी बुद्धि सुबुद्धि है या कुबुद्धि है? अगर ऐसे पर पदार्थों के संयोग मात्र होने पर हम अपने को सुखी-दुःखी मानने लग जायें तो यह दृष्टि मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि जीव इन पर पदार्थों के संयोग होने पर भी इन्हें अपना नहीं मानता। संयोग तो बनेगा। क्यों? क्योंकि

आप जितना पुण्य लेकर आये हो आपको उस पुण्य के योग से अनुकूल संयोग बनेंगे, और अगर आपका पापकर्म का उदय हुआ है तो प्रतिकूल संयोग बनेंगे। लेकिन ये संयोग, संयोग ही हैं। ये आत्मा के नहीं हैं। ये आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। ये आत्मा को कभी सुखी-दुखी नहीं कर सकते।

विचार करना, यह बाहरी वैभव क्या आपका है? व्यवहार से आपका है। ऐसा कहा जाता है। वास्तव में आपका नहीं है। कोई व्यक्ति बस (Bus) में सफर कर रहा है। वह घर पर फोन (Phone) करता है-सुनो, मेरी गाड़ी 8 बजे पहुँचनेवाली है। आप 8 बजे बस स्टैण्ड (Bus stand) पर मुझे लेने आ जाना। वह क्या कह रहा है 'मेरी गाड़ी'। गाड़ी में बैठते ही गाड़ी उसकी हो गई। गजब, गाड़ी में बैठे तो मेरी गाड़ी। ट्रेन (Train), एरोप्लेन (Aeroplane) में बैठोगे तो उसके भी मालिक हो जाओगे। वाह रे मालिक।

आप इसे क्या कहेंगे? यहाँ पर जो मेरा शब्द कहा जा रहा है वह मात्र व्यवहार में कहा जा रहा है कि मेरी गाड़ी। क्योंकि मैं उसमें बैठा हुआ हूँ इसलिए मेरी गाड़ी कहा जा रहा है। मालिक अगर पूछे-क्यों भाई साहब! आपने यह गाड़ी कब खरीदी? बोले, अभी दिये थे मैंने 10 रूपये टिकिट के। वो कहेगा तुमने 10 रूपये में गाड़ी खरीद ली, मैंने 10 लाख खर्च किये तब मिली और तू 10 रूपये में ही इस गाड़ी का मालिक बन बैठा।

वो कहेगा नहीं-नहीं। गाड़ी मेरी नहीं है। मैं गाड़ी में हूँ इसलिए मैंने कह दिया है मेरी गाड़ी, वास्तव में यह गाड़ी मेरी नहीं है। व्यवहार में यह कहा जाता है कि ये मेरा धन, ये मेरी पत्नी, मेरा बेटा, ये मेरा वैभव, वास्तव में यह हमारा होता नहीं है। जो इस सत्य को स्वीकार कर लेता है। और संसार के अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों को अपनी आत्मा का नहीं मानता नहीं जानता। वह जीव सम्यग्दृष्टि कहलाता है। और जो इन्हें सर्वथा अपना मानता है वह मिथ्यादृष्टि जीव कहलाता है। गाड़ी मेरी है और गाड़ी मेरी नहीं है। दोनों प्रकार का निर्णय उस जीव का है जो गाड़ी में बैठा है। एकांत निर्णय नहीं है। व्यवहार से कहता है कि गाड़ी मेरी है और निश्चय से कहता है कि गाड़ी मेरी नहीं है।

बंधुओ! अगर पुण्य के योग से आपके पास खूब धन संपदा है। और मैं तो कहता हूँ संसार में रहो तो सुख से रहो। मैं तो चाहता हूँ कि संसारी जीवों का खूब पुण्योदय हो। वे संसार में भी

रहें तो सुख से रहें लेकिन उन संयोगों को कभी अपने आत्मा का न जानें। यानि सम्यग्दृष्टि बनकर रहें। अज्ञानी जीव इन संयोगों को सर्वथा अपना मानता है। और इनका वियोग होने पर वह तड़पता है कलपता है, शोक करता है, दुःखी होता है लेकिन तुम्हारे शोक करने दुखी होने से वियोग हुई वस्तु का कभी संयोग होनेवाला नहीं है। जैसे तुमने अपनी कुबुद्धि, कुदृष्टि, मिथ्यादृष्टि के कारण इन पर-पदार्थों को अपना माना था। उसी मिथ्यादृष्टि के कारण तू आज उनके वियोग में दुखी भी हो रहा है। सम्यग्दृष्टि दुखी होगा क्या? नहीं होगा।

तुम मित्र के साथ तालाब पर नहाने के लिए गये। मित्र ने अपने जेब में रखे हुए 5000 रू. तुम्हारे लिए दे दिये कि मैं स्नान करने जा रहा हूँ। तुम इन्हें सँभाल करके रखना। तुमने रूपये ले लिये। वे रूपये तुम्हारे हैं क्या? तुम्हारे हो गये क्या वो रुपये? नहीं हुए ना। और कोई तुमसे आकर छीनने लग जाये तो क्या करोगे? उनको तुमको बचाओगे भी, यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। यह व्यवहार मार्ग है। और व्यवहार मार्ग में सब उपाय किये जाते हैं। आप उसकी सुरक्षा भी करेंगे। खींचातानी भी करेंगे और नहीं दूँगा यह भी बोलेंगे। उससे लड़-झगड़ भी जायेंगे। और उसने आपसे जबरदस्ती छीन भी लिये तो आप रिपोर्ट (Report) दर्ज करायेंगे। पुलिस (Police) ने तहकीकात की तो आप कहोगे मेरे 5000 रूपये थे। अब वे किसके हो गये? अब वे तुम्हारे हो गये। मेरे 5000 रूपये फलाने व्यक्ति ने ले लिये। पुलिस (Police) ने तुम्हारे पैसे दिला दिये। इतने में मित्र नहा धोकर आ ही गया था। उसने तुमसे अपने पैसे माँगे तो वे हाथ में आये हुए 5000 रूपये तुमने उसको दे दिये। अब वे तुम्हारे तो नहीं हैं न।

जब तक वे तुम्हारे हाथ में थे तुम जानते थे कि ये सामनेवाला नहाकर आयेगा उसी के हैं। इनका वियोग होगा। अभी एक घंटे बाद वह व्यक्ति ये पैसे मुझसे ले लेगा। जैसे ही वह नहाकर आया, उसने पैसे माँगे तो वे 5000 रूपये देते समय तुम रोओगे, विलाप करोगे क्या? दुखी होओगे क्या? क्यों नहीं होओगे? क्योंकि तुमने लेते समय ही यह निर्णय कर लिया था कि एक घंटे के बाद मुझे यह पैसे वापस करना है।

सम्यग्दृष्टि जीव संयोग वियोग को जानता है। इसलिए वह इन परपदार्थों के संयोग में मेरेपन की निश्चयात्मक स्थिति पैदा नहीं करता। हमारे पास पिच्छी कमण्डल है। किसका है?

तुम्हारा है कि हमारा है? हमारा है। ये पिच्छी कमण्डल मेरा है। मैं भी कहूँगा, लेकिन मेरा केवल व्यवहार से कहा जा रहा है। वास्तव में यह मेरी आत्मा का नहीं है। जो ऐसा निर्णय करता है वह वियोग में भी कभी दुखी नहीं होता है और जो निर्णय नहीं करता वो संयोग में सुखी और वियोग में दुखी अनुभव करता है।

तो मिथ्यादृष्टि जीव कैसी मान्यता लिये बैठा रहता है? **'मैं सुखी दुखी मैं रंक राव मेरे धन गृह गोधन प्रभाव'** इत्यादिक रूप से जो भी वह कल्पना करता है वह सब उसकी मिथ्याबुद्धि के कारण है। आपके पास जो भी है वह आपके पुण्ययोग से है। इसे कभी भी अपने आत्मा का मत जानो। चक्रवर्ती भरत छहखण्ड का राजा था। सब सम्पदा उसके पास थी लेकिन सम्पदा को अपनी आत्मा का नहीं मानता था। तो क्या उसके छह खण्ड की सम्पदा का वियोग हो गया था। वियोग तो नहीं हुआ था, जब तक पुण्य का योग है संयोग तो रहेगा ही। लेकिन एक वह जीव है जो उसे अपने आत्मा का मान लेता है इसलिए वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। और एक वह जीव है जो उसे अपने आत्मा का नहीं जानता इसलिए वह सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

बंधुओ! जीवतत्त्व की यह भूल हमें सुधारना ही चाहिए। **पुण्य के योग में बाहरी वस्तुओं का योग बनेगा इसे कोई रोकनेवाला नहीं है। लेकिन उस संयोग को संयोग ही जानना है, उसे अपना मत मान लेना।** बेटा किसका है? तुम्हारा है कि नहीं? कोई कह रहा हमारा है, और कोई कह रहा नहीं है। कहनेवाले भी दबी जबान में बोल रहे हैं क्योंकि मोह हावी हो रहा है। अरे, ये परमार्थ का मार्ग है। इस सत्य को हमें स्वीकार करना ही होगा कि बेटा व्यवहार से मेरा है वास्तव में मेरा नहीं है। अन्दर आत्मा का बल लाओ तो बोलने में सहजता हो जायेगी। जब तक आत्मबल कमजोर रहता है और मोहबल तीव्र प्रकृष्ट रहता है तब तक आत्मा भी स्वीकार नहीं कर पाता। परमार्थ मार्गी तो इसको स्वीकार करता है।

ध्यान रखना, बेटा तो तुम्हारा है। अब मैं तुम्हारा हूँ कि नहीं हूँ? हैं, हम तुम्हारे हैं। लेकिन मैं कहता हूँ तुम हमारे नहीं हो। मैं तो दम से कहता हूँ तुम मेरे नहीं हो क्योंकि परमार्थ की भावना रखता हूँ। व्यवहार से तुम्हारा हो सकता है, लेकिन परमार्थ से न तुम्हारा था, न हूँ, न हो सकता हूँ। इस सत्य को हमें स्वीकार करना होगा। जब आत्मा इस सत्य को स्वीकार कर

लेता है तब मिथ्यादृष्टिपना स्वयमेव छूट जाता है। जीवतत्त्व की भूल स्वयमेव छूट जाती है। अन्यथा यह जीव उसी भूल में पड़ा रहता है। परपदार्थों को अपने आत्मा का मानता रहता है।

ध्यान रखना, परछाई तुम्हारा साथ कब तक देगी? अगर परछाई तुम्हारे साथ भी लग जाये तो भी परछाई से तुम्हें कभी छाया नहीं मिल सकती। जब तुम्हारी छाया भी तुम्हें छाया नहीं दे सकती, फिर तुम्हारी माया तुम्हें छाया कैसे दे सकती है? इसलिए बंधुओ! अन्तर ज्ञान में इस बात का निर्णय करो कि ये परपदार्थ न कभी मेरे थे, न हैं, न होंगे।

आपने घर में एक आम का वृक्ष लगाया। समय आने पर बौर आया और उस वृक्ष पर अच्छे सुन्दर आम लद गये। अगर पड़ौसी आपसे पूछे कि ये आम किसके हैं? तो कहोगे ये आम मेरे हैं, क्योंकि मेरे घर के आँगन में वृक्ष लगा है। लेकिन ये आम तुम्हारे हैं या वास्तव में आम वृक्ष के हैं। क्या आम तुम्हारे कान पर उगे थे जो तुम कहते हो मेरे हैं? तुमने तो कुछ भी नहीं किया। आम तुम्हारे कैसे हो सकते हैं? अरे, आम वृक्ष पर हुए हैं वृक्ष तुम्हारे घर के आँगन में है। जब ये आँगन ही तुम्हारा नहीं है तो वृक्ष तुम्हारा कैसे हो सकता है? आँगन तुम्हारा है क्या? व्यवहार से है। और व्यवहार से ही तुम आँगन से बाहर निकाल दिये जाओगे जब तुम्हारा मरण होगा।

जिस आँगन में तुमने जन्म लिया। जिस आँगन में तुम पढ़े, लिखे, खेले। जिस आँगन के लिये तुम लड़े-भिड़े सब कुछ किया। जिस आँगन के लिए तुमने धन-संपदा जोड़ी। जिस आँगन के लिए निरंतर रात-दिन एक किया। मृत्यु के बाद तुम्हें उस आँगन से बाहर कर दिया जायेगा। क्योंकि न वो आँगन तुम्हारा है और न उस आँगन में रहनेवाले तुम्हारे हैं।

बंधुओ! आचार्य भगवन कुंदकुंद देव इस भीतर समायी हुई मिथ्यादृष्टि मिथ्याबुद्धि को निकालने की बात करते हैं। वो कहते हैं- सम्यग्दृष्टि बनो। अगर किसी ने पूछा कि ये आम किसके हैं और तुमने कह दिया कि घर के आँगन में खड़े आम वृक्ष के हैं। तो व्यवहार से आम कोई दूसरा थोड़े ही ले जायेगा। लेकिन भीतर ज्ञान तो है कि ये मेरे नहीं हैं। क्योंकि मेरी आत्मा में कभी आम नहीं लगते हैं।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है, कि अज्ञानी जीव अनंतकाल से मिथ्याबुद्धि के कारण परपदार्थों में, मैं और मेरेपन की विचारणा रखता आया है। और यह विचारणा होने के कारण

ही यह जीव कभी आत्मा को अपना नहीं कह पाता है। जो तुम्हारा अपना है उसे कभी अपना नहीं कहा। और जो कभी अपना हुआ नहीं, न था, न कभी होगा, उसे रात-दिन अपना-अपना कहते रहते हैं। मैंने कहा था, तुम्हारे साथ क्या जायेगा? तुम्हारा अपना आत्मा ही जायेगा। क्यों? क्योंकि तुम आत्मा ही हो। तुम मनुष्य हो कि आत्मा, कौन हो? व्यवहार से अभी मनुष्य हूँ लेकिन निश्चय से आत्मा हूँ। साथ में मनुष्य नहीं जायेगा, साथ में तो आत्मा ही जायेगा। मनुष्यपना तो यहीं समाप्त हो जायेगा।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस मनुष्यत्व को व्यवहार से मैं अपना कहता हूँ जब ये साथ में जाता ही नहीं है तो ये मेरा कैसे हो सकता है? ये तो कर्मों का फल है कि मनुष्य हुए। और कर्मों के फल को हम अपना कहते हैं। मैं मनुष्य हूँ। जबकि न कर्म हमारा, न कर्म का फल। क्यों? क्योंकि ज्ञानी जीवात्मा यह विचार करता है कि मैं तो शुद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ। मैं शरीरादि नहीं हूँ। यह धन, सम्पदा, वैभव मेरी आत्मा का नहीं है। ये तो पुण्य का है। और इससमय पुण्य हमारे साथ है इसलिए मुझे ऐसा लग रहा है कि ये मेरा है। वास्तव में यह मेरा नहीं है। ये पुण्य का है। और पुण्य इससमय हमारे साथ है। लेकिन वह भी हमारा साथ छोड़ देगा।

इसप्रकार आचार्य भगवन् ने यहाँ पर इस मिथ्याबुद्धि को दूर करने की बात कही है। यह जीवतत्त्व की भूल जिसने निकाली वह जीवतत्त्व का यथार्थ श्रद्धान कर सकता है कि **'मैं ज्ञानदर्शन स्वभावी चैतन्य आत्मा हूँ।'**

अजीव तत्त्व की भूल क्या है?

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।

शरीर के जन्म को अपना जन्म मानता है। और शरीर के नाश को अपना नाश मानता है। मैं मर जाऊँगा। अरे भाई! तू तो अविनाशी है। तू अजर-अमर है। तू कैसे मर सकता है? देह का संयोग था जब तक आयु कर्म था। अब आयु कर्म का अभाव हो रहा है इसलिए देह का वियोग हो रहा है। लेकिन तन की उपज को यह जीव अपनी उपज, अपना जन्म मानता है। आप लोग जन्मदिन मनाते हो। किसका मनाते हो? आत्मा का कि शरीर का?

ध्यान रखो, आत्मा का कभी जन्म नहीं होता। जन्म तो इस शरीर का होता है। व्यवहार से हम शरीर को अपना मानते हैं। इसलिए जिस दिन उसका जन्म हुआ है उस दिन हम जन्मदिन मनाते हैं। **जन्मदिन मनाना शरीर पाने की खुशी और जन्मकल्याणक मनाना जन्म के छूटने का आनन्द है इसलिए तीर्थंकरों का जन्म कल्याणक होता है।** इस जन्म के बाद अब उन्हें पुन: दूसरा जन्म मिलनेवाला नहीं है। इसलिए उनका जन्म कल्याणक मनाया जाता है। और आप लोग क्या मनाते हो? जन्मदिन, शरीर के पाने की खुशी। शरीर पाने की खुशी मनाओगे तो आगे भी आपको शरीर मिलेंगे। चाहे केंचुए का भी शरीर क्यों न मिले। आज तो तुमने जन्मदिन मना लिया। कभी केंचुआ बनोगे फिर कैसे मनाओगे? इसलिए इस शरीर का जन्म आत्मा का जन्म नहीं है। और जब शरीर के जन्म से मेरा जन्म नहीं होता तो शरीर के छूटने से मेरा मरण कैसे हो सकता है? इसलिए मैं मरनेवाला नहीं हूँ। मैं अजन्मा हूँ, अमरण धर्मा हूँ।

ध्यान रखना, आत्मा कैसा है? अजर, अमर, अविनाशी। ये कभी मरनेवाला नहीं है। शरीर का वस्त्र फट जाता है तो क्या आपका नाश हो जाता है? आप दूसरा कपड़ा बदल लेते हो। ऐसे ही आत्मा जब इस शरीर से छूटता है तो दूसरा शरीर धारण कर लेता है। मरण, कपड़े बदलने की तरह है। आत्मा कभी नष्ट होता नहीं है। इसलिए इस शरीर के जन्म को कभी अपना जन्म मत मानना। और इस शरीर के मरण को भी कभी अपना मरण मत मानना। आत्मा तो अजर, अमर, अविनाशी है।

लेकिन अज्ञानी अजीव तत्त्व की भूल में पड़ा रहता है। तन के उपजने को अपना जन्म मानता है और तन के विनशने को अपना नाश मानने लग जाता है। तन तो एक दिन नष्ट होगा ही होगा। लेकिन तू नहीं मरेगा। तू तन से निकलकर अपने कर्मानुसार दूसरे शरीर को प्राप्त हो जायेगा। इसलिए जो अजीवतत्त्व की भूल है उसको निकाल देना। और शरीर का जन्म मेरा जन्म नहीं। शरीर का मरण मेरा मरण नहीं। मैं तो अजर, अमर, अविनाशी हूँ। अगर आप ऐसी श्रद्धा करते हैं कि मैं तो अविनाशी तत्त्व हूँ और यदि आपका मरणकाल आ जाये तो क्या आपको दुख होगा? आप दुखी होंगे? नहीं होंगे। आप कहेंगे, मैं अविनाशी शुद्ध भगवानआत्मा, मेरा मरण कहाँ हो सकता है?

और यदि तुमने शरीर को ही अपना जन्म माना तो शरीर के छूटने पर दुखी होनेवाली बात होगी ही होगी। दुखी होकर जाओगे तो कभी श्रेष्ठ पर्याय नहीं मिल सकती, कुगति ही होगी। इसलिए अंत समय में कहा जाता है कि-

धर्मात्मा निकट हों चर्चा धर्म सुनावें।
वह सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ।।
दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ।।

बंधुओ! सबको भूल जाना लेकिन अपनी आत्मा और परमात्मा को कभी मत भूलना। ये दो ऐसे आधार हैं, जो तुम्हारा हमेशा भला करनेवाले हैं। परमात्मा का स्मरण होगा तो आत्मा का भी भला होगा। इसलिए मृत्यु तो आयेगी, आज नहीं तो कल आयेगी लेकिन इतना ध्यान रखना, मृत्यु आये तो अपनी आत्मा और परमात्मा का स्मरण करना मत भूलना। इसके अलावा और किसी का भूलकर भी स्मरण मत करना। दूसरों का स्मरण करते-करते पूरा जीवन लगा दिया क्या मिला क्या उपलब्धि हुई? बंधुओ! जो ऐसा विचार करता है वह अजीव तत्त्व की भूल को निकाल देता है।

आस्रव तत्त्व की भूल क्या है? आस्रव किसे कहते हैं? आत्मा में कर्मों के आने का जो द्वार है उसे आस्रव कहते हैं। आत्मा में कर्म किस द्वार से आते हैं? आत्मा में कर्म अपने ही परिणामों के द्वार से आते हैं। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग इत्यादि रूप जो परिणाम होते हैं, इनका निमित्त पाकर आत्मा में ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म आकर स्थान बना लेते हैं, रहने लग जाते हैं, यानि उनका बंध हो जाता है। हमें अपने परिणामों को सँभालना होगा। रागादि परिणाम कर्मों के आने के द्वार हैं। अज्ञानी जीव क्या मानता है?

'रागादि प्रगट जे दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।'

जो रागादि भाव हैं। ये प्रगट ही आत्मा को दुख देनेवाले हैं। यह अज्ञानी जीव '**तिनही को सेवत**' उन्हीं रागादि भावों का सेवन करते हुए कैसा मानता है? **गिनत चैन** उनमें अपने आप

को सुखी मानता है। विचार करना, आपकी स्त्री आपको सुख देती है कि नहीं देती। देती है। और तुम जहाँ भी जाओ वो 24 घंटे पीछे खड़ी रहे तो तुम्हें उसमें राग है इसलिए अच्छी लगती है। लेकिन 24 घंटे पीछे लग जाये तो अच्छा नहीं लगेगा ध्यान रखना, रागभाव जीव के लिए संसार वृद्धि का कारण है। दुख, मृत्यु, नरकादि कुगतियों का कारण है। **'रागादि प्रगट जे दुख देन'** ये रागादिभाव तो प्रगट में ही दुख देनेवाले हैं। आपको किसी वस्तु से राग है और वो वस्तु आपको मिल ही जायेगी ये कोई जरूरी तो नहीं है। रावण को सीता से राग हो गया। रावण जब सीता का रूप देखकर लौटा तो शैय्या पर जा पड़ा। मंदोदरी आयी, हे स्वामिन्! आप किस कारण से दुखी हैं? वह बोला–जब तक मुझे सीता नहीं मिल जाती तब तक मुझे चैन नहीं है। अहो! अभी तो आत्मा में सीता के प्रति मात्र रागभाव उत्पन्न हुआ है और इतना दुख, इतना कष्ट होने लगा कि खाना–पीना सब भूल गया। रागभाव प्रगट होते ही दुख देनेवाला है। एक दिन रावण सीता को हर लाया।

उसने सीता के समक्ष प्रणय निवेदन किया। कहा–भो सीते! यदि तू मुझे स्वीकारती है तो मैं तुझे पटरानी बनाऊँगा। सीता रावण को धिक्कारती है, कहती है–परस्त्री की चाह करना महापाप है। रावण समझ गया, सीता के हृदय में सिर्फ राम हैं। यद्यपि रावण बलवान था लेकिन 'मैं कभी बलात् चेष्टा नहीं करूँगा' इस नियम से बँधा था।

रावण अपने भाइयों के साथ अनंतबल केवली की वंदना करने गया था। वहाँ प्रभुवाणी सुन छोटे भाइयों ने नियम लिए, तो रावण मन में सोचने लगा कि मैं तो नियम लेने की सामर्थ्य से रहित हूँ। अहो! तीन खण्ड का अधिपति रावण जो शत्रुओं को जीतने के लिए महा बलवान है, वह भी भीतर से इतना कमजोर कि एक छोटा–सा नियम भी नहीं ले सकता। ऐसे भी लोग अनंतबल केवली के पादमूल में बैठे हैं। जिनके पास ज्यादा वैभव नहीं है लेकिन भीतर से इतने समर्थ हैं कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ नियम ले लेते हैं। और एक रावण वहाँ बैठा है तीन खण्ड का अधिपति, उस समय का सबसे बलवान राजा लेकिन एक भी नियम धारण करने में समर्थ नहीं है। वह अपने को असमर्थ पाता है कि मैं कैसे नियम ले लूँ? उसे अभी राजपाट भोगों में रागभाव है राग बना हुआ है।

एक मुनिराज जो वहाँ विराजमान थे उन्होंने संबोधा, भो रावण! तू भी कोई नियम ले। तेरे भाइयों ने तो नियम ले लिया। केवली का पादमूल मिलना बड़े पुण्य की बात है। आज पंचमकाल में हम सभी केवली भगवान के पादमूल को तरस रहे हैं। काश हमें भी केवली भगवान् का पारमूल मिल जाता तो उनके चरणों में बैठकर क्षायिक सम्यक्त्व धारणकर लेता।

रावण को मुनिराज ने समझाया। रावण सोच में पड़ गया कौन सा नियम लूँ? रावण प्रतिनारायण था, बहुत सुन्दर रूपवान था। सोचने लगा– मैं रूपवान हूँ सुन्दर हूँ तीन खण्ड का अधिपति हूँ लोक में ऐसी कौन सी स्त्री हो सकती है? जो मेरे वैभव और रूप को देखकर मुझे स्वीकार नहीं करेगी। उसने कहा–भगवन्! मैं एक नियम लेता हूँ कि जो स्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी मैं उसके साथ कभी बलात् चेष्टा नहीं करूँगा। सोच समझ के नियम लिया था कि मैं रूपवान हूँ वैभववान हूँ ऐसा तो हो ही नहीं सकता। कि कोई स्त्री मुझे न चाहे। जैसे कभी-कभी आप लोग आकर कहने लग जाते हो कि महाराजश्री! मैं जिससमय सो जाऊँगा उस समय हमारा मौन रहा करेगा। आज से ये हमारा नियम है। अब जो सोयेगा उसका तो मौन वैसे ही रहेगा लेकिन चलो तुमने कम-से-कम मौन तो लिया, सोते समय ही सही। आज तुमने सोते समय मौन का नियम लिया है। हो सकता है, तुम कल जाग्रत अवस्था में भी मौन का नियम लेने में समर्थ हो जाओ।

सीता ने रावण की ओर नहीं देखा। रावण सोचता था कि मुझे तो सब स्त्रियाँ चाहेंगी और सीता रावण को देखती भी नहीं है। रावण मन में सोचता है कि ये तो मेरा नियम है कि जब तक सीता मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक मैं सीता के साथ बलात् चेष्टा नहीं करूँगा। आकर फिर शय्या पर पड़ गया। मंदोदरी ने रावण को समझाया कि भो स्वामिन! यह जो आप विचार कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है। राग में पड़कर आप इतने दुखी हो रहे हैं। आपके पास तो इतनी सुन्दर-सुन्दर रानियाँ हैं। एक सीता के राग में क्यों दुखी होते हो? लेकिन जब भीतर राग बन जाता है तब परमात्मा भी समझावें तो भी उस रागी को परमात्मा की भी बात अच्छी नहीं लगती, उसे तो उससमय अपना राग ही रुचिकर लगता है।

जिनवाणी भीतर क्यों नहीं जा रही है? क्योंकि तुम रागादि भावों से आकण्ठ भरे हुए हो। अब वो भीतर जायेगी कैसे? रास्ता मिले तब तो भीतर कुछ जाये। तुमने तो रास्ता ही बंद कर

रखा है। अहो! आचरण में कोई परिवर्तन क्यों नहीं होता? जब तुम पहले से रागभाव से भरे हुए हो तो सम्यक् आचरण तुम्हारी आत्मा में कैसे आ सकता है? तुम्हें पहले रागादि भावों से निवृत्त होना पड़ेगा। बुद्धि को निर्मल बनाना पड़ेगा। सम्यक् आचरण आत्मा में से प्रगट होता है बाहर से थोड़े ही आता है। मंदोदरी ने रावण को बहुत समझाया, हे स्वामिन्! आप हमारी बात मानो, सीता के राग में मत पड़ो लेकिन रावण सीता के राग में पड़कर निरंतर दुखी होता रहा।

रागादि प्रगट जे दुख देन तिनही को सेवत गिनत चैन।

जब तक जीव रागादि भावों को अपने सुख का कारण मानता रहता है। तब तक आस्रव तत्त्व की भूल बनी रहती है। और जब वह रागादि भाव को अपने आत्मा के लिए दुख का कारण श्रद्धान करता है। तब आस्रव तत्त्व की भूल निकल जाती है। और वीतराग भाव आत्मा के लिए हितकारी है सुखकारी है। ऐसा श्रद्धान करता है। बंध तत्त्व की भूल क्या है?

'शुभ अशुभ बंध के फल मँझार,
रति अरति करें निज पद विसार।'

शुभ और अशुभ बंध हैं। शुभकर्म का फल हुआ तो रति करने लगा, राग करने लगा, आसक्त हो गया, और अशुभ कर्मों का उदय हुआ तो हाय-हाय करने लगा। क्यों? **'निज पद विसार'** अपने आत्मा के स्वभाव को आत्मपद को भूलकर। अगर आत्मा के स्वभाव का आश्रय किया होता तो शुभकर्म के फल में रति नहीं करता और अशुभ कर्म के फल में अरति नहीं लाता। 'मैं शुद्धचैतन्य आत्मा हूँ।' हमारे पास दो बाहरी तत्त्व हैं पुण्य और पाप। हमारे लिए जितनी भी बाहरी अनुकूलताएँ मिली हैं, ये इस पुण्य की हैं। जो भी बाहरी प्रतिकूलताएँ प्राप्त हो रही हैं, ये इस पाप की हैं। ये पुण्य-पाप मेरे नहीं है। जिसे शुद्ध आत्मा स्मरण में आता हो, वह पुण्य और पाप के फलों में हर्ष और विषाद नहीं करता। 'मैं शुद्ध चैतन्य स्वभावी आत्मा हूँ।' ऐसा जिसे स्मरण रहता है वह बंध तत्त्व की भूल को निकाल देता है। और जो शुभ-अशुभ कर्मों के फलों में हर्ष-विषाद करता है, वह बंध तत्त्व के स्वरूप को जानता हुआ भी बंधतत्त्व की भूल से रहित नहीं हो पाता। बंध तत्त्व के स्वरूप को जाननेवाले तो दुनियाँ में बहुत हैं।

आत्मा का कर्मों के साथ एकक्षेत्रावगाह संश्लिष्ट सम्बन्ध हो जाना बंध कहलाता है। ऐसे बंधतत्त्व की परिभाषा या स्वरूप समझनेवाले तो बहुत हैं लेकिन बंधतत्त्व की भूल क्या है? इसकी जब तक समझ नहीं होगी तब तक बंधतत्त्व के प्रति हमारे अन्दर निस्पृहता नहीं आ सकती।

इसलिए बंधुओ! आप सभी इन तत्त्वों की भूल को जानकर उन्हें छोड़ना और जो स्वरूप के परिणाम हैं उन्हें सँभालना, उनको अपने जीवन में लाना, इससे आत्मशांति प्राप्त होगी। यदि भिखारी के स्वप्न की तरह तुम इन पर पदार्थों को ही अपना मानते रहोगे, पुण्य-पाप कर्म के उदय में हर्ष-विषाद करते रहोगे, रागादिभाव से अपने आप को सुखी मानते रहोगे तो यह तत्त्वों की भूल नहीं निकलेगी और जब तक तत्त्वों की भूल नहीं निकलेगी, तब तक उनका श्रद्धान कैसे होगा? तत्त्व श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'

तत्त्वों का जो स्वरूप सहित श्रद्धान है उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आप सभी की आत्मा में तत्त्वों का स्वरूप प्रकाशित हो। ऐसी मेरी आप सभी के प्रति सद्भावना है।

अपनी भूल सँभालोगे, सम्यग्दर्शन पा लोगे।
देह बसे निज आतम में, परमातम प्रगटा लोगे।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, प्रभु नजर न आये रे....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा – 4
(छठवाँ प्रवचन)

●

आत्महित का कारण विरागमय ज्ञान

11.08.2013

भिण्ड

(मोक्ष का मूल)

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं।
तं जाणिज्जदि णिच्छयववहार-सरूवदो भेयं।।4।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-महारुक्खमूलं**) मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल (**सम्मत्त-रयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छय-ववहार-सरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेदवाला (**जाणिज्जदि**) जाना जाता है।

अर्थ–मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन रत्न ही सारभूत है, ऐसा कहा गया है। वह सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन रूप से दो भेदवाला जाना जाता है।

'जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है' अतः अतत्त्व श्रद्धा का त्याग करो।

11

रयणोदय

तत्त्वों का श्रद्धान करो, सम्यग्दर्शन ज्ञान वरो।
जो आतमहित का हेतु, वह वैराग्य महान वरो।।
रागी-द्वेषी बन, हो-हो-2, क्यों दुख उपजाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जीवन में शान्ति सभी चाहते हैं लेकिन शांति का मार्ग, शांति का उपाय कोई-कोई ही खोज पाते हैं। शांति दूर नहीं है हम शांति के मार्ग से दूर हैं। अगर हम वास्तव में शांति के इच्छुक हैं तो शांति का मार्ग हमें स्वयं अपनाना होगा। अगर आप ऐसा सोचें कि आपके जीवन में शांति कोई दूसरा ला देगा तो शायद आप भ्रम में जी रहे हैं। आपके जीवन में शांति आपके द्वारा ही

आ सकती है क्योंकि अशांति के कारण भी तुम ही हो। विपरीत मार्ग पर चलोगे तो जीवन में अशांति तो पैदा होगी ही। समीचीन मार्ग पर यथार्थ मार्ग पर चलोगे तो जीवन में शांति आये बिना नहीं रहेगी।

किसी ने भगवान महावीर से पूछा– भगवन्! दुख का कारण और आत्मशांति का मार्ग क्या है? भगवान महावीर ने कहा– दुख का कारण राग है। राग को अच्छा बतानेवाला अज्ञान है। सुख का साधन, आत्मशांति का मार्ग वीतरागता है। और वीतरागता को अच्छा बतानेवाला सम्यग्ज्ञान है। संसार में जितने भी प्राणी हैं ज्ञान सभी के पास है। लेकिन एक व्यक्ति ज्ञान के द्वारा राग को अच्छा जानता है और एक व्यक्ति ज्ञान के द्वारा वीतरागता को अच्छा मानता है। जो राग को अच्छा माने, भला माने उसके जीवन में कभी आत्मशांति नहीं आ सकती। वह निरंतर दुखों का मार्ग ही खोज रहा है। और जो वीतरागता को अच्छा माने, वीतराग मार्ग को श्रेष्ठ माने, वह व्यक्ति अपने ज्ञान के द्वारा अपने सुख का, आत्मशांति का मार्ग खोज रहा है। राग के निमित्त बाहर हैं। यदि आप अपने ज्ञान को बाहर की ओर ले जा रहे हैं, पर पदार्थों से जोड़ रहे हैं, तो आपका ज्ञान राग ही पैदा करेगा। क्योंकि राग के निमित्त बाहरी पदार्थ उनका आश्रय है। वीतरागता का साधन बाहर नहीं है। वीतरागता का साधन अन्तर में है आत्मा में है। यदि आप अपने ज्ञान को बाहरी पदार्थ से जोड़ते हैं, तो राग मिलेगा। संसारी प्राणी अपने ज्ञान को परपदार्थों से ही जोड़ने में लगा रहता है। वह इस बात का निर्णय ही नहीं कर पाता कि परपदार्थ से जुड़ा ज्ञान राग, द्वेष, मोह को पैदा करेगा, और ये ही दु:ख के साधन हैं, कारण हैं। इनके द्वारा आत्मा में आकुलता पैदा हो जाती है। विचार करना, आप अपने रिश्तेदार के यहाँ गये। रिश्तेदार ने आपका आतिथ्य किया सम्मान में आपको कोई भेंट दी। आप वह कीमती भेंट लेकर चले। आपको सुरक्षा की आकुलता होने लगी और कदाचित् वह आपके हाथ से छूट कर टूट गई, गिर गई, खो गई। विकल्प अपने भीतर पैदा हो गये। विकल्प पैदा क्यों हुए उसका कारण है, उस पदार्थ में राग पैदा हो गया। अगर उसमें राग पैदा नहीं हुआ होता तो पदार्थ जहाँ जैसा पड़ा है वह वैसा ही पड़ा रहता। कहते हैं–

कबीर का बेटा कमाल था। जैसा नाम था बुद्धि से भी वैसा ही था। वह लोगों के लिए जीवन की नश्वरता का बोध कराता। संसार के दुखों से परिचय कराता। ज्ञान और अज्ञान क्या है? इसके विषय में लोगों को अनुभव से बताता। उसकी ख्याति फैलने लगी। एक बात ध्यान रखना, जहाँ सत्य मिलता है उसकी ख्याति स्वयमेव फैलने लग जाती है। जहाँ उपयोगी सामान

हो वहाँ व्यक्ति अपने आप पहुँच जाता है। और जो उपयोगी न हो वहाँ कोई जाकर करेगा क्या? वहाँ मिलेगा क्या? वह जो कमाल था लोगों के लिए जीवन जीने के सूत्र बताता। एक सम्राट ने सुना कि कोई पहुँचा हुआ आदमी है। एक बात ध्यान रखना, इस संसार में रंक हो या राजा कोई भी सुखी नहीं है। वैभव कितना भी उपलब्ध हो जाये वैभव से सुख नहीं आता। वैभव तो मात्र दुख का साधन है। आपका वैभव दूसरे को भी दुखी करता है। कभी दूसरे को सुखी नहीं करता। और आपका वैभव आपको तभी सुखी कर सकता है जब आपके पुण्य का उदय हो। अगर आपका पुण्योदय नहीं है तो आपका वैभव आपके लिए भी दुख का कारण बनेगा।

सम्राट, कमाल के पास पहुँचा। उसने सोचा कि चलो इनके निमित्त से हमें कुछ शांति के सूत्र मिलेंगे। अपने जीवन को मैं भी अच्छा बनाने का प्रयास करूँगा। सम्राट ने सोचा- बुद्धिमान व्यक्ति के पास जा रहा हूँ। कुछ उनसे लेने ही जा रहा हूँ तो हाथ में भी कुछ लेकर जाना चाहिए। अब सामान्य आदमी हो तो सामान्य वस्तु लेकर जायेगा। वो सम्राट था। रत्न लेकर पहुँच गया। वहाँ देखा, बहुत से श्रद्धालु उनसे कुछ न कुछ आत्मशांति के उपाय पूछ रहे हैं। सम्राट ने भी आत्मशांति का उपाय जानना चाहा। कमाल ने बताया- भो राजन्! आत्मशांति तो आत्मा में ही मिलेगी। मिट्टी का तेल मिट्टी तेल के कूप से मिलेगा जलकूप से नहीं। अगर कोई जलकूप से मिट्टी का तेल लेना चाहे तो उपलब्ध नहीं हो सकता। यदि आप जीवन के लिए जल को उपयोगी समझते हैं तो तेल कूप के पास जाना व्यर्थ है। भो राजन्! अगर तुम इस वैभव से सुख शांति चाहते हो तो आप भ्रम में जी रहे हो। क्योंकि वैभव आत्मा को भव-भव में पराभव दिखाता है। वैभव आत्मा के लिए भव-भव में अपमानित कराता है। लोग सोचते हैं कि धनवैभव, बाह्य संपदा हमारे लिए सम्मान दिलाती है। ये आप बहुत बड़ी भ्रम की स्थिति में जी रहे हैं। जिस आदमी के पास जितना ज्यादा वैभव होता है, वह भीतर उतना ही अशांत रहता है।

जैसे- मैं किसी मंच पर पहुँचा और किसी ने मुझे सम्मान के साथ नहीं बुलाया तो मेरा अपमान हो जायेगा। जितना बड़ा आदमी उतना ही ज्यादा अशांत रहता है। ध्यान रखना, अगर कोई गरीब आदमी हो, सामान्य आदमी हो उसको कोई चिंता नहीं रहती, मुझे कोई बुलायेगा नहीं बुलायेगा क्या फर्क पड़ता है इन चीजों से। इसलिए जो आदमी जितना ज्यादा वैभववान होता है वह उतना ज्यादा भीतर से अशांत रहता है। और कदाचित् सम्मान के लिए बुला भी लिया लेकिन सम्मान में उचित शब्दों का प्रयोग नहीं हो पाया, सामान्य शब्दों का ही प्रयोग रह गया तो भी भीतर अशांति रहती है।

कहने का तात्पर्य यह है- कोई यह सोचता है कि हमारे पास जितना वैभव होगा मुझे उतना ही ज्यादा सुख और सम्मान मिलेगा। अरे, सम्मान नहीं मिलेगा। तू सम्मान के लिए हमेशा दुखी रहेगा। और अगर सामान्य व्यक्ति होगा तो कभी कोई चाह नहीं रखेगा। सम्राट् वैभववान था, उसने सोचा- इन बुद्धिमान कमाल जी के पास तो अनेकों लोग पहुँचते होंगे। कुछ भेंट लेकर भी आते होंगे। मैं नगर का सम्राट हूँ, मेरे द्वारा कोई ऐसी भेंट ले जानी चाहिए जो अपने आप में उत्तम हो। तो वह एक सुन्दर सा बहुकीमती रत्न लेकर उसके पास पहुँचा। उसने वहाँ जाकर देखा, एक साधारण सी झोपड़ी, जहाँ लोग बैठ करके सत्संग कर लेते हैं। ज्ञान की बातें कर लेते हैं। सम्राट् ने कमाल से पूछा तो कमाल ने कहा- "भो राजन्! इस वैभव से कभी आत्मशांति नहीं मिलती। आत्मशांति तो हमेशा आत्मा के आश्रय से मिलेगी। सम्राट ने मन में सोचा कि ये आदमी वास्तव में सत्य बोल रहा है या केवल वचनों से ही बोल रहा है। कैसे निर्णय करूँ? तो सम्राट ने तुरन्त अपना वो कीमती रत्न निकाला और कहा- आपने मुझे दो ज्ञान की बातें दी है। आप मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।

बंधुओ! मैंने कहा था संतों के पास धन संपदा और वैभव का कोई महत्व नहीं होता। संत के पास अगर महत्व है तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान- चारित्र इसका महत्व होता है। वैराग्य का महत्व होता है। कमाल ने कहा- भो राजन्! आपने मेरे विषय में इतनी चिंता की, मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ। आप अपना रत्न अपने पास ही रखिये। कभी-कभी कोई भक्त लोग गुरुजनों के पास पहुँचते हैं। कोई न कोई भेंट लेकर आ जाते हैं। महाराजश्री! ये तो आपको लेनी ही पडेगी। हम बहुत भाव से लाये हैं। आप इसे स्वीकार करो। संत सोचते हैं, गुरु सोचते हैं कि आप जिस भाव से लाये हैं, मैंने आपके उस भाव को स्वीकार किया लेकिन मुझे आपके द्वारा भाव से दी जानेवाली यह वस्तु स्वीकार नहीं है। आपके भाव स्वीकार हैं।

ध्यान रखना! संतों को कभी पदार्थों से, वस्तुओं से, वैभव से रिझाया नहीं जा सकता। साधुजनों को गुरुजनों के लिए भावों से बुलाया तो जाता है लेकिन वैभव से रिझाया नहीं जा सकता। कमाल ने कहा-अपना रत्न आप अपने पास रखिये। सम्राट् ने कहा- अब लाया हूँ तो लेकर तो नहीं जाऊँगा। मैं तो इसे आपके पास ही छोड़कर जाऊँगा। आपको देकर जाऊँगा। कमाल ने कहा- एक काम करो इस झोपड़ी के ऊपर जो लकड़ी है उसमें रख दो। सम्राट् ने सोचा- चलो स्वीकार तो किया। सम्राट् ने उस झोपड़ी के ऊपर जो लकड़ी लगी थी उसमें वह रत्न रख दिया। शिष्टाचार का निर्वाहकर सम्राट वापिस हो गया। इधर कमाल अपने काम में लग गया।

महीने दो महीने के बाद सम्राट फिर कमाल के पास आया। उसने सोचा- चलो देखें तो जाकर, अभी तक जो झोपड़ी में रहता था अब कीमती रत्न से झोपड़ी की रंगत बदल गयी होगी। सम्राट आया और उसने कमाल की झोपड़ी को देखा तो आश्चर्य करने लगा। कमाल के पास जाकर बोला- कमाल के आदमी हो, मैं आपके लिए रत्न देकर गया था वो रत्न कहाँ है? कमाल ने कहा- जहाँ तुम रखकर गये थे वहीं खोजो। सम्राट ने देखा जैसा रत्न रखकर गया था वह वैसा का वैसा वहीं रखा हुआ है। सम्राट सोचने लगा- इस बुद्धिमान व्यक्ति ने जो बात कही थी वह परिणाम भी इसके अंदर है। रत्न के प्रति कोई राग, चाह, कामना नहीं है। सच्ची बात बताना, आप रास्ते से जा रहे होते और कहीं पर कोई कोहिनूर पड़ा होता तो आप क्या करते? उसको उठाकर अपनी जेब में अवश्य रख लेते। आप सोचते, आज तो अपना महान पुण्योदय हुआ है। लेकिन ध्यान रखना, अगर आप रास्ते से जा रहे हैं और वहाँ कोई रत्न, हीरा, 1000 या 500 का नोट पड़ा दिख जाये और यदि आपने उस रत्न या नोट को उठा लिया तो ये आपका पुण्योदय है कि पापोदय है। चोरी करना पाप है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं-

निहितं वा पतितं वा, सुविस्मृतं वा परस्व-मविसृष्टं।
न हरति यन्न च दत्ते, तदकृश-चौर्यादुपारमणम्।।57।।

जो रखी हुई, गिरी हुई, और भूली हुई अन्य की वस्तु को बिना दिये नहीं लेता है और न दूसरों को देता है उसको स्थूल चोरी से विरक्त अर्थात् अचौर्याणुव्रती कहते हैं।

अर्थात् किसी की पड़ी हुई, भूली हुई, गिरी हुई, वस्तु को उठा लेना चोरी है। और आपने रास्ते में पड़ी हुई वस्तु को उठा लिया तो चोरी की। आपने पुण्य किया या पाप किया? लेकिन जिस व्यक्ति ने पाप में ही पुण्य की श्रद्धा करली हो क्या उसका श्रद्धान समीचीन हो सकता है? क्या वह सम्यग्दृष्टि हो सकता है? ध्यान रखना, तत्त्वज्ञान, तत्त्वश्रद्धान की बात करनेवाला यदि चोरी करता हुआ भी अपना पुण्य का उदय मानता हो तो उसे अभी तत्त्व का श्रद्धान है ही नहीं। चोरी करना तो पाप ही है। रास्ते में पड़ी हुई वस्तु को उठाने का भाव आ गया, उठा ली या रखली। अरे, कितनी भी कीमती वस्तु क्यों न हो, तुम्हारा पुण्य का उदय नहीं है। ये तुम्हारा पापोदय है और पाप का ही बंध हुआ है।

सम्राट ने देखा, अहो! यह रत्न यहीं का यहीं रखा है। ये कमाल नाम का व्यक्ति वास्तव में कमाल का है। सम्राट ने पूछा- आपने इसका उपयोग नहीं किया? कमाल ने कहा- अगर

मुझे इसका उपयोग ही करना होता तो मैं यह बाहरी वैभव छोड़कर क्यों आता? ध्यान रखना बंधुओ! आत्मा में रागभाव बाहरी पदार्थों के निमित्त से आता है राग का कारण कथंचित् बाहर का पदार्थ है। भीतर का पदार्थ सर्वथा राग का कारण नहीं है। भीतर का पदार्थ तो वीतरागता का कारण है। बाहर के पदार्थों को जोड़कर अगर कोई आत्मा की वीतरागता का अनुभव करना चाहे तो तीन काल में सम्भव नहीं है। हम सभी जानें, तत्त्वों का यथार्थस्वरूप क्या है? और तत्त्वों की भूल क्या है? यहाँ भूल को निकालकर यथार्थस्वरूप को अनुभव करने के लिए बैठे हैं।

कल जान लिया था आस्रव तत्त्व की, बंध तत्त्व की भूल क्या है? आज कहते हैं-संवर तत्त्व की भूल क्या है? संवर तत्त्व से ही धर्म शुरु होता है। संवर तत्त्व से ही मोक्षमार्ग शुरु होता है। संवर तत्त्व से ही आत्मा का हित शुरु होता है। संवर के बिना कर्मों से स्वयंवर होता रहता है। लेकिन आत्मा का कभी भी हित कल्याण नहीं होता है। इसलिए संवर तत्त्व का श्रद्धान करना चाहिये। संवर तत्त्व की भूल क्या है?

आतम हित हेतु विरागज्ञान ते लखें आपको कष्ट दान।

जिसे संवरतत्त्व की सच्ची श्रद्धा नहीं है, ऐसा अज्ञानी मिथ्यात्वी जीव कदाचित् संवर तत्त्व की परिभाषा को जान सकता है। लेकिन संवर तत्त्व की परिणति, संवर तत्त्व के परिणाम को अनुभव नहीं कर पाता। **'आतम हित हेतु'** आत्मा के हित का कारण। क्या है? **'विराग ज्ञान'** वैराग्यमय ज्ञान है। **अहो! वैराग्यमय ज्ञान ही आत्मा के हित का कारण है।** जब तक ज्ञान वैराग्य नहीं बनता, वैराग्य नहीं लाता तब तक आत्मा का हित नहीं होता है।

मिथ्यादृष्टि वैराग्यभाव को कष्टदायी मानता है। वैराग्य, हे भगवान! चारित्रमोहनीय कर्म का उदय है ऐसा कहकर बचता है। संवरतत्त्व की श्रद्धा करनेवाला वैराग्यमयी ज्ञान को आत्मा के लिए हित का कारण मानता है। इसलिए उसने जो ज्ञान पाया है, वह उसे वैराग्य उत्पत्ति का कारण बनाता है। एक बात बताना, किसी व्यक्ति के पास धन हो तो वह धन को पूँजी बनाकर रखना चाहेगा या धन की पूँजी से अपने व्यापार की वृद्धि चाहेगा? वह व्यापार को बढ़ाने में करेगा। जैसे धन तो मात्र पूँजी है। उससे वह अपने व्यापार को और बढ़ाता है। ऐसे ही धर्मात्माजन ज्ञान को पूँजी बनाते हैं। उस ज्ञानरूपी पूँजी से वैराग्यरूपी व्यापार को प्राप्त करना चाहते हैं। और जब ज्ञान की पूँजी वैराग्य को जीवन में लाती है तो आत्मा का हित होता है। यदि जीवन में वैराग्य नहीं आये, वैराग्य भावना नहीं आये। तो आत्मा का हित सम्भव नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीव के अंतस में नियम से वैराग्य भावना होती है। ध्यान रखना, आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी 'समयसार जी' के अध्यात्म अमृत कलश में कहते हैं-

''सम्यग्दृष्टेर्नियतं ज्ञान वैराग्य शक्तिः।''

सम्यग्दृष्टि जीव के नियम से ज्ञान और वैराग्य शक्ति हुआ करती है। अगर कोई वैराग्य को अपने लिए कष्टदायी माने, दुखदायी माने, ऐसे व्यक्ति के लिए अभी संवर तत्त्व का सच्चा श्रद्धान नहीं है। सम्यग्दृष्टि वैराग्य को भला मानेगा, हितकारी मानेगा। कभी दुखदायी कष्टदायी नहीं मानेगा।

ध्यान रखना, जिसके जीवन में कभी वैराग्य नहीं आता उसके जीवन में कभी वीतरागता नहीं आती। वैराग्य, वीतरागता की ओर ले जाता है। इसलिए संवर तत्त्व का श्रद्धान करनेवाला वैराग्य मार्ग की श्रद्धा करता है। वैरागियों की श्रद्धा करता है। और **यदि कोई वैराग्य और वैराग्यमार्गियों की निंदा करे तो उसे संवर तत्त्व का श्रद्धान नहीं है**। अपनी बुद्धि से स्वयं निर्णय करना। संत का उपदेश सुनकर कदाचित् किसी को वैराग्य होने लगे तो संवर तत्त्व का श्रद्धानी जीव क्या करेगा? उसके वैराग्य की अनुमोदना करेगा या यह कहेगा- देख लो, तलवार की धार है। अगर संवरतत्त्व का श्रद्धानी होगा तो यह कहेगा-

बहती हुई नदी को पार कर रहा हूँ मैं।
तूफाँ के आगे रोज दिया धर रहा हूँ मैं।।
सब लोग कह रहे नहीं बच्चों का खेल ये।
तलवार की है धार फिर भी चल रहा हूँ मैं।। ज़ाहिद की ग़ज़लें

सम्यग्दृष्टि कहेगा, आपके हृदय में जो मोक्षमार्ग का, आत्म हित का, कल्याण मार्ग का विचार पैदा हुआ है वह श्रेष्ठ है, आप धन्य हैं। इस संसार में रहनेवाले जीव वैराग्य को कभी प्राप्त नहीं कर पाते और आपके हृदय में यह विचार आया है, मैं आपके वैराग्य की अनुमोदना करता हूँ। स्वर्ग में एक मात्र लौकांतिक देव ऐसे होते हैं जो तीर्थंकरों के वैराग्य के समय ही आते हैं। किसलिए आते हैं? वे तीर्थंकरों को जब वैराग्य होता है तो आकर समझाते होंगे कि भो तीर्थंकर देव! कुछ समय घर में और रुक जाओ। कुछ समय और देखलो। तलवार की धार पर चलने जैसा मार्ग है। ऐसे ही समझाते हैं क्या? आप लोगों ने पंचकल्याणक तो देखे होंगे। पंचकल्याणक में लौकांतिक देव तपकल्याणक मनाने आते हैं। वे भगवान के वैराग्य की

अनुमोदना करते हैं। क्यों? क्योंकि वे देव सम्यग्दृष्टि होते हैं। संवर तत्त्व की श्रद्धा रखनेवाले होते हैं। वे जानते हैं कि वैराग्य ही परम सत्यमार्ग है। वैराग्य के द्वारा ही आत्मस्वरूप की अनुभूति की जा सकती है। इसलिए वे वैरागियों के मार्ग की अनुमोदना करते हैं।

और तुम क्या करते हो? अगर किसी को वैराग्य हो जाये तो समझाते हो-थोड़े और घर पर रह लो। अभी उमर ही क्या है? 25-50 साल के हो जाओ। विचार करो! तुम्हें संवर तत्त्व की कितनी श्रद्धा है? सात तत्त्वों की अगर श्रद्धा नहीं है तो सम्यग्दर्शन कैसे होगा? बाह्य क्रियामात्र से धर्मात्मा नहीं हो जाता। तत्त्व श्रद्धान चाहिये। **संवरतत्त्व का श्रद्धान करनेवाले जीव के हृदय से हमेशा वैराग्य की अनुमोदना निकलती है।** वैरागियों में उसे आदरभाव होता है। सम्मान का भाव होता है।

और जिसे संवर तत्त्व का श्रद्धान नहीं है। वे कहते हैं– ज्ञान करो। वैराग्य से क्या होता है? अरे भाई! तेरे ज्ञान से क्या हो जाएगा? पूँजी अकेले से क्या होगा? पूँजी को लगाना पड़ेगा तब ही व्यापार बढ़ेगा। ज्ञान की पूँजी तो तुझे प्राप्त हुई है। अब उसका उपयोग कर। जीवन में वैराग्य ला।

कोई लोक संत थे, उन्होंने बहुत समय तक जंगल में झोपड़ी (कुटिया) में रहकर अपनी धर्म साधना की। उनकी दो स्त्रियाँ थी। अब जैन साधु तो थे नहीं। जैनसाधना के मार्ग में तो इन सबका परित्याग होता है।

तो उनके दो स्त्रियाँ थीं, उद्यान था, सब सुख-सुविधायें थीं और वहीं रहकर प्रभु नाम जपा करते होंगे। उनके हृदय में विचार आया कि मैं ज्ञान तो बहुत करता हूँ यदि उस ज्ञान का उपयोग नहीं करूँगा, वैराग्य जीवन में नहीं लाऊँगा तो मेरी आत्मा का क्या हित होगा? उन्होंने अपने जीवन में वैराग्यभाव को जाग्रत किया और अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर कहा- अब हम अपना आत्महित करना चाहते है आप लोग हमारे पास जो भी है वन, उद्यान, फल-फूल, झोपड़ी, जो कुछ भी है वह आप दोनों के बीच में हम आधा-आधा कर देना चाहते हैं। जिससे हमारे बाद आप दोनों के बीच में किसी प्रकार का मतभेद या विवाद न हो।

उनकी बड़ी पत्नी कहा- रुक जाओ, मत जाओ, थोड़े समय बाद फिर चले जाना।

लेकिन किसी को हृदय से वैराग्य हो जाये तो वो किसी की सुनता नहीं है। जब तक वैराग्य नहीं होता तब तक जीव साधु की नहीं सुनता और जब वैराग्य प्रगटता है तो साधु के अलावा और किसी की नहीं सुनता।

जब दोनों पत्नियों ने यथायोग्य कहा, तो बड़ी पत्नी के लिए उन्होंने बताया कि यह आधा हिस्सा अब तुम्हारा रहेगा। इसमें जो कुछ भी है वह सब कुछ तुम्हारा कहलायेगा। तुम इसके माध्यम से अपने जीवन का निर्वाह करना।

फिर छोटी पत्नी से कहा– ये आधा हिस्सा तुम्हारा रहेगा। छोटी पत्नी ने कहा- आप इसे छोड़कर क्यों जाना चाहते हैं?

उन्होंने कहा- मैं यदि इस संपदा को भोगता रहूँगा तो हमारे जीवन में कभी शांति नहीं आ सकती। हमारे लिए कभी आत्मशांति प्राप्त नहीं हो सकती।

छोटी पत्नी ने कहा- जो आपकी अशांति का कारण है, उससे हमारे जीवन में शांति कैसे आ सकती है? और आप इसे मुझे देकर क्यों जाना चाहते हैं?

पत्नी ने कहा- जो आपकी अशांति का कारण है वह मेरी शांति का कारण कैसे हो सकता है?

छोटी पत्नी ने कहा- वैराग्य के साथ वीतरागभाव की साधना करो। अभी आप जिस अर्थ को छोड़कर जाना चाहते हैं। अर्थ यानि धन संपदा। जो आपके लिये अभी अहितकारी लग रही है। आप उसको छोड़कर जाना चाहते हैं ये तो वैराग्य है। लेकिन आप छोड़नेवाली संपदा को बाँटना चाहते हैं, इसका तात्पर्य यह हुआ कि आपको उस अर्थ में अभी भी कुछ दिखायी दे रहा है। अगर आपको उस अर्थ में, संपदा में, कुछ दिखायी नहीं दे रहा होता, तो आप उसे बाँटते नहीं। आप वैरागी तो होना चाहते हैं लेकिन अभी आपमें वीतरागता नहीं आयी है। वैराग्य के साथ-साथ वीतरागता भी होनी चाहिए। यदि यह पदार्थ आपके लिए अहितकारी है तो इसे बाँटने का कोई अर्थ नहीं है।

ध्यान रखना, भगवान महावीर ने इस भाव को वीतराग भाव कहा है।

'आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखें आपको कष्टदान।'

जो ज्ञान वैराग्य भाव पैदा नहीं करता वह ज्ञान संवर में कारण नहीं है। यदि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान हुआ है तो जीव के अन्दर निरंतर वैराग्य की भावना ही हिलोरें लेगी। वह सोचता है, वह क्षण कब आये जब मैं इस दलदल से बाहर निकलूँ? ध्यान रखना, इस संसार में जितने भी जीव हैं वे अभिमन्यु की तरह हैं। अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुसना तो जानता है लेकिन उससे

निकलना नहीं जानता। संसार में रहनेवाला जीव इस संसार के चक्रव्यूह से निकलने की कला नहीं जानता। और जब तक संसार के चक्रव्यूह से निकलने की कला नहीं आ जाती तब तक मृत्यु को जीता नहीं जा सकता। क्योंकि संसार के चक्रव्यूह में फँसनेवाला मृत्यु को प्राप्त होता है। और संसार के चक्रव्यूह से निकलने वाला विजेता बनकर निकलता है। कब निकलेगा? निकलने का मार्ग क्या है?

आचार्य भगवन कहते हैं- तत्त्वों का श्रद्धान करो। उस संवर तत्त्व को पहचानो, जिसमें बताया गया कि आत्मा के लिए हितकारी वैराग्यमयी ज्ञान है। अरे, अज्ञानी जीव के लिए यह 'कष्टदान' प्रतीत हाता है।

मैं आप लोगों से पूछना चाहता हूँ हमारा मार्ग कष्ट का मार्ग है कि सुख का मार्ग है। बाहर से कष्ट का लगता है, पर होता सुख का है। अरे भाई ! बच्चे को विद्यालय भेजते हो। टीचर डाँटेगा भी, पीटेगा भी, दण्ड भी देगा। बाहर से तो दुख का मार्ग है लेकिन वास्तव में वही ज्ञान का और सुख का मार्ग है। अगर आप किसी टीचर के डर से, दण्ड से भयभीत होकर विद्यालय जाना छोड़ दो अथवा विद्यालय भेजना छोड़ दो तो यह आपकी बुद्धिमत्ता है या अदूरदर्शिता है। ध्यान रखना जैसे आप बच्चे को स्कूल भेजते ही हो ऐसे ही अपनी आत्मा को वैराग्य से शोभित करना होगा। क्यों? क्योंकि संवर तत्त्व कहता है-वैराग्यमयी ज्ञान ही सुख का साधन है। और अज्ञानी जीव कहता है- अरे! वैराग्य तो हमारे लिए बड़े कष्ट का मार्ग है दुःख का मार्ग है।

ध्यान रखना, जिसकी दृष्टि कष्ट पर है उसे कष्ट ही कष्ट दिखाई देगा और जिसकी दृष्टि शांति पर है, सुख पर है उसे शांति और सुख ही दिखाई देगा। जिसकी दृष्टि में जो होगा उसे वही दिखाई देगा। ध्यान रखना, संवर तत्त्व की श्रद्धा रखने वाला वैराग्य को आत्मा के लिए हमेशा हितकारी जानता है इसलिए वह दूसरों के वैराग्य की अनुमोदना भी करता है। और यदि ऐसा भाव आ जाये कि वैराग्य से क्या होता है? इसका तात्पर्य यह है कि तुझे अभी संसार का मार्ग ही अच्छा लगता है।

बंधुओ! संवर तत्त्व की हमें सच्ची श्रद्धा होनी चाहिए। **आत्मा के हित का कारण ज्ञान मात्र नहीं, वैराग्यमय ज्ञान है। जो ऐसे वैराग्यमय ज्ञान को उपलब्ध होता है वह अपने आत्मा के लिए मोक्ष का मार्ग कष्टदायी न मानकर सुखदायी मानता है।** मोक्ष का मार्ग जिसमें पुण्य और पाप दोनों प्रकार के दुष्कर्मों की निर्जरा होती हो। अब जिसमें पापकर्म छूटते

हैं, वह दु:ख का मार्ग कैसे हो सकता है? वह तो सुख का मार्ग है इसलिए हमें इसकी सच्ची श्रद्धा करनी चाहिए। लेकिन जीव जब रागी, द्वेषी, मोही होता है परपदार्थों में आसक्त होता है परपदार्थों में लीन होता है तो उसे राग का मार्ग सुखदायी और वैराग्य का मार्ग दु:खदायी मालूम पड़ता है। किसकी श्रद्धा करोगे? संवर तत्त्व की श्रद्धा करोगे कि संवर तत्त्व की भूल में पड़े रहोगे? अनादि से भूल में पड़े हो, इस भूल को निकालकर आत्मा की शांति के लिए मोक्षमार्ग, वैराग्यमार्ग को हमेशा हितकारी जानना। वैराग्यमार्ग पर चलनेवाले श्रमण साधकों के श्रम की, उनके वैराग्य की, हमेशा अनुमोदना करना और उन जैसा बनने का भाव अपनी आत्मा में प्रगट करना।

इह विधि राज करे नर नायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुखसागर में रमत निरन्तर, जात न जानो कालो।।
एक दिवस शुभ कर्म संजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे।
देख श्री गुरु के पद पंकज लोचन अलि आनन्दे।।

मुनिराज को देखकर नेत्र कैसे हो जाते हैं? वैराग्य भावना रखनेवालों के आनन्द से भर जाते हैं।

तीन प्रदक्षिणा दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरणन में दृष्टि दीनी।।
गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, तेरस बेरस लागे।।

ऐसा ही सांसारिक जीवन सभी ने अनंतों बार जीकर देख लिया है। लेकिन धर्म शिरोमणि गुरु के उपदेश को हमने अपने जीवन में आत्मसात नहीं किया। राग-द्वेष के मार्ग में लगे रहे लेकिन कभी वीतराग मार्ग की भावना नहीं की, वैराग्य मार्ग की भावना नहीं की। अगर आत्मा में सात तत्वों का श्रद्धान हो जाये। संवर तत्त्व का श्रद्धान हो जाये तो यही भावना आयेगी- मैं कब वैरागी बनूँ? मैं कब मुनि बनूँ? मैं कब निर्ग्रंथ बनूँ? मैं कब रागद्वेष के मार्ग को छोड़कर वीतराग मार्गी बनूँ? अपने आत्मा का अनुभव करनेवाले ऐसे वैराग्य के मार्ग पर मैं कब लगूँ? ध्यान रखना, ऐसी विरागता संवरतत्त्व के आश्रय से आत्मा में उत्पन्न होती है।

निर्जरा तत्त्व और मोक्षतत्त्व की विपरीत भावना क्या है?

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।

अपनी आत्मशक्ति का श्रद्धान न होने के कारण यह जीव अपनी इच्छाओं को नहीं रोक पाता है। इच्छाओं को दु:ख का कारण नहीं जानता। सम्यग्दृष्टि जीव जिसे निर्जरा तत्त्व का श्रद्धान होता है वह इच्छा को दु:ख का कारण जानता है।

मोक्ष तत्त्व की विपरीतता क्या है? मोक्ष निराकुल अवस्था का नाम है। मोक्ष में निराकुलता होती है या निराकुलता का नाम ही मोक्ष है। मोक्ष तत्त्व की विपरीतता या भूल रखनेवाला जीव मोक्ष के स्वरूप को दु:खरूप जानता है, आकुलता रूप मानता है लेकिन उसे निराकुल नहीं मानता, सुखमय नहीं मानता। कभी-कभी लोग कहने लग जाते हैं महाराज श्री! अगर अपने को मोक्ष हो जायेगा तो मोक्ष होने के बाद फिर अपन वहाँ क्या करेंगे? उनको बताते हैं कि वहाँ अपने को कुछ भी नहीं करना पड़ता। वहाँ अपने आत्मा के ज्ञानानंद स्वभाव में लीन रहते हैं। ऐसा सुन चौंकते हुए कहता है, यदि वहाँ कुछ भी नहीं करेंगे तो फिर अपना जीवन कैसा हो जायेगा? यानि उस जीव को अपनी-अपनी आकुलता की श्रद्धा है निराकुलता की श्रद्धा नहीं है इसलिए वो ऐसा प्रश्न करता है।

भो जीव! आकुलता दु:ख है, निराकुलता सुख है, इसलिए सात तत्वों की भूल दूरकर तत्त्व श्रद्धान पूर्वक सुखी हो।

तत्त्वों का श्रद्धान करो, सम्यग्दर्शन ज्ञान वरो।
जो आतमहित का हेतु, वह वैराग्य महान वरो।।
रागीद्वेषी बन, हो-हो-2, क्यों दु:ख उपजाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

(सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?)

भयवसणमलविवज्जिद, संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

*** अन्वयार्थ ***

(**दंसणसुद्धो**) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/ सम्यग्दृष्टि (**हु**) वस्तुत: (**भय-वसण-मल-विवज्जिद**) भय, व्यसन और मलों से रहित होता है (**संसार-सरीर-भोग-णिव्विणो**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है (**अट्ठगुणंग-समग्गो**) अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण (**पंचगुरुभत्तो**) पंचगुरु, पंच परमेष्ठी का भक्त होता है।

अर्थ- निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय ही सात भय, सात व्यसन और पच्चीस मल दोषों से रहित, संसार, शरीर व भोगों से विरक्त तथा नि:शंकितादि अष्टांग सम्यक्त्व के गुणों से युक्त और पंचपरमेष्ठी का भक्त होता है।

गाथा - 5
(प्रथम प्रवचन)

●

दीक्षार्थी परीषहों से नहीं डरता

12.08.2013

भिण्ड
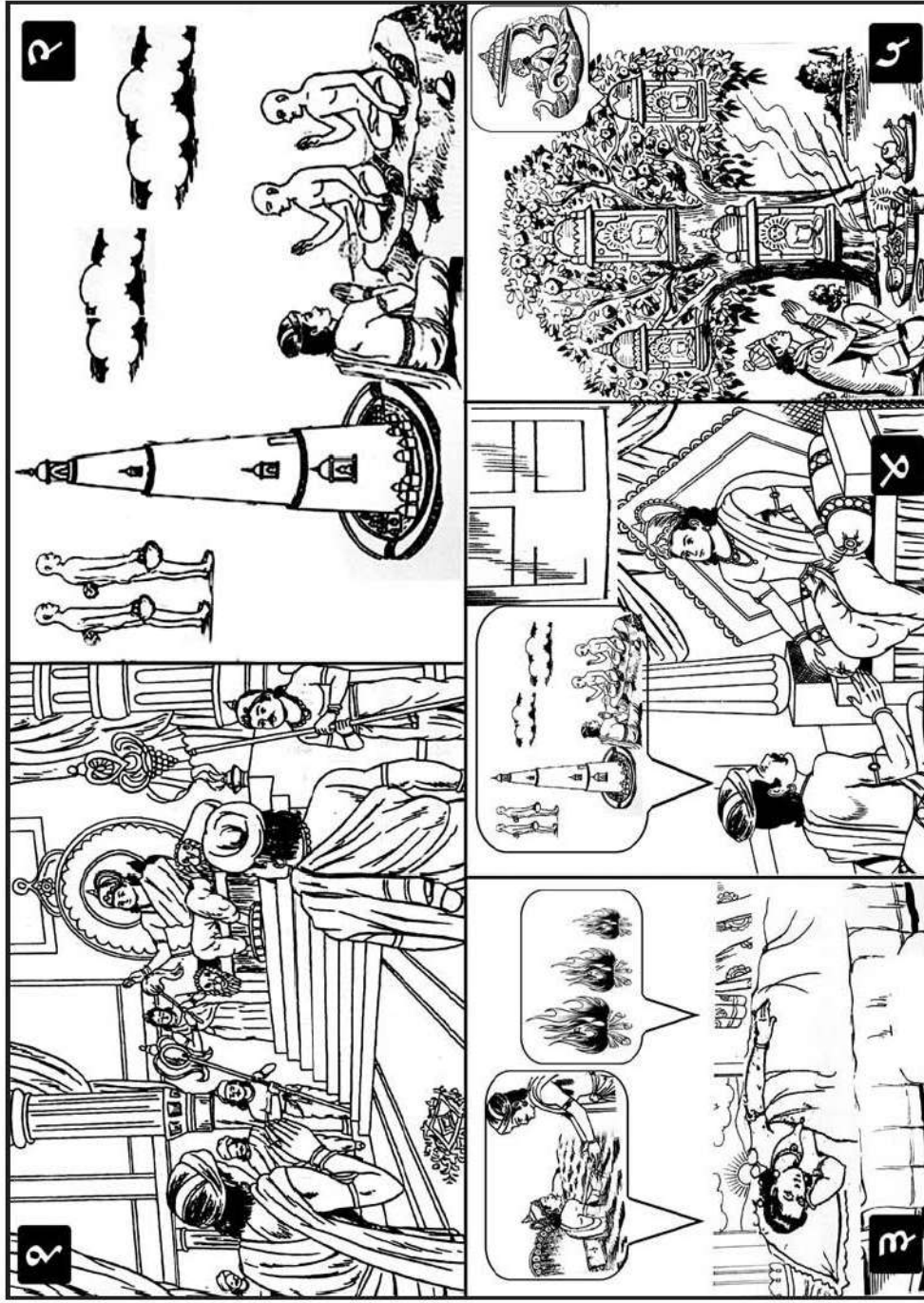
(1) राजा महाबल एवं स्वयंबुद्ध आदि चारों मंत्री।

(2) स्वयंबुद्ध मंत्री को महाबल के स्वप्न के विषय में बताते मुनिराज।

(3) महाबल राजा रात्रि में शयन करते हुए इनसेट में स्वप्न।

(4) स्वयंबुद्ध मंत्री सम्राट महाबल को स्वप्न का फल बताते हुए।

(5) सम्राट महाबल जिनपूजा में समय व्यतीत कर श्री प्रभ विमान में ललितांग देव।

12

रयणोदय

भव तन भोग विरक्त कहा, आत्म गुणों से युक्त अहा।
भय मल व्यसन रहित होता, पंचगुरु का भक्त कहा।।
वह सम्यग्दृष्टि, हो-हो-2, निर्दोष कहाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'**जयदु जिणागम पंथो**' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ '**जिनागम पंथ**' है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' का प्रतीक '**जिनागम पंथ**' सन्मार्ग है।

मनुष्य भव का सार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति है। मानव जीवन पाकर सभी बाह्य वैभव प्राप्त कर लिए लेकिन अन्तरंग वैभव रत्नत्रय प्राप्त नहीं किया तो मनुष्य जीवन में हमने कुछ भी नहीं पाया। हमने सिर्फ निजवैभव खोया है पाया कुछ भी नहीं है।

एक पिता अपने पुत्रों की चिन्ता करता था। उसके तीन पुत्र थे। सोचता था अपनी यह सम्पदा उस पुत्र के लिए दूँ जो हमारे कुल की प्रतिष्ठा को भविष्य में बनाकर रखे। यदि हमनें बिना विचारे किसी भी पुत्र के लिये अपनी सम्पदा दे दी और उसने कुल प्रतिष्ठा को धूमिल कर दिया तो हमारी पुरखों से चली आई लोक प्रतिष्ठा, सम्मान, इज्जत, मिट्टी में मिल जायेगी। यदि योग्य पिता है तो वह अपने कुल वंश की परम्परा को निर्दोष रखने का प्रयास करेगा। तो उसने मन में विचार किया कि तीन पुत्र हैं इनमें से योग्य पुत्र कौन है जो हमारे पुरखों की प्रतिष्ठा को आगे ले जायेगा? मुझे इसका निर्णय करना चाहिए।

एक दिन पिता ने तीनों पुत्रों को बुलाया और कहा–बेटा! तुम लोग बड़े हो गये हो। पिता का कर्तव्य है कि अपने पुत्रों को पैरों पर खड़ा करे। जो पिता अपनी संतान को योग्य नहीं बनाता वह पिता अपने कर्तव्य का ठीक तरह से निर्वाह नहीं करता।अब आप लोग अपने जीवन को ठीक तरह से जीने के लिए कुछ कर्म करने का प्रयास करो। पुत्रों ने कहा–पिताजी! आप जैसा कहेंगे हम वैसा ही करेंगे। पिता ने तीनों पुत्रों के लिए एक–एक बोरे में गेहूँ भरकर दे दिया और कहा–बेटा! इसके द्वारा तुम अपने जीवन का निर्वाह करो। तीनों पुत्र एक–एक बोरा गेहूँ लेकर चल दिए। पिता ने तीनों पुत्रों के लिए मकान निर्धारित कर ही दिये थे अत: तीनों पुत्र बोरे भर गेहूँ को लेकर अपने–अपने मकान पर पहुँच गये।

बड़ा बेटा सोचने लगा कि पिता ने अपनी सम्पदा में से मुझे कुछ नहीं दिया। सब रख लिया बड़ा लोभी है। हम सोचते थे कि पिताजी हमारे लिए बहुत कुछ देंगे लेकिन दिया भी तो मात्र एक बोरा गेहूँ। वह पिता के विषय में ही गलत सोचने लगा। गेहूँ ले जाकर रख दिया।

जो दूसरा बेटा था उसने भी यही सोचा कि पिताजी ने मात्र एक बोरा गेहूँ दिया है। इससे जीवन निर्वाह करने को कहा है। ठीक है, कुछ दिया ही तो है अपने से कुछ लिया तो नहीं है।

जो तीसरा बेटा था उसने मन में विचार किया, पिताजी ने हमें परिश्रम करने का अवसर दिया है और एक बोरा गेहूँ हमें प्रदान किया है मैं पिता के द्वारा दिये हुए एक बोरे अनाज का सदुपयोग करूँगा।

जो बड़ा बेटा था उसने सोचा कि इस बोरे भर गेहूँ का अगर मैंने उपयोग कर लिया तो फिर मैं आगे क्या करूँगा? इसलिए उसने एक बोरे गेहूँ को सुरक्षित स्थान पर रख दिया। ये किसी

विपरीत परिस्थिति में काम आयेगा, अभी जो अपने पास है पहले उसका उपयोग करूँगा। इसलिए उसने उसको सुरक्षित रख दिया।

दूसरे ने सोचा- क्या करें एक बोरा गेहूँ मात्र है। इससे तो कुछ भी होनेवाला नहीं है। फिर उसने सोचा कि चलो एक काम करते हैं इस बोरे भर गेहूँ को बाजार में बेचकर जो पैसा आयेगा उससे कुछ उपाय करेंगे। उसने बाजार में जाकर बेच दिया। गेहूँ के दाम उसे प्राप्त हो गये। उसने सोचा, इतने पैसों से कुछ व्यापार तो होनेवाला है नहीं, इसलिए वह सीधा जुआ अड्डे पर पहुँच गया और जुआ खेलने लगा। जो पैसे आये थे जुएँ में वह भी हार गया। जो पिता ने दिया था वो भी समाप्त हो गया।

जो तीसरा बेटा था उसने सोचा, पिताश्री ने अपने को जो दिया है उसका सदुपयोग करना है। उसने वह गेहूँ खेत में बो दिया।

एक दिन पिता अपने पुत्रों के विषय में जानने के लिए निकला। उसने सोचा–चलो देख आयें कि हमारे बेटे कैसे हैं सुखी हैं कि दुखी हैं? कैसा जीवन जी रहे हैं? वह अपने पहले बेटे के पास पहुँचा। कहा- बेटा! कैसे हो?

बड़े बेटे ने कहा–पिताजी! आपने तो हमारा जीवन नरक बना दिया। आपने दिया भी तो एक बोरा गेहूँ। कैसे दुख के दिन व्यतीत हो रहे हैं ये हम ही जानते हैं।

पिता ने कहा- बेटा! एक बोरे गेहूँ का तुमने क्या किया?

पुत्र बोला-रखा है ले जाओ वो भी, नहीं चाहिए हमको। पिता–कहाँ रखा है बेटा? पुत्र- आओ, उस गेहूँ में तो घुन लग चुका था। पिता ने मन में विचार किया, अहो! मेरा यह बेटा मेरी सम्पदा का अधिकारी नहीं है। अगर मैं इसे सम्पदा दे भी दूँगा तो ये मेरी सम्पदा का कुछ भी उपयोग नहीं करेगा अपितु इसकी सम्पदा रखे-रखे ही समाप्त हो जायेगी, नष्ट हो जायेगी। ये उस सम्पदा का कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता। पिता ने तो ये सोचा था कि बड़े बेटे के पास जायेंगे तो पूछेगा- पिताजी! भोजन करलो, पानी पी लो लेकिन उसने कुछ न पूछा।

पिताजी ने सोचा–चलो दूसरे पुत्र के पास चलते हैं। वह दूसरे पुत्र के पास गया तो देखा पुत्र ने गेहूँ को बेचकर पैसा जुए में लगा दिया और सब कुछ समाप्त कर दिया, कुछ न बचा पुत्र के पास।

पिता ने पूछा- बेटा! घर में अंधेरा क्यों है?

पुत्र ने कहा- पिताजी आपने हमारे जीवन निर्वाह के लिये एक बोरा गेहूँ मात्र दिया था। उससे क्या होता है? इसलिए घर में अंधेरा छाया हुआ है।

पिता ने सोचा-यह बेटा भी हमारी सम्पदा का अधिकारी नहीं है। यह इसके योग्य नहीं है। ये तो हमारी प्रतिष्ठा एवं सम्पदा को मात्र मिट्टी में मिलानेवाला है नष्ट करनेवाला है। क्योंकि इसने गेहूँ को बेचकर जो पैसा आया उसको व्यसन में लगा दिया। जुए में लगा दिया।

पिता तीसरे पुत्र के पास पहुँचा, देखा बेटा बाहर कुर्सी डालकर बैठा हुआ है। पिता ने देखा-अरे, बेटा तो निश्चिंत बैठा हुआ है। पुत्र ने पिता को देखा, तुरन्त खड़ा हो गया। आकर अपने पिता के चरण स्पर्श कर लिये।

पिता ने पूछा- बेटा! कैसा जीवन चल रहा है?

पुत्र ने कहा-पिताजी! आपका आशीर्वाद है। आपके आशीर्वाद से जीवन में कहीं किसी प्रकार की कमी नहीं है। पिताजी! आपने इतना आशीर्वाद दिया है कि आज हमारे पास सब कुछ है।

पिता ने कहा-बेटा! मैंने तो तुम्हें मात्र एक बोरा गेहूँ दिया था।

बोला-पिताजी! हाँ, आपने एक बोरा गेहूँ दिया था।

पिता ने कहा-कहाँ है वो?

बोला-आओ मेरे साथ। तीसरा बेटा अपने पिता को गेहूँ दिखाने के लिए ले गया। रास्ते में देखा, सब जगह अच्छा प्रकाश है। सुगंध फैल रही है। जैसे ही वह अन्दर गया तो एक बहुत बड़ा गोदाम गेहूँ से भरा हुआ था।

बोला-पिताजी! आपने जो हमें एक बोरा गेहूँ दिया था वह एक बोरा गेहूँ यह रखा हुआ है।

पिता ने कहा-बेटा! एक बोरा गेहूँ हमने तुम्हें दिया था।

बोला- हाँ पिताश्री! आपने तो बहुत कुछ दे दिया था। हमने एक बोरे गेहूँ का उपयोग किया। हमने उसको खेत में बोया और उससे जो फसल हमारे लिए प्राप्त हुई, वह एक बोरा गेहूँ आज गोदाम के रूप में आपके सामने है।

बंधुओ! ध्यान रखना, संसार में रहनेवाले प्रत्येक जीवात्मा के लिए ऐसा ही वैभव प्राप्त है लेकिन जो अपने वैभव का उपयोग कर लेता है उसका वैभव बढ़ता चला जाता है। और जो अपने वैभव का उपभोग करे उसका वैभव समाप्त हो जाता है। हम बाहरी वैभव को तो बढ़ाते है लेकिन अपने आत्मा के वैभव को नहीं पहचानते। हम अपने आत्मा के वैभव का उपयोग नहीं कर पाते। हम अपनी आत्मा के वैभव का उपयोग बाहरी वैभव को बढ़ाने में करते रहते हैं।

भगवान महावीर कहते हैं इस मनुष्य जीवन में सारभूत रत्नत्रय है। अगर रत्नत्रय प्राप्त कर लिया तो मनुष्य भव में आपने श्रेष्ठ वैभव पा लिया। और यदि उसको प्राप्त नहीं किया तो जो भी हाथ में आया है वह मात्र दु:ख, पीड़ा, कष्ट, संसार को बढ़ानेवाला है। ध्यान रखना, भगवान महावीर ने मुक्ति के लिए रत्नत्रय की अवधारणा दी है। उन्होंने कहा है कि जो रत्नत्रय को प्राप्त होगा वो ही संसार के दु:खों से मुक्त होगा और जो रत्नत्रय से दूर होगा, जो संसार में ही निवास करेगा, वह मोक्ष से दूर होगा। संसार के दुख भोगते-भोगते अनंतकाल व्यतीत हो गया फिर भी दु:ख से निवृत्ति का मार्ग आज तक नहीं खोज पाये। अगर किसी व्यक्ति को थोड़ा सा दु:ख हो जाता है तो वह तुरन्त उस दु:ख से छूटने का उपाय करता है। हम सब अनन्तकाल से दु:खी हैं फिर भी क्या उस दु:ख से छूटने का उपाय किया है? कर रहे हैं? करने का विचार है?

भगवान महावीर कहते हैं-तुम दु:खों से छूट सकते हो जबकि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो, सम्यक्चारित्र की प्राप्ति हो। सम्यग्दृष्टि जीव का कैसा स्वरूप होता है? कैसा आचरण होता है? आचार्य भगवन कुंदकुंद देव रयणसार जी की पाँचवीं गाथा में हम सभी के लिये बता रहे हैं-

भयवसणमलविवज्जिद, संसार शरीर भोग णिव्विण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

जो निर्दोष सम्यग्दृष्टि जीव है शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव है वह नियम से भय से रहित होता है। सम्यग्दृष्टि जीव को भय नहीं रहता। डरता कौन है? जो मिथ्यादृष्टि होता है। सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकार के भय से रहित होता है। क्यों? उसका कारण है सम्यग्दृष्टि जीव अपनी आत्मा को अविनाशी मानता है, जानता है। जिसे आत्मा के अविनाशी द्रव्य स्वभाव का श्रद्धान है वह मृत्युकाल में अपने मरण को नहीं देखता।

ध्यान रखना, मृत्यु होने पर अपना जीवद्रव्य नाश हो जायेगा क्या? जीवद्रव्य की यह संसारी मनुष्य पर्याय भले ही नष्ट हो जाये छूट जाये लेकिन जीवद्रव्य कभी नाश को प्राप्त नहीं

होगा। क्योंकि कोई भी द्रव्य कभी भी नष्ट नहीं होता। उसमें परिवर्तन हो सकता है रूपान्तरण हो सकता है लेकिन उसका कभी भी नाश नहीं हो सकता।

आपका जब जन्म हुआ था तब आप कितने बड़े थे? कैसे लगते थे? धीरे-धीरे आप 15 साल के हुए। आपमें रूपान्तरण हुआ। आपने दुःख नहीं मनाया। आप जब जन्में थे तब तो कुछ अलग ही लगते थे। 15 साल के हो गये तो कुछ अलग ही लगने लगे। दुःख क्यों नहीं मनाया? शोक क्यों नहीं मनाया? रोये क्यों नहीं तुम कि मैं बदल गया हूँ? फिर तुम 25-50 साल के हुए फिर रूपान्तरण हो गया। 70-80 साल के हुए फिर रूपान्तरण हो गया। फिर भी तुमने कभी दुःख नहीं मनाया। क्यों नहीं मनाया? क्योंकि जिसमें रूपान्तरण हो रहा है वह तो उपस्थित है। जो रूपान्तरण हो रहा है उसका दुःख इसलिए नहीं, क्योंकि जिसमें रूपान्तरण हो रहा है वह ज्यों का त्यों बना हुआ है। उसका अभाव नहीं हुआ, इस कारण जो भी परिवर्तन हो रहा है, आपको उसका दुःख नहीं हो रहा। क्योंकि जिसमें परिवर्तन हुआ है वो स्वरूप में है।

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसी ही श्रद्धावाला होता है। वह यह श्रद्धान करता है कि मेरी आत्मा का कभी भी नाश नहीं होता। मैं आत्मा कभी नहीं मरता। सिर्फ मेरी पर्याय बदलती है। और पर्याय को बदलने से कभी कोई रोक नहीं सकता।

एक पिता ने अपने पुत्र के लिए सोने का कड़ा बनवाया और हाथ में पहना दिया। बेटी ने जब भाई के हाथ में सोने का कड़ा देखा तो बेटी रोने लगी। उसने कहा- पापा! मुझे भी हार चाहिए। अब पिता के पास जितना स्वर्णद्रव्य था उसने बेटे के कड़े में लगा दिया था। जब बेटी नहीं मानी तो पिता ने बेटे के हाथ से कड़े को लिया और स्वर्णकार के पास पहुंचाया, कहा- इसका हार बना देना। स्वर्णकार ने उस कड़े का हार बना दिया। हार बनाकर उसे वापस लौटाया। पिता लेकर आया और बेटी के गले में हार डाल दिया। बेटी हार पाकर प्रसन्न हुई। पहले बेटी दुःखी थी और बेटा खुश था। अब बेटी प्रसन्न हो गई और बेटा दुःखी हो रहा है, क्यों? क्योंकि बेटे के हाथ का कड़ा चला गया।

लेकिन एक बात विचारना, पहले बेटी दुःखी थी बेटा प्रसन्न था, अब बेटी प्रसन्न है बेटा दुखी है परन्तु पिता को दोनों ही अवस्थाओं में कोई दुःख नहीं है। जब कड़ा था तब भी पिता प्रसन्न था। अब हार है तो भी पिता प्रसन्न है क्यों क्योंकि पिता यह जानता है कि हमारा जो यह स्वर्णद्रव्य है, यह चाहे कड़े में हो चाहे हार में हो ज्यों का त्यों है। उसमें कोई कमी नहीं है। जिसे

अपने द्रव्य का भान है ज्ञान है कि द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता, ध्यान रखना पर्याय भले ही बदल जाये वो उसमें दु:ख नहीं मनाता। चाहे पर्याय कड़े की हो, चाहे पर्याय हार की हो परिवर्तन तो उस पर्याय में हुआ है द्रव्य तो ज्यों का त्यों ध्रौव्य रूप से विद्यमान है। अत: पिता के लिये किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं, कोई विषाद नहीं। क्योंकि पिता की दृष्टि में स्वर्णद्रव्य है। बेटी की प्रसन्नता हार से है पर्याय से है। और बेटे का दु:ख किस कारण से है? उसके हाथ का कड़ा चला गया।

कहने का तात्पर्य यह है सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा के ध्रुव स्वभाव को जानता है पहचानता है वह इस बात को मानता है कि मैं जीवद्रव्य आत्म द्रव्य कभी भी किसी भी प्रकार से नष्ट होनेवाला नहीं हूँ तो पर्याय के परिणमन में शोक किस बात का? दुख किस बात का? आप मनुष्य पर्याय में आये हैं। अब यहाँ से आप कहीं जायेंगे भी क्या? ये मनुष्य पर्याय छूटेगी क्या? छूटेगी, पक्का है। अगर पक्का है और पहले से ही निर्णय है कि यह पर्याय छूटनी है और मैं जीवद्रव्य कभी भी नष्ट होनेवाला नहीं हूँ जहाँ भी जाऊँगा फिर दूसरी पर्याय धारण कर लूँगा तो फिर इस पर्याय के लिए आकुल व्याकुल दु:खी होने की कहाँ आवश्यकयता है? इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव निर्भय होता है। उसे सात प्रकार के भय नहीं रहते। भय किसको रहते हैं? जिसे मृत्यु से डर लगता हो कि मैं मर जाऊँगा, वो भय खाता है। अपना मरण तो प्रतिसमय हो रहा है। लेकिन तुम फिर भी प्रसन्न रहते हो। तुम इस शरीर के छूटने से डरते हो कि कहीं ये शरीर न छूट जाये, लेकिन शरीर अवश्य छूटेगा। सम्यग्दृष्टि जीव को इस बात का ज्ञान है, भाव है, श्रद्धान है कि मैं चैतन्य आत्मा कभी भी मरणधर्मा नहीं हूँ। मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं शाश्वत हूँ अविनाशी हूँ अखण्ड हूँ इसलिए वह भय से कभी घिरता नहीं है। मृत्यु आ भी जाये तो भी नहीं घबराता, भयभीत नहीं होता, डरता नहीं है, काँपता नहीं है अपितु मृत्यु का भी स्वागत करने को तैयार रहता है। खूब चीखकर चिल्लाकर मरो तो भी मरना पड़ेगा। हाय-हाय करके दु:खी होकर तड़पकर मरो तो भी मरना पड़ेगा और समता से मरो तो भी मरण होगा। मृत्यु से मत घबराओ। वीर बनकर मरो। अगर जिनेन्द्रप्रभु में श्रद्धा है और निर्भयता है तो तुम्हारी दुर्गति जरूर छूट जायेगी और घबरा-घबराकर मरे, भयभीत होकर मरे, तो मरना तो है ही दुर्गति और होगी। सम्यग्दृष्टि जीव मृत्यु को अपने आत्मा का स्वभाव नहीं जानता विभाव पर्याय का परिणमन मानता है इसलिए वह कभी घबराता नहीं, भयभीत नहीं होता, भय से मुक्त रहता है। वो ये जानता है कि जिस दिन मृत्यु आयेगी उस दिन कोई भी बचानेवाला नहीं है।

मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।

तुम्हारे खजाने में चाहे कैसे भी उत्तम से उत्तम मणियाँ रखी हों? कोई मांत्रिक तांत्रिक कैसे भी मंत्र-तंत्र करे? कोई डॉक्टर (Doctor) हकीम, वैद्य आकर कैसी भी औषधि तुम्हें प्रदान करे? मृत्यु के काल में एक भी मंत्र, तंत्र, औषधि, मणि कुछ भी काम आनेवाला नहीं है। तुम्हारे अपने भी आस-पास बैठकर विलाप तो करेंगे लेकिन तुम्हें बचा नहीं पायेंगे। वे तुम्हारी मृत्यु के लिये रो सकते हैं लेकिन रोक नहीं सकते। तुमने अपने आस-पास रोनेवालों को इकट्ठा कर लिया है कि जब मैं मरूँ तब तुम सब रोना। ध्यान रखना, मृत्यु के समय तुम्हारे लिये कोई बचानेवाला नहीं है अगर मृत्यु से कोई बचानेवाला है तो एकमात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप धर्म बचानेवाला है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं- सम्यग्दृष्टि को अपने आत्मद्रव्य का श्रद्धान है। द्रव्य अविनाशी है। मैं नहीं मरूँगा मेरी पर्याय बदलेगी इसलिए पर्याय के बदलने में भयभीत होने की क्या आवश्यकता है? और उसको कोई रोक भी नहीं सकता। परिणमन को दुनिया में कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकार के भय से रहित होता है।

पहला भय है इहलोक भय।

मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव निरन्तर यह सोचता रहता है कि संसार में जो पदार्थ प्राप्त हुए हैं उनका मेरे से वियोग न हो जाये और मेरे लिए अनिष्टों का संयोग न हो जाये जिससे मुझे मरना पड़े, ऐसे इहलोक भय से मिथ्यादृष्टि जीव पीड़ित रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव इस प्रकार के भय को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि वह तो यह जानता है कि जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग सुनिश्चित है। और जिसका जब तक संयोग है वो तभी तक रहेगा, सोचने से बढ़ नहीं जायेगा। ध्यान रखना, सम्यग्दृष्टि जीव इस बात को जानता है कि जब तक जिस वस्तु का संयोग है सो रहेगा उसे कोई दूर करनेवाला नहीं है और अगर उसके वियोग का काल आ गया तो कोई उसका संयोग करानेवाला नहीं है, इसलिए इस लोक सम्बन्धी जो भय है कि मेरे इष्ट पदार्थ छूट न जायें, अनिष्ट पदार्थों का संयोग न हो जाये, इस प्रकार का भय सम्यग्दृष्टि जीव को नहीं रहता है।

कहते हैं एक पण्डित जी थे। रात्रि के समय उनके गृह में एक चोर का आगमन हुआ। चोर तो अपना काम करने आया, उसने इधर-उधर जहाँ जो कुछ भी रखा था वो उठाना शुरू किया।

पंडित जी की आँख खुल गई। उनने सोचा खटर-पटर बहुत हो रही है अत: प्रकाश किया। चोर सामने ही सारी वस्तुओं को इकट्ठा कर रहा था। पंडित जी आराम से कुर्सी पर बैठ गये और देखने लगे। चोर ने सोचा, अजीब आदमी है ये। कोई और होता तो कुछ कहता, बोलता, भागता, डरता। ये तो आराम से कुर्सी पर बैठ गया। चोर ने भी सोचा, जब ये नहीं डर रहा है तो मैं क्यों डरूँ? चोर भी आराम से सामान इकट्ठा करता रहा।

जब चोर सामान इकट्ठा कर उठाने लगा, तो उसे सामान उठाने में परेशानी हुई। पंडित जी ने देखा, आदमी परेशान है अपने को सहयोग करना चाहिए तो वे कुर्सी से उठे। चोर थोड़ा डरा शायद ये कुछ कर ना दें। पंडित जी बोले- घबराओ मत। एक तरफ से तुम हाथ लगाओ, एक तरफ से मैं हाथ लगाता हूँ। "**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**" परस्पर में एक-दूसरे जीवों का सहयोग करना ये ही तो धर्म है। एक तरफ से चोर ने हाथ लगाया दूसरी तरफ से पंडित जी ने हाथ लगाया और उठाकर चोर के सिर पर सारी धन सम्पदा रख दी। कहा-तू आया तो पिछले दरवाजे से था, अब आगेवाले दरवाजे से जा और दरवाजे खोल दिए।

ऐसा पंडित कोई भिण्ड में है। अगर हो तो बोल दें। आज शाम को ही भिजवा दूँगा एक आदमी, पता चल जायेगा कि भिण्ड में कितने सम्यग्दृष्टि पंडित रहते हैं। चोर अपने सिर पर सम्पदा लेकर चला गया। घर जाकर माँ से बोला- माँ! जल्दी आ, देनेवाले ने हाथ लगाया था तू तो लेनेवाली है। हाथ लगा के सिर से नीचे तो उतार। माँ ने कहा-बेटा! क्या बोलता है देनेवाले ने हाथ लगाया था। किसने? बोला- माँ! आज जैसा घर मुझे आज तक नहीं मिला। बोला- माँ! आज जब मैं चोरी करने गया, तो बहुत परेशान हो रहा था। अंधेरा भी बहुत था। तभी मालिक जाग गया और उसने प्रकाश कर दिया। फिर आराम से कुर्सी पर बैठ गया। कुछ बोला भी नहीं। मैं उसके सामने ही सब कुछ धन सम्पदा इकट्ठी करता रहा, फिर भी उसने मना नहीं किया। जब इसका भार ज्यादा हो गया, उठाने में परेशानी होने लगी, तो माँ! उस भले आदमी ने स्वयं कुर्सी से उठकर, आगे आकर, अपने हाथ से उठाकर, मेरे सिर पर यह सम्पदा रख दी। और दरवाजे अपने हाथ से खोल दिए, कहा- जा, ले जा सुखी रह। माँ ने कहा-बेटा! आज तूने जिस घर में चोरी की है वो इस नगर का सबसे बड़ा धर्मात्मा जीव है। बेटा! अपन तो पाप कर ही रहे हैं लेकिन धर्मात्मा जीव को सताकर पाप करनेवाला तो पापी में भी महापापी होता है, इसलिए धर्मात्मा जीव की सम्पदा का उपयोग हम अपने जीवन निर्वाह के लिए नहीं कर सकते। बेटा! मैं ये गठरी तेरे सिर से उतारने में सहयोग नहीं करूँगी। तू इस गठरी को शीघ्र ले जा। जिसने सहयोग करके तेरे सिर पर रखी उसी के सहयोग से इस गठरी को उतार बेटा।

माँ की बात को सुनकर पुत्र शीघ्र पंडित जी के द्वार पर पहुँचा और जाकर दरवाजा खटखटाया। पंडित जी ने सोचा–अभी तो एक आया था, क्या अब दूसरा आ गया? उन्होंने दरवाजा खोला। वो ही आदमी खड़ा था। पंडित जी ने कहा–क्या बात है भार ज्यादा है क्या? ऐसा कर आधे रास्ते तू ले चलना आधे रास्ते मैं ले चलूँगा। उसने कहा–श्रीमान्! भार उठाते-उठाते तो मेरा जीवन गुजर रहा है इस भार से भी ज्यादा बड़ा भार तो मेरे सिर पर इस बात का है कि मैंने एक धर्मात्मा के घर में चोरी की है। मेरी माँ कहती है– धर्मात्मा के धन का उपयोग हम अपने जीवन निर्वाह के लिए नहीं कर सकते, इसलिए इस भार से भी ज्यादा बड़ा भार मेरे सिर पर रखा है। आप इस धन को शीघ्र स्वीकार कीजिए और मुझे मुक्त कीजिए।

ध्यान रखना सम्यग्दृष्टि जीव इसलोक भय से रहित होता है। परपदार्थों का वियोग न हो जाये, अनिष्ट का संयोग न हो जाये, वह इससे कभी घबराता नहीं है। इसलिए मैंने कहा– भिण्ड में भी अगर ऐसा कोई सम्यग्दृष्टि हो तो मुझे जरूर सूचित करें। वह जघन्य पात्र है। ऐसे जघन्य पात्र की भिण्डवालो तुम खूब सेवा करना। लेकिन खोज लो, ऐसा जघन्य पात्र तुम्हारे नगर में रहता भी है या नहीं रहता। अपने को सम्यग्दृष्टि कहना और वास्तव में सम्यग्दृष्टि होना दोनों में बहुत अन्तर होता है। संयोग और वियोग की अवस्था को माननेवाला, जाननेवाला सम्यग्दृष्टि जीव होता है इसलिए वह कभी भयभीत नहीं होता। वह जानता है बाहर की सम्पदा अपने वियोगकाल में छूटेगी लेकिन जो भीतर की सम्पदा है उसे चुरानेवाला दुनिया में कोई नहीं है इसलिए मेरा वैभव तो मेरे पास है।

दूसरा है परलोक भय। परलोक भय का अर्थ है मरण के बाद कहीं मेरी दुर्गति न हो जाये, इस भय से ग्रस्त मिथ्यादृष्टि रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव को परलोक भय नहीं होता। क्यों नहीं होता? क्योंकि उसे जिनवाणी की श्रद्धा है। सम्यग्दृष्टि जीव दुर्गति का पात्र नहीं होता है वह परलोक की चिन्ता क्यों करेगा? इसलिए वह परलोक भय से कभी चिंतित नहीं रहता। मैं अविनाशी आत्मा हूँ। जिसे अपने अजर, अमर, अविनाशी स्वभाव का श्रद्धान है वह परलोक भय से भयभीत नहीं होता।

तीसरा है अरक्षा भय। पर्याय का तो नाश होगा ही होगा। जो एकांतमती होते हैं, वे पर्याय के नाश को ही अपने आत्मा का नाश मानते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव यह जानता है कि मेरी आत्मा का नाश नहीं हो सकता इसलिए वह इस बात की चिन्ता नहीं करता। मैं अपनी आत्मा की रक्षा

करने में असमर्थ हूँ ऐसा विकल्प उसके मन में नहीं आता। क्यों? क्योंकि वह जानता है कि नाश तो इस पर्याय का होता है मेरी आत्मा का विनाश कभी किसी काल में, किसी भी प्रकार से, सम्भव नहीं है, प्रलयकाल भी आ जाये। इसलिए वह अरक्षा भय से भी रहित होता है।

चौथा है अगुप्ति भय। सत् का भी नाश होता है असत् की भी उत्पत्ति होती है। इस मत को माननेवाला व्यक्ति संसार नाश रूपी मुक्ति कैसे सम्भव होगी इस प्रकार की व्याकुलता को प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसी व्याकुलता नहीं रहती। वह जानता है कि सत् का कभी नाश नहीं होता और असत् की कभी उत्पत्ति नहीं होती इसलिए वह अगुप्ति भय इससे भी कभी भयभीत नहीं होता।

पाँचवा है मरण भय। आदमी मृत्यु से डर रहा है भाग रहा है। लेकिन मृत्यु से क्या कभी कोई बच सकता है? एक सम्राट को रात्रि में स्वप्न आया कि कल सुबह वृक्ष के नीचे तुम्हारी मौत हो जायेगी। उसने सोचा– अरे, मैंने यह स्वप्न रात्रि के अंतिम प्रहर में देखा है। उसने निमित्तज्ञानियों को बुलाया। निमित्तज्ञानियों ने कहा–राजन्! आपने जो स्वप्न देखा है वह सत्य है। सम्राट ने सोचा, मैं आज इस राजमहल को छोड़कर किसी पर्वत पर जाऊँगा। वृक्ष के नीचे बैठूँगा ही नहीं। उसने अपने घोड़े को तैयार किया। घोड़े पर बैठकर चल दिया पर्वत की ओर। रास्ते में दलदल पड़ा। घोड़ा दलदल में फंस गया। सम्राट घोड़े से नीचे उतरा और घोड़े को दलदल से निकाला, लेकिन घोड़े को दलदल से निकालने में श्रम–परिश्रम बहुत हो गया। सम्राट प्यास के मारे व्याकुल हो सोचने लगा, पहले पानी की व्यवस्था करना चाहिए इसके बाद पर्वत की ओर बढ़ूँगा। घोड़े को एक वृक्ष के नीचे बाँध दिया और स्वयं पानी की तलाश में निकल पड़ा। सम्राट को दूर–दूर तक पानी दिखाई नहीं दिया। थकान के कारण उसने सोचा, क्यों न थोड़ी देर वृक्ष की छाया में विश्राम कर लूँ। वह जैसे ही वृक्ष के नीचे छाया में पहुँचा और विश्राम करने लगा, तभी उसे स्मृति आई आज मैं मर जाऊँगा, और वृक्ष के नीचे मरूँगा। जब तक वह कुछ उपाय कर पाता तब तक तो मृत्यु आ ही गई। वृक्ष के पास से गुजरते हुए काले सर्प ने उसे डस लिया, सम्राट का मरण हो गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि आदमी मरण भय से चाहे कहीं भी पहुँच जाये लेकिन मृत्यु से नहीं बच सकता। सम्राट की तरह वह अपने आप उस स्थान पर पहुँच जायेगा। सम्यग्दृष्टि जीव को मरण का भय नहीं रहता। क्यों नहीं रहता? क्योंकि वह इस बात को जानता है कि

'मैं अविनाशी शुद्धचैतन्य भगवान आत्मा हूँ' मेरा मरण किसी भी काल में नहीं होता इसलिए घबराता नहीं है।

ध्यान रखना, अगर आप लोगों को अपनी मृत्यु का पता चल जाये तो क्या करोगे? उपाय करोगे। क्या उपाय करोगे? किसी डॉक्टर (Doctor) को देखोगे, वैद्य को देखोगे, ये ही उपाय करोगे। क्या डॉक्टर (Doctor), वैद्य, ज्योतिषी मृत्यु से बचा लेगा? अगर मृत्यु आना सुनिश्चित है तो धर्म-आराधना ही शरण है। इसलिए मरण भय नहीं रखना चाहिए।

जम्बुद्वीप में मेरुपर्वत से पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्र में 'गंधिल' नाम का देश है। इस देश के मध्यभाग में स्थित रजतमय विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में 'अलका' नाम की श्रेष्ठपुरी का राजा अतिबल विद्याधर था। जिसकी मनोहरा नाम की पतिव्रता रानी थी। इनके अतिशय भाग्यशाली महाबल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। किसी समय भोगों से विरक्त महाराज अतिबल ने राज्याभिषेक पूर्वक समस्त राज्य पुत्र महाबल को सौंप दिया और अनेक विद्याधरों के साथ दीक्षा ले ली।

महाबल राजा के चार महाबुद्धिमान मंत्री थे– महामति, सभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध। किसी दिन स्वयंबुद्ध मंत्री सुमेरु पर्वत पर वन्दना करने गया। अकृत्रिम प्रतिमाओं की वन्दनाकर सौमनस वन के चैत्यालय में बैठ गया। तभी विदेह क्षेत्र से आये हुए आदित्यगति और अरिंजय नाम के चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों को देखा। स्वयंबुद्ध मंत्री ने उठकर उन्हें प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम किया, पूजा और स्तुति की। अनन्तर प्रश्न किया–हे स्वामिन्! हम विद्याधरों का राजा महाबल भव्य है या अभव्य? मैं जिनधर्म के उपदेश को जैसा प्रमाण मानता है, वैसा मेरा स्वामी महाबल श्रद्धान करेगा या नहीं? इस प्रश्न के बाद अवधिज्ञानी आदित्यगति मुनिराज ने कहा– हे भव्य! तुम्हारा स्वामी भव्य ही है। वह तुम्हारे वचनों पर विश्वास करेगा और आज से दसवें भव में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होगा। आज रात्रि में उसने दो स्वप्न देखे हैं उसका फल सुनाकर अपने स्वामी का हित करो।

स्वयंबुद्ध मंत्री ने द्वय चारणऋद्धिधारी मुनिराजों को प्रणाम किया और शीघ्र ही आकर महाराज महाबल से बोला– हे राजन्! आपने जो स्वप्न देखा है कि तीनों मंत्रियों ने आपको कीचड़ में डाल दिया है, और मैंने उठाकर सिंहासन पर बैठाया, सो मिथ्यात्व के कुफल से निकलकर आप जिनधर्म को प्राप्त हुए हो। दूसरे स्वप्न में जो आपने अग्नि की ज्वाला क्षीण होते

देखी– उसका फल आपकी आयु एक माह की शेष रही है। आप इस भव से दसवें भव में तीर्थंकर होंगे। ऐसा सुनकर राजा महाबल ने अपना राज्य पुत्र को सौंप दिया, और सिद्धकूट चैत्यालय में जाकर सिद्ध प्रतिमाओं की पूजा करके गुरु साक्षीपूर्वक जीवन पर्यन्त चारों प्रकार के आहार का त्यागकर सल्लेखना धारण कर ली। और धर्मध्यान पूर्वक मरण करके ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में ललितांग नाम का उत्तम देव हो गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मृत्यु सुनिश्चित हो, तो सल्लेखना समाधि ही उपाय है। मृत्यु का भय दुर्गति का कारण है। सम्यग्दृष्टि जीव मरणभय से रहित हुआ समाधि को स्वीकारता है।

छठवाँ है वेदना भय। जीवन में दु:ख, कष्ट, वेदना असातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से आती है। प्राय: सभी साधारण प्राणियों के मन में इस प्रकार का भय रहता है कि मुझे कोई रोग–बीमारी न हो जाये। यदि मुझे कोई कैंसर (Cancer) आदि असाध्य रोग हो गया, तो मैं क्या करूँगा? कैसे अपने जीवन की रक्षा करूँगा? रोग की महावेदना को कैसे सहूँगा? ऐसा जीवन जीने की अपेक्षा तो मरण अच्छा है, ऐसा विचार मिथ्यादृष्टि जीवों के मन में आता है सम्यग्दृष्टि जीवों के नहीं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव सदा निर्भय रहता है। वह पूर्वोपार्जित कर्म के फल भोगने में दीनता नहीं रखता।

एक ब्रह्मचारी जी श्रीफल हाथ में लेकर दीक्षा ग्रहण की भावना से हमारे पास आये। बोले–गुरुदेव! आपके कर कमलों से दीक्षा ग्रहणकर मैं अपना भव सुधारना चाहता हूँ, आप मुझे दीक्षा प्रदान करें। साथ ही ऐसा आशीष दें कि मैं स्वस्थ रहूँ।

मैंने कहा–'स्व' में स्थित रहोगे तो स्वस्थ रहोगे, और 'पर' में स्थित रहोगे तो अस्वस्थ रहोगे।

बोला–गुरुदेव! मैं दीक्षा तो लेना चाहता हूँ परन्तु मन में कुछ बात है।

मैंने कहा– बोलो।

बोला– यदि मेरी दीक्षा हो गई, और मुझे कोई असाध्य रोग हो गया, वेदना हुई, तो आप मेरी क्या व्यवस्था करेंगे?

मैंने कहा– सम्यग्दृष्टि जीव वेदना भय से रहित होता है। दीक्षा के योग्य भी सम्यग्दृष्टि जीव होता है। अभी आप सम्यग्दर्शन का दृढ़ता से पालन करे क्योंकि अभी आपकी दीक्षा की

काललब्धि नहीं है। दीक्षार्थी परीषहों से डरता नहीं अपितु निजात्मा के आश्रय से परीषहों को सहज स्वीकारता है।

सच्चे गुरु पम्प (Pump) की तरह होते हैं। निज ज्ञान से, अनुभव से शिष्य को देख लेते है कि वह दीक्षा योग्य है या नहीं। जैसे पम्प (Pump) से हवा भरने पर ट्यूब (Tube) में पंचर (Puncture) का ज्ञान हो जाता है। जिस ट्यूब (Tube) में पंचर (Puncture) होता है वह गाड़ी में चल नहीं सकता, उसी प्रकार जिस शिष्य में सप्तभय में से किसी भी भय का पंचर (Puncture) होता है वह रत्नत्रय दीक्षा रूपी गाड़ी के योग्य नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को वेदना भय से रहित होना चाहिए।

सातवाँ है आकस्मिक भय। मिथ्यादृष्टि जीव मेरे ऊपर कोई आपत्ति न आ जाये। आकाश से बिजली पड़ौसी के घर गिरी है कहीं मेरे घर पर या मेरे ऊपर न गिर जाये, इत्यादि अकस्मात् भय के कारण दु:खी रहता है। जबकि सम्यग्दृष्टि जीव स्व चतुष्टय-परचतुष्टय एवं पुण्य-पाप का श्रद्धानी होता है। अत: अकस्मात् भय के निमित्त मिलने पर या मिलने की आशंका कर भयभीत हो दु:खी नहीं होता।

इस तरह सम्यग्दृष्टि जीव सप्तभय से रहित, शंकादि आठ दोष, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, एवं आठ मदों से भी रहित होता है। इनका स्वरूप आगे कहेंगे, वहाँ से जानना।

भवतन भोग विरक्त कहा, आठ गुणों से युक्त अहा।
भय मल व्यसन रहित होता, पंचगुरु का भक्त कहा।।
वह सम्यगदृष्टि, हो-हो-2, निर्दोष कहाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 5
(द्वितीय प्रवचन)

●

सप्त व्यसन दुःख के कारण

14.08.2013

भिण्ड

(सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?)

भयवसणमलविवज्जिद, संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

* अन्वयार्थ *

(**दंसणसुद्धो**) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/सम्यग्दृष्टि (**हु**) वस्तुतः (**भय-वसण-मल-विवज्जिद**) भय, व्यसन और मलों से रहित होता है (**संसार-सरीर-भोग-णिव्विणो**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है (**अट्ठगुणंग-समग्गो**) अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण (**पंचगुरुभत्तो**) पंचगुरु, पंच परमेष्ठी का भक्त होता है।

अर्थ- निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय ही सात भय, सात व्यसन और पच्चीस मल दोषों से रहित, संसार, शरीर व भोगों से विरक्त तथा निःशंकितादि अष्टांग सम्यक्त्व के गुणों से युक्त और पंचपरमेष्ठी का भक्त होता है।

सप्त व्यसन दु:ख के कारण- (1) जुआ खेलना (2) माँस खाना (3) शराब पीना (4) वेश्यागमन (5) शिकार खेलना (6) चोरी करना (7) पर रमणी रमण

13

रयणोदय

व्यसन सदा दुःख देते हैं, सबका सुख हर लेते हैं।
इसीलिए सम्यग्दृष्टि, व्यसन त्याग कर देते हैं।।
व्यसनों में फँसकर, हो-हो-2, क्यों पुण्य नशाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'**जयदु जिणागम पंथो**' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ '**जिनागम पंथ**' है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' का प्रतीक '**जिनागम पंथ**' सन्मार्ग है।

अहो! जितने भी मनुष्य हैं सभी अच्छा जीवन चाहते हैं। श्रेष्ठ जीवन चाहते हैं लेकिन एक अच्छे जीवन श्रेष्ठ जीवन के मायने क्या हैं? यह नहीं समझ पाते। व्यक्ति सोचता है यदि रोटी, कपड़ा और मकान तीन चीजें व्यवस्थित हों तो हमारा जीवन अच्छा हो सकता है। भोजन के नाम पर व्यक्ति अच्छा सुस्वादु भोजन चाहता है। यदि जीवन में सब अनुकूलतायें बन जायें तो

वह सोचता है हमारा जीवन अच्छा हो गया है। पहनने के लिए अच्छे, सुन्दर, साफ-सुथरे, उज्ज्वल वस्त्र हों तो वह सोचता है अब हमारा जीवन अच्छा हो गया। रहने के लिए एक झोपड़ी होती है। एक साधारण मकान होता है और एक विशेष कोठी होती है। आदमी की सोच रहती है झोपड़ी से मकान बन जाये, मकान से बंगला कोठी बन जाये, अगर ये चीजें व्यवस्थित हो जाती हैं तो एक भावदशा निर्मित हो जाती है हमारा जीवन अच्छा हो गया है।

लेकिन थोड़ा विचार करना, यदि किसी व्यक्ति को रोटी-कपड़ा और मकान इच्छा के अनुकूल प्राप्त हो जाये तो क्या इतने मात्र से उसका जीवन श्रेष्ठ हो सकता है? व्यक्ति धन सम्पन्न है रहने के लिए घर में कोई कमी नहीं है। खाने के लिए भोजन करने के लिए हर प्रकार की व्यवस्थाएँ हैं। जब जो इच्छा करे तब वह व्यंजन उसके लिये उपलब्ध हो जाता है। लेकिन किसी बीमारी से पीड़ित है। डॉक्टर (Doctor) ने कहा-आपको न तो ज्यादा चिकनाई लेनी है, न ज्यादा मीठा लेना है, न ज्यादा नमक। आपको बिल्कुल साधारण भोजन करना है सुपाच्य भोजन करना है। वह पूछता है, डॉक्टर साहब मैं क्या खाऊँ? आप खिचड़ी का भोजन करें। खिचड़ी में भी ज्यादा घी मत डालना। अब सोचो, जिस व्यक्ति के पास सब कुछ है हर प्रकार की सुविधायें हैं। भोजन के लिए हर प्रकार के व्यंजन उपलब्ध हैं। लेकिन डॉक्टर (Doctor) ने कहा है, तुम्हें मात्र खिचड़ी लेना है वो भी बिना घी की। अब उस आदमी का जीवन अच्छा हो सकता है क्या? यदि वह सारे व्यंजनों का सेवन करे तो उसका जीवन अच्छा होगा या मात्र खिचड़ी का, या सुपाच्य भोजन करे तो उसका जीवन अच्छा होगा? अगर वह सुपाच्य भोजन करे तो वह निरोगी रहेगा और यदि अटरम-सटरम कुछ भी खा-पी लिया तो बिस्तर पर जा पड़ेगा। स्वयं परेशान होगा, रोग-बीमारी घेरेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति सोचता है यदि हमारे लिए स्वादिष्ट व्यंजन मिल जायें तो हमारा जीवन अच्छा है। लेकिन इतने मात्र से आपका जीवन अच्छा नहीं हो सकता। आपके लिए अनुकूल क्या है? अगर आप अनुकूलता ध्यान में रखते हो तो अवश्य ही आप स्वस्थ रहेंगे, निरोगी रहेंगे और इसे एक बार अच्छा जीवन कहा जा सकता है।

पहनने के नाम पर व्यक्ति कितना दिखावा करता है। आज घर में भले ही अच्छा भोजन करने के लिए न हो लेकिन दिखावे के लिए प्रदर्शन के लिए अच्छे-अच्छे वस्त्र, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर चार लोगों के बीच में बैठने का इच्छुक रहता है। जिससे लोग कहें वाह! क्या कपड़े हैं? यानि व्यक्ति दिखावे के लिए सुन्दर वस्त्र पहनना चाहता है। स्टेटस (Status) भले

ही घर में कुछ और हो, अनुकूलताएँ हों अथवा न हों। पहले के लोग अच्छा खाते थे, भले ही वे बहुत ज्यादा कीमती कपड़े पहन पायें या न पहन पायें। वे भले ही धोती-कुर्ता पहनकर अपना जीवन निकालें लेकिन अच्छा खाना जानते थे, अच्छे से रहना जानते थे। आज आदमी अच्छे वस्त्र चाहता है और उनसे अपने जीवन की अहमियत समझता है कि मैं श्रेष्ठ जीवन जी रहा हूँ।

अच्छा मकान होना चाहिए। ठीक है अगर आपका मकान अच्छा बन गया तो मकान अच्छा होने से आपका जीवन थोड़े ही अच्छा बन गया। आपने अपना मकान ही अच्छा बनाया है। अपना जीवन अच्छा बना लिया हो ऐसा तो आपने कोई कार्य नहीं किया। लेकिन व्यक्ति भ्रान्ति में जीने लग जाता है कि हमारा मकान अच्छा है और मैं अच्छा जीवन जी रहा हूँ। पड़ौसी भी सोचते हैं, देखो जीवन तो इनका है भैया। हमारी तो दो मंजिल भी खड़ी नहीं हो पा रहीं हैं। इनकी चार मंजिल खड़ी हो गईं हैं यानि इनका जीवन अच्छा है। लेकिन हो सकता है पड़ौसी एक मंजिल मकान में भी सुखी हो और वो चार मंजिल के मकान में भी बेचैन हो। हमने कुछ ऐसे नियम कर रखे हैं, ऐसे सिद्धान्त बना रखे हैं कि बाहरी चीजें देखकर हम यह सोचने लग जाते हैं शायद हमारे से दूसरे का जीवन बहुत अच्छा है।

बंधुओ! इन चीजों से जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं है। आपके पास बंगला कोठी सब कुछ हो जायेगा इससे आपका जीवन अच्छा नहीं बन सकता, केवल बंगला-कोठी ही अच्छा कहा जा सकता है। आपके पास अगर बहुत ही कीमती अच्छे-सुन्दर दिखनेवाले आधुनिक शैली के वस्त्र हों, तो इससे वस्त्र ही अच्छे कहे जा सकते हैं तुम्हारा जीवन अच्छा हो गया हो ये नहीं कहा जा सकता। और आपने अगर सुस्वादु व्यंजन का स्वाद चख लिया है इतने मात्र से आपका जीवन अच्छा हो गया हो ये कोई जरूरी नहीं है। ये तो अपनी बाहरी आवश्यकताएँ हैं।

जीवन को अच्छा बनाने के लिए कुछ अच्छी आदतें भी जीवन में होना चाहिए। अगर आदतें अच्छी नहीं हैं, आपके विचार अच्छे नहीं हैं, आपका व्यवहार अच्छा नहीं है, आपका बोल-चाल अच्छा नहीं है तो ये रोटी-कपड़ा और मकान आपके जीवन को अच्छा नहीं बना सकते। जीवन को अच्छा बनाने के लिए कुछ अच्छी आदतों को भी अपने जीवन में सम्मिलित करना होगा। जैसे डॉक्टर (Doctor) कहता है- आपके भोजन में प्रोटीन (Protein) भी होना चाहिए, कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates) भी होना चाहिए, योग्य विटामिन्स (Vitamins) भी होना चाहिए। ऐसे ही कुछ अच्छी आदतें, अच्छे संस्कार भी आपके जीवन में होना चाहिए,

आपके व्यवहार में होना चाहिए, तब आपके जीवन की कोई अहमियत आपके जीवन का कोई मूल्य है। और यदि बाहरी चीजें सब उपलब्ध हो जायें लेकिन जिनसे हमारा आचरण श्रेष्ठ बनता है, जिससे हमारा व्यवहार श्रेष्ठ बनता है, वे गुण जीवन में न हों तो कैसे कहा जा सकता है कि आप एक श्रेष्ठ जीवन जी रहे हैं?

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने प्राणीमात्र के लिये एक अच्छा और श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए सम्यग्दृष्टि बनने का उपदेश दिया है। सम्यग्दृष्टि का तात्पर्य है- 'अच्छे के प्रति अच्छा और बुरे के प्रति त्याग का भाव।' क्या? अच्छे के प्रति तो अच्छा और जो बुरी चीजें हैं बुरी आदतें हैं, बुरा व्यवहार है, बुरे संस्कार हैं, उनके प्रति त्याग का भाव, आप इनको छोड़िये। ऐसा प्राणी सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। क्योंकि उसकी दृष्टि सही है, समीचीन है, सम्यक् है, यथार्थ है। अपने नैतिक जीवन में और पारमार्थिक, धार्मिक जीवन में भी जो इतना निर्णय कर सके। जैसे रोगी व्यक्ति है उसके सामने नकली और असली दोनों औषधी रखी हैं। यदि उसे पता न हो तो वह असली की जगह नकली का भी सेवन कर सकता है। यदि उसे जानकारी हो जाये ज्ञान हो जाये, कि ये असली औषधी है और ये नकली औषधी है। दोनों के विषय में उसकी दृष्टि समीचीन हो जाये, सही हो जाये तो वह क्या करेगा? असली औषधी ग्रहण करेगा कि नकली ग्रहण करेगा? असली ग्रहण करेगा। क्यों? क्योंकि उसकी दृष्टि में असली-नकली का भेद आ गया है। ऐसे ही परमार्थ मार्ग में हमें इस बात का निर्णय करना होता है कि कौन असली है यानि किसका आश्रय करने से हमारा परमार्थ मार्ग, मोक्षमार्ग सिद्ध होता है और किसका आश्रय करने से हमारा संसारमार्ग वृद्धिंगत होता है, परमार्थ मार्ग अवरूद्ध होता है। जिसने ऐसा निर्णय कर लिया है। वह जीव व्यवहार और निश्चय दृष्टि से सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

सम्यग्दृष्टि जीव का क्या केवल परमार्थ मार्ग ही ठीक होना चाहिए अथवा नैतिक आचरण भी ठीक होना चाहिए? इसके उत्तर में आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं-सम्यग्दृष्टि जीव का परमार्थ मार्ग के साथ-साथ नैतिक आचरण भी अच्छा होता है क्योंकि जिसकी दृष्टि ठीक हो गई हो उसका आचरण विपरीत कैसे हो सकता है? इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए अपने अन्दर अच्छी आदतें प्रगट करता है और बुरी आदतों का परित्याग कर देता है। निर्दोष सम्यग्दृष्टि जीव व्यसनों से रहित होता है। जिनधर्म में सात व्यसन बताये गये हैं। व्यसन का अर्थ होता है बुरी आदतें। जिन बुरी आदतों के कारण व्यक्ति परमार्थ मार्ग, धर्ममार्ग से दूर होता है और लोकाचार में भी भला नहीं कहा जाता अर्थात् लोक दृष्टि में भी जिसे बुरा माना जाता है, ऐसी बुरी आदतें सात कही गईं हैं।

जुआ खेलना माँस मद्य वेश्यागमन शिकार।
चोरी पररमणी रमण सातों व्यसन निवार।।

पहला व्यसन है जुआ खेलना। अगर आप एक अच्छा जीवन जीना चाहते हैं। श्रेष्ठ जीवन बनाना चाहते हैं तो इस बुरी आदत को अपने व्यवहार में शामिल न करें। जुआ खेलने की आदत आपके नैतिक आचरण को नष्ट करती ही है धार्मिक आचरण को भी समाप्त कर देती है। लोक दृष्टि में आपके प्रति लोगों की अवधारणा भी अच्छी नहीं रहती। जुआ खेलनेवाला व्यक्ति हमेशा लोकदृष्टि में भी निन्दनीय रहता है। उसे कोई अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। जुआ खेलनेवाले जुआरी के लिए कभी सम्मान नहीं मिलता, सम्मानीय दृष्टि नहीं मिलती और सम्मानीय लोग कभी उसे अपने पास नहीं बिठाते। क्यों? क्योंकि **जुआ खेलना एक ऐसी बुराई है, ऐसी बुरी आदत है, जिसके होने पर व्यक्ति स्वयं ही तिरस्कार का पात्र बन जाता है।**

ऐसा कौन है जो अपने परिवार की दृष्टि में गिरना चाहता है? अपने रिश्तेदार कुटुम्बीजनों की दृष्टि में गिरना चाहता है? पड़ौस में, समाज में तिरस्कृत होना चाहता है? कोई नहीं, तो आप इस बुरी आदत को अपने जीवन में मत लाइये, अन्यथा आप, अपने परिवार में भी तिरस्कार के पात्र बन जायेंगे। आपका कोई विश्वास नहीं करेगा। कभी पिताजी आपको तिजोरी की चाबी नहीं सौंपेंगे। इसलिए जीवन को श्रेष्ठ बनानेवाली अच्छी आदतें अपने आचरण में शामिल कीजिये, और जो बुरी आदतें हैं उनको हमेशा-हमेशा के लिए छोड़ दीजिये। जुआ खेलना एक बुरी आदत है। **जुआ खेलनेवाला व्यक्ति अविश्वास का पात्र होता है।** जुआ खेलनेवाला व्यक्ति चोरी करना सीख जाता है। जुआ खेलनेवाला व्यक्ति अपने कुल की प्रतिष्ठा को नष्ट कर देता है।

इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है जो उसी भव से निर्वाण को प्राप्त करनेवाले, मोक्ष जानेवाले, चरमशरीरी, महापुरुष थे, वे भी द्यूतक्रीडा के कारण अपयश के पात्र बने। जिस कुल का सम्मान नारायण श्री कृष्ण करते थे, पाँच पाण्डवों ने उस कुल को कलंकित कर दिया। उन्होंने शकुनि मामा की चाल में फँसकर जुआ खेला। उससे राज वैभव गया, सुख शांति गई, जितना सम्मान था वह भी नष्ट हो गया। नौबत यहाँ तक आ गई कि अपनी ही पत्नी सती द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया। आज भी ऐसे अनेकों जुआरी जुआ खेलने की आदत में इसतरह फँस जाते हैं कि अपना धनवैभव सब कुछ उसी में झोंक देते हैं। कई बार अपनी स्त्री को भी दाँव

पर लगा देते हैं। जिसके साथ विवाह करते समय संकल्प लिये थे कि हम दोनों मिलकर गृहस्थ जीवन की गाड़ी को अच्छी तरह से अपनी मंजिल तक ले जायेंगे, उसके साथ इतना दुर्व्यवहार। जुआरी के लिए स्व स्त्री इतनी तुच्छ वस्तु हो जाती है कि उसे भी जुए में दाँव पर लगा देता है।

ध्यान रखना, जुआ खेलनेवाले की मति, बुद्धि इतनी खराब हो जाती है कि वो ये भी नहीं समझ पाता कि धर्मपत्नी की हमारे जीवन में क्या अहमियत है। उसकी भावनाओं का कोई ख्याल ही नहीं रह जाता। पाण्डवों ने द्रोपदी को दाँव पर लगा दिया और हार गये। परिणाम क्या हुआ सभी के सामने है। अगर यह बुरी आदत जीवन में न होती तो क्या वीरत्व को धारण करनेवाले उन आर्यजनों को भरी सभा में नजरें झुकाकर, शर्मिंदित होकर, लज्जित होकर बैठना पड़ता? इस बुरी आदत के कारण इन वीर पुरुषों को भी भरी सभा में लज्जित शर्मिंदित होना पड़ा। इसलिए बंधुओ ! सम्यग्दृष्टि जीव इस बुरी आदत से रहित होता है। चाहे आप सम्यग्दृष्टि हों या न हों पर जुआ खेलने की आदत त्याग करने योग्य है। यदि आप जिनधर्म पर सच्ची श्रद्धा रखते हैं, जिनगुरु पर सच्ची श्रद्धा रखते हैं, जिनदेव पर सच्ची श्रद्धा रखते हैं तो उनके द्वारा बताये हुए मार्ग पर भी श्रद्धा रखना चाहिए।

दूसरा व्यसन होता है माँस खाना । भगवान अरिहंत देव ने प्राणीमात्र के लिए, श्रेष्ठ जीवन जीने का सूत्र दिया 'अहिंसक जीवन शैली अपनाओ- कभी माँस का सेवन मत करो'। माँस दूसरे प्राणी का अवयव है। माँस लोलुपी इतना मतिहीन हो जाता है कि वह नहीं सोच पाता माँस भक्षण किस दुर्गति में ले जायेगा? इसलिए भगवान महावीर ने अच्छा जीवन जीने के लिए सूत्र दिया–'**जिओ और जीने दो** ।'

आज देखियेगा, नैतिकता कितनी गिर चुकी है। निर्बल और असहाय जानवरों के साथ किसतरह बदसलूकी की जाती है। कितनी क्रूरता उनके साथ दिखाई जाती है। आपके हाथ में अगर थोड़ा ब्लेड (Blade) लग जाये तो कितनी पीड़ा होती है? अरे सोचो, किसी जानवर की गर्दन पर जब छुरी चलती होगी तो उसे कितनी पीड़ा होती होगी? वो कितना तड़पता होगा? किसी कसाई के घर जाकर किसी जीव की हत्या होते हुए अगर एक बार देख लोगे तो प्राण काँप जायेंगे। कितनी बेरहमी के साथ केवल गर्दन ही नहीं अंग-अंग के साथ बेदर्दी दिखाई जाती है। माँस खाने का लोलुपी व्यक्ति अविवेकी हो जाता है। भूल जाता है। मैं केवल जिह्वा इन्द्रिय के स्वाद के लिए दूसरे जीवों को कितना दु:ख, कितना कष्ट, कितनी पीड़ा दे रहा हूँ?

आज मानव कितना संवेदनहीन होता जा रहा है।
मानव होकर भी मानव का माँस खा रहा है।।आ. विमर्शसागर।।

चीन एक ऐसा देश है जहाँ डिब्बे में बंद मानव भ्रूण मार्केट (Market) में बाजार में उपलब्ध रहते हैं। आज मनुष्य-मनुष्य को ही खा रहा है। आदमी का आचरण इससे ज्यादा और कितना पतित कितना क्रूर कहा जा सकता है? जो मानव भ्रूण को खाकर जिव्हा इंद्रिय को तृप्त कर रहा है। अजन्मे बच्चे के प्रति इस तरह का दुर्व्यवहार किस कारण से? एक मात्र माँस की लोलुपता के कारण। इसलिए बंधुओ! भगवान महावीर ने उपदेश दिया कि माँस खाना बुरी आदत है। श्रेष्ठ जीवन जीनेवालों के लिए इसका हमेशा के लिए त्याग कर देना चाहिए। वह इसभव में भी सुखी रहेगा और परभव में भी सुखी रहेगा।

तीसरी बुरी आदत है मद्य पान अर्थात् शराब पीना। शराब व्यक्ति के मस्तिष्क पर अटैक (Attack) करती है। आदमी शराब पीने के बाद पागलों जैसी चेष्टायें करने लग जाता है। जो आप रोटी-कपड़ा और मकान के माध्यम से अपने जीवन को श्रेष्ठ जीवन समझते हैं, मैं कहता हूँ किसी आदमी के पास ये तीनों चीजें उपलब्ध हों। और अच्छा सूट-बूट पहनकर शराब पीकर झूमता हुआ जा रहा हो, कौन आदमी कहेगा कि ये अच्छा जीवन जी रहा है? एक छोटे से बच्चे से भी पूछ लिया जाये तो वो भी कह देगा कि ये बावला हो गया है। शराबी व्यक्ति शराब पीने के बाद भूल ही जाता है कि मैं किसी सम्मानीय कुल में पैदा हुआ हूँ मैं श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ हूँ। शराबी को इतना विवेक कहाँ है। शराब के नशे में वह अकरणीय कर्म भी कर लेता है। उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। क्यों? क्योंकि शराबी व्यक्ति पागलों की तरह चेष्टायें करता है। अपने परिवार को भी उजाड़ देता है, नष्ट कर देता है। आप न्यूज पेपर्स (News Papers) में समाचार देखते होंगे कि शराब के नशे में व्यक्ति ने अपने घर को जला दिया, पत्नी को मार दिया, पुत्रों को मार दिया, किसी के साथ कुछ कर दिया। क्योंकि शराबी व्यक्ति विवेकहीन होता है। शराब पीकर घर पहुँचता है तो बेटी शराबी पिता को देखकर कमरे में बंद हो जाती है। क्यों? क्योंकि पिता को शराब के नशे में पता नहीं कि मैं बेटी हूँ। कई बार शराब के नशे में ऐसी परिस्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं। **शराबी को कुछ होश नहीं रहता कि कौन स्त्री है? कौन माँ है? कौन बेटी है? इसलिए शराब पीना एक बुरी आदत है।**

अगर आप एक अच्छे परिवार का निर्माण करना चाहते हैं। अगर आप एक अच्छे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, व्यक्तिगत जीवन को अच्छा बनाना चाहते हैं तो

पारिवारिक, सामाजिक स्तर पर शराब त्याग के विषय में चेतना लायें, साथ ही व्यक्तिगत रूप से आप इस शराब रूपी व्यसन का परित्याग करें। यदि आप परिवार को अच्छा बनाना चाहते हैं तो परिवार के साथ बैठकर इस बुरी वस्तु के विषय में सबको अवगत करायें और कभी निर्ग्रन्थ मुनिराज के पास आकर सपरिवार यह नियम करें कि हम लोग कभी शराब का सेवन नहीं करेंगे। यदि आप समाज को अच्छा बनाना चाहते हैं तो प्रबुद्धजनों को चाहिये कि बैठकर इस बात का विचार करें हमारी समाज में कहीं शराब जैसी बुरी वस्तु प्रवेश तो नहीं कर रही है। अगर है तो उस पर सामाजिक प्रतिबंध लगायें। और अपनी एक श्रेष्ठ, सभ्य, सुसंस्कृत समाज का निर्माण करें। अगर आप इन दायित्वों का निर्वाह नहीं करते हैं तो आप एक सामाजिक व्यक्ति नहीं हैं। पारिवारिक व्यक्ति नहीं हैं। और यदि आप अपने परिवार के मुखिया हैं। परिवार को सही दिशा देना चाहते हैं तो आपको इन बातों पर चिन्तन विचार करना ही होगा।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि एक शराबी व्यक्ति जब शराब पीकर शराबखाने से बाहर निकलता है। रास्ते में झूमता हुआ गालियाँ बकता हुआ इधर से उधर जाता है। पैर लड़खड़ाते हैं। जमीन पर गिर जाता है। और क्या दुर्गति होती है। जमीन पर पड़ा है पास से ही कोई कुत्ता निकला, उसने देखा सूंघा और जो आदत होती है टाँग उठाकर करने की, वह कर दिया। शराबी कहता है–मधुरम मधुरम, एकबार और। विचार करना, कुत्ते भी शराबी के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, तो आदमी कैसा करेंगे? शराबी व्यक्ति कभी विश्वास का पात्र नहीं होता। शराबी व्यक्ति घर की एक-एक वस्तु बेच-बेचकर शराब की बोतल खरीद लाता है। स्त्री परेशान है। बच्चे परेशान हैं। परिवारजन परेशान हैं परन्तु उस शराबी को कहाँ पता है। यदि कोई उसकी स्त्री को कह दे कि ये उस शराबी की स्त्री है, शराबी की पत्नी है। समाज के बीच, चार लोगों के बीच उसे कितना दु:ख होगा? ये शब्द कितने कटुक कितने कष्टप्रद मालूम पड़ते हैं। ये तो उस सम्मानीय महिला से पूछो। किसके कारण? एकमात्र शराबी पति और उसके शराब व्यसन के कारण।

इस शराब को पीने से मिलता क्या है? लिवर कैंसर (Liver cancer) यदि यह बीमारी हो जाये तो बचने की कोई उम्मीद नहीं रहती। अच्छा जीवन मिला था इसका उपयोग करता। तू बड़ा धार्मिक व्यक्ति नहीं हो सकता तो सामाजिक व्यक्ति बनकर जी लेता, यशस्वी जीवन जीता लेकिन यशस्वी जीवन न जीकर अपमानित जीवन जिआ।

आदमी को अपने जीवन में दो काम करना चाहिये। एक तो अपने आत्मा का हित और दूसरा यश कार्य। यश को पैदा करनेवाले कार्य। व्यक्ति दुनिया से चला भी जाये, मृत्यु को प्राप्त

हो जाये तो भी इन कारणों से दुनिया याद करती है कितना महान व्यक्ति था जबकि शराबी तो मात्र तिल-तिल मृत्यु को ही भोगता है।

इसलिए बंधुओ! आप अपना जीवन श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, परिवार को श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, और एक अच्छी समाज बनाना चाहते हैं, समाज निर्माण करना चाहते हैं, तो कभी बैठकर इन बातों पर विचार करो। एक-एक परिवार निर्ग्रंथ गुरुजन के पास जाकर सविनय निवेदन कर नियम ग्रहण करे, महाराजश्री! मैं अपने परिवार को अच्छा बनाना चाहता हूँ हमें आशीर्वाद प्रदान कीजिए। हम सब परिवारीजन शराब का त्याग करते हैं। छोटे बच्चों को भी अपने साथ लेकर आइये जो अभी जानते ही नहीं हैं कि शराब का नशा क्या होता है? उसके पहले ही उसका त्याग करा देना और उन्हें बताते रहना बेटा! हम सबने गुरूदेव से नियम लिया है। अपना समाज में बहुत सम्मान है। अपना परिवार समाज में बहुत ही आदरणीय हैं। ऐसा बच्चों के अन्दर संस्कार डालिये। ये विचार आप उनके मस्तिष्क में प्रवेश कराने का प्रयास कीजिए। अगर ये चीजें आपने भर दीं कि आप समाज में बहुत सम्मान के पात्र हैं। वह बालक बड़ा होकर सोचेगा कि मैंने शराब का त्याग किया है। हम सम्मान के पात्र हैं। अगर वह किसी बुरी संगति में भी फँस गया, तो भी वह कभी ऐसी वस्तु का सेवन नहीं करेगा, ऐसी वस्तु को हाथ नहीं लगायेगा। क्यों? क्योंकि वह सम्मान का पात्र है।

लेकिन जब आप ऐसे विचार ऐसे संस्कार नहीं देते हैं। और आज की युवा पीड़ी जब कुसंगति को प्राप्त होती है। तो फिर वो भी उसी कुसंगति में पड़ जाती है? इसलिए ध्यान रखो जैन समाज श्रेष्ठ माना जाता है? जहाँ पानी भी छानकर पिया जाता हो वहाँ समाज में ये बुरी आदतें कैसे हो सकती हैं? इसलिए परिवार निर्माण करना यह तो आप सभी गृहस्थों का कर्त्तव्य है ही, अपने परिवार को इन बुरी आदतों से बचाना भी प्रथम कर्त्तव्य है। पहले इन बुरी आदतों का परित्याग कराने का प्रयास कीजिए। आप आगे आइये और बच्चों को बताइये कि हमने ये नियम लिया है आप भी नियम लो। अगर शराब का आप सेवन नहीं करेंगे तो मृत्यु नहीं हो जायेगी, ये तो बुरी आदतें हैं।

कहीं कोई बारात जा रही हो और किसी शराबी को आप लेकर पहुँच जायें तो लड़कीवाले के ऊपर क्या बीतती है उस एक आदमी के उपद्रव के कारण? कई बार तो स्थितियाँ यहाँ तक बन जाती हैं कि बारात में कोई शराबी व्यक्ति पहुँच गया और उसने इतना उत्पात मचाया कि लड़की ने और लड़कीवालों ने शादी करने से ही मना कर दिया। आप लोग जाइये यहाँ से। आप

बारात लेकर आये हैं या शराबखाना लेकर। ध्यान रखो, शराब के कारण कितनी बड़ी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। लड़ाई-झगड़े हो जाते हैं। गोलियाँ चल जाती हैं। इस बुरी आदत के कारण परिवार, संबंध बिगड़ जाते हैं इसलिए निमन्त्रण पत्र में पहले ही लिख देना चाहिए बारात में वही शामिल हों जो शराब न पीते हों। फिर आपको कुछ अलग से कहने की आवश्यकता नहीं होगी।

आप लोग समझते हैं बारात लाने या ले जाने का क्या अर्थ होता है? बारात लाने, ले जाने का, बैण्ड बजाने का अर्थ ये होता है कि समाजवाले समझ लें कि ये जहाँ से भी आये हैं वहाँ के बहुत ही सम्मानीय लोग हैं। इसलिए बैण्ड बजाये जाते हैं। बारात लाने-ले जाने का अर्थ है कि इनका भरा-पूरा परिवार है और समाज में सम्मान है अच्छा व्यवहार है। इसलिए सभी लोग शामिल होकर आये हैं।

बारात में शराब और शराबियों से बचने का सबसे अच्छा तरीका ये है कि आप निमन्त्रण पत्र में पहले ही यह बात छपवा दें कि बारात में वहीं लोग शामिल हों जो शराब न पीते हों। धीरे-धीरे आप स्वयं देखेंगे एक लाईन (Line) का कितना बड़ा फर्क हमारे समाज पर पड़ता है। जिस परिवार में वह कार्ड (Card) पहुँचेगा, परिवार के लोग पहले ही चर्चा कर लेंगे कि तुम जाओ तुम मत जाओ। अब आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। समझदार लोग शराबियों से कहेंगे भैया! तुम मत चले जाना। कार्ड (Card) में लिखकर आया है ऐसे लोग न आयें।

चौथा व्यसन है वेश्या गमन। सम्यग्दृष्टि जीव वेश्या गमन नामक इस बुरी आदत से दूर रहता है। भगवान महावीर कहते हैं ब्रह्मचर्य से रहो और यदि आप ब्रह्मचर्य से रहने में असमर्थ हैं तो आपने जिसके साथ शादी-विवाह किया है उसी के प्रति समर्पित होकर रहो, ये भी तुम्हारा ब्रह्मचर्य है यह स्व स्त्रीव्रत होता है। अगर यह नियम आपने बना लिया तो भी आप इस बुराई से बचे रहेंगे। यदि वेश्यागमन जैसी दृष्टि आपके अन्दर है, बुराई है, बुरी आदत है, तो भगवान कुंदकुंद देव कहते हैं- तुम्हारा धर्म-कर्म सब भ्रष्ट है। तुम धर्म के लिए अयोग्य हो। ऐसा व्यक्ति धर्म के योग्य नहीं होता। ध्यान रखना, इसलिए इस वेश्यागमन नामक बुराई का त्याग प्रत्येक व्यक्ति, परिवार और समाज का होना चाहिए।

पाँचवाँ व्यसन है शिकार खेलना। पहले बड़े-बड़े राजा लोग होते थे, धनिक लोग होते थे, वे अपने मनोरंजन के लिये शिकार खेलते थे और निर्बल पशुओं को मारते थे। आज भी शिकार को अपराध ही माना जाता है। लोकदृष्टि में भी शिकार अपराध है फिर ये तो धर्म दृष्टि

है। यहाँ सम्यग्दृष्टि के लिये कहा गया है कि तुम्हें शिकार नहीं खेलना चाहिये। आप सभी को पता है कि सलमान खान किस अपराध में फँसा हुआ है। काले हिरण के शिकार में। भले ही बड़ा आदमी है तो क्या हो गया? अभिनेता है तो क्या हो गया? हजारों लोग उसके चाहनेवाले हैं तो क्या हो गया? वह संविधान की दृष्टि में अपराधी है। कानून की दृष्टि में अपराधी है। इसलिए बंधुओ! भगवान महावीर ने, आचार्य भगवन्तों ने जिनवाणी-जिनशास्त्रों में बताया है कि शिकार खेलने जैसी बुरी आदत का त्याग करना चाहिये।

छठवाँ व्यसन है चोरी। जिस वस्तु का स्वामी दूसरा है उससे पूछे बिना उस वस्तु को ले लेना चोरी है।

चोरी करनेवाले पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। पता नहीं कब हाथ साफ कर दे। चोरी एक बहुत बुरी आदत है। आप कितने भी सम्मानीय क्यों न हों लेकिन यह आदत आपके अन्दर है तो सारा सम्मान गया। किसी के घर गये। उसने बड़े आदर सम्मान के साथ आपको बिठाया। सामने ही एक छोटी सी कलाई घड़ी रखी थी। वो गया था आपको पानी लेने के लिए आपने घड़ी साफ कर दी। उसने तो आपको पानी पिलाया। पानी पीने के बाद आपको ये लग रहा था कब यहाँ से जाऊँ? आप उठकर चल दिये। जब उसे अपनी कलाई घड़ी याद आई तो उसने देखा। घड़ी दिखाई न दी। वो समझ गया कि अभी-अभी मैंने उस आदमी के सामने ही उतारकर रखी थी और कोई आया भी नहीं। चोरी करना बहुत बुरी आदत होती है। आप घर में परिवार में रहते हैं। एक देवरानी है एक जेठानी है। दो में से अगर एक की भी चोरी की आदत हो, तो धीरे से रसोई में पहुँच गई, एक कटोरी में शक्कर निकाली और ले आई। बाद में देवरानी पहुँची, उसने कहा कटोरी की शक्कर कहाँ गई? और कोई तो आया ही नहीं जरूर जिठानी ले गई होगी। क्यों? क्योंकि चोरी करने की उसकी बुरी आदत है। आप एक बार चोरी कर लेंगे, दो बार चोरी कर लेंगे, तीन बार चोरी कर लेंगे फिर अगर आप एकबार भी दृष्टि में आ गये तो सबकी नजरों से नीचे गिर जायेंगे।

पति दुकान से घर पहुँचा। फटाफट कपड़े उतारे और खूंटी पर टाँग दिये। पत्नी ने कहा-हाथ-मुँह धो लीजिये। तुरन्त वह ठण्डा-ठण्डा पानी लेकर आई। वह हाथ मुँह धोने लगा। इतने में तो पत्नी ने पूरे सर्ट (Shirt) और पैंट (Pants) की चैकिंग (Checking) कर ली। हजार के नोट थे 500 के नोट थे। आपने ज्यादा कुछ नहीं किया एक हजार का नोट निकाल लिया। आज तो आपने 1000 का निकाला है या 500 का निकाला है। पति को कुछ भी पता नहीं है। लेकिन

जिस दिन भी पति ने देख लिया, क्या कर रही हो? कुछ नहीं। कुछ तो? कुछ नहीं। अरे कुछ तो कर रही थी? मैंने देख लिया, मैं रोज सोचता था नोट गिनकर लाता हूँ उसमें से 1000 रुपये कम कैसे हो जाते हैं? आज पता चला घर में ही चोर है। अगर तुम्हें चाहिये थे तो मुझसे माँग लेती।

इसलिए भिण्डवालो! ध्यान रखना, आपकी पत्नी आपसे 100-500 रू., 500-1000 रू. माँगे तो सम्मान से दे देना अन्यथा जेब साफ करानी पड़ेगी। अगर आप सम्मान से नहीं देंगे तो पत्नी भी सोचेगी कि पति देता तो है नहीं, अब कुछ तो करना पड़ेगा। लेकिन ध्यान रखना, कुछ मिले या न मिले तुम्हारे पुण्य पर निर्भर है। अगर तुम्हारे पुण्य का साथ है तो अवश्य मिल जायेगा और यदि तुमने चोरी करना सीख लिया तो इसभव में तो नहीं मिल रहा सो नहीं मिल रहा, परभव में भी मिलनेवाला नहीं है। इसलिए कभी चोरी मत करो। चोरी करनेवाला कानून की दृष्टि में भी अपराधी है। धर्मदृष्टि में भी अपराधी है। और चोरी का माल अगर किसी ने खरीद लिया तो वो भी चोर है। केवल चोरी करना ही चोरी नहीं है। चोरी करनेवाले का माल खरीदना भी चोरी है और खरीदने वाला भी चोर है। क्योंकि अगर चोर पकड़ा गया और तहकीकत हुई, पुलिस (Police) ने पूछा-बोल तूने ये सामान कहाँ बेचा था? चोर कहेगा- हमने फलाने-फलाने भिण्ड निवासी सेठजी के यहाँ बेचा था। भिण्ड के सेठ जी चोर कहलायेंगे या नहीं कहलायेंगे। चोरी करनेवाला चोरी का माल खरीदने वाला दोनों चोर हैं। क्योंकि एक चोरी कर रहा है एक चोरी के अपराध को बढ़ावा दे रहा है।

विचार करना, चोरी करनेवाले को तो विवेक होता नहीं कि मैं क्या कर रहा हूँ? आज वह किसी के घर में चोरी करता है। कदाचित् घर में चोरी करने का अवसर न मिले तो मंदिर में चोरी करता है। चोर तो विवेकहीन है, कई बार मंदिरों में चोरियाँ हो जाती है। चोर मंदिर में चोरी करके गया और किसी दूसरे व्यक्ति को छत्र आदि बेच दिया। अब जिसने चोरी का सामान खरीदा है आपकी दृष्टि में वह कैसा होगा अच्छा या बुरा? आपकी दृष्टि में वह बुरा है। आप किसी चोर से अगर चोरी का सामान खरीदते हो तो आप अपनी ही दृष्टि में बुरे क्यों नहीं हैं? अवश्य हैं। इसलिए बंधुओ चोरी करना भी बुरी आदत है।

सातवीं बुरी आदत है परस्त्री रमण। दूसरे की स्त्री की चाह करना परस्त्री रमण कहलाता है। परस्त्री और पर-पुरुष की चाह करना यह परस्त्री रमण व्यसन के अंतर्गत ही जानना चाहिये। यह भी एक बुरी आदत है। रावण ने परस्त्री का हरण किया था। और परस्त्री

हरण के कारण ही तीन खंड का अधिपति प्रतिनारायण जैसे सम्मान को प्राप्त करनेवाला रावण लोक में निन्दाका पात्र बना। सोचो, रावण कब हुआ था? भगवान मुनिसुव्रतनाथ के काल में राम-रावण हुए थे, तब से लेकर आज तक रावण लोगों की दृष्टि में एकमात्र निन्दा का ही पात्र बना हुआ है। किस कारण? परस्त्री रमण इस व्यसन का त्याग न होने के कारण उसने सीता का हरण किया।

बंधुओ! सम्यग्दृष्टि जीव इन सात बुरी आदतों, व्यसनों से हमेशा दूर रहता है, इसलिए निर्दोष सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। इन सात बुरी आदतों के साथ-साथ अन्य भी लोक में निन्दित कहीं जानेवाली निन्दनीय बुरी आदतें इन्हीं सातों व्यसनों में गर्भित कर लेना चाहिए। एक अच्छा जीवन जियें, श्रेष्ठ जीवन जियें, संस्कारित जीवन जियें, अच्छे परिवार का निर्माण करें, सप्त व्यसनों का स्वयं त्याग करें, अपने बच्चों से त्याग करवायें। ये संस्कार पहले 8 वर्ष की उम्र में परिवार का मुखिया गृहस्थाचार्य अथवा निर्ग्रन्थ मुनिराज के पास जाकर ग्रहण कराता था। अष्ट मूलगुण आदि का नियम दिला देता था। आज इन संस्कारों को भूलते जा रहे हैं। यही कारण है कि परिवार की, धर्म की प्रतिष्ठा नष्ट होती जा रही है। अगर आप एक अच्छे परिवार का निर्माण करने के इच्छुक हैं, अपना जीवन अच्छा बनाना चाहते हैं, और कुल की प्रतिष्ठा को बरकरार रखना चाहते हैं तो इन बुरी आदतों को हमेशा के लिए छोड़ना चाहिये। समाज में बैठकर प्रबुद्ध वर्ग को हमेशा यह चिन्तन करना चाहिये। परिवार के मुखिया को इस बात का विचार करना चाहिए। यदि आप सम्यग्दृष्टि बनना चाहते हैं, धर्म के मार्ग पर चलना चाहते हैं, अपनी आत्मा का हित करना चाहते हैं, तो आपको व्यक्तिगत तौर पर धर्म की श्रद्धा करते हुए इन व्यसनों का त्याग करना चाहिये। तभी आपका जीवन अच्छा बनेगा, श्रेष्ठ बनेगा, सम्मानीय बनेगा और आपके कुल में हमेशा ऐसी संतानों का जन्म होगा जो हमेशा आपके कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने में कारण बनेंगे। क्यों? क्योंकि पुण्यवान जीव पुण्यवान कुलों में ही पैदा होते हैं और पुण्यहीन जीव पुण्यहीनों के घर में जन्म लेते हैं। इसलिए बंधुओ आप सभी इन व्यसनों से बुरी आदतों से दूर रहने का प्रयास करें।

आजकल एक वायदा बाजार चलता है। वायदा बाजार ये भी एक जुआ है। एक बात ध्यान रखना, वायदा बाजार के कारण केवल आप अपनी धन-सम्पदा को ही नष्ट करेंगे, इससे कभी आप सम्पन्न नहीं बन सकते। क्यों? क्योंकि जो वायदा बाजार चलानेवाले लोग हैं, खिलानेवाले लोग हैं, वे बहुत ही माइंडेड (Minded) हैं। वे जानते हैं कि आपने क्या-क्या चीजें कितनी-

कितनी खरीद लीं? आपने कितना कमा लिया? अब आपको कैसे नीचे लाना? ये सब कलाएँ जानते हैं। आप बर्बाद हो जाते हैं। ऐसे अनेकों लोग हैं जो लाखों-करोड़ों रुपये वायदा बाजार के माध्यम से नष्ट कर चुके हैं। सम्पदा जब नष्ट होती है, धन जब चला जाता है तब उस आदमी से पूछो कि वह भीतर ही भीतर क्या सोच रहा है?

इसलिए बंधुओ! इतना लोभ, इतनी आसक्ति, इतनी तृष्णा न लायें कि बिना श्रम-परिश्रम, मेहनत किये अमीर आदमी बनने के ख्वाब से आप अपना ही धन खो बैठें कोई भी ऐसा उदाहरण बता दो जो वायदा बाजार से सम्पन्न हुआ हो। अगर कुछ आ जाये तो लत पड़ जाती है कि और आ जायेगा, क्योंकि आदमी के मन की तृष्णा तो कभी पूरी होती ही नहीं है। उसको लगता है, और आ जायेगा, अब और आ जायेगा। अब इतना आ गया है तो और जायेगा। और एक झटके में सब कुछ चला जाता है। आदमी ऊपर से बहुत नीचे आ जाता है। बंधुओ! ये बहुत बुरी आदतें हैं। इन बुरी आदतों से हमेशा बचना चाहिए। सद्गुरु आपको एक अच्छा जीवन जीने का उपदेश देते हैं। जीवन निर्माण का उपदेश देते हैं। इसलिये उनके उपदेशों को श्रवणकर इन बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिये। त्याग कर देना चाहिये। और अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने की दिशा में अच्छी आदतें लाना चाहिये। कुछ अच्छे संस्कार लाना चाहिये। आपका परिवार खुशहाल रहे, आपका समाज अच्छे संस्कारों से संस्कारित समृद्ध रहे, ऐसी मेरी सद्भावना है।

व्यसन सदा दुःख देते हैं, सबका सुख हर लेते हैं।
इसीलिए सम्यग्दृष्टि, व्यसन त्याग कर देते हैं।।
व्यसनों में फँसकर, हो-हो-2, क्यों पुण्य नशाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।।

❑❑❑

(सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?)

भयवसणमलविवज्जिद, संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

* अन्वयार्थ *

(**दंसणसुद्धो**) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/सम्यग्दृष्टि (**हु**) वस्तुतः (**भय-वसण-मल-विवज्जिद**) भय, व्यसन और मलों से रहित होता है (**संसार-सरीर-भोग-णिव्विणो**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है (**अट्ठगुणंग-समग्गो**) अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण (**पंचगुरुभत्तो**) पंचगुरु, पंच परमेष्ठी का भक्त होता है।

अर्थ- निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय ही सात भय, सात व्यसन और पच्चीस मल दोषों से रहित, संसार, शरीर व भोगों से विरक्त तथा निःशंकितादि अष्टांग सम्यक्त्व के गुणों से युक्त और पंचपरमेष्ठी का भक्त होता है।

गाथा - 5

(तृतीय प्रवचन)

●

ज्ञानी का स्नान कर्मनिर्जरा में कारण

16.08.2013

भिण्ड

(1) माँ सुभद्रा एवं पिता भानुदत्त की गोद में बाल चारुदत्त।

(2) बालक चारुदत्त स्वाध्याय लीन
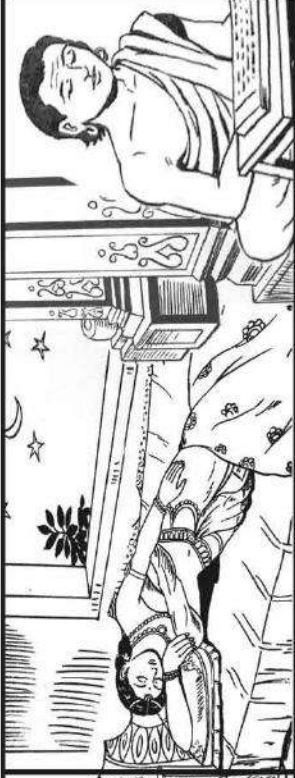
(3) शयन करती पत्नी मित्रवती और स्वाध्याय लीन चारुदत्त।

(4) काका रुद्रदत्त के द्वारा चारुदत्त को वेश्या के यहाँ ले जाना।

(5) बसंत सेना का नृत्य देखता चारुदत्त

(6) जुए में धन लगाता चारुदत्त

(7) कलिंगसेना वेश्या के द्वारा चारुदत्त को घर से बाहर निकालना।
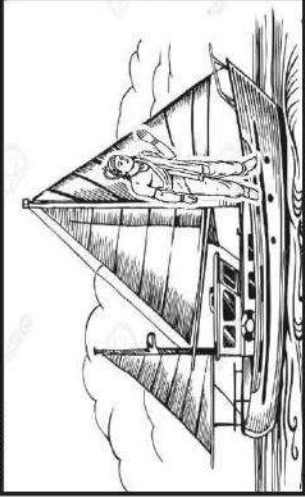
(8) चारुदत्त धन कमाने जहाज पर सवार।
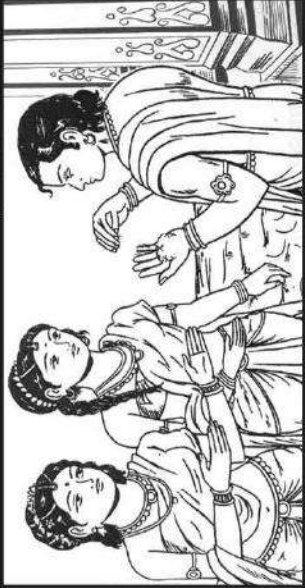
(9) चारुदत्त मित्रवती एवं बसंत सेना की वैराग्य मयी वार्ता।
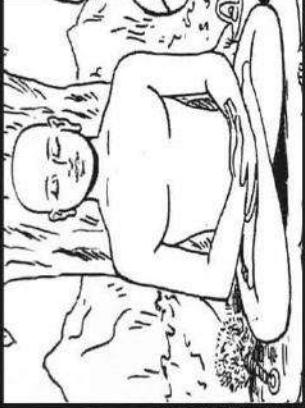
(10) चारुदत्त मुनिवन तप करते हुए

14

रयणोदय

स्वारथ का संसार कहा, तन को अशुचि असार कहा।
भोग सदा दुख के कारण, चिंतन यह सुविचार कहा।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, वैराग्य दिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

आदमी जन्म से ही अपराधी होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जन्म लेने के बाद अपराध मुक्त होने का प्रयास करते हैं, और कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो जन्म के बाद अपराध को बढ़ाते चले जाते हैं। कल्याणालोचना में कहा भी है–

संसार भमण गमणं कुणंत आराहिदो ण जिणधम्मो।
तेण विणा वर दुक्खं पत्तोसि अणंत वाराइँ।।3।।

अर्थात् हे जीव! इस संसार रूपी महावन में भ्रमण करते हुए तुम्हारे द्वारा कभी भी जिनधर्म की आराधना नहीं की गई। जिसके बिना तुमने अनंत पर्यायों में अनंतबार घोर महान दुखों को प्राप्त किया।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि हमने जो अपने अनंत भवों में अपराध किया है उसका फल भी हमने अनंत पर्यायों में भोगा है। क्या अपराध करना और उनका फल भोगना बस यही हमारा जीवन है? क्या यही हमारा उद्देश्य है? आचार्य कुंदकुंददेव समझाते हैं बेटा! अपराध कर लिया। उसका फल भी भोग लिया। अब तो सँभल जाओ। अब तो सुधर जाओ। और अपराध से मुक्त होने के लिये सही कर्तव्य करना सीखो।

इस संसार में जितने भी जीव रहते हैं वे या तो दूसरों के निमित्त अपराध करते हैं या अपने निमित्त अपराध करते हैं। दूसरों के निमित्त अपराध करनेवाले बहुत लोग हैं। अपने निमित्त अपराध करना, गल्तियाँ करना, भूल करना, ये मनुष्य का थोड़ा कम रहता है। लेकिन अपराध तो अपराध ही है। अग्नि तो अग्नि ही है। चाहे उठती हुई ज्वाला हो या छोटी सी एक चिंगारी। आग तो आग ही है। उठती हुई ज्वाला भी जला देती है। और छोटी सी चिंगारी भी आग में कारण बन जाती है।

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव समझाते हैं कि व्यसनों का त्याग करो। क्योंकि व्यसन आत्मा को दुख देते हैं। इस भव में, परभव में भी। घर में, घर के बाहर भी। समाज में, समाज के बाहर भी। आप कहीं भी चले जायें किंतु सुखी नहीं हो सकते। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव भय से रहित होता है। व्यसन और पच्चीस मल दोषों से भी रहित होता है। जिनका स्वरूप पहले बतला दिया गया है।

तीन मूढ़ता, षट अनायतन, आठ शंकादि मल दोष और आठ मद ये सम्यग्दृष्टि जीव के दोष कहे जाते हैं और इनसे रहित होने पर सम्यग्दर्शन निर्दोष सम्यग्दर्शन कहलाता है। निर्दोष सम्यग्दर्शन ही निर्वाण की यात्रा कराता है।

सदोष सम्यग्दृष्टि अर्ध पुद्गल परावर्तन काल तक संसार में ही परिभ्रमण करता रहता है। आचार्य भगवन् कहते हैं सम्यग्दृष्टि जीव संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है। संसार किसे कहते हैं? और यह संसार कहाँ पाया जाता है? और आप संसारी क्यों कहे जाते हैं? थोड़े चिंतन की आवश्यकता है। आप ये सोचते हैं कि शायद संसार बाहर है।

संसार बाहर नहीं है वह तो हमारे भीतर है लेकिन हम सभी की सोच इसके विपरीत है। क्यों? क्योंकि हमारा उपयोग हमेशा बाहर की ओर होता है। बाह्य निमित्तों, बाह्य पदार्थों, बाह्य जगत की ओर होता है। इसलिये हम ऐसा सोचते हैं कि संसार कहाँ है? संसार तो बाहर है। घर संसार है। धन-दौलत, परिवार, सम्पदा ये सब संसार है। ये सब आपके संसार में निमित्त हैं। आपको संसारी बनाने में निमित्त हैं कारण हैं हेतु हैं।

संसार तो आत्मा में रहनेवाला रागद्वेष, मोह, अज्ञानभाव है। अगर इनको जीत लिया जाये, इनसे मुक्त हो जाये, तो संसार से मुक्त हो जाते हैं। यदि राग-द्वेष, मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व इनको न जीता जाये तो यह जीव संसारी बना रहता है। अब राग-द्वेष, मोह, अज्ञान ये भाव कहाँ पाये जाते हैं? ये तो अपनी आत्मा में ही उत्पन्न हो रहे हैं। ये कहीं बाहर उत्पन्न नहीं होते। लेकिन बाहरी पदार्थों के निमित्त से हो रहे हैं। इसलिए इन बाहरी पदार्थों को भी संसार कह दिया जाता है। कि ये तुम्हारी आत्मा के लिये हितकारी नहीं हैं। ये तुम्हारी आत्मा को संसारी अपराधी बनाते हैं।

राग, द्वेष, मोह रूप परिणाम करना ही अपराध है। ये सब जानते हैं कि चोरी करना पाप है अपराध है। भगवान महावीर आत्मा में चोरी का भाव आना ही अपराध कहते हैं। यदि किसी ने बाहर में कदाचित् चोरी ना भी की हो, किसी वस्तु आदि को न चुराया हो, लेकिन चोरी करने का परिणाम आत्मा में उत्पन्न हो गया। चोरी का भाव मन में आ गया तो भगवान महावीर कहते हैं वह जीव भी अपराधी है। वह चोरी कर रहा है यह उसकी अपराध क्रिया है। यदि वह चोरी करते हुए पकड़ा जाये तो दुनिया उसे अपराधी मानती है। और चोरी करते हुए यदि वह दुनिया की नजर में न भी आ पाये तो वह अपराधी माना जायेगा या नहीं। भले ही कोई उसे चोर-अपराधी न कहे। लेकिन वह चोर तो है ही। वह अपराधी तो है ही। भले ही किसी अन्य की दृष्टि में उसका अपराध प्रगट हुआ हो अथवा न हुआ हो, लेकिन अपनी दृष्टि में तो वह अपराधी

ही है। और उसने जिस पदार्थ की चोरी की है वह पदार्थ तो उसके चौर्य परिणाम में निमित्त बना है। वास्तविक अपराध तो उसका चोरी करने का परिणाम है। यदि चोरी करने का परिणाम भीतर से मिट जाये, निकल जाये, समाप्त हो जाये और बाहर में वस्तु पड़ी भी हो तो क्या वह अपराधी हो सकता है। नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि जब चोरी का परिणाम ही नहीं तब वस्तु हो अथवा न हो कोई फर्क ही नहीं पड़ता।

लोग अक्सर कहते हैं कि सतयुग में रामराज्य में लोग अपने घरों के दरवाजे भी बंद नहीं करते थे। क्यों नहीं करते थे? क्या कारण था? क्या उनके घर खाली होते थे। उनके पास धन-वैभव-संपदा सोना-चाँदी कोई भी सामान नहीं होता था? अरे! ये सब पदार्थ उनके घरों में होते थे। लेकिन लोगों के अन्दर किसी के घर में घुसकर चोरी करने का भाव, परिणाम नहीं था। धीरे-धीरे आत्मा कलुषित होने लगी। परिणाम बिगड़ने लगे। और दूसरों की वस्तु को अपना बनाने के भाव उत्पन्न होने लगे। चोरी का भाव उत्पन्न हो गया। जीव अपराधी हो गया।

सीता भी स्त्री थी और सूर्पनखा भी। स्त्री तो दोनों हैं। राम भी पुरुष हैं रावण भी पुरुष है। पुरुष तो दोनों हैं। रावण के सामने सीता और राम के सामने सूर्पनखा यानि चन्द्रनखा है। (जैन शास्त्रों में सूर्पनखा का नाम चन्द्रनखा है।) लेकिन एक के परिणाम में पराई स्त्री के प्रति, सीता के प्रति राग है। उसे अपना बना लेने का भाव है। इसलिये रावण अपराधी है। वहीं राम के सामने जब चन्द्रनखा आती है। उन्हें मोहित करने का प्रयास भी करती है। फिर भी राम के हृदय में उसके प्रति राग का भाव नहीं। उन्हें उससे कोई प्रयोजन ही नहीं। इसलिये राम अपराधी नहीं हैं।

वस्तु तो सामने है लेकिन वस्तु के सामने रहते हुए भी जब तक हमारी आत्मा में कलुषित परिणाम उत्पन्न नहीं होता। राग-द्वेष-मोह आदि भाव, चोरी आदि करने का पापभाव उत्पन्न नही होता। तब तक आत्मा में अपराध नहीं बनता। तब तक आत्मा संसारी नहीं बन सकता। और जब हमारे भीतर पराई वस्तु को देखकर मोह परिणाम उत्पन्न होते हैं रागादि भाव पैदा होते हैं तब हमारा आत्मा उसी क्षण संसारी बन जाता है।

मैं संसारी हूँ अपराधी हूँ ये बात किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने ज्ञान से स्वयं इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि आप अपराधी हैं या नहीं। दूसरों का ज्ञान आपके विषय में निर्णय दे पाये अथवा न दे पाये लेकिन आपका ज्ञान आपके विषय में बिल्कुल सही

निर्णय देगा। अब आप अपनी आत्मा की आवाज स्वीकारें न स्वीकारें यह आपकी अपनी भूल होगी। लेकिन आपका ज्ञान आपके अपराध को अपराध ही कहेगा। यदि आपका ज्ञान आपके अपराध को अपराध नहीं कहता, मैंने अच्छा किया, मैंने बढ़िया किया, ऐसा जानता है, तो वह आपका ज्ञान उसी समय अज्ञान कहलाता है। और इन्हीं भावों के कारण हमारा आत्मा संसारी बनता रहता है।

संसार कहाँ है ? भीतर है या बाहर है ? कहाँ हैं ? संसार भीतर भी है। और बाहर भी है। बाह्य जगत के पदार्थ निमित्त बनते हैं और भीतर परिणाम उत्पन्न होते हैं। इसलिये यदि संसार से छूटना है तो इन बाह्य निमित्तों का भी त्याग करना होगा। कलुषित परिणामों को भी छोड़ना होगा। तभी आत्मा संसार से विरक्त हो सकता है। जब तक यह अज्ञानी जीव परपदार्थों में, अपने सगे संबंधियों में आसक्त रहता है तब तक संसार का सृजन होता रहता है।

यह आत्मा अकेला ही जन्मता है। अकेला ही मरता है। अकेले ही सुख भोगता है। अकेले ही दुख का वेदन करता है। चारों काम अकेले ही करता है। हमारा सुख तुम नहीं भोग सकते। तुम्हारा सुख हम नहीं भोग सकते। तुम्हारा दुख हम नहीं भोग सकते। हमारा दुख तुम नहीं भोग सकते। तुम्हारा जन्म हमारा नहीं हो सकता। हमारा जन्म तुम्हारा नहीं हो सकता। हमारी मृत्यु हमें ही आयेगी। तुम्हारी मृत्यु हमारी नहीं हो सकती। इसलिये कहा है।

'जन्मे मरे अकेला चेतन सुख-दुख का भोगी'

अगर यह सूत्र, यह सूक्ति, हमारे सम्यग्ज्ञान का आधार बन जाये तो संसार असार मालूम पड़ने लग जाये। इस धरा पर जब आपका जन्म हुआ तो बिल्कुल दिगंबर नग्न रूप में हुआ। ऐसा जन्म किसलिये हुआ? इसलिये हुआ, कि बड़े होकर तुम ऐसे ही दिगंबर बनना। अपने यथाजात स्वरूप में रहना। अपने स्वभाव में रहना। इसलिये ऐसा जन्म होता है। जो हमें बोध कराता है कि मोक्षमार्ग का बहिरंग साधन क्या है। यह दिगंबरत्व, मोक्षमार्ग का बहिरंग साधन है। जिस समय तुम्हारा जन्म हुआ उस समय अपनी देह पर तुम एक भी वस्त्र लेकर नहीं आये थे। एक भी आभूषण, अलंकार लेकर नहीं आये थे। लेकिन जन्म लेते ही रागी मोही जीवों ने देह पर आवरण डालना शुरु कर दिया।

तुम्हारी आँख खुली। तुमने अपने को किस रूप में निहारा? आवरण सहित रूप में। तुम अपनी आँखों से अपने यथाजात नग्न स्वरूप को न देख पाये। जब भी देखा वस्त्रालंकारों से विभूषित देखा। अन्तरंग में चाह पैदा हो गई अब मैं बड़ा होऊँगा और अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनूँगा। पहले के समय में बच्चे 7-8 साल तक यूँ ही घूमते रहते थे। वे ठीक तरह से अपना अंडरवीयर (Underwear) भी पकड़ना नहीं सीख पाते थे। माता-पिता पहनाते भी थे तो वे उतार-उतार कर फेंक देते थे। और ये अच्छा भी था, कम से कम बच्चे अपने आप को देख सकें कि मैंने किस रूप में जन्म लिया और यदि वे किसी निर्ग्रंथ मुनि को देख लें तो मन में यह भाव आ जाता कि जब ये ऐसे रह सकते हैं तो मैं क्यों नहीं रह सकता? ज्ञानी गुरु का सान्निध्य मिल जाये तो आत्मा में वैराग्य अंकुरित होने लग जाता है और दिगम्बरत्व को स्वीकार कर लेता है। आचार्य भगवन् जिनसेन स्वामी एक ऐसी महान आत्मा थे जिन्होंने जन्म से लेकर जीवन पर्यंत अपने तन पर कोई वस्त्र धारण नहीं किया था।

लेकिन जिसने बचपन से ही वस्त्राभूषण से सजी देह को निहारा है, वह जीवनभर अपनी देह को तरह-तरह के वस्त्राभूषणों से अलंकृत देखने की चेष्टा करता है। बहुत विरले जीव होते हैं जो भगवान महावीर के दिगम्बरत्व को उनकी निर्ग्रंथता को हृदय से पहचान पाते हैं। स्वीकार कर पाते हैं।

जिस समय तुमने जन्म लिया था उस समय तुम बिल्कुल अकेले थे। धीरे-धीरे तुम बड़े हुए। माता को पहचाना। पिता को पहचाना। भाई-बहन को पहचाना। जितने-जितने तुम्हारे परिचित बनते गये, उतना-उतना ही तुम्हारा मोह-राग बढ़ता चला गया। अगर जन्म लेते ही तुम्हें किसी एकांत निर्जन स्थान पर छोड़ दिया होता तो तुम कभी भी अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि किसी को भी नहीं पहचान पाते। लेकिन जितना-जितना बाहरी निमित्तों से परिचय बढ़ता गया उतना-उतना मोह बढ़ता गया।

धीरे-धीरे तुम युवा हुए। माता-पिता ने योग्य कन्या के साथ तुम्हारा विवाह करा दिया। अब तुम एक से दो हो गए। लेकिन ध्यान रखना, एक से दो कभी हो ही नहीं सकते। क्यों? क्योंकि-

जन्मे मरे अकेला चेतन सुख - दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी।।

किसी और की तो बात ही छोड़ो, जिस देह के साथ तुमने जन्म लिया, मरण के समय वह देह भी तुम्हारा साथ छोड़ देगी। लेकिन तुम्हारा विवाह हुआ, एक से दो हो गये। वंश वृद्धि के लिये बेटा-बेटी हो गये तो दो से चार हो गये। अब तुमने सोचा कि हम दो हमारे दो, अब इतना ही ठीक है। अब एक से चार हो गये। लेकिन यदि चारों जीव मिल-जुलकर के एक दूसरे का सहयोग करते हैं तो परिवार में आनंद आता है। अगर चारों ही जीव, चार प्रकार के हो जायें तो परिवार में हरसमय क्लेश ही क्लेश मचा रहता है। इतना क्लेश भोगते हुए भी जीव उस परिवार को नहीं छोड़ पाता। क्लेश भोग रहा है फिर भी आत्मा में वैराग्य भाव पैदा नहीं होता कि कम से कम इस संसार का चिंतवन करे। संसार के स्वरूप को विचारे। वे चार प्राणी चाहे सुखपूर्वक रहें या दुखपूर्वक, लेकिन रहते एक साथ हैं।

वे एक-दूसरे के सुख-दुख में बहिरंग निमित्त तो बन जाते हैं लेकिन भोगना तो अकेले अकेले ही पड़ता है। ऐसा नहीं होता कि दुख प्रगट करके वे उसे आधा-आधा बाँट लेते हों। जैसे किसी को 104° बुखार आ गया तो उन्होंने कहा कि चलो फिफ्टी-फिफ्टी (Fifty-Fifty) कर लेते हैं। 52° तुम्हारा और 52° हमारा। ऐसा हो जाता है क्या? नहीं होता है ना। इस बात को अपने ज्ञान से पहचानो। कोई किसी के सुख-दुख को बाँटता नहीं है। सबको अपना-अपना सुख-दुख स्वयं भोगना पड़ता है। यथा- आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव श्री वारसाणुपेक्खा ग्रंथ में एकत्व भावना का कथन करते हुए कहते हैं कि-

एक्को करेदि कम्मं, एक्को हिंडदि य दीह संसारे।
एक्को जायदि मरदि य, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।14।।

अर्थात् यह जीव अकेला ही कर्मों को बाँधता है, अकेला ही संसार में परिभ्रमण करता है, अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है और अपने कर्मों का फल भी अकेला ही भोगता है।

जंगल में एक डाकू रहता था। जो भी आदमी मिलता, वह उसे लूट लेता। कदाचित् कोई मिला तो बस्तियों में जाकर के भी डाका डालता। उसका पूरा गिरोह खूब धन-संपदा लूटता और सफलता पाकर खूब आनंद मनाता। एक दिन उसी रास्ते से एक संत महात्मा गुजरे। वह डाकू बिल्कुल निर्मम, क्रूर और दयाभाव से रहित था। उसने संत को भी नहीं छोड़ा। तुरंत

महात्मा जी से कहा, बोल क्या-क्या है तेरे पास? निकाल, नहीं तो उल्टा लटका दूँगा। संत ने सोचा, इस संसार में जितने भी जीव आते हैं सब उल्टे लटककर ही आते हैं। सीधा तो कोई आता ही नहीं। क्योंकि जिस समय जन्म होता है उस समय माता के गर्भ में यह जीव उल्टा ही रहता है।

संत ने कहा-भाई! तू उल्टा लटका देने की बात कहता है मुझे तो 9 महीने तक उल्टे लटके रहने का अभ्यास है। अब वह डाकू सोच में पड़ गया कि ये आदमी तो बिल्कुल डर ही नहीं रहा, फिर कहता है कि मैं 9 माह का अभ्यासी हूँ। संत ने कहा- केवल मैं ही अभ्यासी नहीं हूँ तू भी 9 महीने का अभ्यासी है। वह डाकू सोचने लगा कि शायद यह जरूर मेरा कोई परिचित रहा होगा। बचपन में कोई दुर्घटना घट गई होगी तो हो सकता है यह उसी के बारे में कह रहा हो। वह संत से पूछने लगा- मैं लटका रहा। बोल मैं कब 9 महीने तक उल्टा लटका रहा, और किसने लटकाया था मुझे? संत ने कहा-जिसे तू अपनी जन्मदात्री माता कहता है उस माता के गर्भ में तू 9 माह तक उल्टा लटका रहा था। आदिनाथ जिनपूजा में कहा है-

हाय पाई मानुष पर्याय, सहा नौ माह गर्भ का वास।
झूलता रहा किये मुख नीच, गर्भ निकसैं पाई अति त्रास।।

पहली बार कोई ऐसा आदमी उस डाकू को मिला था जो इतनी ज्ञान की बातें कर सके। अन्यथा डाकू के सामने ज्ञान की बातें किसे आती हैं? सामने साक्षात् मौत को खड़ा देख आदमी सब कुछ भूल जाता है। उसकी देह भय के मारे थर-थर काँपने लगती है। लेकिन वे तो संत महात्मा थे। उन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं था। वे तो उसे जीतने निकले थे। संत अपनी मौत के लिये हमेशा तैयार रहते हैं। वे कहते हैं कि जब भी तू आयेगी मैं तेरा स्वागत करूँगा। संतगण मृत्यु से भयभीत जीवों को समझाते हुए कहते हैं-

मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, सो शुभतन तुम पावो।। स.म.।।

डाकू ने कहा- देख भाई! ये ज्ञान की बातें तू अपने पास रख। तेरे पास जो कुछ भी माल है वह निकाल, मुझे तो वही चाहिये।

संत ने कहा– मेरे पास तो बहुत कुछ है और मैं तुझे वह अवश्य दूँगा।

डाकू बोला– जल्दी कर। तेरे पास जितना भी हो वह सब निकाल दे।

संत ने कहा– एक बात बता। तूने ऐसा व्यवहार कितने लोगों के साथ किया है।

डाकू बोला– तू मेरे विषय में इतना जानने का इच्छुक क्यों है? तुझे मुझसे क्या मतलब?

संत ने कहा– अरे भाई! बुरा मत मान। मैं तो बस इतना जानना चाहता हूँ कि तूने आज तक कितने लोगों को लूटा? और वह सब तेरा कहाँ चला गया?

डाकू बोला– अरे! मेरा भी परिवार है। मुझे भी अपने परिवार की खैर मनानी है। मेरे परिवार वाले अच्छी तरह रहें, सुखी रहें। मुझे उनकी चिंता रहती है। इसलिये मैं जो कुछ भी लूटता हूँ जो कुछ भी धन-सम्पदा मेरे हाथ लगती है वह सब मैं अपने परिवार के लिये सौंप देता हूँ।

संत ने कहा– क्या तुम्हारा भी परिवार है?

डाकू बोला– क्यों? क्या मेरा परिवार नहीं हो सकता। मैं सब कुछ उसी के लिये तो करता हूँ।

संत ने कहा– अच्छा! अगर तुम सब कुछ अपने परिवार के लिये करते हो, तो वे सब भी तुम्हें बहुत चाहते होंगे। तुम्हारे लिये अपना सब कुछ समर्पित करने के लिये तैयार रहते होंगे।

डाकू बोला– क्यों नही? जब मैं उनके लिये सब कुछ कर सकता हूँ। अपनी जान पर खेलकर उनकी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता हूँ। तो वे हमारे लिये कुछ भी क्यों नहीं करेंगे? अवश्य ही करेंगे।

संत ने कहा– तू झूठ बोलता है। तू जो कह रहा है कि वे तेरे लिये सब कुछ करने के लिये तैयार होंगे, तो तू इस भूल में मत रह। क्योंकि तेरे परिवार का कोई भी सदस्य तेरा साथ देनेवाला नहीं है। तू जितने ये पाप कर रहा है, उन

सबका फल तुझे अकेले को ही भोगना पड़ेगा। तेरे परिवार का कोई भी सदस्य तेरे पाप में भागीदार नहीं होगा।

डाकू बोला- ऐसा कैसे हो सकता है? मुझे अपने परिवार पर पूरा विश्वास है।

संत ने कहा- अगर ऐसा है तो तू अपने घर जाकर अपने परिवार से, अपनी पत्नी से, अपने बच्चों से पूछ ले कि वो तेरा कितना साथ देंगे?

डाकू बोला- तू मुझे चालू आदमी लगता है। मुझे घर भेजकर खुद मुझसे छूटना चाहता है।

संत ने कहा- एक काम कर। मैं भी तेरे साथ चलता हूँ। और तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे पास इतना वैभव है अगर उस वैभव को तू प्राप्त कर ले, तो तेरा वैभव फिर कभी खत्म नहीं होगा। इतना वैभव है मेरे पास। वह सब तुझे दूँगा। बस तू चल । (दोनों साथ चल देते हैं)

संत ने रास्ते में उसे ज्ञानोपदेश दिया और समझाने लगे।

संत बोले- तू एक काम कर। तू यदि अपनी पत्नी से ऐसे पूछेगा कि तू कब तक मेरा साथ देगी? तो वह यही कहेगी कि मैं तुम्हारा सात जन्म तक साथ निभाऊँगी।

अहो आत्मन्! तुम लोग कितने जन्म की बात करते हो? एक जनम की या सात जनम की? क्या कहते हो? छोड़ेंगे न हम तेरा साथ....। कितने जनम तक? सात जनम तक। जबकि ये बिल्कुल पक्का है कि इसी भव में एक दिन ये साथ छूटनेवाला है।लेकिन तुम लोग कल्पना लोक में जीते हो। ऐसे असत्य वचनों को सत्य मानकर सुख भोगते हो। इनमें तुम्हें बहुत आनंद आता है। और अगर कोई सीधी-सीधी कह दें कि देख मैं तेरा इस जनम में भी साथ नहीं दूँगा, तो तुरंत ही घर में खटपट शुरू हो जाये। और अगर कह दें-हम दोनों एक दूसरे का सात जनम तक साथ निभायेंगे। वो कहेगा- वाह! 'सच्ची साथी तो तुम्ही हो मेरी'। वो कहेगी- 'सच्चे साथी तो तुम्ही हो मेरे।' जबकि दोनों झूठ बोल रहे हैं। ऐसा झूठ बोलने वाले सत्य प्रतीत होते हैं। किनको? मोही जीवों को।

यह जीव अनादिकाल से साथी की तलाश में लगा रहा। इस जीव ने आज तक अनंतों साथी बनाये। इसलिये कहा है-

पल दो पल के हैं सब साथी,
पोता पोती नातिन नाती।
जितना चाहे उतना बुन ले,
रिश्तों का तू जाल ओ पगले।
आयेगी जब मौत दुल्हनिया,
ले जायेगी तुझको सुन ले।। ज़ाहिद की ग़ज़लें।।

संत ने उसे समझाया-तू यदि सीधे जाकर पूछेगा कि तुम लोग मेरा साथ निभाओगे कि नहीं? तो वे सब स्वार्थी जीव कहेंगे कि हम तुम्हारा साथ जन्म-जन्म तक, सात जन्म तक निभायेंगे। इसलिये एक काम करना, जैसे ही घर पहुँचो तो इस तरह से अभिनय करना जैसे तुम दुनियाँ से चले ही गये।

डाकू ने पूछा- अच्छा! इससे क्या होगा?

संत ने कहा- तुम चिंता मत करो। तुम तो बस सबकी सुनते जाना। और तुमने कभी योगा (Yoga) किया है क्या?

डाकू बोला- जंगल में जब कोई मिलता नहीं है तो खाली समय में बैठे-बैठे योगा ही तो करता रहता हूँ और करता ही क्या हूँ। जंगल में दो ही प्रकार के लोग बैठते हैं या तो योगी या हम जैसे योगा करनेवाले।

संत ने पूछा- फिर तुम्हें श्वाँस रोकने का अभ्यास तो होगा।

डाकू ने कहा- खूब अभ्यास है। आप चिंता न करें। जितनी देर तक कहेंगे उतनी देर तक रोके रखूँगा।

वह डाकू घर पहुँचा। घर पहुँचते ही लड़खड़ाकर गिर पड़ा और गिरते ही श्वाँस बंद करके लेट गया। उसकी यह हालत पत्नी को पता चली तो वह सब काम छोड़कर हड़बड़ाती हुई आयी। उधर बच्चों को पता चला तो वे भी दौड़े-दौड़े आ गये। अरे! पिताजी को क्या हो गया?

इनकी तो श्वाँस ही नहीं चल रही है। अरे लगता है ये तो चले गये। कोई रोने लगा, तो कोई एक-दूसरे को समझाने लगा।

'जन्मे मरे अकेला चेतन सुख-दुख का भोगी'

घर के दरवाजे पर संत को खड़ा देख वे मोही प्राणी उनसे निवेदन करने लगे- संत जी! अब आप ही कुछ कर सकते हो। आप कुछ भी करो, कैसे भी हो। आप बस इन्हें जीवित कर दो। लेकिन ध्यान रखना! किसी के सुख-दुख में जन्म-मरण में कोई कुछ नहीं कर सकता। चाहे संत हों या महात्मा।

संतजी ने कहा- एक उपाय है। एक गिलास पानी लेकर आओ। पत्नी ने तुरंत पानी लाकर दिया और कहा-संत जी क्या उपाय है? जो भी हो उसे तुरंत कीजिये।

संत जी बोले- भो भगिनी! अभी तेरे पति की अंतिम श्वाँस बाकी है। उसे बचाने का एक उपाय यह है कि इस जल में हम थोड़ा सा विष मिलायेंगे। जो भी इस विषमिश्रित जल को पी लेगा वह तो मर जायेगा और तेरा पति तुरंत ही जीवित हो जायेगा।

संत जी ने वह गिलास पत्नी को दिया कहा-पिओ इसे और बचा लो अपने प्राणनाथ के प्राण। पत्नी ने कहा-अब ये तो चले ही गये हैं मैं और चली जाऊँगी तो बच्चों का क्या होगा? अब मरनेवाले को कौन रोक सकता है। जिसका आयुकर्म जितना है उसके बाद तो उसे मरना ही है। न कोई किसी को मारता है न ही कोई किसी को बचा सकता है। और मैं ठहरी एक अबला नारी। मैं भी कुछ नहीं कर सकती।

उसका पति डाकू सब कुछ लेटा-लेटा सुन रहा था। वह सोचने लगा- वाह! ये है मेरी धर्मपत्नी। अभी तक तो क्या बोलती थी कि मैं सात जन्मों तक आपका साथ निभाऊँगी। और आज इसी जन्म में साथ छोड़ दिया।

संत जी ने बेटे को बुलाया, कहा-लो बेटा तुम पी लो।

माँ ने कहा- नहीं बेटा! तुम मत पीना। ये तो चले ही गये। तू भी चला जायेगा। मैं अकेले कैसे जीऊँगी बेटा।

बेटे ने कहा- पिताजी तो चले ही गये। अब मेरे पीने से क्या फायदा। मैं पिऊँगा तो मैं और मरूँगा।

संत ने कहा- बेटा! तुम मर जाओगे। लेकिन जिसने तुम्हें जन्म दिया। पाला-पोसा तुम्हें इस योग्य बनाया। जिसने इतना उपकार किया। ऐसे पिता को नवजीवन मिल जायेगा।

बेटे ने कहा- लेकिन मैं तो इतना जानता हूँ कि जीना और मरना ये तो सबका अपना-अपना होता है। मुझ पर, मेरे परिवार पर, वैसे ही इतना बड़ा दुख का पहाड़ टूट पड़ा है। मैं आपकी ये ज्ञान की बातें और नहीं सुन सकता।

अब संत ने बेटी से कहा, लेकिन उसने भी मना कर दिया।

परिवारजनों की प्रतिकूल प्रतिक्रिया देख संत ने कहा- संत का स्वभाव, साधुओं का काम उपकार करने का होता है। संतजन हमेशा सभी पर उपकार किया करते हैं। साधुओं की ऐसी उदारवृत्ति देखकर ही कहा जाता है-

'परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर'

मैं भी एक संत हूँ इसलिए अब मैं एक काम करता हूँ इस गिलास का जल मैं ही पिये लेता हूँ। आप सभी लोग बताइए क्या मैं ऐसा कर लूँ?

सभी लोग एक स्वर में बोले—हाँ! हाँ! ये ठीक रहेगा।

आप ही हमारे परिवार पर उपकार कीजिए। हमारे घर का मुखिया जीवित हो जायेगा। हमारा पूरा परिवार उजड़ने से बच जायेगा।

संत ने तुरंत उस गिलास का जल पी लिया। संत का कुछ न बिगड़ा, उन्होंने उस डाकू के सिर पर हाथ फेरकर कहा-उठ बेटा! उठ जा।

वह डाकू उठकर बैठ गया। यह देख सभी परिवारी सदस्य खुश होकर कहने लगे-अरे! आप ठीक हो गये। पत्नी रो रोकर कहने लगी-अरे! अच्छा हुआ आप ठीक हो गये। अगर आपको कुछ हो जाता तो हम सबका क्या होता। बच्चे भी पिताजी-पिताजी कहकर खुश होने

लगे। पत्नी रोते-रोते संत के चरणों में पड़कर कहने लगी, संत जी! ये आपने महान उपकार किया कि इनको ठीक कर दिया।

डाकू से अब रहा न गया। बोला- वाह! ये देखो घड़ियाली आँसू! जब मैं मर रहा था तब कोई भी इस गिलास का चीनी मिला पानी पीने को तैयार न था क्योंकि उसमें विष मिला है। उसे पीकर मैं मर जाऊँगा। सभी को अपने अपने प्राणों की चिंता थी। उस समय कोई भी मेरा साथ देने वाला नहीं था। तब मैं किसी का नहीं रहा। और जब मैं उठ बैठा तो सब अपने सुख-स्वार्थ के लिये मुझे अपना कहने लगे, अपना हक जताने लगे।

संत ने डाकू से पूछा- बेटा! अब तुम ठीक हो। स्वस्थ अनुभव कर रहे हो या कुछ अस्वस्थता महसूस हो रही है?

डाकू ने कहा- अभी तक मैं रुग्ण था बीमार था। लेकिन अब मैं स्वस्थ हो चुका हूँ। अभी तक ये सारे पाप मैं करता रहा अपने परिवार की इच्छापूर्ति के लिये। इनकी खुशी के लिये अपने प्राणों को संकट में डालता रहा। क्योंकि मैं इनके मोह में पड़ा हुआ था, लेकिन आज मुझे बोध हो गया है कि जिनके लिये मैं अब तक सारे पाप करता रहा, इनमें से कोई भी अंत समय में मेरा साथ देने को तैयार नहीं होंगे।

उसने अपनी पत्नी से पूछा- अब तो मैं स्वस्थ हो गया हूँ। मैंने आज तक जितना पाप किया है क्या तू उसमें मेरी हिस्सेदार बनेगी?

पत्नी ने कहा- सुनिए जी! जब मैं छोटी थी न, तब जैन पाठशाला में जाती थी। और उस समय मैंने कवि मंगतराय जी की बारह भावना पढ़ी थी। जिसमें कहा था कि-

जन्मे मरे अकेला चेतन सुख - दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी।।

मैंने उस समय पढ़ा था, कि कोई किसी के पुण्य-पाप को नहीं भोगता। इसलिये मैं तुम्हारे कृत पापों में बिल्कुल भी हिस्सेदार नहीं हूँ। वे सब तो तुम्हें अकेले ही भोगने पड़ेंगे।

डाकू ने सुना। विचारने लगा अहो, मेरा इतना जीवन अपने परिवार के संचालन में निकल गया। परिवार की सुख समृद्धि के लिये पाप करते-करते व्यतीत हो गया। इनको खुश देखने

के लिये मैंने कितने जीवों को सताया? कितनों को लूटा? कितने मासूमों को मौत के घाट उतारा? ओह! मैंने कितना पाप कमाया।

धिक्कार है लानत है मुझ पर। अपने परिवार को सुख की नींद सुलाने के लिये मैंने अपना सुख चैन गँवा दिया। इसभव के साथ-साथ अपना परभव भी बिगाड़ लिया।

संत ने उसे संबोधन देते हुए कहा-

निभाते साथ कौन कितना, बंधु बांधव कुटुंब परिवार।
व्यर्थ कर आर्त्त-रौद्र परिणाम, हाय दुख सहे अनेकों बार।।

यह संसार बड़ा स्वार्थी है इस संसार में जब तक जीवों का स्वार्थ सधता है तब तक सब आपस में प्रीति दिखाते रहते हैं और जब स्वार्थ पूर्ति नहीं होती तब अपने भी परायों जैसा व्यवहार करने लग जाते हैं।

बंधुओ! यही इस संसार की वास्तविक दशा है यथार्थ स्वरूप है। अपने सुख के लिये हम जिस परिवार का सृजन करते हैं उसके प्रति मोह बुद्धि, ममत्व भाव रखते हैं वही हमारे संसार का सृजक है। हम अपने दुख का कारण पर को मान लेते हैं और अपने इन अज्ञान भावों को पहचान नहीं पाते। अगर ये अज्ञानभाव न हों तो कोई भी परवस्तु इस जीव के लिये फिर दुखी नहीं कर सकती। उसके संसार को नहीं बढ़ा सकती।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि यह जीव अनादि से आज तक इस संसार में भटक रहा है लेकिन मैं क्यों भटक रहा हूँ? मेरे इस भटकाव का आखिर कारण क्या है? वह इससे अनजान बना हुआ दुखों को झेलता आ रहा है।

पड़ा संसार कीच के बीच अनादि से चेतन भगवान।
सींचकर जनम-मरण की बेल, महादुःख पाया धर अज्ञान।।

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे राग, द्वेष, मोहरूप अज्ञान भावों में नहीं फँसना चाहता। वह उत्तम नरतन पाकर अपने जीवन को सुंदर बनाने का प्रयास करता है और रागी-मोही जीव क्षणभंगुर तन को पाकर उसी में मोहित हो जाता है। उसे चाहे जैसा शरीर मिला हो उसी को सजाने सँवारने

में लगा रहता है। मैं सबसे सुंदर दिखूँ। मैं अपने शरीर को सुंदर से सुंदर बना लूँ। इस प्रयास में लगा हुआ वह अनेकों पाप करता है। लेकिन सम्यग्दृष्टि जीव यह विचारता है कि-

जिसके शृंगारों में मेरा यह महँगा जीवन धुल जाता।
अत्यंत अशुचि जड़ काया से इस चेतन का कैसा नाता।।

रागी आइने में अपना रूप देख-देखकर खुश होता है और वैरागी आत्मा में परमात्म स्वरूप देख-देखकर खुश होता है आल्हादित होता है। रागी तन में चित्त लगाता है और वैरागी चेतन में चित्त रमाता है। पुरुषार्थ दोनों कर रहे हैं। कार्य दोनों कर रहे हैं। लेकिन एक पाप कमाता है। खोटी गतियों में जाता है। वहीं दूसरा धर्म प्रगटाता है और भगवान कहाता है।

संसारी जीवों का, रागी-मोही जीवों का प्रयास रहता है मैं अपने शरीर को सुंदर बना दूँ। अपने काले तन को हीरे सा चमका लूँ।

उसके मन में शरीर के प्रति इतनी आसक्ति क्यों होती है? क्योंकि वह इस शरीर के वास्तविक स्वरूप के चिंतन-मनन से रहित होता है। वह यह बात भूला हुआ है कि-

पड़ा संसार कीच के बीच अनादि से चेतन भगवान।
सींचकर जनम-मरण की बेल, महादुःख पाया धर अज्ञान।।

अहो! शरीर को सुंदर बनाने के लिये मूढ़ जीव अनेकों उपाय अपनाता है। आप देखिएगा, जितने भी सौंदर्य प्रसाधन के साधन आज मार्केट (Market) में उपलब्ध हैं वे सब हिंसक तरीके से पैदा हुए हैं। और किसी न किसी प्राणी का कोई न कोई अवयव उसमें अवश्य मिला होता है। आप सुबह उठते हैं लक्स (Lux) से नहाते हैं और भी अनेकों साबुन मार्केट (Market) में उपलब्ध हैं आप उस साबुन का उपयोग करते हो। किसलिए? हमारा शरीर स्वच्छ हो जाये इसलिये। एक तरफ हम शरीर को स्वच्छ निर्मल बनाने के प्रयास में निरंतर लगे रहते हैं और दूसरी तरफ भगवान के पास जाकर कहते हैं कि-

देह अति अशुचि अथिर अपवित्र, घिनावन इसमें न कुछ सार।
क्षीर सागर से करने शुद्ध, चला जो उसने मानी हार।।

जो ऐसा जानते हैं मानते हैं, वे जीव भगवान की भक्ति आराधन धार्मिक क्रियाओं के निमित्त तन की शुद्धि करके विवेकी पुण्यात्मा कहलाते हैं। और जो सतत् तन को निर्मल सुंदर बनाने के लिये स्नान करते हैं वे मूढ़ कहलाते हैं। क्रिया एक ही है। **ज्ञानी की स्नान क्रिया पुण्य बढ़ाती है और अज्ञानी की स्नान क्रिया पाप बढ़ाती है। ज्ञानी विवेकी जीव का स्नान कर्म निर्जरा में कारण बनता है और अज्ञानी मूढ़ जीव का स्नान कर्मबंध में कारण बनता है।** अधिकांश लोग स्नान करते हैं तन को स्वच्छ करने के लिये। उसके लिये वे विभिन्न उत्पादों का साबुन, शैम्पू (Shampoo) आदि का उपयोग करते हैं। शायद उन्हें पता नहीं होता कि उन साबुन आदि में किन-किन निर्दोष मासूम जीवों के शरीर से निकाली गई वसा मिली रहती है। आप सोचते हैं कि इनसे स्नान करके आप स्वच्छ हो गये। मंदिर जाने के योग्य हो गये। लेकिन ध्यान रहे, आप मंदिर जाने के योग्य नहीं हुये अपितु अयोग्य हो गये।

शुद्धि किससे होती है खून से अथवा जल से? अगर तुम्हारी देह में कोई फोड़ा हो जाये तो शरीर के स्वभाव का ज्ञान हो जाता है कि इस शरीर के अंदर क्या है? जुकाम हो जाये तो शरीर का स्वभाव प्रगट हो जाता है दोनों नासिका छिद्रों के माध्यम से। सुबह सोकर के उठो तो आँखों से शरीर का स्वभाव प्रगट हो जाता है। हम स्वयं अपने मुख से कहते हैं-

'नवद्वार बहें घिनकारी असि देह करें किम यारी'

शरीर के नौ द्वार होते हैं। इन नवद्वारों से और रोमकूपों से हमेशा अशुद्धि ही अशुद्धि स्रवित होती रहती है। शरीर के अंदर ऐसा कोई भी शुद्ध पदार्थ नहीं, जिसे छूने के बाद आप शुद्ध हो जायें। आप रास्ते से जा रहे हैं। शरीर मल रास्ते में पड़ा हो उस पर तुम्हारा पैर पड़ जाये तो तुम शुद्ध हो जाते हो कि अशुद्ध हो जाते हो? अशुद्ध हो जाते हो। क्यों? क्योंकि शरीर के अंदर जितने भी अवयव हैं वे सब देह को अशुद्ध करने वाले हैं। फिर तुरंत किससे धोते हो? जल से धोते हो। शुद्ध जल से अपनी शुद्धि करते हो।

विचार करिएगा, आप अपने शरीर को शुद्ध करने के लिये अलग-अलग किस्म की महँगी से महँगी हरप्रकार की वस्तु का उपयोग करते हो। **साबुन, शैम्पू (Shampoo) आदि उत्पाद शुद्ध भी हैं या नहीं इसका विचार किये बिना आप उनका उपयोग करने लगते हैं। अनेकों जानवरों की देह से निकली चर्बी आदि अवयव इनमें मिले रहते हैं। इन**

अशुद्ध पदार्थों से अपनी देह को स्नान करा देते हो। फिर कहाँ जाते हो ? जिनेन्द्र भगवान के मंदिर पूजा पाठ रचाने के लिये। अरे! इन अशुद्ध पदार्थों से शुद्धि होती है या अशुद्धि फैलती है। जिसे इस बात का विचार विवेक नहीं उसका पूजा करना ही निष्फल है। क्यों ? क्योंकि मंदिर जैसे पवित्र स्थान पर हम तन की शुद्धिपूर्वक अपने मन को शुद्ध-विशुद्ध बनाने हेतु जाते हैं। लेकिन इन हिंसक पदार्थों के उपयोग से हमारा तन-मन शुद्ध रह सकता है क्या? नहीं रह सकता। आचार्य भगवन् ऐसे प्राणियों को संबोधित करते हुए कहते हैं-

सर्वाशुचिनि निधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः।
शरीरस्य कृते मूढाः कुतः पापानि कुर्वते।।सर्वो.।।

अर्थात् हे अज्ञ प्राणी! समस्त अपवित्रता के भण्डार, कृतघ्न और विनश्वर शरीर के लिए तू इतना पाप क्यों करता है? अर्थात् मत कर।

देह की अशुचिता का जिन्हें ज्ञान हो जाता है भान हो जाता है वे शरीर से स्वतः ही विरक्त हो जाते हैं। और जिन्हें शरीर में शुचिता नजर आती है अशुचिता का बोध नहीं होता वे देह को सुंदर मानते हैं। अच्छा भला मानते हैं। देह के निमित्त से आत्मा में रागादि भाव को उत्पन्न कर संसार को बढ़ाते रहते हैं। ऐसे जीवों के लिये तो यही कहा जाता है कि-

'अशुचि तन में सब करते प्रीत, नहीं दिखते ज्ञायक भगवान।'

शरीर में कभी शुचिता हो ही नहीं सकती। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो शरीर को पवित्र कर सके। आप खूब बढ़िया शुद्ध काँच की तरह प्रासुक जल से स्नान कर लें। शरीर घंटे दो घंटे में ही अथवा भीषण गर्मी का समय है तो 10 मिनट के भीतर ही पुनः अशुचिता पैदा करना शुरु कर देता है। क्या हो गया? शरीर पसीना-पसीना हो गया। इस देह को इतना तो नहलाया। इतना तो शुद्ध किया लेकिन रहा मलिन का मलिन। भले ही एक क्षण पहले स्नान किया था पुनः एक लोटा जल अपने ऊपर और डाल दिया तो वह जल क्या शुद्ध रह पाता है? तुरंत ही अशुद्ध हो जाता है। किंतु रागी, मोही, अज्ञानी जीव को अशुचिता का ज्ञान नहीं रहता। वहीं सम्यग्दृष्टि जीव शरीर को स्वभाव से पहचानता है। वह जानता है कि-

केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मलजारी।।

हमारे आचार्य भगवंतों ने कहा है किसी भी वस्तु को देखो तो उसके स्वभाव से देखो। केवल आत्मा को ही स्वभाव से मत देखो। अरे आत्मा को भी स्वभाव से पहचानो लेकिन संसार, शरीर और भोगों को भी स्वभाव से पहचानो। अगर संसार का स्वभाव पहचान लिया कि संसार में जितने भी साथी हैं संबंधी हैं ये सब स्वारथ के हैं। जब तक तुम्हारे पास धन, सम्पत्ति, जायदाद है तब तक तो सब भाईसाहब! भाईसाहब! करते हैं और जब तुम्हारी जेब खाली हो जाये तो फिर कोई तुमसे भाईसाहब! कहेगा क्या? नहीं कहने आयेगा। क्यों? क्योंकि उसने देख लिया है कि अब इनके पास कुछ भी नहीं है। अब हमारा स्वार्थ इनसे सधनेवाला नहीं है।

चारुदत्त एक नगरसेठ का पुत्र था। बचपन से ही उसकी रुचि ज्ञान अध्ययन में विशेष थी। विषय भोगों के प्रति वह सदा उदासीन रहता था। उसके माता-पिता ने उसकी शादी यह सोचकर करवा दी कि पत्नी आ जायेगी तो स्वतः ही रुचि जागृत हो जायेगी। चारुदत्त का विवाह हुआ। पत्नी भी घर में आ गयी। किंतु उसका स्वभाव न बदला। वह अपनी पत्नी से भी विरक्त चित्त ही रहता था।

उसमें रागभाव उत्पन्न कराने के लिये परिवारजनों ने उसे वेश्या के यहाँ षड़यंत्रपूर्वक भेज दिया। जिससे उसे अपनी स्त्री के प्रति रागभाव हो जाये। किंतु वह कर्मोदय से वेश्या में ही रागी हो गया। वेश्या ने भी तब तक प्रेम दिखाया जब तक उसके पास खूब धन-सम्पदा, दौलत थी। जब उसने देख लिया कि अब इसकी सारी धन-संपदा नष्ट हो चुकी है। अब मुझे देने के लिये इसके पास कुछ भी नहीं है तो उस वेश्या की माँ ने चारुदत्त को विष्ठा घर में डलवा दिया।

इसलिये ध्यान रखना! तुम अपने घर के मुखिया तभी तक हो जब तक तुम्हारे पास धन है। और अगर तुम्हारे जेब का धन, तुम्हारे हाथ की चाबी दूसरे के हाथ में चली गई उस दिन तुम मुखिया नहीं रहोगे। उसी दिन से तुम मुखिया से दुखिया बन जाओगे।

कब तक हो मुखिया? जब तक तुम्हारे हाथ में तिजोरी की चाबी है। और जिस दिन वह चाबी दूसरे के हाथ की शोभा बन जायेगी, उस दिन से तुम्हारी हालत **'न घर की न घाट की'**, ऐसी हो जायेगी। इसलिये ऐसी परिस्थिति ही न बने समय रहते वह पुरुषार्थ कर लेना।

हम यह नहीं कह रहे कि तुम चाबी हाथ में पकड़े रहना। क्योंकि तुम इन मामलों में बहुत समझदार हो। हम तुम्हें यह समझा रहे हैं कि तुम कब तक इस चाबी को पकड़े रहोगे? तुम

चाहो अथवा न चाहो एक न एक दिन वह अवश्य छूट जायेगी अथवा छुड़ा ली जायेगी। चाहे बच्चे छुड़ायें या मृत्यु। **बच्चे तुम्हारे हाथ की चाबी छुड़ायें, इससे अच्छा है कि अपने हाथ से ही वह बच्चों के हाथ में दे देना**। उनसे कहना कि अब तो मैं अपनी आत्मा का कल्याण करूँगा।

मैंने जीवनभर सब कुछ तुम्हारे लिये किया और अब मैं अपनी आत्मा के लिये कुछ समय दूँगा। सुबह का भूला अगर साँझ को घर लौट आये तो वह भूला नहीं कहलाता। '**जब जागो तभी सबेरा**' इस उक्ति को चरितार्थ कर लेना। जिस दिगंबर वेश में तुम पैदा हुए थे अंत समय में यदि अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार से दिगंबर बन सके तो समझना तुमने अपनी पर्याय को सार्थक कर लिया।

'अन्त भला सो सब भला'

जीवन जीते हुए तुमने जो अपराध किया है। दिगंबरत्व की साधना से वह सारा अपराध धुल जायेगा, समाप्त हो जायेगा। इसलिये बंधुओ। 'जब तक हाथ में चाबी है तब तक ही हम घर के मुखिया हैं' मेरी ऐसी बात सुन तुम मरते-मरते भी चाबी अपने हाथ में रखे रहो, ऐसा मत समझ लेना। मैं तो यह कह रहा हूँ कि एक सीमा, एक समय के बाद अपने जीवन में मोड़ लाइये। अपने जीवन को सँवारने का प्रयास यदि होगा तो अवश्य ही तुम अपनी आत्मा के लिये कुछ कर सकोगे।

अन्य कोई तो क्या, संश्लेष संबंध को प्राप्त यह तुम्हारा शरीर भी अंत समय में तुम्हारा साथ छोड़ देता है। फिर भी आदमी पूरे जीवन इस शरीर की खुशामदी में लगा रहता है। दिन रात किसके लिये काम करता है? शरीर के लिये। सुबह उठता है शौच के लिये जाता है उस समय आदमी शूद्र हो जाता है। जो काम शूद्रजन करते हैं वही काम तुम्हें शरीर के लिये करना पड़ता है सुबह से रात तक शरीर की खुशामदी। गंदा हो रहा है नहला दो। कीमती सुंदर वस्त्र-आभूषण पहना दो। प्यास लग आयी, पानी पिला दो। भूख लग आयी, भोजन करा दो। थक गया है आराम करा दो। गर्मी लग रही है कूलर में बिठा दो। कूलर (Cooler) में भी गर्मी लग रही है ए.सी. (A.C.) में बिठा दो। हे भगवान्! जो कुछ हो रहा है सब शरीर के लिये। रोगी हो गया डॉक्टर (Doctor) को दिखा दो। किसको? शरीर को। जो कुछ भी कर रहे सब शरीर के लिये।

जिस दिन इस शरीर से वियोग का समय यानि मृत्यु का काल आयेगा, उस समय तुम देह से कहना, मैंने जीवन भर तुम्हारा साथ दिया है तुम भी मेरा साथ निभाओ, मेरे साथ चलो। तब शरीर क्या, एक परमाणु भी तुम्हारा साथ नहीं देगा।

आचार्य भगवन् कहते हैं इस शरीर के स्वभाव को पहचानो।

पोषत तो दुख दोष करे अति शोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वरूप बराबर मूरख प्रीति बढ़ावै।।

'पोषत तो दुख दोष करे' अर्थात् इस शरीर का जितना-जितना पोषण किया जाता है यह उतने ही दोषों को पैदा करता है। दुखों को पैदा करता है। **'शोषत सुख उपजावे'** और शोषत माने शरीर को उसके स्वभाव से पहचानकर उससे अपनी रागदृष्टि हटा लेना, उसके प्रति यथार्थ सम्यग्दृष्टि रखना, हमारे लिये सुख में निमित्त है कारण है।

ध्यान रखना! हमें शरीर का बुरा नहीं करना, शोषण नहीं करना। केवल स्वभाव से पहचानकर उससे अपनी दृष्टि हटाना है। हम यह नहीं कह रहे कि तुम आज से भोजन करना बंद कर दो। शरीर को भूखा रखो। नहीं, आज तक हम शरीर के दास बने रहे लेकिन अब इसे दास बनाकर रखेंगे। मैं इसे भोजन कराऊँगा लेकिन उतना ही इससे काम भी लूँगा। ऐसा नहीं कि इसे भोजन तो कराते रहे 24 घंटे और काम न लें आधा घंटे। तुम नौकर को जितनी सैलरी (Salary) देते हो उससे ज्यादा उससे अपना काम लेने का प्रयास करते हो।

ऐसे ही शरीर को तुम जितना भोजन कराओ उतना ही उससे काम भी लो। कौन सा काम? संसार बढ़ानेवाला कि घटानेवाला? संसार घटानेवाला।

'दुर्जन देह स्वरूप बराबर'

जिसप्रकार दुर्जन मनुष्य के लिये कितना भी अच्छा करो, उपकार करो तो भी दुष्टता नहीं छोड़ता। वह जब भी करेगा अपकार ही करेगा। सर्प को कितना भी दूध पिलाओ वह विष ही उगलेगा। इसीप्रकार तुम देह को चाहे कितना भी खिलाओ, पिलाओ, सँवारो, शृंगारो, यह देह दुःख ही पैदा करेगा। तुम अगर इससे कहो कि मुझे सामायिक करनी है। स्वाध्याय, पूजन-पाठ करना है तो ये कहेगा मुझे तो नींद आ रही है। मुझे सर्दी लग रही है। गर्मी लग रही है। भूख

प्यास लग रही है। स्वास्थ्य ठीक नहीं है। तुम शरीर से कहते हो कि सामायिक करनी है। एक घंटे स्थिर आसन से बैठना है तो शरीर क्या कहता है, थक गया हूँ, पहले थोड़ा आराम कर लूँ। और तुम भी उसकी बातों में आ गये। चलो थोड़ा सा आराम करा देते हैं सोये, तो सोते ही रह गये। इसलिये कहते हैं–

'मूरख प्रीति बढ़ावै।'

मूर्खजन, अज्ञानीजन ही इस देह से प्रीति करते हैं। आसक्ति, राग बढ़ाते हैं। वहीं ज्ञानी, धर्मात्मा, प्रबुद्धजन शरीर को भोजन तो देते हैं लेकिन उससे 24 घंटे काम भी लेते हैं। इसलिये शरीर को स्वभाव से पहचानो। सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि स्वभाव पर रहती है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि संसार, शरीर और भोगों के यथार्थस्वरूप पर रहती है भोगों का स्वरूप क्या है? तो कहते हैं–

भोग सेवन में लगते इष्ट, किंतु परिपाक समय विषघोल।

भोग भोगते समय तो बहुत मीठे लगते हैं। परन्तु भोग का फल जीव को दुख, पीड़ा, कष्ट, वेदना और पश्चाताप के अलावा कुछ नहीं मिलता। यह भोगों का स्वभाव है। भोग भोगते समय तो अमृत जैसे लगते हैं किंतु इनका फल भोगते समय ग्लानि पश्चाताप ही पैदा होता है। इसके अलावा और कुछ नहीं मिलता।

किसी आदमी को भूख लगी थी। भोज्य पदार्थों का सेवन कर लिया। क्या भोजन से शांति मिली? यदि उस व्यक्ति की भूख चार रोटियों से शांत होती है तो उसे आठ रोटी खिला दो। शांति मिलेगी या अशांति। भूख से ज्यादा खाना शुरु कर दिया, फिर तो हॉस्पिटल (Hospital) में जाकर ही शांति मिलेगी। इसी प्रकार आवश्यकता से अधिक, पदार्थों का भोग-उपभोग व संचय दुख का ही कारण होता है। सच्ची सुख-शांति तो आत्मा को आत्मा के भोग से ही मिलेगी। जड़ द्रव्य क्षणिक शांति और सुखाभास मात्र ही देते हैं। अनादि से भ्रमित यह जीव इस बात को कहाँ जान पाता है–

'मोह की होती जब जब जीत, चेतना जब जब भी हारी।
लगा करती है सबको हाय, भोग कुसुमावली तब प्यारी।।'

आचार्य भगवन् कहते हैं कि इन भोगों को स्वभाव से पहचानो। ये भोग राग पैदा करते हैं। मोह पैदा करते हैं। और रागी, मोही, मूढ़ यह जीव कभी-भी इनके जाल से निकल नहीं पाता। अपने आप को निकालने में असमर्थ पाता है। क्यों? क्योंकि भोगों ने अंदर तीव्र राग और मोह पैदा कर दिया है, जिस कारण वह अपने आप को उनसे छुड़ाने में अशक्य महसूस करता है।

सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि भोगों का त्यागी नहीं होता लेकिन उनसे विरक्त भाव रहता है। भोगों के त्यागी तो जब होंगे तब होंगे। सर्वप्रथम उनके प्रति विरक्ति भावना लानी होगी।

अब प्रश्न उठता है कि विरक्ति किसे कहते हैं? वैराग्य का क्या मतलब है? जिन भोगों को देखकर आत्मा में रागभाग जाग्रत होता था, आसक्ति बढ़ती थी, उन भोगों के सामने उपस्थित रहने पर भी रागभाव का पैदा न होना वैराग्यभाव है। सम्यग्दृष्टि जीव की आत्मा में ही यह वैराग्य भाव पैदा होता है। और वह धीरे-धीरे उन संसार, शरीर और भोगों के त्याग की भावना रखता है कि मैं कब इनका त्यागी बन जाऊँ। अहो! वैराग्य भाव से युक्त होकर भी भोगों का त्याग नहीं कर पा रहा। इस बात का उसे अंतरंग में बड़ा खेद रहता है।

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव ने अपनी आत्मा को राग-द्वेष से छूटने का उपाय बताया और समझाया, अहो आत्मन्! जब तक यह जीव इन अपराधों को करता रहेगा तब तक चारों गतियों के दुखों को भोगता रहेगा। अहो! यह जीव मोह में पड़कर भूल ही जाता है कि अपने किये कर्मों का फल उसे भोगना ही होगा। इसलिए ज्ञानी गुरु उसे पल-पल समझाते हैं-

मदहोश अरे मत हो, कल तुझको जाना है।
शुभ अशुभ कर्म का फल, कल तुझको पाना है।।आ. विमर्शसागर।।

इस जीव को प्राण वियोग के समय ही इतना कष्ट, दुख होता है। फिर मरकर दुर्गति में चला गया तो कितना दुख होगा? लेकिन यह जीव इस सत्य को पहचान नहीं पाता इसलिये मदहोश होकर मोह का अनुभव करता हुआ परपदार्थों में ही आसक्त बना रहता है। न तो संसार के स्वभाव को पहचान पाता, न शरीर के स्वभाव को, न ही भोगों के स्वरूप को। उन्हीं में फँसा हुआ मृत्यु को पाता है।

बंधुओ! जागने का प्रयास करना। अनादि का यह तुम्हारा अपराध छूट सके। जितना सम्पक् पुरुषार्थ बन सके उतना करना। दृष्टि को समीचीन करना कि ये संसार के संबंध स्वार्थ के संबंध हैं। **शरीर का जो राग है वह अशुचिता का राग है**। और भोग किंपाक फल के समान हैं। जैसे किंपाक विषफल की सेवन करते समय तो मिठास अनुभव आती है लेकिन उसमें छिपा हुआ विष मृत्यु का, अहित का ही कारण होता है।

इसलिये बंधुओ! अपने जीवन में सम्यग्दृष्टि बनने का प्रयास करना। आत्मा में संसार, शरीर और भोग के प्रति जो वैराग्य-किरण है उसे पहचानने का प्रयास करना। अगर ये परिणाम आपकी आत्मा में उत्पन्न होते हैं तो आप में सम्यक्त्व पैदा हुआ है और यदि ऐसे परिणाम आत्मा में जागृत नहीं होते, आसक्ति पैदा होती है तो अभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई है। ऐसा अपने ज्ञान से अवश्य निर्णय करना।

स्वारथ का संसार कहा, तन को अशुचि असार कहा।
भोग सदा दुख के कारण, चिंतन यह सुविचार कहा।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, वैराग्य दिखाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

(सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?)

भयवसणमलविवज्जिद, संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

* अन्वयार्थ *

(**दंसणसुद्धो**) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/सम्यग्दृष्टि (**हु**) वस्तुत: (**भय-वसण-मल-विवज्जिद**) भय, व्यसन और मलों से रहित होता है (**संसार-सरीर-भोग-णिव्विणो**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है (**अट्ठगुणंग-समग्गो**) अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण (**पंचगुरुभत्तो**) पंचगुरु, पंच परमेष्ठी का भक्त होता है।

अर्थ- निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय ही सात भय, सात व्यसन और पच्चीस मल दोषों से रहित, संसार, शरीर व भोगों से विरक्त तथा नि:शंकितादि अष्टांग सम्यक्त्व के गुणों से युक्त और पंचपरमेष्ठी का भक्त होता है।

गाथा - 5
(चतुर्थ प्रवचन)

●

पंचगुरु का निंदक मिथ्यादृष्टि है

17.08.2013

भिण्ड
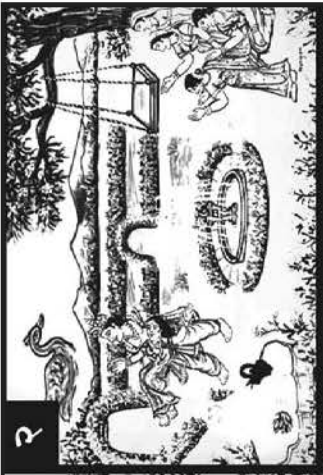
अष्टांग सम्यग्दर्शन भव छेदन का कारण– (1) निःशंकित अंग और अंजनचोर (2) निःकांक्षित अंग और अनंतमती (3) निर्विचिकित्सा अंग और उद्यायन राजा (4) अमूढ़दृष्टि अंग और रेवती रानी (5) उपगूहन अंग और जिनेन्द्र भक्त सेठ (6) स्थितिकरण अंग और वारिषेण मुनि (7) वात्सल्य अंग और विष्णुकुमार मुनि (8) प्रभावना अंग और वज्रकुमार मुनि

15

रयणोदय

पंच महागुरु को वंदन, चरण धूलि इनकी चंदन।
निःशंकित वसु अंगों का, करो भाव से अभिनंदन।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, भक्ति दिखलाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

हर जीव दुःखों से मुक्त होना चाहता है। दुःख मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है रत्नत्रय धर्म। जब रत्नत्रय धर्म आत्मा में प्रकट होता है तब आत्मा समस्त दुःखों से छूटकर अनंत सुख को प्राप्त कर लेता है। फिर उस आत्मा के लिये दुःख कभी छू नहीं पाता, स्पर्श नहीं कर पाता।

रत्नत्रय में प्रथम रत्न है सम्यग्दर्शन। जब तक यह जीवात्मा सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता तब तक उसका हित नहीं होता। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव 'श्री रयणसार जी' ग्रंथ के माध्यम से भव्य जीवों के लिये धर्मरूपी अमृत परोस रहे हैं। जिन्हें अपनी आत्मा का हित, कल्याण करना है ऐसे भव्य जीवों के लिये भगवान् कुंदकुंददेव की वाणी अमृत जैसी प्रतीत होती है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव सम्यग्दृष्टि का स्वरूप निरूपित करते हुए कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव भय से रहित होता है। व्यसनों से विरक्त होता है। मूढ़ताओं से दूर रहता है। षट्‌अनायतन से मुक्त होता है। आठ मदों को नहीं करता है। निःशंकित आदि आठ गुणों का पालन करता है। पंचमहागुरु का परम भक्त होता है। बहिरंग में पंचपरमेष्ठी और अन्तरंग में निज शुद्धात्मा की रुचि रखनेवाला होता है। इसके अलावा उसकी अन्य कहीं कोई रुचि नहीं होती।

किसी जिज्ञासु ने पूछा- भगवन्! आत्मा श्रेष्ठ है या परमात्मा? हमें आत्मा का आश्रय करना चाहिये या परमात्मा का? हमें आत्मा की भक्ति करनी चाहिये या परमात्मा की? दोनों में श्रेष्ठ कौन है? आश्रयकारी कौन है?

भो भव्य आत्मन्! जब तक इस जीवात्मा के लिये, आत्मस्वरूप में लीनता प्राप्त नहीं होती, तब तक परमात्मा की भक्ति श्रेष्ठ है सर्वश्रेष्ठ है। और जब परमात्मा का आश्रयकर उनकी भक्तिकर अपनी कषायों को मंदकर इतना योग्य हो जाता है कि आत्मा में लीनता की स्थिति बनने लग जाये तो फिर आत्मा श्रेष्ठ है। आत्मा ही आश्रयकारी है। क्यों? क्योंकि निज शुद्धात्मा के आश्रय से ही कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हो पाती है।

इसलिये बंधुओ! जिन्होंने अपनी शुद्धात्मा का आश्रयकर परमात्म पद को प्राप्त किया है ऐसे पंचमहागुरु हमारे लिये परम आदरणीय, भक्ति करने योग्य, वंदनीय, अर्चनीय, अभिनंदनीय होते हैं। हमें पंचमहागुरु की भक्ति में हमेशा तन्मय लीन रहना चाहिये। उनके प्रति सच्ची श्रद्धा, भक्ति, आस्था रखनी चाहिये।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस पाँचवीं गाथा में यही बात बताते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव पंचमहागुरु का परम भक्त होता है पंचमहागुरु यानि अरिहंत परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, आचार्य

परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी और साधु परमेष्ठी। इन पाँचों ही परमेष्ठियों में वह परम भक्ति रखता है। परमभक्ति यानि उनके गुणों में अनुरक्त रहता है। गुणानुरागी होता है। और यह भावना करता है कि हे भगवन्! मेरी आत्मा में भी ऐसे गुणों की अभिव्यक्ति हो सके। आप जैसे गुण मेरी आत्मा में भी प्रगट हों। मैं भी आपकी तरह परमात्मा बन सकूँ। अरिहंतादिक पंचमहागुरु जैसे गुणों की प्राप्ति हेतु भक्ति करता हुआ वह सम्यग्दृष्टि जीव अपनी आत्मा में अपने सम्यक् पुरुषार्थ से एक दिन उन गुणों को प्रगट कर ही लेता है। क्यों? क्योंकि **जलता हुआ दीप ही बुझे हुए दीपों को जलने की प्रेरणा प्रदान करता है।**

एक समय ऐसा था, जब घरों में विद्युत नहीं थी। लोग रोशनी के लिये घरों में दीप जलाते थे। अगर किसी गाँव में एक घर में विद्युत का कनेक्शन (Connection) हो गया तो अन्य लोगों के मन में भी यह भावना आने लगती कि विद्युत कनेक्शन (Connection) अपने घर में भी होना चाहिये। एक समय ऐसा था जब टी.वी. (T.V.) नया-नया आया था। धीरे-धीरे उसका-प्रचार प्रसार हुआ। एक घर में टी.वी. (T.V.) आ गया तो जितने भी पड़ौसी थे जितने भी लोग टी.वी. (T.V.) देखने आये, उनको प्रेरणा मिली कि हमारे घर में भी टी.वी. (T.V.) होना चाहिये। पहले लोगों के पास किसी भी प्रकार के कोई वाहन नहीं थे। बहुत ज्यादा हुआ तो बैलगाड़ी से यात्रा किया करते थे, धीरे-धीरे साइकिल (Cycle) आई। और यदि किसी नगर में किसी गाँव के एक व्यक्ति के पास साइकिल (Cycle) आ गई तो अनेकों लोग उसकी साइकिल (Cycle) देखने के लिये आ जाते थे, कि देखें तो भैया कैसी होती है साइकिल (Cycle)। और उस साइकिल (Cycle) की गुणवत्ता देखकर वे भावना करने लग जाते कि हमारे घर में भी साइकिल (Cycle) होना चाहिये। इस प्रकार धीरे-धीरे साइकिल फिर स्कूटर (Scooter), मोटरसाइकिल (Motorcycle) और अब फोर व्हीलर (Four Wheeler) कार। लेकिन ये आयी कैसे? धीरे-धीरे। एक ने देखा फलाने के यहाँ स्कूटर (Scooter) है और हमारे यहाँ साइकिल भी नहीं है। अब तो हम को भी स्कूटर (Scooter) लाना है और धीरे-धीरे व्यक्ति ने इतनी सामर्थ्य पैदा की, पैसे को इकट्ठा किया और स्कूटर (Scooter) ले आया। अब उसको लगा आनंद आ गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि अगर दूसरे के घर में कोई ऐसी वस्तु आ जाती है तो अन्य लोगों के लिये प्रेरणा मिलती है भावना जागती है कि यह वस्तु हमारे घर में भी होना चाहिये।

ऐसे ही इस संसार में, जगत में, लोक में पंचपरमेष्ठी हैं। जिन्होंने अपनी आत्मा में गुणों को प्रगट कर लिया है। आचार्य, उपाध्याय, साधु ये अरिहंत-सिद्ध जैसे गुणों को प्रगट करना चाहते हैं, इसलिये अपनी आत्मा में रत्नत्रय गुण प्रगट किया है। जिसने आज तक अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी के स्वरूप को नहीं जाना। कदाचित् उनका पुण्ययोग आया और उनकी आत्मा में ऐसा भाव पैदा हुआ कि मैं भी भगवान बनूँ। यदि वे पंचपरमेष्ठी के निकट पहुँचे तो यही भावना भायेंगे, जो इनके पास है हमारे पास नहीं है, मैं भी वह गुण अपनी आत्मा में प्रगट करूँ। यह भावना उन भव्यात्माओं के अंदर जरूर जागृत हो जाती है। धीरे-धीरे पुरुषार्थ करते हुए वे जीव पंचमहागुरु की भक्ति-गुणाराधना करते हुए इतने सामर्थ्यवान हो जाते हैं कि आत्मा में पंचपरमेष्ठी के समान गुणों को प्रगट कर लेते हैं।

इसलिये बंधुओ! सम्यग्दृष्टि जीव पंचमहागुरु का परम भक्त होता है। उनके गुणों में अनुरक्त होकर निरंतर उनका गुणानुवाद किया करता है। कभी उनकी निंदा नहीं करता है।

पंचमहागुरु की निंदा कौन करता है ? जिनागम कहता है पंचमहागुरु की निंदा नियम से मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है। यदि कोई जीव पंचमहागुरु की निंदा कर रहा है तो वह उस समय मिथ्यादृष्टि है। क्यों? क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि गुणों पर रहती है अवगुणों पर नहीं। कदाचित् अवगुण पर दृष्टि चली भी जाये तो वह ऐसी भावना करता है कि यह अवगुण दूर कैसे हो? वह भलाई तो सोचता है लेकिन निंदा-बुराई नहीं करता। क्यों? क्योंकि वह सम्यक्त्वाचरण का पालन करता है। जैसा स्वरूप परमात्मा का है, द्रव्यदृष्टि से वैसा ही स्वरूप हर आत्मा का है। वह सम्यग्दृष्टि जीव इस बात का श्रद्धान करता है। और मानता है कि किसी भी जीव की निंदा द्रव्यदृष्टि से परमात्मा की निंदा है। इसलिये मैं किसी की निंदा करूँगा तो परमात्मा की ही निंदा करूँगा।

उसकी दृष्टि इतनी निर्मल, शुद्ध, निर्दोष हो जाती है कि वह दूसरों के गुणों की व्याख्या तो करता है लेकिन अवगुणों की चर्चा नहीं करता। वह सम्यग्दृष्टि जीव गुणानुरागी होता है।

पंचमहागुरुओं में परमभक्ति रखता है। आत्मा के हित में वह तत्पर रहता है। पंचपरमेष्ठी के अलावा वह किसी अन्य को परमात्मा की मान्यता नहीं देता, स्वीकार ही नहीं करता।

आपको शायद पता हो, सुग्रीव का बड़ा भाई था बाली। वह एक बहुत बड़ा प्रतापी राजा था। बलवान, धर्मात्मा और चरमशरीरी था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता लिया हुआ नियम था कि मैं पंचपरमेष्ठी के अलावा और किसी को भी नमन-वंदन नहीं करूँगा। यह उसका नियम था।

एक बार रावण ने बाली से उसकी बहन की याचना की। रावण ने संदेशा भेजा कि मैं तुम्हारी बहन से शादी करना चाहता हूँ। रावण भी उस समय का एक बहुत बड़ा राजा था। त्रिखण्डाधिपति था। तीन खण्ड के सम्राट उसकी आज्ञा-आदेश मानते थे पालन करते थे। जब बाली के पास यह समाचार पहुँचा तो बाली ने मन ही मन विचार किया कि मैं चाहूँ तो रावण को जीत लूँ। क्योंकि बाली बहुत बलवान और चरमशरीरी था। फिर बाली ने सोचा रावण के साथ बैर बाँधना व्यर्थ ही है। यदि मैं रावण को अपनी बहन देता हूँ तो मुझे रावण के लिये नमस्कार करना पड़ेगा, और मेरा नियम है कि मैं पंचपरमेष्ठी के अलावा पंचमहागुरु के अलावा किसी को भी नमस्कार नहीं करूँगा।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस पाँचवीं गाथा में यही बात बता रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि पंचमहागुरु का भक्त होता है। और इस भक्ति का कारण है कि वे पंचगुरु मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग के फल को प्राप्त हुए हैं उनका अनुसरण कर वह **सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्ग और मार्ग के फल मोक्ष को, निर्वाण को प्राप्त करना चाहता है। इसलिये वह इस व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग का अनुरागी होता है।** बाली ने समाचार भेज दिया कि मैं तुम्हें अपनी बहन नहीं दे सकता।

रावण क्रोधित हो उठा। उसने आवेश में आकर तुरंत ही बाली के राज्य पर चढ़ाई करने का विचार किया। बाली ने जब यह सुना तो सोच लिया कि देख लूँगा रावण के बल को। सच बात तो यह है कि रावण और बालि में अगर युद्ध हो भी जाता तो न रावण की मृत्यु होती और न बालि की। क्योंकि यह नियम है प्रतिनारायण हमेशा नारायण के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है। और चरमशरीरी के लिये कोई मारनेवाला है ही नहीं इस धरती पर।

लेकिन बालि बुद्धिमान था। उसने सोचा–न मेरा कुछ बिगड़ेगा और न रावण का, व्यर्थ में ही सैनिक मारे जायेंगे। इससे अच्छा यह है कि मैं इस राज्य को अपने छोटे भाई सुग्रीव को सौंपकर निर्ग्रंथ मुनिदीक्षा अंगीकार करूँ।

बंधुओ! **सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा मोक्षमार्ग का विचार करता है। मोक्षमार्ग सारे संकटों, विपदाओं, कष्टों से बचने का मार्ग।** बालि ने छोटे भाई सुग्रीव को बुलाया और राज्यभार सौंप दिया, कहा–अब तुम जानो, तुम समझो रावण को बहन देना है या नहीं। अब मैं अपनी आत्मा के हित के लिये सच्चे मार्ग, मोक्षमार्ग को अंगीकार करता हूँ।

सुग्रीव ने बाली को बहुत रोका, बहुत समझाया, लेकिन बाली ने एक बात न मानी। उसने कहा- अब मैं अपने नियम की रक्षा करना चाहता हूँ। व्यर्थ ही अपने आश्रित किसी भी सैनिक को प्राणहीन होते नहीं देखना चाहता। व्यर्थ में अनेकों सैनिक मारे जायेंगे। अनेकों स्त्रियाँ विधवा हो जायेंगी। अनेकों माताएँ पुत्रहीन हो जायेंगी। इससे अच्छा है कि मैं सच्चेमार्ग निर्वाणमार्ग की ओर कदम बढ़ाकर अपना कल्याण करूँ।

बाली सच्चा सम्यग्दृष्टि था। पंचमहागुरु के अलावा अन्य किसी की वंदना नहीं करता था। यहाँ तक कि वह अपने बहनोई के सामने नतमस्तक नहीं होना चाहता था, इसलिये उसने वैराग्य मार्ग को स्वीकार कर लिया।

बंधुओ! इसे कहते हैं निर्दोष सम्यग्दृष्टि जीव। आप यदि सम्यग्दर्शन को प्राप्तकर भी लें तो भी लोकाचार के वशीभूत होकर अपने दामाद के लिये, बहनोई के लिये नमस्कार करते कि नहीं करते? ये लोकाचार है।

अहो! जब सम्यग्दृष्टि जीव धीरे–धीरे इस लोकाचार से भी विरक्त हो जाता है। फिर वह अन्य देवी–देवताओं के लिये नमस्कार कैसे कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंदेव कह रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव पंचमहागुरु का भक्त होता है। इनके अलावा किसी अन्य को प्रणाम भी नहीं करता। पंचमहागुरु पर श्रद्धा रखनेवाला उनके अलावा अन्यत्र किसी को नमस्कार न करनेवाला व्यवहार सम्यग्दृष्टि जीव होता है। सच्चे व्यवहार सम्यग्दृष्टि ही बन जाओ। जो प्रभु के चरणों में यह भावना करता है कि–

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्, यावन् निर्वाण सम्प्राप्ति।।

'**तव पादौ मम हृदये**' हे पंचमहागुरु भगवन्! आपके द्वय चरण मेरे हृदय में रहें और '**मम हृदयं तव पदद्वये लीनं**' और मेरा हृदय हमेशा आपके चरणों में लीन रहे। कब तक? '**यावन् निर्वाण सम्प्राप्ति**' जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो जाती। '**तावद**' तब तक।

इसलिये परमात्मा आश्रयकारी है या आत्मा? बंधुओ! यह ध्यान रखना कि परमात्मा भी आश्रयकारी है और आत्मा भी। जब तक कषायें मंद नहीं पड़ जाती और आत्मा के आश्रय की योग्यता नहीं बन पाती, तब तक परमात्मा आश्रयकारी होता है। क्योंकि उनके आश्रय से ही स्वाश्रय की प्रेरणा मिलती है। हे भगवन्! आप जैसे गुणों को मुझे अपनी आत्मा में प्रगट करना है।

हमारा आत्मा, परमात्मा के वैभव, परमात्मा की शक्ति, परमात्मा के गुणों से सम्पन्न है। हमें आत्मा की वह श्रद्धा हो जिसमें परमात्मा की शक्ति समायी हुई है।

ध्यान रखना, भगवान् महावीर की आत्मा में जो परमात्म शक्ति है वह उनकी है। किसी दूसरे की शक्ति हमारी आत्मा में नहीं आ सकती। हमारी आत्मा में स्वयं परमात्मा शक्ति विद्यमान है उसे प्रगट मात्र करना है। सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा की श्रद्धा करता है और परमात्मा की सच्ची भक्ति रखता है लेकिन पंचमहागुरु की कभी निंदा, अविनय नहीं करता। **जिनधर्म न निंदा सिखाता है न निंदनीय आचरण।**

जिनधर्म सिखाता है गुणों का आश्रय करो, गुणीजनों का आश्रय करो, सत्संग करो। लेकिन कभी भी इनकी निंदा मत करो। क्यों? क्योंकि आचार्य भगवन् कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव निःशंकित आदि आठ अंगों से युक्त होता है।

पहला है निःशंकित अंग, अर्थात् शंका न करना। किसमें?

'जिनवच में शंका न धार'

सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान, उनके वचनों के प्रति कभी शंका नहीं करता। क्योंकि समवशरण सभा में तीर्थंकर भगवान ने ही आत्मा-परमात्मा का स्वरूप बताया है और यदि

भगवान जिनेन्द्र पर शंका करें, उन पर श्रद्धान न करें। तो क्या वह आत्मा का श्रद्धान कर पायेगा? नहीं कर पायेगा।

इसलिये निःशंकित अंग है–

इदमेवे - दृशमेव तत्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पाय-साम्भोवत्, सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ।।11 ।।

जिनेन्द्र भगवान ने जो मोक्ष का स्वरूप कहा है धर्म का स्वरूप कहा है वह वैसा ही है न अन्य है न अन्य प्रकार से है, ऐसी तलवार की धार पर चढ़े हुए पानी के समान अकाट्य श्रद्धा का होना निःशंकित अंग है। इसलिये सन्मार्ग में, धर्ममार्ग में, मोक्षमार्ग में कभी शंका नहीं करना चाहिये।

भगवान की भक्ति हम बहुत समय से कर रहे लेकिन कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं हो रही ऐसा परिणाम जिसके अंदर है उसके अंदर अभी निःशंकितपना नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता कि आप पानी भी पीते रहें और प्यास भी न बुझे। ऐसा कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता। क्योंकि जल का स्वभाव है शीतलता देना। प्यास जब भी बुझेगी जल से ही बुझेगी। प्यास को बुझाना यह उसका स्वभाव है।

इसी प्रकार आप जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करें और आपके पापकर्म अशुभकर्म निर्जरित न हों, ये हो ही नहीं सकता। अपने अंदर अभी निःशंकितपना आया नहीं है। इसकारण शंका का भाव बैठा हुआ है। कोई व्यक्ति अपने पापकर्म से पीड़ित है, दुखी है, क्लेशित है किन्हीं मुनिराज के पास पहुँचकर कहता है महाराज श्री! कोई मंत्र दे दो। मैं बहुत दुःखी हूँ, मुनिराज ने कहा–तुम णमोकार मंत्र की जाप किया करो।

णमोकार मंत्र, ये तो हम 15 साल से जप रहे हैं महाराज! कोई और मंत्र दे दो। अब सोचो, जिस जीवात्मा को णमोकार मंत्र की ही श्रद्धा नहीं है कहता है–णमोकार मंत्र तो हम 15 साल से जप रहे हैं उससे कुछ नहीं हुआ आप कोई दूसरा मंत्र दे दो। वह नहीं जानता कि जितने भी मंत्र हैं वे सब णमोकार मंत्र से ही निकले हैं। किसी के पास कुँआ हो और उसी कुँए से नल

की लाइन निकली हो। कुँआ छोड़ नल के पास जाकर कहे कि हमें पानी दे दो। अरे नल में भी तो कूप से ही पानी आ रहा है। इसी तरह जितने भी मंत्र हैं वे सब णमोकार महामंत्र से निकले हुए हैं।

यदि आपकी श्रद्धा सच्ची नहीं है तो आप कोई भी मंत्र का जाप कर लें, आपकी आत्मा का भला होनेवाला नहीं है। दु:ख कष्ट दूर होनेवाला नहीं है।

सच्ची श्रद्धा के साथ नि:शंकित भाव से णमोकार मंत्र का जाप करोगे तो आपका दुख, कष्ट अवश्य दूर होगा।

आप लोगों ने अंजनचोर का नाम तो सुना ही होगा। अंजन चोर ने महामंत्र णमोकार पढ़ा। कैसे पढ़ा था?-

आणम् ताणम् कछु न जाणम् सेठ वचन प्रमाणम्।।

अंजनचोर राजमहल से चोरी कर भागते-भागते एक जंगल में पहुँचा। पीछे सैनिक पड़े हुए थे। तभी अंजन की दृष्टि वृक्ष के पास खड़े सेठ पर पड़ी जो कि किसी विद्या को सिद्ध करने के उद्देश्य से वृक्ष पर टँगे सींके पर चढ़ने का प्रयास करता और लौट आता। अंजन ने सेठ से पूछा-भो बंधु! तुम यह क्या कर रहे हो? सेठ बोला- मैं आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करने आया हूँ। अंजन ने कहा- लेकिन तुम ये बार-बार क्यों उतर-चढ़ रहे हो? तुम ऊपर चढ़ते हो उतरते हो ये कौन सा कार्यक्रम है? सेठ बोला-मैं सोच रहा हूँ यदि जिनदत्त सेठ के कहे अनुसार मैं कार्य करूँ और विद्या सिद्ध न हुई। और मैं नीचे गड़े इन शस्त्रों पर जा गिरा तो मेरी क्या हालत होगी?

अंजनचोर ने सोचा, सेठ! तेरा जो हो-सो हो। पीछे सिपाही पड़े हैं। मृत्यु सुनिश्चित है। अहो! जिनदत्त सेठ धर्मात्मा है वह कभी झूठ नहीं बोलता। उसने सेठ से कहा-इस विद्या को सिद्ध करने की क्या विधि है, मुझे बतलाओ? सेठ बोला-ये ऊपर सींका बँधा हुआ है नीचे शस्त्र गढ़े हुए हैं। सींके पर चढ़कर सच्ची श्रद्धा, भक्तिपूर्वक णमोकार महामंत्र को पढ़कर 108 रस्सियों को एक-एक करके काटते जाना। अगर मन में शंका हुई तो नीचे शस्त्रों पर गिरेगा। और नि:शंकित हुआ तो विद्या सिद्ध हो जायेगी।

अंजनचोर ने पूछा–वह मंत्र कौन सा है? जिनदत्त सेठ ने जो णमोकार मंत्र दिया था, और कहा था–इस मंत्र को सच्ची श्रद्धा से पढ़ना। इसमें पंचमहागुरु को वंदन, नमस्कार किया गया है। इस मंत्र से तुम्हें आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो जायेगी।

अंजन चोर के पूछने पर वह सेठ मंत्र बतलाने लगा–

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

अंजन चोर बुद्धिमान था। राजा का पुत्र था। उसने वह मंत्र तुरंत सेठ को सुना दिया। लेकिन जब वह सींके पर चढ़ा तो भूल गया। इतने में उसने देखा अब सैनिक आनेवाले हैं वे पकड़कर ले जायेंगे। फाँसी हो इससे अच्छा है जिस सेठ ने यह विधि कही है वह सेठ पक्का जिनेन्द्रभक्त है। उसने जो कुछ कहा बिल्कुल सत्य है, ऐसी नि:शंकित श्रद्धा के साथ अंजनचोर बोला–

'आणम् ताणम् कछु न जाणम् सेठ वचन प्रमाणम्।'

और एक साथ 108 रस्सियों को काट दिया। एक-एक रस्सी काटनी थी उसने एक झटके में ही सारी रस्सियाँ काट दी। और जैसे ही उसने रस्सी काटी आकाशगामिनी विद्या ने उसे बीच में ही सँभाल दिया।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है अगर श्रद्धा सच्ची है नि:शंकित है तब तो मंत्र का फल प्राप्त होता है। यदि श्रद्धा ढुलमुल है पेन्डुलम (Pendulum) की तरह। घड़ी का पेन्डुलम (Pendulum) होता है कभी इधर-कभी उधर रुकता ही नहीं है। ऐसे ही श्रद्धा यदि डोलती रहती है कि इन भगवान से काम नहीं हो रहा है तो उनके पास चलो। उनसे भी नहीं हो रहा तो किसी और के पास चलो। दर-दर, द्वार-द्वार घूमते हो। अरे! दर-दर, द्वार-द्वार कौन घूमता है? भिखारी घूमता है। ऐसे भिखारी बन करके, जो दर-दर, द्वार-द्वार घूमे उसे कुछ नहीं मिलता। क्यों? क्योंकि भीतर श्रद्धा ही नहीं है फिर कौन क्या करेगा? सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को छोड़कर कहीं भी चला जाये शांति मिलनेवाली नहीं है। जिसे सच्ची श्रद्धा, भक्ति होती है वह सोचता है कि मुझे इन तीनों लोक के सर्वश्रेष्ठ देव मिल गये। सर्वश्रेष्ठ गुरु मिल गये। अब अन्यत्र कहीं जाने की आवश्यकता ही नहीं है।

'सन्मार्गे' सन्मार्ग में उसकी निशंक श्रद्धा होती है कि जिनेन्द्र भगवान ने जो हित का मार्ग बताया है हित तो उस मार्ग पर चलकर ही होगा। मोक्षमहल तक ले जानेवाला अन्य कोई साधन नहीं है।

दूसरा अंग है निष्कांक्षित अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव निष्कांक्ष भाव निस्पृही भाववाला होता है। जैसा कि श्री दौलतराम जी कहते हैं-

'भव सुख बांछा न भाने'

सच्चा सम्यग्दृष्टि जीव संसार के भोगों की आकांक्षा नहीं करता। वह जानता है कि संसार के जितने भी भोगादि हैं वे सब कर्म से प्राप्त होते हैं। कर्म के वश में है। अगर पुण्यकर्म का उदय होगा तो भोग सामग्री का संयोग बनेगा। यदि पुण्यकर्म का योग नहीं होगा तो चाहने पर भी भोग सामग्री का संयोग होनेवाला नहीं है। इसलिये वह श्रद्धान करता है कि-

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ।।12।।

यह जो संसार के सुख हैं वे कर्माधीन हैं। और कैसे हैं? नष्ट होने वाले हैं। ऐसा नहीं ये हमेशा हमारे साथ रहनेवाले हों। संसार के सुख हमेशा साथ नहीं रहते इनका स्वभाव ही नाशवान होता है। क्षणिक होता है। यदि संसार सुखों को भोग लिया जाये तो ये नियम से दुख देनेवाले हैं। भोगों का भोग दुख ही देता है सुख नहीं। सुख तो एकमात्र आत्मा को आत्मा के भोगने से मिलता है।

भोगों में आसक्ति रहे तो जीव नियम से नरकगति आदि दुर्गति को प्राप्त होता है। तो **'दुःखैरन्तरितोदये'** अर्थात् दुखों को ही उत्पन्न करता है।

ये बताओ इत्र कैसा लगता है आपको? अच्छा लगता है कि नहीं? अच्छी सुगंध देता है कि नहीं? और यदि आपके चारों ओर इत्र ही इत्र डाल दिया जाये तो फिर तुम्हें सुख मिलेगा कि दुख मिलेगा। क्या होगा? सुगंध की अधिकता को नासिका सहन करने में असमर्थ हो जायेगी और दम घुटने लगेगा। हो गया दुख शुरु। क्यों? क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय की अपने विषय

को ग्रहण करने की एक क्षमता है। भोगों का ग्रहण शक्ति से अधिक किया, समझो दुख को न्यौता दिया।

और कैसे हैं ये भोग? **'पापबीजे'** पाप के बीज हैं। पाँच इन्द्रिय के विषयों को जो भोग रहा है। उसे पुण्यबंध हो रहा है अथवा पापबंध? नियम से पाप हो रहा है। ऐसे भोगों से प्राप्त सुख में आस्था न होना, अनास्था होना। सम्यग्दृष्टि संसार के सुखों की आकांक्षा नहीं करता। अपितु वह तो संसार के सुखों को छोड़कर आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की चाह करता है। अत: सम्यग्दृष्टि का दूसरा अंग है निष्कांक्षित अंग अर्थात् सांसारिक सुखों की आकांक्षा न होना।

तीसरा है निर्विचिकित्सा अंग।

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रय पवित्रते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीति-र्मता निर्विचिकित्सता।।13।।

शरीर स्वभाव से कैसा है? अशुचि है। अपवित्र है। लेकिन रत्नत्रय को धारण करने से यह शरीर भी पवित्रता को प्राप्त हो जाता है। ध्यान रखना, पवित्र हो नहीं जाता। रत्नत्रय के संयोग से पवित्र माना जाता है।

जो रत्नत्रय के धारी मुनिराज हैं। उनका शरीर मलिन हो तो भी उनके मलिन शरीर को देखकर घृणा ग्लानि नहीं करना अपितु उनके गुणों में अनुराग करना। प्रीति अर्थात् गुणों में प्रीति रखना ये तीसरा निर्विचिकित्सा अंग है।

विचार करना, यदि मुनिराज का शरीर मलिन है तन पर मैल की परत की परत जमा हो गई है। किसी रोग बीमारी ने आकर घेर लिया है। ऐसे में सम्यग्दृष्टि जीव क्या करता है? उनकी सेवा-सुश्रुषा, वैयावृत्ति को अपना धर्म मानता है, कर्तव्य मानता है। वह विचारता है कि इन्होंने रत्नत्रय को धारण किया है। अगर मैं सेवा, वैयावृत्ति करूँगा तो इनकी निर्विघ्न साधना में साधक बनूँगा। निर्विघ्न साधना कर ये मुनिवर साधना के फल को प्राप्त करेंगे। निर्वाण सुख को प्राप्त करेंगे। और यदि मैं इनके गुणों में प्रीति रखूँगा तो एक दिन मैं भी इन जैसे गुणों को प्राप्त कर सकूँगा। उन गुणों को धारणकर परमशांति, परम आनंद स्वरूप शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर सकूँगा। इसलिये वह उनमें घृणा नहीं अपितु प्रीति, प्रेम, वात्सल्य का भाव रखता है। इसी का नाम है निर्विचिकित्सा अंग। सम्यग्दृष्टि जीव इस अंग का धारी होता है।

और यदि निर्ग्रंथ मुनिराज को देखकर मन में ग्लानि आ जाये, घृणा आ जाये तो क्या वह सम्यग्दृष्टि जीव निर्विचिकित्सा अंग का धारी होगा? नहीं, वह सम्यग्दृष्टि जीव अंगहीन कहलायेगा। निर्विचिकित्सा अंग से रहित कहलायेगा। वह कदाचित् सम्यग्दृष्टि भी हुआ तो निर्दोष सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि वह अंग में दोष लगानेवाला है।

विचार करना, एक व्यक्ति शुद्ध वस्त्र पहनकर मंदिर आ रहा है और उसके पैर का अँगूठा किसी मलिन वस्तु पर पड़ जाये तो वह शुद्ध कहलायेगा या अशुद्ध? अशुद्ध कहलायेगा। ऐसे ही अगर एक अंग में भी दोष लग रहा हो, मलिनता को प्राप्त हो, तो वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि नहीं माना जाता, निर्दोष सम्यग्दृष्टि नहीं है। मलिन ही है इसलिये आठ अंगों का धारी सम्यग्दृष्टि जीव ही शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारी कहलाता है।

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं–

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेप्यसम्मतिः।
असंपृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा-दृष्टिरुच्यते।।14।।

चौथा अंग है अमूढ़दृष्टि। नरकादि दुःखों के कारणभूत मिथ्यात्व आदि के विषय में, और मिथ्यात्व आदि के धारक व्यक्ति के विषय में मन में सहमत नहीं होना, वचन से स्तुति-प्रशंसा नहीं करता और काय से हाथ आदि जोड़कर सराहना नहीं करता वह अमूढ़दृष्टि अंग है।

श्री दौलतराम जी कहते हैं–

'तत्त्व कुतत्त्व पिछाने'

अर्थात् तत्त्व और कुतत्त्व को जाननेवाला अमूढ़दृष्टि है।

पाँचवा अंग है उपगूहन।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्त जनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम्।।15।। र. श्रा.

उपगूहन का तात्पर्य है कि यदि किसी बालमुनि के द्वारा, बाल साधर्मी के द्वारा अज्ञानता के कारण यदि धर्म मलिन हो जाये तो सम्यग्दृष्टि जीव, उपगूहन अंग से सहित शुद्ध सम्यग्दृष्टि

जीव उसे ढाँकने का प्रयास करता है कभी उजागर नहीं करता। क्या करता है? ढाँकने का, दूर करने का प्रयास करता है।

अगर आपका बेटा बिगड़ जाये, बुरी संगति में पड़ जाये तो क्या पड़ौसी को बताने जाते हो, कि हमारा बेटा बहुत बिगड़ गया है। उसकी तो आदतें बहुत खराब हो गई हैं। बताने जाते हो क्या? नहीं। आप अपने घर की बात, घर तक ही सीमित रखने का प्रयास करते हो, ढाँकते हो, पड़ौसी को जरा सी भी भनक नहीं लगने देते।

ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान होता है। उपगूहन अंग का पालन तत्परता के साथ करता है। अगर किसी साधर्मी के द्वारा, धर्मात्मा के द्वारा कदाचित् कर्म के उदय से कोई गलती हो जाये, अपराध बन जाये, तो वह उसे ढाँकने का प्रयास करता है उसके अपराध, दोष को दूरकर उसे सँभालने का प्रयास करता है लेकिन कभी भी धर्म और धर्मीजनों की निंदा होते हुए नहीं देख पाता। अगर हम उपगूहन अंग का पालन नहीं करेंगे तो धर्मी की निंदा के साथ-साथ धर्म की निंदा होगी। इसलिये उपगूहन अंग का धारी सच्चा धर्मानुरागी होता है।

छठवाँ अंग है स्थितिकरण। यदि कोई साधर्मी धर्मात्मा जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र से नीचे गिर रहा हो तो वह उसे थामने का, सँभालने का प्रयास करता है जैसा कि आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रंथ में कहते हैं-

दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरण मुच्यते।।16।।

अतः सच्चा सम्यग्दृष्टि जीव स्थितिकरण अंग का पालन करनेवाला होता है। अब बतलाओ, यदि कोई व्यक्ति किसी साधर्मी की, साधुजनों की निंदा बुराई करे तो क्या वह सम्यग्दृष्टि हो सकता है? उपगूहन-स्थितिकरण इन अंगों का पालन कब करेगा। अरे जो निर्दोष व्रतों के धारी हैं क्या उनके साथ इन अंगों का पालन करेगा? जो निर्दोष व्रतों का पालन करते हैं वहाँ उपगूहन और स्थितिकरण अंग के पालन की कोई बात ही नहीं है। ये अंग वहाँ पालन करने की आवश्यकता है जहाँ कदाचित् अज्ञानता के कारण या कर्मोदय के कारण कोई जीव

अपने मार्ग से च्युत होने लगें, तब उनको सँभालना सम्यग्दृष्टि जीव का धर्म है। और कैसा होता है सम्यग्दृष्टि जीव? तो दौलतराम जी कहते हैं–

धर्मी सों गउ वत्स प्रीति सम

सम्यग्दृष्टि जीव साधर्मी, धर्मात्मा जनों के प्रति गौ वत्स के समान वात्सल्य भाव रखता है जैसे गाय अपने बछड़े के प्रति वात्सल्य भाव रखती है। वह अपने बछड़े से कभी यह स्वार्थ नहीं रखती कि बड़ा होकर बछड़ा हमारी सेवा करेगा। ऐसे ही धर्मात्मा, सम्यग्दृष्टि जीव दूसरों का हित-भला करता है। निस्वार्थ-भावपूर्वक वात्सल्य भाव रखता है। अकृत्रिम, निष्कपट, वात्सल्य भाव को धारण करता है। रत्नकरण्ड श्राकाचार में कहा भी है–

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव - सनाथापेत कैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्य-मभिलप्यते।।17।।

अर्थात् अपने साधर्मियों के प्रति सरलता सहित, मायाचारी रहित, यथायोग्य आदर-सत्कार आदि करना वात्सल्य अंग कहा जाता है।

वह अपना धर्म निभाना जानता है परन्तु दूसरों से यह अपेक्षा नहीं रखता कि मैं इनका सहयोग कर रहा हूँ तो ये मेरा भी सहयोग करें। निश्छल भावपूर्वक वात्सल्य अंग का पालन करता है।

आठवाँ अंग है प्रभावना।

अज्ञान - तिमिर व्याप्ति - मपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात् प्रभावना।।18।।

सम्यग्दृष्टि कभी भी धर्म की अप्रभावना नहीं करता। उसके द्वारा तो सदैव धर्म की प्रभावना की जाती है।

इसलिये बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी सम्यग्दृष्टि का स्वरूप निरूपित करते हुए कह रहे हैं कि सच्चा सम्यग्दृष्टि जीव इन आठ अंगों का पालन करनेवाला होता है। इनके स्वरूप को अपने मन में ज्ञान में धारण करता है और निर्दोष सम्यक्त्व का पालन करता है।

पंचमहागुरु में भक्ति रखता है। उनके गुणों में अनुराग रखता है। उनकी सेवा-सुश्रुषा करता है और अपने कर्मों की निर्जरा करता रहता है।

बंधुओ! ऐसे धर्म हित के साधन महान पुण्योदय से प्राप्त होते हैं। यदि हमारी आत्मा में सम्यग्दर्शन गुण प्रगट हुआ हो तो ऐसे स्वरूप को आचरण को भी अपने में पहचानना। ऐसा न हो कि हम सम्यग्दृष्टि हैं, हम सम्यग्दृष्टि हैं ऐसा कहते रहें, और पता चले कि सिगरेट (Cigarette) की डिब्बी में से सिगरेट (Cigarette) सुलगाकर पी रहे हैं। फिर भी हम सम्यग्दृष्टि हैं। वाह रे सम्यग्दृष्टि।

अब अपना समय हो चुका हैं, आज इतना ही।

पंच महागुरु को वंदन, चरण धूलि जिनकी चंदन।
निःशंकित वसु अंगों का, करो भाव से अभिनंदन।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, भक्ति दिखलाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम ग्रंथ जयवंत हो।

❑❑❑

(सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?)

णियसुद्धप्पणुरत्तो, बहिरप्पा-वत्थ-वज्जिदो णाणी।
जिणमुणिधम्मं मण्णदि, गददुक्खो होदि सद्दिट्ठी।।6।।

* अन्वयार्थ *

(**णाणी**) आत्मज्ञानी (**णिय-सुद्धप्पणुरत्तो**) अपनी शुद्ध आत्मा में अनुरक्त रहता है (**बहिरप्पा-वत्थ-वज्जिदो**) बहिरात्मा की अवस्था से रहित होता है (**जिण-मुणि-धम्मं**) जिनेन्द्र देव, दिगम्बर मुनि और धर्म को (**मण्णदि**) मानता है ऐसा (**सद्दिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**गददुक्खो**) दु:खों से रहित (**होदि**) होता है।

अर्थ-जो विचारशील ज्ञानी अपने शुद्ध आत्मा में अनुरक्त है, बहिरात्म अवस्था से रहित है, जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु व दयामयी धर्म को मानता है वह सम्यग्दृष्टि है, वही दु:खों से रहित होता है।

गाथा - 6

(प्रवचन)

●

जिनबिम्ब दर्शन से सम्यग्दर्शन

18.08.2013

भिण्ड
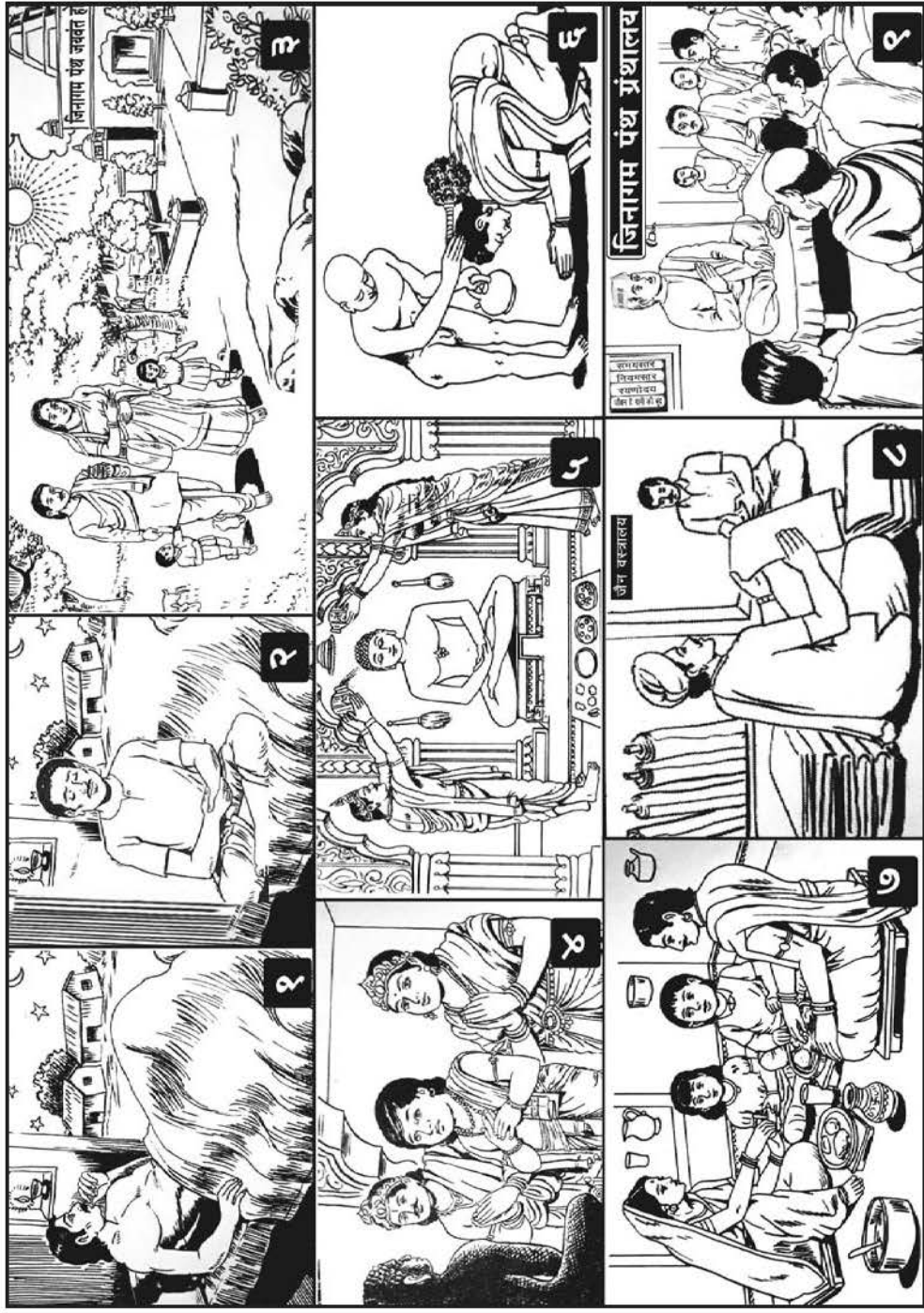
जिनागम पंथी श्रावक की दिनचर्या — (1) ब्रह्म मुहूर्त में जागरण (2) पंच परमेष्ठि मंत्र का स्मरण, सामायिक (3) सपरिवार जिनालय की ओर प्रस्थान (4) जिनालय में शुद्ध वस्त्र धारण कर जिन दर्शन (5) जिनाभिषेक पूजा (6) साधु उपासना (7) सपरिवार शुद्ध भोजन (8) न्याय नीति से व्यापार (9) संध्याकालीन शास्त्र सभा

16

रयणोदय

सम्यग्दर्शन जब आता, मिथ्यादर्शन खो जाता।
सम्यग्दृष्टि जीव सदा, निज शुद्धातम को ध्याता।।
सम्यग्दर्शन ही, हो-हो-2, भव दुक्ख नशाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

तीर्थंकर देव की वाणी परम कल्याणी है। जीवन को मंगल बनानेवाली अरिहंतों की निर्ग्रंथों की मंगल वाणी है। जिनसूत्र जीवन सजाने की कला सिखाते हैं। सद्‌गुरु जीवन जीने की कला सिखाते हैं। और तीनों लोकों में एकमात्र जिनधर्म ही है जो प्राणीमात्र के लिये मरने की कला सिखाता है। जिनधर्म जीवन के साथ-साथ मरण को भी महामहोत्सव बना देता है।

ऐसे महान जिनधर्म के आराधक, अपने युग के श्रेष्ठ साधक, महान तत्त्ववेता, अध्यात्म ज्ञान के प्रवाहक, मोक्षमार्ग के महानायक आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी श्रमण और श्रावक दोनों का मार्गदर्शन कर रहे हैं। **मोक्षमार्ग जीवन को सुंदर बनाने का मार्ग है।** भव्य आत्माओं के लिये मोक्षमार्ग का, शाश्वत सुख के मार्ग का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिस भव्यात्मा ने सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया है वह प्रशम भाव को प्राप्त होता हुआ अपूर्व सुख की अनुभूति करता है। वह संसार में रहते हुए सांसारिक सुखाभास की चाह नहीं करता, क्योंकि उसकी दृष्टि त्रैकालिक सुख स्वभावी, शाश्वत आनंद के स्रोत स्वरूप निज आत्मा पर रहती है। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं–

णिय – सुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थ – वज्जिदो णाणी।
जिण मुणि धम्मं मण्णदि गद दुक्खो होदि सद्दिट्ठी।।6।।

णियसुद्धप्पणुरत्तो– सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्धात्मा में अनुरक्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव के अलावा संसार में रहनेवाले जितने भी प्राणी हैं वे निज शुद्धात्मा को छोड़कर अन्य सांसारिक सुख भोगों के साधनों में अनुरक्त रहा करते हैं। किंतु सम्यग्दृष्टि जीव को संसार के ये सुख साधन, दुख के साधन मालूम पड़ते हैं और अनंत सुखस्वभावी होने के कारण निज शुद्धात्मा ही अनंत सुखरूप प्रतीति में आता है। सम्यग्दृष्टि जीव का यह भेदविज्ञान ही उसे बहिरात्मा से अन्तरात्मा बनाता है।

जब तक इस जीव के लिये भेदविज्ञान नहीं होता तब तक उसे सम्यक्त्व भी नहीं होता। और तभी तक यह जीव शुद्ध आत्मा के ज्ञान से अनजान बना रहता है। **भो भव्य आत्मन्! भेदविज्ञान की चर्चा करना अलग बात है और भेदविज्ञान रूप ज्ञान होने पर भी, सम्यक्त्व की प्राप्ति होना अलग बात है। संसार में रहनेवाले अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव भी यह कहते हुए देखे जाते हैं कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह बात तो वे भी जानते हैं लेकिन शरीर और आत्मा को अलग–अलग कहने के बाद भी, मैं शुद्धात्मस्वरूप हूँ ऐसे शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं जाननेवाले जीव अज्ञानी और मिथ्यात्वी ही बने रहते हैं।**

अष्टावक्र ने जनक के लिये भेदविज्ञान की बात कही है अष्टावक्र गीता में। उन्होंने जनक को बोध कराते हुए कहा कि आत्मा अलग है और शरीर अलग है। शरीर और आत्मा को

अलग-अलग बताते हुए भी आत्मा का यथार्थस्वभाव क्या है इस बात का बोध न होने के कारण यह भेदविज्ञान भी सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं करता।

कौन नहीं जानता है कि मृत्यु के समय शरीर पड़ा रह जायेगा और आत्मा निकल जायेगी? किसको यह भेदविज्ञान नहीं है? कौन नहीं जानता कि हमारे घर-कुटुंबी, परिजन, पुरजन धन-संपदा आदि जो कुछ भी है, यह सब जब तक हमारा जीवन है आयुकर्म है तब तक ही मेरे साथ है। इसके बाद कोई भी मेरा साथी नहीं है यह सत्य कौन नहीं जानता? **जब भी मृत्यु का बोध होता है तो भेदविज्ञान नजर आने लग जाता है। अपने और परायेपन का बोध होने लग जाता है। लेकिन आत्मा का यथार्थ स्वभाव क्या है ? जब तक इसका बोध नहीं होगा तब तक ऐसा भेदविज्ञान भी सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं करता। इसलिये संसार-शरीर-भोगों के प्रति उपेक्षा दृष्टि होने के बावजूद भी अनेकों जीवों के लिये सम्यग्दर्शन नहीं होता।**

दो भाई थे। दोनों में खूब प्रेम था। अचानक बीच में स्वार्थ आते ही दोनों भाइयों में बिखराव हो गया। संसार के यथार्थ स्वरूप का बोध हो गया। इस संसार में कोई भी किसी का सच्चा साथी नहीं है। जब तक स्वार्थ सधता है तब तक अनुकूल बने रहते हैं और स्वार्थपूर्ति होते न देख वे ही शूलों की तरह चुभन पैदा करने लग जाते हैं। इस संसार में तो सब ऐसा ही है। अभी तक शरीर ने खूब साथ दिया, अचानक किसी रोग बीमारी ने घेर लिया। अब उसने भी साथ देना छोड़ दिया। **ओह! यह शरीर का स्वभाव है। अभी तक खूब भोग भोगे लेकिन उन भोगों ने तन-मन को ही रोगी बना दिया। धिक्कार हो ऐसे भोगों के लिये।** अरे ये भोग तो नश्वर हैं क्षणिक हैं।

ऐसे जीव भी बहुत हैं जो संसार, शरीर और भोगों के प्रति उपेक्षा भाव लाते हैं लेकिन इतने मात्र से किसी की आत्मा में सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं हो जाता। ध्यान रखना, जब तक निजस्वभाव का सम्यक् श्रद्धान न हो तब तक सम्यग्दर्शन आत्मा में उत्पन्न नहीं होता। कैसा स्वरूप है मेरी आत्मा का? मैं आत्मा शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वरूप हूँ। सहज शुद्ध ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। सहज शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा हूँ। ऐसे शुद्ध ज्ञानदर्शन चैतन्यस्वभावी आत्मा में जब रुचि आती है तब उस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। छहढालाकार श्री पं. दौलतराम जी कहते हैं।

'परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।'

अर्थात् परद्रव्यों से भिन्न स्वभावी अर्थात् पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँच द्रव्यों से भिन्न स्वभावी चैतन्य गुण से सहित तथा पर जीवद्रव्य से भी सदा पृथक रहने वाले ऐसे निज शुद्धात्मा में रुचि जाग्रत होना, निज ज्ञान में अपने त्रैकालिक यथार्थ शाश्वत शुद्धस्वरूप का निर्णय हो जाना और उपयोग का बार बार उसी आत्मस्वरूप की ओर जाना ही सम्यक्त्व है ज्ञान है, चारित्र है। अर्थात् तब जीव के अंतरंग में यह भाव आता है कि निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रुचि रूप सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं '**णियसुद्धप्पणुरत्तो**' सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्धात्मा में अनुरक्त रहता है। **जैसे भूखा भोजन में अनुरक्त रहता है। प्यासा पानी में अनुरक्त रहता है। किसी गरीब निर्धन व्यक्ति को धन मिल जाये तो वह धन में अनुरक्त रहता है। जिसकी शादी हुये वर्षों गुजर गये हों, फिर वर्षों बाद संतान की प्राप्ति हुई हो तो वे संतान में अनुरक्त रहते हैं ऐसे ही जिस जीव के लिये अनादिकाल से दुख की प्राप्ति हो रही थी उसे यदि अनंतसुख स्वभावी शुद्ध आत्मा मिल जाये तो वह उसी में अनुरक्त रहता है।**

सम्यग्दृष्टि जीव को निज शुद्धात्मा के अलावा संसार का कोई भी पदार्थ अच्छा नहीं लगता। उसे तो निज शुद्धात्मा ही रुचता है। अथवा जिनके निमित्त से मुझे शुद्धात्मा की, उसके यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति हुई, आत्मज्ञान की उपलब्धि हुई, ऐसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भी उसके अंदर भक्ति भाव जाग्रत होता है। शुद्धात्मा की प्राप्ति करानेवाले निमित्तों के प्रति कृतज्ञता का, समर्पण का भाव उसके अंदर जाग्रत होता है लेकिन निज शुद्धात्मा में अनुरक्तता उसकी सहज अवस्था है। क्यों? क्योंकि उसे सम्यक् भेदविज्ञान हुआ है।

मैंने बताया, भेदविज्ञान तो बहुत से जीवों को हो जाता है लेकिन वे फिर भी मिथ्यादृष्टि बने रहते हैं और यह मिथ्यात्व तब तक बना रहता है जब तक जीव के लिये यथार्थ आत्मस्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान नहीं हो पाता। अहो! सम्यक्त्व में निमित्तभूत पाँच लब्धियों की जब तक प्राप्ति नहीं होती तब तक वह जीव मिथ्यात्व अवस्था में ही पड़ा रहता है।

किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के लिये जब भव्यत्व भाव प्रगट होता है और क्षयोपशम आदि चार लब्धियों के साथ सच्चे देव शास्त्र गुरु आदि का निमित्त प्राप्त होता है तो वह मिथ्यात्व

दशा में भी भेदविज्ञान करने लग जाता है। उसे इस बात का बोध होने लग जाता है कि कौन अपना है और कौन पराया। और जो अपना है यानि आत्मा उसका यथार्थ स्वरूप क्या है? वह उसे जानने के लिये सतत् उत्सुक रहता है। उस उत्सुकता से प्रेरित होकर वह निरंतर अपने शुद्धात्मा के विषय में ही जानने की इच्छा करता है।

किंतु जब तक जीव को शुद्धात्मा के यथार्थ स्वरूप के प्रति दृढ़ श्रद्धान नहीं होता, करणलब्धि की प्राप्ति नहीं होती और सात प्रकृतियों- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं हो जाता, तब तक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है।

इन क्षयोपशम आदि चार लब्धियों को अभव्य जीव भी प्राप्त कर लेता है किंतु जब भव्यजीव के लिये देशना लब्धि की प्राप्ति होती है। तब उसे देशना सुनने में बहुत आनंद आता है। जब वह तत्वों की बात सुनता है तो उसे तत्त्वों की बात सुनने में रुचि जाग्रत होती है। उसे ऐसा लगता है कि यह हमारे हित की बात बताई जा रही है। और हित की बात बतानेवालों के प्रति उसे बहुत अनुराग पैदा होता है। धीरे-धीरे वह अपने कर्मों को हल्का करता जाता है और जब करणलब्धि की प्राप्ति होती है तब सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है।

अहो! भेदविज्ञान के द्वारा उसे जो निज शुद्धात्मस्वरूप की श्रद्धा हुई है वह उसी शुद्धात्मा में अनुरक्त हो जाता है उसी में उसकी रुचि हो जाती है और अन्य जगह से रुचि स्वत: ही हटती चली जाती है। मिथ्यात्व दशा में तो जितने भी सांसारिक पदार्थ, शुभाशुभ पदार्थ थे उनमें उसकी रुचि लगी रहती थी। अब सम्यक्त्व की दशा में रुचि कहाँ लगने लगी? निज शुद्धात्मा में। उसकी प्राप्ति करानेवाले निमित्त कारणों में।

और कैसा होता है सम्यग्दृष्टि जीव? तो आचार्य भगवन् कहते हैं-

'बहिरप्पावत्थ-वज्जिदो णाणी'

सम्यग्दृष्टि जीव बहिरात्मदशा से रहित होता है। कैसी होती है बहिरात्म दशा? कौन कहलाता है बहिरात्मा? इसका उत्तर आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी श्री समाधितंत्र जी ग्रंथ में कहते हैं-

'बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः'

अर्थात् जो जीव शरीर, शरीर के संबंधी, धन धान्य आदि में आत्म भ्रान्ति अर्थात् 'यही मैं हूँ–ये सब मेरे हैं' ऐसी अपनत्वरूप, निजरूप भ्रान्ति रखता है वह जीव बहिरात्मा कहलाता है। छहढाला में यही बात पं. श्री दौलतराम जी कहते हैं–

देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्व मुधा है।

बहिरात्मा जीव शरीर और आत्मा को एक मानता है। वह तत्त्वमूढ़ चेतन और अचेतन तत्त्वों के यथार्थस्वरूप को नहीं जानता है।

किंतु सम्यग्दृष्टि जीव ऐसी बहिरात्म दशा से रहित होता है। इस प्रकार वह शरीर और आत्मा के भेद को जानता हुआ आत्मा के अतीन्द्रिय स्वभाव को दृढ़ श्रद्धापूर्वक मानता हुआ आत्मा के यथार्थस्वरूप में ही अपने उपयोग को लगाता है। उसका उपयोग स्वत: ही अपनी आत्मा की ओर लगने लगता है बाहर की ओर नहीं जाता। और बहिरात्मा जीव का उपयोग बाहर की ओर ही लगा रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव जिसका उपयोग बाह्य से हटकर अन्तरंग में रुचि रखे वह अन्तरात्मा कहलाता है। लेकिन एक बात ध्यान रखना, अभी उसे सम्यक्त्वपना अन्तरात्मपना प्राप्त हुआ है। असयंत सम्यग्दृष्टि होने के कारण अभी वह चारित्रापेक्षा बहिरात्मा ही है। कैसा है? चारित्रापेक्षा बहिरात्मा है और सम्यग्दर्शन की अपेक्षा अन्तरात्मा है। उसे बाह्य पदार्थ रुचिकर तो नहीं लगते, लेकिन उनसे विरक्त न हो पाने के कारण वह उनका उपभोग करता है। वह उनके त्याग करने में अपने आप को असमर्थ महसूस करता है। मजबूरी वश उनका आश्रय करता है। जिस प्रकार एक रोगी व्यक्ति को औषधि का सेवन करना पड़ता है वह औषधि का सेवन नहीं करना चाहता। ऐसी ही दशा एक सम्यग्दृष्टि जीव की होती है जो कर्मों के उदय में भोगों को भोगता हुआ भी उन्हें हेय ही मानता है। अपनी मजबूरी ही मानता है।

आचार्य भगवन् कहते हैं, चारित्र की अपेक्षा से अभी तुम्हारा उपयोग बाहर है इसलिये चारित्रापेक्षा अभी तुम बहिरात्मा हो और सम्यक्त्व की अपेक्षा अंतरात्मा हो। एक सम्यग्दृष्टि जीव जब ऐसी बात सुनता है तो उसे अंतरंग में खेद होता है कि ओहो! मैं सम्यक्त्व की अपेक्षा तो अन्तरात्मा हो गया लेकिन चारित्रापेक्षा मैं अभी भी बहिरात्मा हूँ। उसके अंतस में यह खेद बना रहता है।

अगर किसी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव को कोई बाजार में चाट के ठेले पर खड़ा देखे, तो लोग क्या कहेंगे ? 'बड़ा धर्मात्मा बना फिरता है और बाजार की चाट पकौड़ी खाना नहीं छोड़ा।' जिनागम में कहा गया कि छानकर पानी पीना। और वह बिस्लरी (Bisleri) का पानी शुद्ध कहकर पिये तो विचार करना चारित्रापेक्षा क्या हालत है उस जीव की। यद्यपि वह आत्मा के स्वरूप को जानता है। जैसे किसी के पास वस्त्र था और वह मैला हो गया तो वह व्यक्ति वस्त्र को साफ करने का धोने का पुरुषार्थ करता है। क्यों? क्योंकि वह जानता है कि इस वस्त्र में सफेदी है इसलिए धोता है।

आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं–आत्मा शुद्ध भी है और आत्मा अशुद्ध भी है अब तुम किसको देखना चाहते हो? वस्त्र मैला भी है और वस्त्र उज्ज्वल भी है। गंदा वस्त्र तुम्हारे सामने है तुम दो दृष्टियों से देख सकते हो। एक दृष्टि तो बाहर की केवल मैल को दिखानेवाली है। और दूसरी दृष्टि वो है जिसमें उस वस्त्र की उज्ज्वलता का ज्ञान होता है कि इसमें इतनी उज्ज्वलता है। यदि आप उस वस्त्र को उज्ज्वलता की दृष्टि से देखोगे तो आपको उस समय मैल दिखायी नहीं देगा। और यदि आप उस वस्त्र को मलिनता से देखोगे तो आपको उस वस्त्र की उज्ज्वलता दिखायी नहीं देगी।

आप लोग होली खेलते ही होंगे या कभी खेली होगी। अभी नहीं खेलते होंगे, तो होली के समय किसी ने लाल रंग लगा दिया, किसी को नीला, किसी को हरा, किसी को पीला लगा दिया। ये बताओ, तुम हरे, नीले, लाल, पीले हो गये या तुम्हारा चेहरा जैसा था वैसा ही है। रंग तो ऊपर से चेहरे पर लगाया गया है। वह रंग के कारण भले ही हरा दिखायी दे रहा हो। लेकिन वास्तव में हरा नहीं है। अगर आपको अपने असली चेहरे का ज्ञान न हो तो आप रंग को चेहरे से हटाने का प्रयास नहीं करेंगे। आप जानते हैं हमारा असली चेहरा क्या है? इसलिये आप उस रंग को धोते हैं और धोकर जैसा चेहरा था वैसा प्रगट कर लेते हैं। जैसा चेहरे का स्वरूप है वैसा स्वरूप आपकी दृष्टि में है कि नहीं है? बोलो ना? तभी तो धो रहे हो। आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं बेटा! देह और आत्मा यद्यपि मिले हुये हैं। कर्म भी आत्मा से मिले हुए हैं तो भी शुद्धनय से आत्मा को शुद्ध देखो और शुद्ध जानो। क्या? इस मलिनता में भी आत्मा को शुद्ध देखो, शुद्ध जानो।

एक स्वर्ण पाषाण होता है जिसमें स्वर्ण भी है और मिट्टी के कण भी हैं पाषाण भी है। अभी वह 16 ताव देकर शुद्ध नहीं हुआ है। खदान से निकला है। अगर उसे किसी स्वर्णकार के पास लेकर जाओगे तो वह कसौटी पर कसकर देखेगा तभी आपको स्वर्ण के पैसे देगा। स्वर्ण के देगा न। आचार्य भगवन् कहते हैं ऐसा वह सम्यग्दृष्टि जीव दुखों से रहित होता है। उसने अशुद्ध स्वर्ण में भी शुद्ध स्वर्ण का ज्ञान कर लिया है कि इसमें कितना शुद्ध सोना है। उसकी दृष्टि किस पर है? शुद्ध सोने पर है। उसकी दृष्टि पाषाण पर नहीं है। जब वह स्वर्ण पाषाण में, अशुद्ध स्वर्ण में भी शुद्ध स्वर्ण का आकलन कर सकता है, तो हम अशुद्ध आत्मा में शुद्ध आत्मा का ज्ञान क्यों नहीं कर सकते। भेदविज्ञान की आवश्यकता है। जैसे उसने कसौटी पर कसकर यह देख लिया कि इसमें इतना पाषाण है इतना सोना है ऐसे ही तुम अपने ज्ञान की कसौटी पर यह कस करके देखो कि इसमें कितना तो आत्मा है और कितना ये पुद्गल शरीर है। यानि भेद विज्ञान करो। देह और आत्मा को लक्षण से अलग-अलग पहचानो। इस अशुद्ध अवस्था में ही अपने शुद्ध आत्मा को पहचानना होगा। पहचान सकते हैं कि नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव भेदविज्ञान के द्वारा अपनी शुद्ध आत्मा को शरीर से पृथक जानता है।

आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं वह अपने शुद्ध आत्मा में ही अनुरक्त रहता है। स्वर्णकार के लिये जो स्वर्ण पाषाण मिला है उसका उपयोग किसमें है? पाषाण में अथवा स्वर्ण में। स्वर्ण में है। पाषाण को तो वह ताव दे देकर जलाकर खाक करता जाता है उसे पृथक करता जाता है और दृष्टि उसकी स्वर्ण पर रहती है।

ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव शरीर और आत्मा को भेदविज्ञान के द्वारा जानकर अपने उपयोग को शुद्ध आत्मा पर लगाता है। और जो शुद्ध आत्मा पर उपयोग लगाता है आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं कि वह सम्यग्दृष्टि जीव अपने को दुखों से रहित कर लेता है। क्यों? क्योंकि 'मैं कौन हूँ? शुद्धात्मा हूँ।' सुख और दुख का वेदन करनेवाला मैं नहीं हूँ। क्या? शुद्ध आत्मा को जाननेवाला यह जानता है कि मैं सुख-दुख का वेदन करनेवाला नहीं। सुख-दुख का वेदन करनेवाला तो अशुद्ध आत्मा है। मैं तो कौन हूँ? शुद्धात्मा हूँ।

सोना कब तक अग्नि की वेदना को सहन करता है? जब तक कि वह पूर्णतः शुद्ध नहीं हो जाता। और जब वह पूर्णतः शुद्ध हो जाता है फिर क्या उसे अग्नि की वेदना को सहन करना पड़ता है? फिर नहीं करना पड़ता। यानि जिसने अपने को शुद्धात्मा जाना है। वह अपने को कर्म

कृत सुख- दुख में भी सुखी-दुखी नहीं जानता, नहीं मानता। क्योंकि वह निर्णय करता है कि ये जो सुखी-दुखी होनेवाला है ये अशुद्ध जीव है। कौन है? अशुद्ध जीव। जो कर्मों के द्वारा अपने को सुखी-दुखी मानता है।

शुद्ध आत्मा का निर्णय करनेवाला कर्मों के द्वारा दिये जानेवाले सुख-दुख से भी सुखी-दुखी नहीं मानता। वह तो अपने को अतीन्द्रिय सुखस्वभावी मानता है।

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव दुखों से रहित होता है। सबसे पहली बात तो ये हो गई 'मैं शुद्धात्मा हूँ।' ऐसा उसके निर्णय होने के कारण अशुद्ध भावों को अपना नहीं मानता।

अहो! श्रद्धान की अपेक्षा वह धर्मात्मा है। लेकिन अनादिकाल के संस्कारों के कारण रागद्वेष भाव उदय में आते हैं और उसकी बाह्य पदार्थों के प्रति आसक्ति नहीं छूट पाती। सांसारिक भोग अभी त्यागने में नहीं आ पाते। स्नेह आ जाता है। ज्ञानी प्रबुद्ध जन उस जीव को चारित्रमोहनीय की अपेक्षा कहते हैं रे बहिरात्मा!

वह सम्यग्दृष्टि जीव अपने आपको देखने लग जाता है कि मैं तो देवशास्त्रगुरु का भक्त हूँ। निज शुद्धात्मा का दृढ़ श्रद्धानी हूँ। उसी में रुचि रखनेवाला हूँ। फिर यह ज्ञानी सत्पुरुष मुझे बहिरात्मा क्यों कह रहे हैं? वह पूछने लगता है उनसे, आपने मुझे बहिरात्मा क्यों कहा? मुझे पर पदार्थों में रुचि नहीं है। मुझे यह शरीर भी अपना नजर नहीं आता। मुझे विषयभोगों में रुचि नहीं। मुझे परिवार, मित्र, बंधु-बांधव, धन-सम्पदा से भी मोह नहीं। मेरी तो निज शुद्धात्मा में ही रुचि है फिर आप मुझे बहिरात्मा क्यों कहते हो?

ज्ञानी पुरुष कहता है कि तू बिस्लरी (Bisleri) का तो पानी पिये। होटल (Hotel) में जाकर भोजन करे। चाट, पकौड़ी, समोसा ये तेरे से छूटे नहीं। अब तू ही बता एक सम्यग्दृष्टि जीव के लिये आचार्य भगवंतों ने क्या आचरण बताया है।

उन्हीं सम्यग्दृष्टियों के आचरण की चर्चा आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कर रहे हैं कि एक सम्यग्दृष्टि जीव का आचरण कैसा होना चाहिये। भले ही वह नियम रूप न हो। संकल्प रूप न हो। पर जब सम्यक्त्व प्रगट होता है तब उसका आचरण सहज ही सम्यक्त्व के अनुरूप बन जाता है। फिर वह यथाशक्ति अनुसार ज्ञानी महात्माओं के पास जाकर कहता है कि भगवन्!

अब मेरी इन पदार्थों में रुचि नहीं रही अब मुझे इस तरह के आचरण में (जैसा मैं पहले करता था)कोई रुचि नहीं रही इसलिये अब आप मुझे नियम दे दो। संकल्प दे दो। क्योंकि अब धर्मानुसार आचरण करने की शक्ति हमारी आत्मा में उत्पन्न हो गई है।

ज्ञानी गुरु कहते हैं बेटा! मेरा अब तुम्हारे लिये आशीर्वाद है। अब तुम इसतरह का आचरण संकल्पपूर्वक नियमपूर्वक पालो। और जैसे ही वह नियम करता है संकल्प में बँधता है वैसे ही वह चतुर्थ गुणस्थान से पाँचवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। इस तरह वह चारित्रापेक्षा भी अंतरात्मा बन जाता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव बहिरात्मपने से रहित कहलाता है।

यहाँ देशचारित्र, सकलचारित्र के अभाव की अपेक्षा बाहिरात्मा कहा है, सर्वथा बहिरात्मा नहीं जानना। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। सम्यक्त्वाचरण का पालन करनेवाला है। अहो! सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वाचरण का पालन करते हुए व्रत-चारित्र न होने से अविरत-सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

और कैसा होता है सम्यग्दृष्टि जीव? तो आचार्य भगवन् कहते हैं-

'णाणी' ज्ञानी होता है। सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानी होता है। क्यों? क्योंकि उसे अपनी आत्मा का हित सतत दिखायी देता है। और ज्ञानी वही है जिसे हित दिखायी दे। जिसे अपना हित दिखायी न दे वह अज्ञानी है।

सम्यग्दृष्टि जीव को अपना हित यानि मोक्ष दिखायी देता है। क्योंकि आत्मा का हित क्या है? सर्वार्थसिद्धि में आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी से किसी निकट भव्य जीव ने पूछा-

भगवन् किं न खलु आत्मने हितं स्यादिति ?

अर्थात् भगवन्! आत्मा का हित क्या है?

आचार्य भगवन् ने उत्तर दिया- **मोक्ष इति।**

आत्मा का हित मोक्ष है।

भव्य जीव ने पुनः पूछा- **भगवन्! किं स्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति ?**

उस मोक्ष का क्या स्वरूप है और उसकी प्राप्ति का क्या उपाय है?

'आचार्य आह-निरवशेष निराकृत कर्ममल-कलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्य- स्वाभाविक-ज्ञानादिगुण-मव्याबाधसुख-मात्यन्तिक-मवस्थान्तरं मोक्ष इति।'

आचार्य भगवन् ने कहा-जब आत्मा कर्ममल कलंक और शरीर को अपने से सर्वथा जुदा कर देता है तब उसके जो अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणरूप और अव्याबाध सुखरूप सर्वथा विलक्षण अवस्था उत्पन्न होती है उसे मोक्ष कहते हैं।

आचार्य भगवन् कहते हैं जिसे अपना हित यानि मोक्ष दिखायी दे रहा है बस वही ज्ञानी जीव है। और जिसे अपना हित दिखायी न दे वह अज्ञानी है। आत्मा का हित तो मोक्ष है और ज्ञानी का लक्ष्य मोक्ष ही होता है। उसका प्रत्येक कदम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये होता है। और अध्यात्म कहता है शुद्धात्मा की ओर होता है। ऐसे मोक्षाभिलाषी सम्यग्दृष्टि जीव को आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव 'ज्ञानी' ऐसी उपाधि से विभूषित करते हैं।

और कैसा होता है वह सम्यग्दृष्टि जीव? ऐसा पुन: पूछने पर आचार्य भगवन् कहते हैं-

'जिणमुणिधम्मं मण्णदि'

सम्यक्त्व का आराधक भव्यजीव जिनेन्द्र देव, मुनि और जिनधर्म को माननेवाला होता है। विचार करना, भले ही कोई भेदविज्ञान करे, आत्मा की बात करे। अगर जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ मुनि और जिनधर्म को माननेवाला नहीं है तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि सम्यग्दृष्टि के अंतरंग में जिनेन्द्र देव, जिनधर्म, निर्ग्रंथ मुनि के प्रति अगाध श्रद्धा भक्ति होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव पंचपरमेष्ठियों का आराधक होता है। परम भक्त होता है। किंतु कोई ऐसा कहे कि जिनदेव नहीं होते। कोई कहे कि शास्त्र नहीं होते। कोई कहे मुनि नहीं होते। तो ऐसे जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होते।

आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव वही कहलाता है जो सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु को मानता है। **आजकल कुछ लोग मात्र द्रव्यानुयोग के पाठी बनकर ऐसा कहते हैं कि हम निज शुद्धात्मदेव-निज चैतन्यदेव की पूजा-आराधना करते हैं, जिनप्रतिमा को हम नहीं मानते। द्रव्यपूजा में दोष होता है अत: भावपूजा करते हैं। यह स्वतंत्र चिंतन हो सकता है किन्तु जिन प्रवचन नहीं हो सकता, क्योंकि जिनबिम्ब**

की पूजा-भक्ति से निधत्ति-निकाचित कर्मों का नाश होता है, ऐसा जिन प्रवचन में कहा है।

धवला पुस्तक छह के नवम चूलिका अधिकार के बाबीसवें सूत्र के अंतर्गत प्रश्न किया है-

कधं जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं?

अर्थात् जिनबिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण किस प्रकार होता है?

समाधान—जिणबिंबदंसणेण णिधत्त-णिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो।

अर्थात् जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्व आदि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है जिससे जिनबिंब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है।

अतः जो जिनेन्द्रदेव को न माने, भले ही वह ज्ञान के क्षयोपशम से ज्ञानी हो जाये लेकिन सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव यह बात जिनेन्द्रदेव के अनुसार ही कह रहे हैं। गणधर भगवंतों, पूर्वाचार्यों के अनुसार कह रहे हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव कैसा होता है? जो हमेशा सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु की श्रद्धा करनेवाला होता है। लेकिन कोई कहने लग जाये कि जिनेन्द्र देव तो होते हैं शास्त्र भी होते हैं लेकिन इस पंचमकाल में मुनि नहीं होते। तो समझ लेना कि अभी आचार्य कुंदकुंद देव की वाणी के साथ तालमेल नहीं बैठ पाया है। जैसे गणित की पुस्तक में आगे सवाल होते हैं और पीछे उत्तरमाला। आपने गणित का सवाल हल किया। हल करने के बाद उत्तर आया। जब तक उत्तरमाला नहीं देखी तब तक तो अपना उत्तर सही मालूम पड़ता है। ऐसा लगता है कि मैंने इस सवाल को हल करने में कहीं कोई गलती नहीं की। पर जैसे ही पीछे उत्तरमाला पलट कर देखी। उसके साथ मिलान नहीं हुआ तब यह बोध होता है कि सवाल हल करने में मुझसे कहीं कोई गलती अवश्य हो गई है।

इसीप्रकार सम्यग्दर्शनरूपी सवाल जब आप हल करते हैं। तब आपने जिस विधि से हल किया है आपको वह विधि, वह विचारधारा एकदम सही प्रतीत होती है। लेकिन जब आचार्य

कुंदकुंद देव की रयणसाररूपी उत्तरमाला में अपने उत्तर का मिलान करोगे तब पता चलेगा कि सही उत्तर से हमारा उत्तर क्यों नहीं मिल रहा है। कहीं न कहीं कोई गलती त्रुटि अवश्य ही है।

इसलिये अगर किसी को जिनेन्द्रदेव पंसद न हों, किसी को जिनमुनि अच्छे न लगते हों, और किसी को जिनागम न रुचता हो अथवा जिनधर्म के प्रति श्रद्धा न हो, तो ध्यान रखना, आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव की उत्तरमाला से उनके उत्तर का मिलान नहीं हो सकता। इसलिये अपने अंदर से उन त्रुटियों को निकालने का, दूर करने का प्रयास करना। अपने अनुसार नहीं आचार्य भगवंतों की आज्ञानुसार। उनके द्वारा अपनाये, बताये मैथड (Method) को अपनाने से ही, जैसे उन्होंने अपने सवाल को सही हल कर लिया उसीप्रकार हम भी अपने सवाल को सही हल कर पायेंगे। परीक्षा में पास हो पायेंगे।

सम्यग्दृष्टि जीव देवशास्त्रगुरु और उनकी आज्ञा को माननेवाला होता है, इसलिये सम्यक्त्व के दस भेदों में प्रथम भेद आज्ञा सम्यक्त्व को कहा गया है। ऐसा सम्यक्त्वधारी जीव कैसा होता है, उसे क्या फल प्राप्त होता है?

'गददुक्खो होदि सद्दिट्ठी'

आचार्य भगवन् कहते हैं ऐसा वह सम्यग्दृष्टि जीव दुखों से रहित होता है। हर जीव यह चाहता है कि मेरे दुखों का नाश हो जाये, अंत हो जाये। येन-केन-प्रकारेण कैसे भी यह दुख मेरे जीवन से दूर हो जाये। लेकिन इन दुखों को दूर करने में कौन सा जीव, किस योग्यता वाला जीव समर्थ होता है? तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने सम्यग्दृष्टि जीव की सारी योग्यताएँ बता दी। अगर ये योग्यताएँ तुम्हारे अंदर हैं तो तुम अपने दुखों का नाश करने में समर्थ हो। बस ये सभी गुण तुम्हारे अंदर प्रगट हुए हों। ऐसा सम्यक्त्व गुण से अलंकृत वह जीव दुखों से रहित होता है।

कोई प्रश्न करे-अरे! अभी तो सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और तत्काल ही दुखों से रहित हो गया। तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि जिस जीव ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करते ही अनंत दुखों का नाश कर दिया हो, वह जीव उसी क्षण सुखी हो जाता है। मिथ्यात्व के साथ अनंतानुबंधी के रहते यह जीव अनंत दुखी था और सम्यक्त्व के होते ही उसका वह अनंत दुःख समाप्त हो गया। और निज शुद्ध आत्मा जो अनंत सुखस्वरूप है ऐसी अनंत गुण वैभव से युक्त निजात्मा में रुचि

प्रगट हुई। वह कहता है कि मुझे अनंतसुख प्राप्ति का कारण मिल गया इसलिये मैं अनंतसुखी हो गया। कारणरूप क्या मिल गया? शुद्धात्मा मिल गया। क्योंकि शुद्धात्मा के आश्रय से तेरहवें गुणस्थान में पहुँचते ही अनंतसुख अनुभव में आने लग जायेगा। अहो! मुझे दुखों का अंत करने का कारण मिल गया। अनंत सुख प्राप्त करने का कारण मिल गया इसलिये मैं तो सुखी हूँ। सचमुच ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव है सुखी होता है दुखों का अंत करनेवाला हो जाता है।

सम्यग्दर्शन जब आता, मिथ्यादर्शन खो जाता।
सम्यग्दृष्टि जीव सदा, निज शुद्धातम को ध्याता।।
सम्यग्दर्शन ही, हो-हो-2, भव दुक्ख नशाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

- उपयोग बाहर गया संसार का सृजन शुरु।
- उपयोग अन्तर्मुखी हुआ संसार का अंत शुरु।
- भूल को भूल स्वीकार करना समझदारी।
- भूल को अनुकूल समझ लेना ही अज्ञानता है।
- भूल को अनुकूल मानना मूल से दूर जाना है।

(सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?)

मद-मूढ-मणायदणं, संकादि-वसण भयमदीयारं।
जेसिं चउवालेसे, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

* अन्वयार्थ *

(**जेसिं**) जिनके (**मद-मूढ-मणायदणं**) मद, मूढ़ता और अनायतन (**संकादि-वसण भयं**) शंकादि दोष, व्यसन और भय (**अदीयारं**) अतीचार (**चउवालेसे**) ये चवालीस दोष (**ण**) नहीं (**संति**) होते हैं (**ते**) वे (**सद्दिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**होंति**) होते हैं।

अर्थ- जिन जीवों में आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंका आदि आठ दोष, सात व्यसन, सात भय और पाँच अतीचार ये 44 दोष नहीं होते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। 8+3+6+8+7+7+5=44।

गाथा - 7
(प्रवचन)

●

मानव जीवन एक मंगल कलश

19.08.2013

भिण्ड

वीतरागी देव और सरागी देव, क्षीरोदधि एवं लवणोदधि के समान
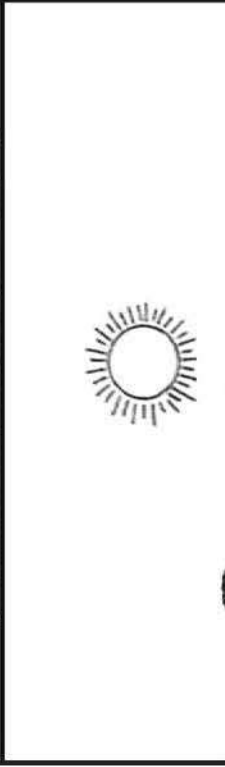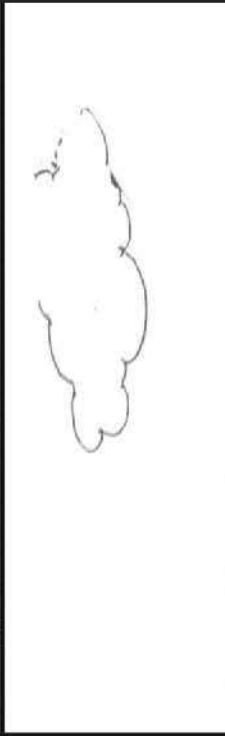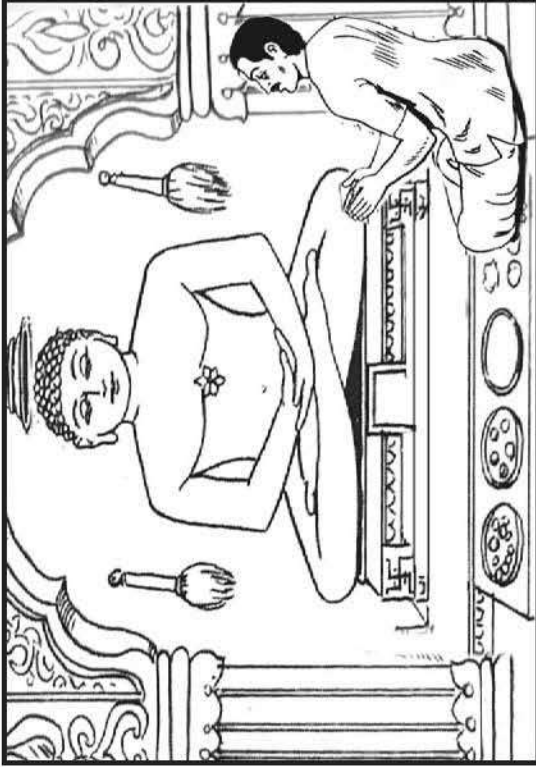
17

रयणोदय

षट्-अनायतन तजो तजो, मद छोड़ो मूढ़ता तजो।
शंका दोष व्यसन भय को, अतिचारों को तजो तजो।।
सम्यग्दृष्टि में, हो-हो-2, नहिं दोष दिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि-अनिधन जिनागम पंथ जयवंत।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है, परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जगत में रहनेवाला प्रत्येक जीवात्मा अपने जीवन को मांगलिक बनाना चाहता है। अमंगल से डरता है सुमंगल की चाह करता है लेकिन जब तक वह सुमंगल मार्ग का आश्रय नहीं करता और अमंगलों का परित्याग नहीं करता तब तक जीवन मांगलिक नहीं बनता। प्रत्येक मनुष्य का जीवन एक मंगल कलश की तरह होता है।

मंगल कलश तो आपको मिला है अब आप उसमें अमृत भरना चाहते हैं, दूध भरना चाहते हैं, या विष भरना चाहते हैं, ये आपके ऊपर निर्भर करता है जीवन तो मंगल कलश की तरह है लेकिन आज तक आपने उस मंगल कलश में क्या भरा है? इसका निर्णय आपको करना है।

कल आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव की महामंगलकारी वाणी सुनी, उन्होंने कहा था कि सम्यग्दृष्टि जीव दुखी नहीं होता है। आज गाथा नं. सात में आचार्य देव बता रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव 44 दोषों से रहित होता है वे चवालीस दोष कौन-कौन से हैं? गाथा देखते हैं-

मय-मूढ-मणायदणं, संकादि-वसण-भयमदीयारं।
जेसिं चउवालेसे, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

सम्यग्दृष्टि जीव कौन होता है? कैसा होता है? उसका आचरण निर्दोष कब होता है? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने श्री अष्टपाहुड जी में दो प्रकार के आचरण की बात कही है। एक संयमाचरण और दूसरा सम्यक्त्वाचरण। संयमाचरण निर्ग्रंथ मुनिराजों के होता है सम्यक्त्वाचरण सम्यग्दृष्टि जीवों के। वह सम्यग्दृष्टि जीव कैसे आचरण से युक्त होता है इसका कथन आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस गाथा में कर रहे हैं।

जेसिं-जिनके। **मय मूढ मणायदणं**- मद मूढ़ता और अनायतन। **संकादिवसण भयं अदीयारं**-शंकादि दोष, व्यसन, भय और अतिचार। **चउवालेसे**- ये चवालीस दोष। **ण संति**- नहीं होते हैं। **ते सद्दिट्ठी होंति**- वे सम्यग्दृष्टि होते हैं।

बंधुओ! अपने आप को सम्यग्दृष्टि मान लेना और निर्दोष सम्यक्त्वी होना दोनों में अंतर है। जब तक जीवन में दोष निहित हैं दोष बने हुए हैं तब तक निर्दोषता नहीं आती है। जबकि सम्यग्दृष्टि जीव, सच्चा श्रद्धान करनेवाला जीव इन दोषों से रहित होता है।

दोष और गुण इन दोनों में से एक समय में एक ही रह सकता है। या तो दोष बने रहें या निर्दोषता प्रगट हो। प्रगटता की अपेक्षा से दोनों में से एक समय में एक ही उपस्थित रह सकता है। सम्यग्दृष्टि जीव अगर वास्तव में सम्यक्त्व को प्राप्त है तो वह इन दोषों से रहित होगा।

किसी ने पूछा, महाराज श्री! हम कैसे जानें कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव जिनागम रूपी आइना दिखा रहे हैं कि इस आइने में देख लो तुम्हारे अंदर इस तरह के दोष

तो नहीं हैं अगर आप इन दोषों से रहित हैं और सच्ची श्रद्धा रखते हैं तो आप सम्यग्दृष्टि हैं। और यदि आप इन दोषों से सहित हैं इन दोषों में आनंद मनाते हैं तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं ऐसा जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होता है। आप फिर भी अपने को सम्यग्दृष्टि मानें यह आपकी स्वतंत्रता है लेकिन अरिहंत के मार्ग में आप सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते।

दो चींटियाँ थीं। आपस में घनी मित्रता थी। एक दिन की बात है, तूफान आया और वे दोनों चींटियाँ बिछोह को प्राप्त हो गईं। एक चींटी जैसे-तैसे अपने बचने के लिये मार्ग खोजती हुई एक सुरक्षित स्थान पर पहुँची। दूसरी चींटी भी बहुत प्रयत्न पुरुषार्थ के बाद अपनी सुरक्षा करती हुई दूसरे स्थान पर पहुँची।

योग संयोग ऐसा बना, बहुत समय के बाद दोनों चींटियों का पुनर्मिलन हुआ। वे दोनों मित्र चीटियाँ एक-दूसरे के हालचाल पूछने लगीं। जैसे कभी-कभी दो बालिकायें होती हैं आपस में घनिष्ठ मित्र होती हैं साथ पढ़ी-लिखी, बड़ी हुई और एक दिन दोनों का विवाह हो गया। दोनों ससुराल पहुँच जाती हैं। ससुराल से जब वे पुन: अपने पिता के घर लौटती हैं और दोनों का पुन: मिलन हो जाये तो पूछने लगती हैं-सखी! तुम कैसी हो? सब कुछ ठीक ठाक तो चल रहा है? और वे अपनी-अपनी कथा-व्यथा एक दूसरे को सुनाने लग जाती हैं। ऐसे ही वे दोनों चीटियाँ एक दूसरे को अपनी कथा-व्यथा सुनाने लगीं।

एक चींटी ने दूसरी चींटी से कहा-बहिन! मेरे घर चलो, वहाँ थोड़ी देर बैठकर अच्छे से फुरसत के क्षणों में एक-दूसरे से मिलकर बातें करेंगे। वह चींटी अपनी मित्र चींटी को लेकर अपने सुरक्षित स्थान पर पहुँची। अब कोई घर आयेगा तो '**अतिथि देवो भव:**' अतिथि तो देव के समान होता है। उस चींटी ने अपनी मित्र चींटी की आवभगत की और उसके आतिथ्य में उसके लिये भोजन भी परोसा। लेकिन जो उसके पास होगा वह उसी को तो परोसेगी।

वह चींटी एक नमक के स्थान पर पहुँच गयी थी। उसी का रसपान किया करती थी। उसने अपनी मित्र चींटी के लिये भी नमक का एक ढेला परोस दिया। कहा- स्वीकरोतु, स्वीकार करो। मेरे इस आतिथ्य को स्वीकारो। उस मित्र चींटी ने जैसे ही नमक का वह कण अपने मुख में लिया, तुरंत उसके मुख से निकला, ओह! ये तो बहुत खारा है। वह बोली- सखी! तुम यहाँ पर कैसे रहती हो? ये भोजन इतना बेस्वाद है तुम इसे कैसे खाती हो? उस मित्र चींटी ने कहा- अरे! तुम मेरे भोजन को बेस्वाद बताती हो इतना मीठा तो है।

ध्यान रखना, जो व्यक्ति जैसे वातावरण में रहता है उसको वैसा ही वातावरण अच्छा लगने लग जाता है।

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिं।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।।

अब आप देखिएगा, अगर कोई व्यक्ति हाउसिंग कॉलोनी में रहता हो और उसे सब्जी मण्डी में कुछ काम पड़ जाये तो वहाँ कितनी देर तक रुचिपूर्वक ठहरेगा? जैसे ही वहाँ जायेगा तो कहेगा- अरे! यहाँ तो बहुत कीचड़ है। यहाँ तो बहुत गंध आ रही है। न जाने ये लोग यहाँ कैसे बैठे रहते हैं? लेकिन जो वहाँ पर रहता हो उसके लिये कोई फर्क पड़ता है क्या? उसे तो कोई अंतर ही महसूस नहीं होता। क्योंकि उसका स्वभाव उस वातावरण में ढल चुका है।

वह चींटी कहने लगी, तुम मेरे भोजन को दोष देती हो। इतना मीठा तो है। मैंने तो अच्छे से अच्छा तुम्हारे लिये परोसा। लेकिन हो सकता है कोई गड़बड़ हो गई होगी। इसलिये उसने दूसरा ढेला लिया और कहा- बहिन! इसको छोड़ो और आप इसको स्वीकार करो। मित्र चींटी ने दूसरे ढेले को चखा। वो भी वैसा था। अब नमक तो नमक ही रहेगा। लेकिन इस बार उस मित्र चींटी ने अपने मित्र का मन रखने के लिये कुछ भी न कहा और चुपचाप थोड़ा सा खा लिया।

अब उस मित्र चींटी ने उसे अपने घर पर चलने को कहा-वह बोली- बहिन! मैंने तुम्हारा आतिथ्य स्वीकारा। अब तुम भी मुझे यह अवसर दो। मेरे साथ मेरे घर चलो। मैं जहाँ रहती हूँ वहाँ तो शक्कर ही शक्कर है। बहुत मिठास है वहाँ के भोजन में। वह चींटी सोचने लगी, मेरे भोजन से भी कुछ मीठा हो सकता है क्या? फिर भी मित्र के निमंत्रण आमंत्रण को कैसे ठुकराया जा सकता है। उसने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया और उसके पीछे-पीछे चल दी।

वह दोनों एक ऐसे स्थान पर पहुँचीं जहाँ पर शक्कर के ढेर लगे हुए थे। मित्र चींटी ने उसे बिठाया और उसके लिये भोजन परोसा। कहा- बहिन! तुम्हें जितना भी भोजन करना है तुम कर सकती हो। खूब छककर करो। यहाँ किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है। आप तो जी भरकर करो।

उस चींटी ने जैसे ही भोजन किया तो बोली-बहिन! तुम तो कह रहीं थीं यहाँ का भोजन बहुत मीठा है लेकिन मुझे तो जैसा वहाँ पर स्वाद आता था वैसा ही स्वाद यहाँ पर भी आ रहा

है। मुझे तो कहीं भी कोई भी फर्क मालूम ही नहीं पड़ता। मित्र चींटी ने कहा–बहिन! ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने वहाँ के भोजन का स्वाद लिया था उसमें तो बहुत खारापन था। लेकिन ये तो शुगर (Sugar) है। शक्कर है। ये तो बहुत मीठी होती है। वह चींटी बोली लेकिन मुझे तो वैसा ही स्वाद आ रहा है।

मित्र चींटी ने पूछा–अच्छा ये बताओ, जब तुम घर से चलीं थीं तो कुछ साथ में लायीं तो नहीं थीं? वह बोली– मैं जब घर से चली थी तो अपने साथ एक ढेला नमक का दबाकर चली थी। यह सुन मित्र चींटी बोली–अब आयी बात समझ में। अब तुम पहले एक काम करो, अपने मुख से उस नमक के ढेले को बाहर निकालो और फिर यहाँ के भोजन का स्वाद लो तब तुम्हें इस भोजन की मिठास अनुभव में आयेगी। तो मित्र चींटी ने क्या कहा? तुम अपना वह नमक का ढेला पहले बाहर निकालो।

उस चींटी ने अपने मित्र की बात मानकर तुरंत उस नमक के ढेले को बाहर निकाल दिया। और मित्र चींटी के द्वारा दिये जानेवाले शक्कर के एक दाने को अपने मुख में डाला। बोली–ओ हो! इतना मीठा। मैं तो सोच रही थी कि ये तो मेरे यहाँ के भोजन जैसे ही स्वाद वाला है। लेकिन ये तो वास्तव में बहुत मीठा है। दीदी ये तो बहुत मीठा है। अब तो मैं यहीं रहूँगी तुम्हारे साथ, अब लौटकर वहाँ नहीं जाऊँगी।

जब तक वह चींटी अपने मुख में उस नमक के ढेले को दबाये हुए थी, तब तक उसे शक्कर की मिठास का अनुभव नहीं हुआ। ऐसे ही जब तक यह जीव दोषों का परित्याग नहीं करता है, तब तक इस जीव को गुणों का अनुभव नहीं होता है।

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव बता रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव इन 44 दोषों से रहित होता है। जो इन दोषों का अनुभव करनेवाला है आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव की दृष्टि में वह सम्यग्दृष्टि नहीं है।

कैसा होता है सम्यग्दृष्टि जीव? आचार्य भगवन् कहते हैं कि वह आठ मदों से रहित होता है। मद किसे कहते हैं? नीति वाक्यामृत ग्रंथ में आचार्य सोमदेव कहते हैं–

'कुलबलैश्वर्यरूपविद्यादिभिरात्माहंकारकरणं पर प्रकर्षनिबन्धनं वा मदः ।।6-4।।'

अर्थात् जो अपने कुल, बल, ऐश्वर्य, रूप और विद्यादि के द्वारा अहंकार करना अथवा दूसरों की वृद्धि-बढ़ती को रोकना है उसे मद कहते है। कौन-कौन से होते हैं। आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी में कहते हैं-

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टा वाश्रित्य मानित्वं स्मय माहुर्गतस्मयः।।

आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठ का आश्रय करके जो अभिमान किया जाता है उसे मद से रहित महापुरुष परमेष्ठीगण मद कहते हैं।

ज्ञानमद बहुत खतरनाक होता है। व्यक्ति अपने क्षायोपशमिक ज्ञान को बढ़ाता रहता है और सोचता है मैं ज्ञानी बन गया हूँ। मुझे बहुत ज्ञान है। **यह क्षायोपशमिक ज्ञान संसार को बढ़ानेवाला भी है, घटानेवाला भी है। जब यह ज्ञान, मद (अहंकार) रूप हो जाता है तो यह संसार को बढ़ानेवाला होता है।**

अगर कोई व्यक्ति निरंतर स्वाध्याय करता है तो उसका ज्ञान बढ़ेगा। ज्ञान बढ़ने का अर्थ यह है कि उसके लिये शास्त्र की बहुत सी जानकारियाँ हुई हैं लेकिन जो अज्ञानता अंदर व्याप्त थी वह अज्ञानता अभी दूर हुई हो यह कोई जरूरी नहीं है। क्षायोपशमिक ज्ञान तो बढ़ा है, लेकिन ज्ञान बढ़ने के बाद किसी जीव को भेदविज्ञान हो गया हो ये कोई जरूरी नहीं है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं अगर भेदविज्ञान होगा तो जीव सम्यग्दृष्टि होगा। वह मद नहीं करेगा। अहंकार नहीं करेगा। क्यों? क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मदभाव से रहित होता है। कौन? निर्दोष सम्यग्दृष्टि। उसके लिये ज्ञान कितना भी प्राप्त हो जाये फिर भी वह अन्तरंग में यह विचार करता रहता है कि अभी हमारा ज्ञान बूँद मात्र है। क्यों? क्योंकि अभी मैं कैवल्यज्ञान, पूर्ण ज्ञानमय अवस्था से बहुत दूर हूँ। उस पूर्णज्ञान केवलज्ञान के सामने हमारे ज्ञान का क्या मूल्य है? कहाँ केवलज्ञान और कहाँ यह क्षायोपशमिक ज्ञान, वो भी शास्त्र से पढ़कर, किसी से सुनकर यह परोक्ष ज्ञान हुआ।

सम्यग्दृष्टि जीव कभी ज्ञान का मद नहीं करता। चाहे कितना भी ज्ञान हो जाये तो भी वह अंतरंग में इस भाव से भरा रहता है कि मेरा अभी पूर्ण ज्ञानस्वभाव प्रगट नहीं हुआ है। उसे

अपनी छद्मस्थ दशा का अज्ञानता का बोध सतत बना रहता है। अभी हमारी आत्मा में औदयिक अज्ञान व्याप्त है। अभी मैं पूर्णज्ञानी नहीं हूँ। इसलिये उसे ज्ञान का अहंकार नहीं होता है।

निर्ग्रंथ महामुनि तीर्थंकर देव दीक्षा लेते ही प्रवचन नहीं करते, बोलते नहीं, शिक्षायें नहीं देते। क्यों नहीं देते ? क्योंकि वे जानते हैं कि हमारी अभी छद्मस्थ अवस्था है। मुझे अभी पूर्णज्ञान नहीं है। मेरे द्वारा भी चूक हो सकती है स्खलन हो सकता है इसलिये वे प्रवचन नहीं करते, धर्मसभा नहीं लगाते। जब उन्हें पूर्णज्ञान हो जाता है तब उनकी सहज दिव्यध्वनि खिरती है।

हमारे, आपके लिये अगर थोड़ा सा भी शास्त्रज्ञान हो जाये तो चलने, उठने, बैठने, बोलने की सारी क्रियायें अद्भुत हो जाती हैं। बिल्कुल बदल जाती हैं। ये सोचने लग जाते हैं मैं बहुत ज्ञानी हूँ।

लेकिन ध्यान रखना, तुम अंधों में काने राजा हो सकते हो। क्या हो सकते हो? अंधों में काने राजा। जहाँ सब अंधे ही अंधे हों वहाँ अगर कोई काना व्यक्ति हो तो वह काना ही कहलायेगा पूर्ण दृष्टिवान नहीं कहलायेगा। लेकिन अंधों के सामने वो अपने आप को क्या समझता है कि मैं बहुत श्रेष्ठ हो गया, महान हो गया। नहीं भैया! आचार्य भगवंत कहते हैं, तीर्थंकर वाणी कहती है कि सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी अपने ज्ञान का मद नहीं करता। विद्या का अहंकार अभिमान नहीं करता अपितु विनम्र स्वभावी होता है। कहा जाता है–

'विद्या ददाति विनयं'

विद्या किसको देती है? विनय को देती है कि अकड़ को देती है? विद्या, ज्ञान हमेशा विनय को देता है। विनम्रता को देता है। जो व्यक्ति जितना अधिक ज्ञानी होता चला जायेगा। कौन सा ज्ञानी? सम्यग्ज्ञानी वास्तविक ज्ञानी। जो व्यक्ति जितना वास्तविक ज्ञानी होगा वह उतना ही विनम्र होगा। जो व्यक्ति कोरा ज्ञानी होगा वह विनम्र नहीं होगा। विनयगुण मार्दव गुण से रहित होगा। वह अहंकार, मान कषाय से सहित हो सकता है, लेकिन ज्ञान के विद्या के फल को प्राप्त नहीं हो सकता।

'विद्या ददाति विनयं'

विद्या क्या देती है? विनय देती है। अगर किसी ज्ञानी प्रबुद्ध पुरुष के पास कोई व्यक्ति पहुँच जाये और कहे आप तो बहुत श्रेष्ठ हैं। आप तो बहुत ज्ञानी हैं। तो वह तुरंत अपने आप को निहारता है कि अहो! कहाँ तो मेरा वह पूर्णज्ञान स्वभाव और कहाँ ये प्रगट थोड़ा सा ज्ञान। तुरंत अपने आपको पहचान लेता है। फिर कहता है भैया! मुझमें कोई विशेष ज्ञान नहीं है मैंने जिनवाणी के शास्त्रों के माध्यम से अपनी छद्मस्थ दशा में शक्त्यानुसार थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त किया है। अभी तो मुझे बहुत पुरुषार्थ, प्रयास करना है। अपनी आत्मा के पूर्ण कैवल्यज्ञान स्वभाव को प्रगट करना है।

कैवल्यज्ञान की ज्योति अब है जलानी।
उसके बिना कहूँ कैसे खुद को मैं ज्ञानी?

ध्यान रखना! ज्ञानी जीव अहंकारी नहीं मिलेगा। और जो अज्ञानी है, मात्र शाब्दिक ज्ञान शास्त्रीय ज्ञान को अर्जित करता है, उसके अन्तरंग में वास्तविक ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं होता। वह कैसा हो जाता है? ज्ञान के मद को प्राप्त हो जाता है। दूसरों की परीक्षा करना सरल है अपने ज्ञान से अपनी परीक्षा करना सरल नहीं। व्यक्ति दूसरों की परीक्षा अपने ज्ञान से ले सकता है लेकिन अपने ज्ञान से अपनी परीक्षा नहीं करता तो वह वास्तविक ज्ञानी नहीं है। सच्चा ज्ञानी जीव स्वभाव से स्व की परीक्षा करता है। वह सोचता है मुझे अपना परिचय प्राप्त करना है। अपने यथार्थस्वरूप को जानकर उस रूप होना है। स्वभाव को जानकर स्वभावमय होना है। सोचो, जो ज्ञान अर्जित किया है वह अपने लिये किया है या दूसरों के लिये किया है। व्यक्ति आइना खरीदता है किसके लिये खरीदता है? अपने लिये या दूसरों को दिखाने के लिये? अपना चेहरा देखता है या दूसरों से कहता है कि देख अपना चेहरा? व्यक्ति अपने घर में जो आइना लगाता है वह अपना चेहरा देखने के लिये लगाता है। दूसरों को उनका चेहरा दिखाने के लिये कोई आइना नहीं खरीदता।

आचार्यों ने सम्यग्ज्ञान को दर्पण कहा है। वे कहते हैं ज्ञान दर्पण में अपने चेहरे को देखो। अपने ज्ञान से कभी दूसरों का चेहरा दिखाने का प्रयास मत करना अपितु अपने को निहारना, कहीं हमारे चेहरे पर अहंकार की कालिमा तो नहीं छा रही है। दर्प का, अभिमान का प्रतीक होता है काँच का दर्पण। आप दर्पण किसलिये उपयोग करते हो? अपना चेहरा देखते हो। मन में भाव आते हैं, अब मैं सुंदर लग रहा हूँ। मेरे जैसा सुंदर तो कोई नहीं। यह क्या है? यही

अभिमान है मद है। रूप का आश्रय मद बढ़ाता है। अहंकारी बनाता है। स्वरूप का आश्रय निर्मद बनाता है। निरहंकारी बनाता है। काँच का वह दर्पण अभिमान को पैदा कराता है और सम्यग्ज्ञान रूपी दर्पण में तू अपना चेहरा देखेगा तो अहंकार नहीं मार्दव गुण का विकास होगा।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं सम्यग्दृष्टि जीव, जिसे अपने आत्मा के स्वभाव का श्रद्धान हुआ, वह अहंकाररूपी विभाव का आश्रय लेने का इच्छुक होता ही नहीं। यदि वह ज्ञान के अहंकार को उपलब्ध हो रहा है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस जीव ने अपने आत्मा के स्वभाव को अभी पहचाना ही नहीं।

आचार्य भगवन् मानतुंग स्वामी 'श्री भक्तामर स्तोत्र जी' में कहते हैं-

पीत्वा पयः शशिकर-द्युति दुग्ध सिन्धोः।
क्षारं जलं जल-निधे रसितुं क इच्छेत्।।

जिसने क्षीरसागर के जल का रसपान कर लिया हो क्या फिर वह लवणोदधि का खारापानी पीने की इच्छा करेगा? नहीं करेगा। क्यों, सागर तो दोनों हैं? लेकिन एक क्षीरसागर है जिसका नीर मीठा है और एक लवणसागर है जिसका नीर खारा है। इसीप्रकार एक ओर आत्मा का मार्दव स्वभाव है और दूसरी ओर मान विभाव है। हैं दोनों आत्मा के। अंतर इतना है कि एक स्वभाव है और दूसरा विभाव है। जिसने भी एक बार इस आत्मा के यथार्थ स्वभाव को जान लिया पहिचान लिया, शुद्ध आत्मा का निर्णय कर लिया वह ज्ञानी जीव फिर कभी विभाव को छूने की इच्छा नहीं करता। इसलिये जहाँ ज्ञान है वहाँ अहंकार नहीं और जहाँ अहंकार है वहाँ ज्ञान नहीं।

'सम्यक् कारण जान ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होतैं हू प्रकाश दीपक तैं होई।।'

छहढालाकार पं. दौलतराम जी कहते हैं कि सम्यक्त्व की प्राप्ति होते ही इस जीव के लिये सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। सम्यग्ज्ञान यदि कार्य है तो उसमें कारण सम्यग्दर्शन ही है। जिसप्रकार दीपक की लौं का प्रज्ज्वलित होना और प्रकाश का फैलना दोनों में कार्य-कारण संबंध है, फिर भी एक साथ युगपत् होते देखे जाते हैं उसीप्रकार सम्यक् श्रद्धा का दीप जलते ही मिथ्याज्ञान रूपी अंधकार हट जाता है और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव का जीवन सम्यग्ज्ञान के प्रकाश से आलोकित रहता है। उसे अहंकार नहीं होता। क्यों? क्योंकि अहंकार तो अज्ञानभाव है विभाव है। और कदाचित् कोई अपने ज्ञान का अभिमान करने लग जाये तो समझ लेना इसकी रुचि अभी विभाव में है। अभी इसे अपने स्वभाव में रुचि नहीं है। जबकि सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा गया है–

'आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।'

आत्मस्वभाव में रुचि होना ही सम्यग्दर्शन है। आचार्य भगवंतों ने इस रुचि को ही सम्यक्त्व कहा है। और स्वभाव में रुचि रखनेवाला कभी विभाव का पोषण, सम्मान नहीं करता। उसमें आनंदित नहीं होता। अपितु अपने अंतस में भावना भाता है कि मैं अपनी आत्मा के सहज निर्मद स्वभाव को प्राप्त करूँ। इस अभिमान से मुक्त हो जाऊँ। और संसार के सभी जीव भी अभिमान से मुक्त हो जायें। यह सम्यग्दृष्टि जीव की करुणा होती है।

तो सम्यग्दृष्टि जीव आठ मदों से रहित होता है। सबसे पहला मद, ज्ञान का मद। थोड़ा सा ज्ञान हुआ अहंकार करना सीख लिया। क्या मिला तुम्हें? यह कार्य तो सभी करते आ रहे हैं अनादि से। आपने कोई महान कार्य नहीं किया। महान कार्य तो यह होता कि आपको ज्ञान हुआ और आपमें विनम्रता आ गयी। आपमें सहजता शालीनता आ गई। यह होता महान कार्य। ज्ञान का फल गुणानुभव है।

'पूजा' पूजा का मद सम्यग्दृष्टि जीव को नहीं होता। किसी ने सम्यग्दृष्टि जीव के लिये किसी कार्य में आगे-आगे रख लिया, तो वह कार्य तो करेगा लेकिन अभिमान नहीं करेगा। किंतु कोई ऐसा सोचने लग जाये कि मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। मुझे इतना सम्मान मिलता है। मेरी इतनी प्रतिष्ठा है। अपने आप में अभिमान होना कि मेरा सब बहुत सम्मान करते हैं इतना सत्कार होता है। हर बात हर कार्य मुझसे पूछ कर किया जाता है। अरे! अगर वे तुमसे पूछते हैं और तुम्हारे लिये इतना सम्मान देते हैं तो ये उनका गुण है लेकिन तुम उस सम्मान का अभिमान करते हो तो ये तुम्हारा अवगुण है। सम्यग्दृष्टि को इसतरह के सम्मान का कोई अभिमान नहीं होता है।

हूँ सर्वश्रेष्ठ सब मेरे आगे हैं झुकते।
समदृष्टि ऐसा प्रभुता का मद न धरते।।

कुलं, कुल का अभिमान। हमारे पिता इतने बड़े समाजसेवी हैं। हमारे कुल में ऐसे-ऐसे महान पुरुष हुये हैं। अरे भाई ! तेरे कुल में महापुरुष हुए हैं। तुम बताओ तुम कितने महान हो? लेकिन व्यक्ति अपनी महानता को नहीं पहचानता। अपने कुल में पिता, दादा, परदादा जो भी हुये, उनकी स्मृतियाँ सँजो-सँजोकर अभिमान करता रहता है। अरे! मैं कोई ऐसा-वैसा थोड़े ही हूँ। ऐसे बड़े खानदान का हूँ। अरे! न खान रहेगा, न दान रहेगा, न तेरा खानदान रहेगा। इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं। सब कुछ नाशवान है। जिन पर तू अभिमान करता है जब वो न रहे, तो तेरा अभिमान कब तक रहेगा? सम्यग्दृष्टि जीव को अपने कुल का अभिमान नहीं होता। वह तो अपने आप को भगवान अरिहंत के चरणों में समर्पित कर देता है और अपने आप को धन्य मानता है कि मैंने जैनकुल में अरिहंत के कुल में जन्म पाया। अगर वह जीव कुल का अभिमान करने लगे तो वह कभी सम्यक्त्वी नहीं बन सकता। उसकी दृष्टि समीचीन हो ही नहीं सकती।

जातिं, पिता के पक्ष में तो कोई इतने महापुरुष नहीं हुए लेकिन माता के परिवार में, नाना-मामा आदि बहुत महान महान हुये। किसी के मामा सांसद हो गये। अरे मैं उनका भांजा हूँ, मुझे अभी पहचानते नहीं हो। हमारे मामा फलाने-फलाने सांसद हैं। अरे! वे सांसद हैं लेकिन तू कौन है? तू चायपान की तो दुकान करता है और अभिमान कर रहा है मामा की सांसदी का। सम्यग्दृष्टि जीव के मातृपक्ष में अगर कोई ऐसे श्रेष्ठ पदों पर पहुँचे हुए लोग हैं तो उसे उनका भी अभिमान नहीं होता है।

'पिता भूप वा मातुल नृप जो होय न तो मद ठाने'

बलं, सम्यग्दृष्टि जीव शरीर के बल का अभिमान नहीं करता। क्यों? क्योंकि वह जानता है यह बल नाशवान है। वह अपनी अनंतबल स्वभावी आत्मा का श्रद्धान तो करता है लेकिन इस देह के तुच्छ बल का अभिमान नहीं करता। शरीर का बल तो पराश्रित है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर रहता है। भोजन पर निर्भर करता है। दो रोटियाँ भी तुम्हारे बल को ठिकाने लगा सकती हैं। तुम दो रोटियों से हार जाओगे इतना बल है तुम्हारे शरीर का। लेकिन फिर भी इस जगत में शरीर के बल का अभिमान करनेवाले लोग मिल ही जाते हैं क्योंकि या तो जानते ही नहीं अथवा जानते भी हैं तो भूल जाते हैं कि इस शरीर का स्वभाव क्या है?

सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।।

इस संसार का नियम है कि जो भी सबल होता है वह निर्बल को दबाता है। कभी निर्बल सबल हो जाता है तो कभी सबल निर्बल हो जाता है। और संसार का चक्र चलता रहता है। लेकिन जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है, वह निर्बलों पर अपना बल नहीं आजमाता। अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करता, इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव तीनों लोकों में श्रेष्ठ होता है। जगत के क्रियाकलापों से बिल्कुल पृथक् सम्यग्दृष्टि का आचरण दिखायी देता है वह करुणाभाव से अपने बल का सदुपयोग निर्बलों के हित में करता है वह बल का अभिमान नहीं करता क्योंकि जानता है देह का बल क्षणिक है। एक रोग बीमारी लगे जाये, अच्छे-अच्छे पहलवान भी बिस्तर पर पड़े दिखायी देते हैं। जिन्होंने बड़ी-बड़ी जंग जीतीं हों, अंत समय में वे भी मृत्यु से जूझते दिखायी देते हैं। इसलिये ज्ञानी जीव कभी देह के बल का अभिमान नहीं करते।

ऋद्धिं, किसी आदमी के पास अगर चार पैसे हो जायें तो सीना चौड़ा हो जाता है। लेकिन वह यह नहीं जानता कि यह संपदा साथ रहनेवाली नहीं है। धोखा दे जायेगी, छोड़ जायेगी, यहीं रह जायेगी। बड़े-बड़े राजा हुए, उन्हें भी दूसरों के सामने हाथ फैलाते देखा गया। हरिश्चन्द्र का नाम तो सुना ही होगा। एक राजा थे हरिश्चन्द्र, जो सदा सत्य बोलते थे। अपने सत्य धर्म के पालन में सदा तत्पर रहते थे। अपने धर्मपालन के लिये उन्होंने अपना सारा राजपाट दान कर दिया। इतना बड़ा राजा और ऐसी परिस्थिति खड़ी हो गई कि शमशान भूमि का टेक्स (Tax) लेनेवाला नियुक्त किया गया।

विचार करना! कहाँ तो सम्राट का वैभव और कहाँ यह अवस्था। कहाँ तो उसकी पटरानी राजरानी और कहाँ फटी हुई साड़ी पहनकर एक नौकरानी का जीवन जी रही है। बंधुओ! इस ऋद्धि का, ऐश्वर्य का, वैभव का कोई ठिकाना नहीं है। इसलिये कभी भी इसका अभिमान नहीं करना चाहिये। अपितु समय रहते धन संपदा का सम्मान कर लेना चाहिये।

धन का सम्मान क्या है ? धन का सम्मान धर्म क्षेत्र में लगने से होता है। वह धन धर्म और धर्मात्माओं के संरक्षण में काम आ जाये। किसी गरीब असहाय निर्बल के काम आ जाये तो समझो तुम्हारे धन का सम्मान हो गया। धनपतियों का यह कर्तव्य है कि वे

अपने से हीन गरीबों का रक्षण करें, संरक्षण करें। लेकिन कोई यदि धन का, ऐश्वर्य का, ऋद्धि का अभिमान करे तो वह मूर्ख सम्यक्त्वहीन हो जाता है। इसलिये कहा है–

'न दीवाना हो पुद्गल का, बुलबुला है ये तो जल का।'
छूटे न धर्म शरण, ओ आत्मा!

तपो, तप का अभिमान। सम्यग्दृष्टि जीव तप के मद से रहित होता है। **वपु**, शरीर के सौन्दर्य का अभिमान सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। अगर कोई अपने शरीर के सौन्दर्य को देखकर अभिमान करता है वह जीव अपने सम्यक्त्व को मलिन करता है दोष लगाता है ऐसे लोगों के लिये कहा गया कि–

दर्पण तोड़े कई हजार।
नहीं दर्प में आई दरार।।
सुंदर रूप मिला इतराया,
निज स्वरूप को समझ न पाया।
रूप-हीन को लज्जित करके,
मन ही मन फूला न समाया।
अहंकार के कारण मानव,
पढ़ लिखकर भी रहा गँवार।समर्पण के स्वर

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं ऐसे-ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव हुए हैं, जिन्होंने शरीर की सुंदरता को सदैव तुच्छ समझा, अभिमान नहीं किया। और एक सामान्य सा आदमी कितना अभिमान करता है अपने शरीर के रूप को देखकर। कहाँ वे शलाका पुरुष महापुरुष जिनका शरीर स्वभाव से सुंदर होता है बलवान होता है सुगंध युक्त होता है और **एक सामान्य आदमी का शरीर नानाप्रकार की सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्रियाँ शरीर पर पोत-पोतकर लीप-लीपकर सुंदर दिखाई देता है। यह बताओ वह सुंदरता तुम्हारे चेहरे की है या उस वस्तु की। रोटी पर अगर घी लगा दिया जाय तो स्वाद किसका आता है रोटी का या घी का? स्वाद तो घी का है। ऐसे ही चेहरे पर अगर तुमने सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री का इस्तेमाल किया है तो वह सुंदरता तुम्हारे चेहरे की नहीं है।** अभिमान किसका कर रहे हो?

आदमी कहता है कि मैं सुंदर लग रहा हूँ मेरा चेहरा कितना सुंदर है। अरे भाई! तेरा चेहरा तो जैसा है वैसा ही है उसमें तो कोई सुंदरता नहीं आई। अगर कोई फेयर एंड लवली (Fair & Lovely) लगा कर सोचे कि अब मैं बहुत सुंदर हो गई हूँ। अगर इससे ही तुम्हारे चेहरे पर सुंदरता आती है तो काली कलूटी भैंस को लगा के देख लो वो भी सुंदर हो जायेगी। हो जायेगी कि नहीं हो जायेगी? कभी लगा के तो देखना।

अरे भाई! पुण्य आत्माओं को जिन्हें सहज अतिशय सुंदर रूप मिला है वे भी रूप का अभिमान नहीं करते और तुम्हें तिल मात्र सुंदर रूप क्या मिल गया तुम उसका इतना अभिमान करते हो। 50 साल, 60 साल, 70 साल के हो जाओगे तब बताना कि तुम्हारा वह सौन्दर्य कहाँ पलायन कर गया।

एक माँ अपने बेटे के साथ अपना संदूक खोलकर देख रही थी। उसने संदूक में से एक एलबम (Album) निकाला और उसे देखने लगी। पास में बेटा बैठा था, उसने कहा–माँ! माँ! मैं भी देखूँगा। माँ बोली देख ले बेटा। और वह बेटा एलबम (Album) देखने लगता है। एक फोटो में उसकी माँ के साथ एक आदमी बगल में खड़ा हुआ था। उसने पूछा-माँ ये अकंल (Uncle) कौन हैं? तो माँ ने कहा–बेटा! ये तुम्हारे पापा हैं। बेटा बोला–माँ अगर ये पापा हैं तो घर में जो गंजे सिरवाले आपके साथ रहते हैं वो कौन हैं? माँ ने कहा-'बेटा पहले तुम्हारे पापा पच्चीस साल के थे, तब ऐसे दिखते थे। अब वे ही 75 साल के हो गये हैं। इसलिये आज तुम्हें ऐसे दिखायी दे रहे हैं। बेटा! समय के साथ शरीर की सुंदरता भी खोती चली जाती है।'

रूप का मद करनेवाला जीव अज्ञानी है। यहाँ रूप ढल रहा है। फिर भी व्यक्ति अपने रूप का अभिमान करता है। वर्तमान में भी अतीत को निहारता है कहता है–जब में 25 साल का था तब ऐसा लगता था। मेरी सुंदरता के आगे सब पानी भरते नजर आते थे। अरे तब तू ऐसा लगता था लेकिन जरा अब तो देख ले। अब तू कैसा लग रहा है।

सम्यग्दृष्टि जीव सदा यथार्थस्वरूप पर दृष्टि रखता है वह जानता है कि इस देह का स्वरूप क्या है। वह देह के प्रति ऐसी दृष्टि रखता है–

अपवित्रमिदं गात्रं विण्मूत्रादि मलाविलम्।
क्षयि न्यक्षोग्र रोगादि पीडानीडं जडात्मकम्।।सर्वो.।।

वह विचार करता है कि यह शरीर कैसा है? अशुचि है अपवित्र है और कैसा है? विष्ठा मूत्र आदि सप्त कुधातुओं से मलिन है। और कैसे स्वभाव वाला है? नश्वर है और इन्द्रिय संबंधी भयंकर रोगादि की पीड़ा का स्थान है। तथा जड़रूप है अचेतन है।

'नव द्वार बहें घिनकारी असि देह करे किमि यारी'

इसलिये वह ऐसे शरीर का रूप का अभिमान नहीं करता है।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व में दोष पैदा करनेवाले इन आठ प्रकार के मदों से सदैव दूर ही रहता है। क्यों? क्योंकि वह जानता है कि विनय ही मोक्ष का द्वार है। शुद्ध सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का आधार है। सम्यग्दृष्टि जीव इसलिये प्रयत्नपूर्वक अपने सम्यक्त्व की रक्षा करता है।

और कैसा होता है सम्यग्दृष्टि जीव? तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि वह मूढ़ताओं से रहित होता है। भगवान अरिहंत देव ने तीन प्रकार की मूढ़ताएँ बतलायी हैं, लोक मूढ़ता, गुरु मूढ़ता और देव मूढ़ता।

लोक मूढ़ता का अर्थ होता है-

आपगा-सागर-स्नान-मुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्नि-पातश्च लोकमूढं निगद्यते।।22।।

नदी में स्नान करने से हमारे सब पापकर्म धुल जाते हैं सागर में डुबकी लगा लेने से आत्मा को मोक्ष मिल जाता है ऐसी मान्यता मूढ़ जीवों की होती है। अगर ऐसे ही पाप धुलने लग जायें। मोक्ष मिलने लग जाये। तो सबसे पहले मोक्ष मछली, कछुआ, मगर और गोताखोरों को हो जायेगा। लेकिन ऐसा देखा नहीं जाता है। मूढ़ लोगों के द्वारा प्रचलित की गयी यह एकमात्र मिथ्या मान्यता है। सम्यग्दृष्टि जीव इसप्रकार की मूढ़ता से भ्रमित नहीं होता। एक किवदंती है- कहते हैं कि एक बार पांडवों को गंगा में स्नान करने की सूझी। उन्होंने श्रीकृष्ण से भी निवेदन किया कि आप भी हमारे साथ गंगा स्नान को चलें। हम सबकी आत्माएँ पवित्र हो जायेंगी। श्री कृष्ण ने कहा भाइयो! मैं तो तुम्हारे साथ नहीं चल पाऊँगा लेकिन तुम यह तुंबी मेरी तरफ से ले जाओ और गंगा में स्नान करा लाना।

पांडव जब गंगा स्नानकर लौटकर आये तब बड़े उत्साहपूर्वक श्रीकृष्ण से मिलने पहुँचे। उनके लिये वह तुंबी देते हुए कहा कि यह लीजिये आपकी तुंबी। हमने तीन-तीन बार इसे गंगा में डुबकी लगवाई। श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए बोले-अरे वाह! अब तो आप सबके लिये प्रसाद रूप में इसी तुंबी को परोसा जायेगा। जैसे ही पांडवों ने तुम्बी का प्रसाद खाना प्रारंभ किया, तुरंत ही थूकना शुरु कर दिया। श्री कृष्ण ने पूछा, क्यों भाई! क्या हुआ आप लोगों को? पांडव बोले-यह तुंबी तो बहुत कड़वी है। तब श्री कृष्ण बोले-भो भोले पांडवो! गंगा में स्नान कराने से जब इस तुंबी की कड़वाहट दूर न हो पाई तो अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म स्नान मात्र कर लेने से कैसे दूर हो सकते हैं? अर्थात् नहीं। इसलिये आत्मा को शुद्ध करना है तो संयम रूपी गंगा में स्नान करो। शुद्धात्म ध्यान की डुबकी लगाओ। निर्मल परमानंद को प्राप्त हो जाओगे।

श्री कृष्ण की बातें सुनकर पांडवों को बोध प्राप्त हुआ और अपनी भूल का अहसास हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव इस प्रकार की भ्रान्तियाँ जो लोक में फैली हुई हैं उनमें नहीं फँसता है। नहीं उलझता है।

'उच्चयः सिकताश्मनाम्'

बालू अथवा पत्थरों का ढेर लगाकर उनकी पूजा आदि कर मन्नतें आदि माँगना यह भी लोक में अत्यंत प्रचलित मूढ़ता है। अज्ञानी मूढ़ लोगों को अपनी स्वार्थपूर्ति से मतलब होता है। नदी में पत्थर फेंकना, किसी स्थान विशेष पर तिथि विशेष में पत्थरों को फेंकना, उनकी पूजा करना, गोबर, कीचड़ आदि फेंकना उनकी पूजा करना, धर्म मानना, यह सब मूढ़ता है।

एक सज्जन सुबह-सुबह सैर के लिये निकलते थे। रास्ते में पड़े पत्थरों से वे बड़े परेशान रहते क्योंकि अक्सर वे उन पत्थरों से टकरा जाते थे। एक दिन उन्हें फिर ठोकर लगी तो उन्होंने सोचा, क्यों न इन पत्थरों को ही यहाँ से हटाने का इंतजाम कर दिया जाये। उन्होंने अपने दोनों हाथों से पत्थर उठाया और एक वृक्ष के नीचे रख दिया। इतने में उनका कोई परिचित वहाँ से निकला। उसने उन्हें ऐसा करते देख पूछ लिया, भाईसाहब! आप यह क्या कर रहे हो? सज्जन बोले- भैया! क्या तुम नहीं जानते यह बहुत चमत्कारी वृक्ष है यहाँ पर जो भी अपने हाथों से सिर पर रखकर पत्थर चढ़ाता है तो उसकी हर मनोकामना तुरंत ही पूर्ण होती है। यह सुनकर वह बोला, अच्छा ये तो आपने बहुत अच्छी बात बताई। अब तो वह भी रास्ते से पत्थर-

उठाकर वहाँ चढ़ाने पहुँच गया। वह व्यक्ति बोला भैया! सात दिन तक रोज ऐसा करना और सात लोगों को और इन पत्थर वाले बाबा की महिमा बतलाना, तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा। यह सुन वह बोला–अच्छा भाईसाहब! मैं ऐसा ही करूँगा। आपका बहुत भला हो। और इसतरह उस मार्ग के सभी पत्थर साफ हो गये किंतु लोगों की बुद्धि में मूढ़ता रूपी पत्थर घर कर गये।

'गिरिपातोऽग्नि पातश्च'

पर्वत से कूदना, अग्नि में जलकर मर जाना, यह भी मूढ़ता है। किसी स्थान विशेष से पर्वत से गिरकर कोई अपने प्राण देता है तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है ऐसी मूढ़ अज्ञानी जीवों की मान्यता होती है। पति के मर जाने पर पत्नी का भी उसी के साथ चिता पर लेटकर मर जाना, सती कहलाना यह कोई धर्म नहीं है अपितु एक कुरीति है कुप्रथा है अत्याचार है। कोई स्त्री मरना न चाहे फिर भी धर्म का नाम लेकर उसे जबरन आग में झौंक देना यह प्रथा धर्म नहीं अपितु एक अभिशाप है। ऐसे–ऐसे यज्ञों का आयोजन करना जिसमें स्वार्थी लोग निरीह पशुओं को जलती अग्नि में होम देते हैं और स्वर्ग का प्रलोभन देकर मनुष्यों को भी अपने जाल में फँसाकर जलती हुई ज्वाला को देव मान समर्पित कर देते हैं। यह सब मूढ़तायें हैं।

अपने शरीर पर भार लाद–लादकर यात्रा पर निकलना, शरीर का छेदन–भेदन करवाना, धागे बाँधना, कपड़े बाँधना, सिर मुड़ाना, पत्थर पूजना, आले पूजना, देहरी पूजना, चादरें चढ़ाना, यह सब क्या है? यह सब लोक में मूढ़ अज्ञानीजनों के द्वारा प्रचलित की गई मान्यताएँ हैं मूर्खताएँ हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव विवेकी होता है वह एकमात्र सच्चे देव शास्त्र गुरु के द्वारा बतलाये गये मार्ग का अनुसरण करता है। वह इन समस्त अंधविश्वासों से दूर रहता है। देवमूढ़ता, आचार्य भगवन् समंतभद्रस्वामी कहते हैं–

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेष मलीमसाः।
देवता यदुपासीत् देवता मूढ़ मुच्यते।।23।।

अपने इच्छित फल की प्राप्ति हेतु रागद्वेष से युक्त देवी देवताओं की उपासना करना देव मूढ़ता कहलाती है।

यह मूढ़ता आज सर्वत्र बहुलता से दिखायी दे रही है। क्यों? क्योंकि मानव अपने मार्ग से लक्ष्य से च्युत होता जा रहा है।

सांसारिक भोगों की प्राप्ति ही सर्वोपरि होती जा रही है। इसलिये सच्चे आप्त का स्वरूप जानकर हमें इस मूढ़ता से बचना चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीव सच्चे देव का दृढ़ श्रद्धानी होता है। जिनमत का दृढ़ श्रद्धानी होता है। रानी रेवती की तरह सम्यग्दृष्टि जीव अकाट्य श्रद्धावान् होता है। गुरु मूढ़ता के विषय में आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

सग्रंथारंभ हिंसानां संसारावर्त वर्तिनाम्।
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम्।।24।।

सच्चे गुरु का क्या स्वरूप होता है इसका कथन पहले किया जा चुका है। ऐसे सच्चे गुरु को न मानकर आरंभ-परिग्रह से सहित कुगुरु, जो संसार में ही सतत् भटकते रहनेवाले हैं, उनका सम्मान करना, आदर सत्कार करना, गुरु मूढ़ता कहलाती है।

लोग ऐसी गुरु मूढ़ता में फँसकर प्रारंभ में तो उनके आकर्षण जाल में बँध जाते हैं और जब बाद में उनका असल रूप सामने आता है तो मात्र माथा ठोकते रह जाते हैं। कुछ पाने की चाहत में वे अपना सब कुछ गँवा बैठते हैं। ऐसे मूढ़ अज्ञानीजन गुरु के स्वरूप को न पहचानने के कारण दुख भोगते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव इन तीनों प्रकार की मूढ़ताओं से रहित होता हुआ सच्चे देव, सच्चे गुरु व सच्चे धर्म की आराधना में अपने चित्त को लगाता है। इस तरह सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यग्दर्शन को इन मूढ़ताओं से मलिन होने से बचाता है।

और कैसा होता है वह सम्यग्दृष्टि जीव? आचार्य भगवन् कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव छह अनायतनों के सेवन से सदा दूर ही रहता है। कहते हैं-

कुगुरु, कुदेव, कुवृष सेवक की नहि प्रशंस उचरै है।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करै है।।

कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और उनके सेवक अथवा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र व उनके धारक ये षट् अनायतन कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव इन छहों की उपासना से दूर रहता है।

जिनागम में सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार कहे गये हैं जो कि सम्यग्दर्शन रूपी मूल को कमजोर बनाते हैं उसके स्वरूप में मलिनता लाते हैं इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव इन पाँचों ही अतिचारों को दूर से ही छोड़ देता है ये पाँच अतिचार कौन-कौन से हैं तो आचार्य भगवन् उमास्वामी एक सूत्र के माध्यम से उन पाँचों ही अतिचारों का कथन करते हुए कहते हैं-

शंकाकांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टे-रतीचाराः ।।7/23।।

अर्थात् शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्य दृष्टि संस्तव ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं।

सम्यग्दर्शन के निःशंकित आदि आठ अंगों का वर्णन पहले किया जा चुका है। अब आपका समय हो चुका है इसलिये इन शंकादि पाँच अतिचारों का संक्षेप में स्वरूप बतला रहे हैं।

शंका- दर्शनमोहनीय कर्म के उपशमादि में सर्वज्ञदेव द्वारा कहे गये तत्त्वों की, वस्तुस्वरूप की श्रद्धा करते हुए भी ज्ञानावरण कर्म के उदय से जो संदेह रूप प्रतीति होती है कि 'यह है अथवा नहीं' यह शंका नामक अतिचार है। इससे सम्यग्दर्शन मलिन होता है।

इसलिये अपनी बुद्धि के मंद होने से, सद्गुरु अथवा किसी अच्छे साधर्मी का सान्निध्य न मिल पाने से, पदार्थ के सूक्ष्म होने से, यदि कोई छोटी बात भी समझ में न आती हो तो सम्यग्दृष्टि जीव को उसमें शंका नहीं करनी चाहिये अपितु सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत आगम को ही प्रमाण मानकर उसका श्रद्धान करना चाहिये कि जैसा सर्वज्ञदेव ने कहा है वस्तुस्वरूप वैसा ही है न अन्य है न अन्य प्रकार से है यह शंका अज्ञानमूलक होती है। श्रद्धान मूलक नहीं।

कांक्षा- ज्ञानावरण कर्म के उदय से सम्यग्दृष्टि जीव के हृदय में सांसारिक सुखों की भोगों की जो चाह उत्पन्न हो जाती है। यही चाह सम्यग्दर्शन को मलिन करती है, कांक्षा-नामक अतिचार कहलाती है।

'यदि मेरे सम्यक्त्व में, तप में, माहात्म्य है तो मैं देव बनूँ, विद्याधर होऊँ, यक्षेन्द्र-नागेन्द्र बनूँ, इस अपार वसुंधरा का स्वामी बनूँ, अपार शक्तिशाली बनूँ' इस प्रकार की इच्छाएँ सम्यग्दृष्टि जीव को नहीं करना चाहिये। यदि कोई सम्यग्दृष्टि जीव अर्थ पुरुषार्थ के द्वारा धन-

धान्य अर्जन करने की इच्छा करता है तो वह इच्छा उसके सम्यक्त्व में अतिचार नहीं लगाती है।

विचिकित्सा– 'मुनि तन मलिन न देख घिनावे'

रत्नत्रय के साधन स्वरूप किंतु सप्तकुधातुओं से भरे, अपवित्र शरीर आदि में अथवा किन्हीं रत्नत्रय धारी मुनिराज के अशुभ कर्मजनित शारीरिक विकार आदि को देखकर हृदय में घृणा-ग्लानि का भाव आ जाना विचिकित्सा नामक अतिचार है।

सम्यग्दृष्टि जीव शरीर के स्वभाव का चिंतन तो करता है किंतु उसके प्रति घृणा अथवा ग्लानि का भाव नहीं लाता अपितु धर्म साधना में तत्पर होता है। इससे विपरीत प्रवृत्ति विचिकित्सा नामक अतिचार कहलाता है।

अन्यदृष्टि प्रशंसा तथा अन्यदृष्टि संस्तव। जिनमत के अलावा अन्य मतों की व उनके अनुयायियों की प्रशंसा, स्तुति, भक्ति करना यह सम्यग्दर्शन के अन्यदृष्टि प्रशंसा व अन्य दृष्टि संस्तव नामक अतिचार हैं। सम्यग्दृष्टि कैसा होता है– **'तत्त्व कुतत्त्व पिछाने'**।

सम्यग्दृष्टि जीव दृढ़ तत्त्वश्रद्धानी होता है। भगवान जिनेन्द्र के द्वारा कहे गये सात तत्त्व, नव पदार्थों का, उनके स्वरूप से ज्ञानकर, जानकर, अतत्त्व को हेय पहचानकर, समीचीन धर्म का श्रद्धान करता है। जिनमत को ही एकमात्र मुक्ति का आधार मानता है। अन्य मतों की व अन्य मतावलंबियों की प्रशंसा, स्तुति आदि को संसार का कारण मानता है। कभी अज्ञानतावश सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व में इसप्रकार के अतिचार लग जाते हैं। आचार्य भगवंतों ने सम्यग्दर्शन की रक्षा करने के लिये एवं शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने के लिये इन अतिचारों से दूर रहने के लिये अतिचारों का बोध कराया है। सम्यग्दृष्टि इन समस्त दोषों को जानकर बुद्धिपूर्वक उन्हें छोड़ता है और गुणों को अपनाता है।

इसतरह गाथा में आचार्य भगवन् ने बतलाया कि सम्यग्दृष्टि जीव आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, पाँच अतिचार से रहित होता है। आठ अंगों से विपरीत प्रवृत्ति शंकादि आठ दोष कहलाते हैं। सप्त व्यसन व सप्त भयों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। इस तरह सम्यग्दृष्टि जीव इन 44 दोषों से रहित होता है और निरंतर निरतिचार सम्यक्त्व की आराधना में तत्पर होता हुआ मुक्ति के मार्ग को, शाश्वत सुख के मार्ग को, संवर-निर्जरा के मार्ग को प्रशस्त करता हुआ

सम्यक् पुरुषार्थपूर्वक निश्चित रूप से एक दिन अवश्य ही अपने शुद्धात्मा रूपी लक्ष्य को प्राप्त करता है। आज आपका समय हो गया, कल पुनः भगवान जिनेन्द्र की मंगल देशना के माध्यम से अपने जीवन को मंगलमय बनाने का मांगलिक पुरुषार्थ करेंगे।

षट अनायतन तजो तजो, मद छोड़ो मूढ़ता तजो।
शंका दोष व्यसन भय को, अतिचारों को तजो तजो।।
सम्यग्दृष्टि में, हो-हो-2, नहिं दोष दिखाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

जयदु जिणागम पंथो, रागो-दोसो य णासगो सेयो।
पंथो तेरह-बीसो, रागादि-वड्ढिओ असेयो।।

जो रागद्वेष का नाश करनेवाला है, कल्याणकारी है, ऐसा 'जिनागम पंथ जयवंत हो'। इसके अलावा तेरह पंथ, बीसपंथ आदि पंथ, रागद्वेष को बढ़ानेवाले हैं, अकल्याणकारी हैं।

• आचार्य विमर्श सागर

श्री रयणसार जी ग्रंथ में गाथा 1-7 तक आगत परिभाषायें

(1) वड्ढमाणं -: "वर्द्धते-ज्ञानादिगुणैः समेधते वृद्धिं प्राप्नोतीति वर्धमानः" ज्ञानादि गुणों से निरंतर वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ऐसे श्री वर्धमान जिनेन्द्र।

(2) परमप्पा-परमात्मा

"संसारीजीवेभ्यः उत्कृष्ट आत्मा" संसारी जीवों में सबसे उत्कृष्ट आत्मा को परमात्मा कहते हैं।

(3) धम्मो-धर्म -: "इष्टस्थाने धत्ते इति धर्मः" जो इष्ट स्थान में स्वर्ग मोक्ष धारण करता है उसे धर्म कहते हैं (स.सि.)

"वत्थु सहावो धम्मो" वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। (का.अ.)

"खमादि भावो य दसविहो धम्मो" उत्तमक्षमा आदि दस भाव धर्म है। (का.अ.)

"जीवाणं रक्खणं धम्मो" जीवों की रक्षा करना धर्म है। (का.अ.)

"चारित्तं खलु धम्मो" निश्चय से चारित्र ही धर्म है। (का.अ.)

"अहिंसादि लक्षणो धर्मः" धर्म अहिंसा आदि लक्षणवाला है। (रा.वा.)

"सद्दृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्मं" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र इन तीनों की एकता ही धर्म है। (र.श्रा.)

"मिथ्यात्व रागादि संसरणरूपेण भाव संसारे प्राणिनमुद्धृत्य निर्विकार शुद्ध चैतन्ये धरतीति धर्मः" मिथ्यात्व व रागादि में नित्य संसरण करने रूप भाव संसार से प्राणी को उठाकर जो निर्विकार शुद्ध चैतन्य में धारण कर दे वह धर्म है।

(4) सायारधम्मो-सागार धर्म :- **''आराध्यन्ते जिनेन्द्रा गुरुषु च विनतिर्धार्मिकैः प्रीतिरुच्चैः पात्रेभ्यो दानमापन्निहतजनकृते तच्च कारुण्य बुद्धया। तत्त्वाभ्यासः स्वकीय व्रतरतिमलं दर्शनं यत्र पूज्यं, तद्गार्हस्थ्यं बुधानामितरदिह पुनर्दुःखदो मोहपाशः। एकादश स्थानानीति गृहिव्रते व्यसनितात्यागस्तदाद्यः स्मृतः।''**

जिस गृहस्थ अवस्था में जिनेन्द्र की आराधना की जाती है, निर्ग्रंथ गुरुओं के प्रति विनय, धर्मात्माओं के प्रति प्रीति व वात्सल्य, पात्रों को दान, आपत्तिग्रस्त पुरुषों को दया बुद्धि से दान, तत्त्वों का परिशीलन, गृहस्थ धर्म से प्रेम तथा निर्मल सम्यग्दर्शन धारण करना, ये सब किया जाता है वह गृहस्थ अवस्था विद्वानों के लिए पूजने के योग्य है अन्यथा दुःखरूप है। सागार धर्म में ग्यारह प्रतिमायें निर्दिष्ट की गई है उस सब के आदि में द्यूतादि व्यसनों का त्याग स्मरण किया गया है। (पं. वि.)

(5) अणयारधम्मो-अनगार धर्म -: **''आचारो दशधर्म संयमतपो मूलोत्तराख्या गुणाः मिथ्या मोहमदोज्झनं शम-दम-ध्यान-प्रमादस्थित्तिः। वैराग्यं समयोपवृंहण गुणा रत्नत्रयं निर्मलं पर्यन्ते च समाधिरक्षयपदानन्दाय धर्मो यतेः।''** ज्ञानाचारादि स्वरूप पाँच प्रकार का आचार, उत्तम क्षमादि रूप दस प्रकार का धर्म, संयम, तप तथा मूलगुण और उत्तरगुण, मिथ्यात्व, मोह एवं मद का त्याग, कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन, ध्यान, प्रमादरहित अवस्थान संसार, शरीर, एवं इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, धर्म को बढ़ाने वाले अनेकों गुण, निर्मल रत्नत्रय तथा अन्त में समाधि मरण यह सब मुनियों का धर्म है जो अविनश्वर मोक्षपद के आनन्द का कारण है।

(6) गणहरो-गणधर -: **''पंचमहव्वयधारओ तिगुत्तिगुत्तो पंचसमिदो णट्ठट्ठमदो मुक्कसत्तभओ अट्ठरिद्धिसंपण्णा गणधरदेवा''** पाँच महाव्रतों के धारक, तीन गुप्तियों से रक्षित, पाँच समितियों से युक्त, आठ मदों से रहित, सप्तभयों से मुक्त, अष्ट ऋद्धियों से संयुक्त गणधर देव होते हैं।

(7) सद्दिट्ठी-सम्यग्दृष्टि -: आचार्य कुंदकुंद देव श्री दर्शनप्राभृत ग्रंथ में सम्यग्दृष्टि जीव का स्वरूप बतलाते हुए कहते है-

छद्दव्व णवपयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।

सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।19।।(दर्शनप्राभृतम्)

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व कहे गये हैं उनके स्वरूप का जो श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

(8) मदिणाणं-मतिज्ञान— ''इंदियणाइंदिएहि सद्द-रस-परिसरूव-गंधादिविएसु ओग्गह ईहावाय धारणाओ मदिणाणं'' (क.पा.)

इन्द्रिय और मन के निमित्त से शब्द, रस, स्पर्श, रूप और गंधादि विषयों में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप जो ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है।

(9) सुदणाणं-श्रुतज्ञान —''सुदणाणं णाम मदिपुव्वं मदि णाणपडिगहिय मत्थं मोत्तूणण्णत्थम्हि वावदं सुदणाणावरणीय-क्खयोवसम जणिदं।''

जिस ज्ञान में मतिज्ञान कारण पड़ता है, जो मतिज्ञान से ग्रहण किये गये पदार्थ को छोड़कर तत्संबधित दूसरे पदार्थ में व्यापार करता है, और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। (क.पा.)

(10) मिच्छादिट्ठी-मिथ्यादृष्टि —''मिथ्यादर्शन कर्मोदयेन वशीकृतो जीवो मिथ्यादृष्टिरित्यभिधीयते। यत्कृतं तत्त्वार्थानामश्रद्धानं।'' (रा.वा.)

मिथ्यादर्शन कर्म के उदय के वशीकृत जीव मिथ्यादृष्टि कहलाता है इसके कारण उसे तत्त्वार्थों का श्रद्धान नहीं होता है।

(11) सम्मत्तं-सम्यक्त्व—''तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'' (त.सू.)

अपने-अपने स्वभाव में स्थित तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

''तच्चरुई सम्मत्तं'' (मो.पा.)

तत्त्वरुचि सम्यग्दर्शन है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन— मिथ्यात्वोदय जनित विपरीताभिनिवेश रहितं श्रद्धानं। केषां सम्बंधि। पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य विकल्परुपं जीवाजीवद्रव्यं जीवपुद्गल संयोग परिणामोत्पन्नास्रवादि पदार्थ सप्तकं चेत्युक्त लक्षणानां भावनां जीवादि नवपदार्थानाम्। इदं तु नवपदार्थ विषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वम्।

मिथ्यात्वोदय जनित, विपरीत अभिनिवेश रहित, पंचास्तिकाय, षटद्रव्य, जीवादि सात पदार्थ अथवा जीवादि नव पदार्थ, इनका जो श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है (पं.का.) (ता. वृ.)

निश्चय सम्यग्दर्शन— शुद्धोपयोग-लक्षण-निश्चय-रत्नत्रय भावनोत्पन्न परम-आह्लादैकरूप सुखामृत रसास्वादनमेवोपादेय मिन्द्रियसुखादिके च हेयमिति रुचिरूपं वीतराग-चारित्राविनाभूतं वीतराग सम्यक्त्वाभिधानं निश्चय सम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति (द्र.स.टी.)

शुद्धोपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय की भावना से उत्पन्न परम आल्हाद रूप सुखामृत रस आस्वादन ही उपादेय है इन्द्रियजन्य सुख आदिक हेय हैं, ऐसी रुचि तथा जो वीतराग चारित्र के बिना नहीं होता ऐसा जो वीतराग सम्यक्त्व, वही निश्चय सम्यक्त्व है।

(12) भय— "भीतिर्भयम्। कम्मक्खंधेहिं उदयमागदेहि जीवस्स भयमुप्पज्जइ तेसिं, भयमिदि सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।" (ध.6)

भीति को भय कहते हैं। उदय में आये हुए जिन कर्म स्कंधों के द्वारा जीव के भय उत्पन्न होता है उनकी कारण में कार्य के उपचार से भय यह संज्ञा है।

भय के भेद— "इहपर लोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणाकस्सि भया।" (मू.आ.)

इह लोकभय, परलोक भय, अरक्षा भय, अगुप्तिभय, मरण भय, वेदना भय और आकस्मिक भय। ये भय के सात भेद हैं।

(i) इहलोक भय— "तत्रेह लोकतो भीतिः क्रन्दितं चात्र जन्मनि।
इष्टार्थस्य व्ययो माभून्माभून्मेऽनिष्टसंगमः।" (पं.ध.)

मेरे इष्ट पदार्थ का वियोग न हो जाये और अनिष्ट पदार्थ का संयोग न हो जाये इस प्रकार इस जन्म में क्रन्दन करने को इहलोक भय कहते हैं।

परलोक भय— परलोकः परत्रात्मा भाविजन्मान्तरांशभाक्।

ततः कम्प इव त्रासो भीतिः परलोकतोऽस्ति सा।

भद्रं चेज्जन्म स्वर्लोके माभून्मे जन्म दुर्गतौ।

इत्याद्याकुलितं चेतः साध्वसं पारलौकिकम्। (पं. ध.)

परभव में भावि पर्याय रूप अंश को धारण करने वाला आत्मा परलोक है और उस परलोक से जो कंपने के समान भय होता है, उसको परलोक भय कहते है। यदि स्वर्ग में जन्म हो तो अच्छा है, मेरा दुर्गति में जन्म न हो इत्यादि प्रकार से हृदय का आकुलित होना परलौकिक भय है।

(iii) वेदना भय— वेदनागन्तुका बाधा मलानां कोपतस्तनौ। (पं. ध.)

भीतिः प्रागेव कम्पः स्यान्मोहाद्वा परिदेवनम्।।

उल्लाघोऽहं भविष्यामि माभून्मे वेदना क्वचित्,

मूर्च्छैव वेदनाभीतिश्चिन्तनं वा मुहुर्मुहुः।।

शरीर में वात, पित्तादि के प्रकोप से आनेवाली बाधा वेदना कहलाती है। मोह के कारण विपत्ति के पहले ही करुण क्रन्दन करना वेदना भय है। मैं निरोग हो जाऊँ, मुझे कभी भी वेदना न होवे, इस प्रकार की मूर्च्छा अथवा बार-बार चिन्तवन करना वेदना भय है।

(iv) अरक्षा भय— ''नाशात्प्रागंशनास्य त्रातुमक्षमतात्मनः।'' (पं.ध.)

पर्याय के नाश के पहले अंशि रूप आत्मा के नाश की रक्षा के लिए अक्षमता, अरक्षा भय कहलाता है।

(v) अगुप्ति भय— अगुप्तिः प्राकाराभावः। इस ग्राम में परकोटे आदि नहीं है अतः शत्रु आदि से कैसे रक्षा होगी ऐसा विचार करना अगुप्तिभय है। (मू.चा.)

(vi) मरणभय— ''तद्भीतिजीवितं भूयान्मा भून्मे मरणं क्वचित। कदा लेभे न वा दैवात इत्याधि: स्वे तनुव्यये। (पं. स. /3)

मैं जीवित रहूँ कभी मेरा मरण न हो, अथवा दैवयोग से कभी मृत्यु न हो इस प्रकार शरीर के नाश के विषय में जो चिन्ता होती है, वह मृत्युभय कहलाता है।

(vii) अकस्मात् भय— अकस्माज्जातमित्युच्चैराकस्मिकभयं स्मृतम। तद्यथा विद्युदादीनां पातात्पातोऽसुधारिणाम्॥

अकस्मात उत्पन्न होने वाला महान दु:ख आकस्मिक भय माना गया है जैसे कि बिजली आदि के गिरने से प्राणियों का मरण हो जाता है। (पं.प. / 3)

(13) व्यसन— ''धर्ममार्गात्पुरुषान् व्यस्यति भ्रंशयति तद् व्यसनं।''

जो प्राणी को धर्ममार्ग से भ्रष्ट करे या धर्ममार्ग में जाने न दे अर्थात् उससे दूर रखे वह व्यसन है।

(14) मल— दोण्णि वियप्पा होंति हु मलस्स इमं दव्वभाव-भेएहिं।
दव्वमलं दुविहप्पं बाहिरमब्भंतरं चेय।।10।।
सेदमलेरणुकद्दम - पहुदी बाहिरमलं - समुद्दिट्ठं।
पुणु दिढजीवपदेसे णिबंधरूवाइ पयडिठिदिआई।।11।।
अणुभागपदेसाइं चउहिं पत्तेकभेज्जमाणं तु।
णाणावरणप्पहुदी अट्ठविहं कम्ममखिलपावरयं।।12।।
अब्भंतरदव्वमलं जीव-पदेसे णिबद्धमिदि हेदो,
भावमलं णादव्वं अणाणंदसणादिपरिणामो।।13।।
अहवा बहुभेयगयं णाणावरणादि दव्वभावमलभेदा।।14।।
पावमलं ति भण्णइ उवचारसरुवएण जीवाणं।।17।।

(ति.प.)

द्रव्य और भाव के भेद से मल के 2 भेद है। इनमें से द्रव्यमल भी 2 प्रकार का है बाह्य व आभ्यन्तर। स्वेद, मल, रेणु, कर्दम इत्यादिक बाह्य द्रव्यमल कहा गया है, और दृढ़ रूप से जीव के प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाहरूप बन्ध को प्राप्त, तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश इन 4 भेदों से प्रत्येक भेद को प्राप्त होने वाला, ऐसा ज्ञानावरणादि 8 प्रकार का सम्पूर्ण कर्मरूपी पापरज, चूँकि जीव के प्रदेशों सें सम्बद्ध है। इस हेतु से यह आभ्यन्तर द्रव्य मल है। अज्ञान अदर्शन इत्यादिक जीव के परिणामों को भावमल समझना चाहिए।

अथवा

ज्ञानावरणादिक द्रव्यमल के और ज्ञानावरणादिक भावमल के भेद से मल के अनेक भेद है। अथवा जीवों के पाप को उपचार से मल कहा जाता है।

(15) संसार— संसरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः।

संसरण करने को संसार कहते हैं जिसका अर्थ परिवर्तन है। संसरण करने अर्थात् जन्म मरण करने का नाम संसार है अनादिकाल से जन्म मरण करते हुए इस जीव ने एक-एक करके लोक के सर्व परमाणुओं को, सर्व प्रदेशों को, काल के सर्व समयों को, सर्व प्रकार के कषाय भावों को और नरकादि सर्वभवों को अनंत-अनंत बार ग्रहण करके छोड़ा है इसप्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के भेद से यह संसार पंच परिवर्तन रूप कहा जाता है। (स.सि.)

(16) शरीर— ''विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि।''

जो विशेष नामकर्म के उदय से प्राप्त होकर शीर्यन्ते अर्थात् गलते हैं वे शरीर हैं।

(17) भोग— ''मुक्त्वा परिहातव्यो भोगी भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।''

उपभोगोऽशनवसन प्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः। (र.क.श्रा.)

भोजन वस्त्रादि पंचेन्द्रिय संबंधी विषय जो भोग करके पुन: भोगने में न आवें वे तो भोग है और भोग करके फिर भोगने योग्य हो तो उपभोग हैं।

(18) निःशंकित अंग— इदमेवेदृशमेव तत्वं नान्यन्नचान्यथा। इत्यकंपायसाम्भोव-त्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः। वस्तु का स्वरूप यही है और नहीं है, इसी प्रकार का है अन्य प्रकार

का नहीं है, इस प्रकार से जैन मार्ग में तलवार के पानी के समान निश्चल श्रद्धान नि:शंकित अंग कहा जाता है। (र.क.श्रा.)

''अर्हदुपदिष्टे वा प्रवचने किमिदं स्याद्वा न वेति शंकानिरासो निःशङ्कितत्वम्।'' अर्हंत उपदिष्ट प्रवचन में, ''क्या ऐसा ही है या नहीं है इस प्रकार की शंका का निरास करना नि:शंकितपना है।'' (रा.वा.)

(19) निःकांक्षित अंग— ''जो सग्गसुहणिमित्तं धम्मं णायरादि दूसहतवेहिं। मोक्खं समीहमाणो णिक्कंखा जायदे तस्स'' दुर्धर तप के द्वारा मोक्ष की इच्छा करता हुआ जो प्राणी स्वर्ग सुख के लिये धर्म का आचरण नहीं करता है उसके नि:कांक्षित गुण होता है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मोक्ष की अभिलाषा से तपादि अनुष्ठान करता है न कि इन्द्रियों के भोगों की इच्छा से

(20) निर्विचिकित्सा अंग— यश्चेतयिता आत्मा परमात्म तत्त्व भावना-बलेन जुगुप्सां निन्दां दोषं द्वेषं विचिकित्सान्न करोति, केषां संबंन्धित्वेन। सर्वेषामेव वस्तु धर्माणां स्वभावनां दुर्गंधादिविषये वा स सम्यग्दृष्टिः निर्विचिकित्सः खलु स्फुटं मन्तव्यो। (स.सा./ता. वृ.)

जो आत्मा परमात्म तत्व की भावना के बल से सभी वस्तुधर्मों या स्वभावों में अथवा दुर्गन्ध आदि विषयों में ग्लानि या जुगुप्सा नहीं करता, न ही उनकी निन्दा करता है, न उनसे द्वेष करता है, वह निर्विचिकित्सा गुण का धारी सम्यग्दृष्टि जीव है।

(21) अमूढ़दृष्टि अंग— ''कापथे पथि दुखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।''
असंपृक्ति - रनुत्कीर्तिर - मूढ़ा दृष्टि रुच्यते।

कुमार्ग व कुमार्गियों में सम्मत न होना, काय से सराहना नहीं करना, वचन से प्रशंसा नहीं करना सो अमूढ़दृष्टि अंग कहलाता है।

(22) उपगूहन अंग— ''जो परदोसं गोवदि णियसुकयं जो ण पवडदे लोए भवियव्व भावणरओ उवगूहणकारओ सो हु।'' (का.अ.)

जो सम्यग्दृष्टि दूसरों के दोषों को ढाँकता है और अपने सुकृत को लोक में प्रकाशित नहीं करता तथा भवितव्य की भावना में रत रहता है उसे उपगूहन गुण का धारी कहते है।

(23) स्थितिकरण अंग—''दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं स्थिति करण मुच्यते।'' (र.क.श्रा.)

सम्यग्दर्शन वा चारित्र से डिगते हुए पुरुष को जो उसी में स्थिर कर देना है सो विद्वानों के द्वारा स्थितिकरण अंग कहा गया है।

(24) वात्सल्य अंग— ''सद्यः प्रसूता यथा गौर्वत्स स्निह्याति। तथा चातुर्वर्ण्ये संघेऽकृत्रिमस्नेह करणं वात्सल्यम्।''

जिस प्रकार तुरन्त की प्रसूता गाय अपने बच्चे पर प्रेम करती है, उसी प्रकार चार प्रकार के संघ पर अकृत्रिम या स्वभाविक प्रेम करना वात्सल्य अंग कहलाता है। (चा.सा.)

(25) प्रभावना अंग— ''अज्ञानतिमिरव्याप्ति मपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात् प्रभावना।''
(र.क.श्रा.)

अज्ञानरूपी अंधकार के विनाश को जिसप्रकार बने उस प्रकार दूर करके जिनमार्ग का समस्त मतावलम्बियों में प्रभाव प्रगट करना प्रभावना नाम का आठवाँ अंग है।

(26) अरिहंत— घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइ परम गुण सहिया।
चोत्तिस अदिसय जुत्ता अरिहंता एरिसा होंति। (नि.सा.)

घनघातिकर्म रहित केवल ज्ञानादि परमगुणों से सहित, और चौंतिस अतिशय युक्त ऐसे अर्हन्त होते हैं।

(27) सिद्ध— णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति।। (नि.सा.)

आठ कर्मों के बंधन जिन्होंने नष्ट किये हैं ऐसे आठ महागुणों सहित, परम, लोकाग्र में स्थित और नित्य ऐसे वे सिद्ध होते हैं।

अट्ठविह कम्म वियडा सीदी भूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा कयकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।(पं.सं.)

जो अष्टविध कर्मों से रहित हैं अत्यन्त शांतिमय हैं निरंजन हैं नित्य हैं आठ गुणों से युक्त हैं कृतकृत्य हैं लोक के अग्रभाग पर निवास करते हैं वे सिद्ध कहलाते हैं।

(28) आचार्य परमेष्ठी— पंचाचार समग्गा पंचिंदिय दंतिदप्पणिद्दलणा।
धीरा गुण गंभीरा आयरिया एरिसा होंति।।(नि.सा.)

पंचाचारों से परिपूर्ण, पंचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद का दलन करने वाले, धीर और गुण गंभीर, ऐसे आचार्य होते हैं।

''आचरन्ति तस्माद् व्रतानित्याचार्याः।'' (स.सि.)

जिनके निमित्त से व्रतों का आचरण करते हैं वह आचार्य कहलाते हैं।

(29) उपाध्याय परमेष्ठी— रयणत्तय संजुत्ता जिणकहिय पयत्थ देसया सूरा।
णिक्कंख भाव सहिया उवज्झाया एरिसा होंति।।(नि.सा.)

रत्नत्रय से संयुक्त, जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक और निष्कांक्ष भाव सहित, ऐसे उपाध्याय होते हैं।

''विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशील भावनाधिष्ठा-नादागमं श्रुताख्यमधीयते इत्युपाध्यायः।''

जिन व्रतशील भावनाशाली महानुभाव के पास जाकर भव्यजन विनयपूर्वक श्रुत का अध्ययन करते हैं वे उपाध्याय हैं।

(30) साधु— ''वैराग्यस्य परां काष्ठामधिरूढोऽधिकप्रभः। दिगम्बरो यथाजात-रूपधारी दयापरः।'' (पं ध.)

वैराग्य की पराकाष्ठा को प्राप्त होकर प्रभावशाली दिगम्बर यथाजात रूप को धारण करने वाले तथा दया परायण ऐसे साधु होते हैं।

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यतेः।।(र.क.श्रा.)

जो विषयों की आशा के वश से रहित हों, चौबीस प्रकार के परिग्रह से रहित और ज्ञान ध्यान तप में लवलीन हों, वह तपस्वी गुरु प्रशंसा के योग्य हैं।

(31) बहिरप्पा-बहिरात्मा—"मिथ्यात्व रागादि रूपा बहिरात्मावस्था"।(प्र.सा./ ता.वृ.)

मिथ्यात्व व राग द्वेषादि कषायों से मलिन आत्मा की अवस्था को बहिरात्मा कहते हैं।

बहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचओ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ।। (मो.पा.)

बाह्य धनादिक में स्फुरत् अर्थात् तत्पर है मन जिसका, वह इन्द्रियों के द्वारा अपने स्वरूप से च्युत है अर्थात् इन्द्रियों को ही आत्मा मानता हुआ, अपनी देह को ही आत्मा निश्चय करता है ऐसा मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।

(32) अंतरप्पा-अंतरात्मा—

धर्मध्यानं ध्यायाति दर्शनज्ञानयोः परिणतः नित्यम्।(ज्ञा.सा.)

स भव्यते अन्तरात्मा लक्ष्यते ज्ञानवद्भिः।

जो धर्मध्यान को ध्याता है, नित्य दर्शन व विज्ञान में परिणत रहता है उसको अंतरात्मा कहते हैं।

देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम समाहि परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ।।(प.प्र.मू.)

जो पुरुष परमात्मा को शरीर से जुदा केवलज्ञान कर पूर्ण जानता है, वही परम समाधि में तिष्ठता हुआ अन्तरात्मा अर्थात् विवेकी है।

(33) मद— "अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मय माहुर्गतस्मयाः ।।" (र.क.श्रा.)

ज्ञान आदि आठ प्रकार से अपना बड़प्पन मानने को गणधरादि ने मद कहा है।

(i) ज्ञानमद— 'अहं ज्ञानवान् सकल शास्त्रज्ञो वर्ते।' (मो.पा.)

मैं ज्ञानवान हूँ, सकलशास्त्रों का ज्ञाता हूँ यह ज्ञानमद है

(ii) पूजा मद— अहं मान्यो महामण्डलेश्वरा मत्पादसेवकाः। (मो.पा.)

मैं सर्व मान्य हूँ। राजा महाराजा मेरी सेवा करते हैं यह पूजा, आज्ञा या प्रतिष्ठा का मद है।

(iii) कुलमद—"कुलमदि मम पितृपक्षोऽतीवोज्ज्वलः कोऽपि ब्रह्महत्या ऋषि-हत्यादिभि-रदोषम्।" (मो.पा.)

मेरा पितृपक्ष अतीव उज्जवल है। उसमें ब्रह्महत्या या ऋषिहत्या आदि का भी दूषण आज तक नहीं लगा है। यह कुलमद है।

(iv) जाति मद— "जातिः- मम माता संघस्य पत्युर्दुहिता-शीलेन सुलोचना-सीता-अनंतमती माता-चन्दनादिका वर्तते।" (मो.पा.)

मेरी माता का कुल बहुत ऊँचा है वह संघपति की पुत्री है। शील में सुलोचना, सीता, अनंतमती व चंदना सरीखी है यह जातिमद है।

(v) बलमद— अहं सहस्रभटो लक्षभटः कोटिभटः। (मो. प्रा.)

मैं सहस्रभट, लक्षभट, कोटिभट हूँ यह बलमद है।

(vi) ऋद्धि मद—'ऋद्धिः ममानेकलक्षकोटिगणनं धनमासीत् तदपि मया त्यक्तं अन्ये मुनयोऽधर्मणाः सन्तो दीक्षां जगृहुः।' (मो.प्रा.)

मेरे पास अरबों रूपये की सम्पत्ति थी। उस सबको छोड़कर मैं मुनि हुआ हूँ, अन्य मुनियों ने अधर्मी होकर दीक्षा ग्रहण की है यह ऋद्धि या ऐश्वर्य मद है।

(vii) तप मद— "तपः अहं सिंहनिष्क्रीडित विमान पंक्ति सर्वतोभद्र ... आदि महातपोविधि विधाता मम जन्मैवं तपःकुर्वतो गतं, एते तु यतयोः नित्य भोजन रताः।" (मो.प्रा.)

सिंहनिष्क्रीडित, विमानपंक्ति, सर्वतोभद्र आदि महातपों की विधि का विधाता हूँ। मेरा सारा जन्म तप करते गया है ये सर्व मुनि तो नित्य भोजन में रत रहते हैं, यह तप मद है।

(viii) वपु मद— "वपुः मम रूपाग्रे कामदेवोऽपि दासत्वं करोति।" (मो.प्रा.)

मेरे रूप के समाने कामदेव भी दासता करता है यह रूपमद है।

(34) मूढ़ता—धर्म और सम्यक्त्व में दोषजनक अविवेकीपन के कार्य को मूढ़ता कहते हैं।

लोक मूढ़ता का स्वरूप— "गंगादिनदी तीर्थस्नान समुद्र स्नान प्रातः स्नान-जलप्रवेशमरणग्नि-प्रवेशमरणगोग्रहणादि-मरणभूम्यग्नि-वटवृक्षपूजादीनि पुण्यकारणनि भवन्तीति यद्वदन्ति तल्लोकमूढ़त्वं विज्ञेयम्।" (द्र.य. / टी.)

गंगादि जो वदीरूप तीर्थ हैं, इनमें स्नान करना, समुद्र में स्नान करना, प्रातःकाल में स्नान करना, जल में प्रवेश करके मर जाना, अग्नि में जल मरना, गाय की पूंछ आदि में प्रवेश करके मर जाना, अग्नि में जल मरना, गाय की पूंछ आदि को ग्रहण करके मरना, पृथिवी, अग्नि और वटवृक्ष आदि की पूजा करना, ये सब पुण्य के कारण हैं, इस प्रकार जो कहते हैं, उसको लोकमूढ़ता जानना चाहिए।

देवमूढ़ता का स्वरूप— "वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत् देवतामूढ़ मुच्यते।।(र.क.श्रा.)"

आशावान् होता हुआ, वर की इच्छा करके रागद्वेषरूपी मैल से मलिन देवताओं की जो उपासना की जाती है, सो देवमूढ़ता कही जाती है।

गुरु मूढ़ता का स्वरूप— "सग्रन्थारम्भहिसानां संसारावर्तवर्त्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम्।।"

परिग्रह आरंभ और हिंसा सहित, संसार चक्र में भ्रमण करने वाले पाखण्डी साधु तपस्वियों का आदर, सत्कार, भक्ति-पूजादि करना सब पाखंडी या गुरु मूढ़ता है।

(35) अनायतन—"सम्यक्त्वादिगुणानामायतनं गृहमावास आश्रय-आधारकरणं निमित्तमायतनं भण्व्यते तद्विपक्षभूत मनायतनमिति। सम्यक्त्वादि गुणों का आयतन घर, आवास-आश्रय (आधार) करने का निमित्त, उसको आयतन कहते है। और उससे विपरीत अनायतन है। (द्र.सं / टी.)

(36) अतिचार—"कर्तव्यस्याकरणे वर्जनीयस्यावर्जने यत्पापं सोऽतिचारः।" किसी करने योग्य कार्य के ना करने पर और त्याग करने योग्य पदार्थ के त्याग न करने पर जो पाप होता है। उसे अतिचार कहते है। (चा.सा.)

❑❑❑

रयणसार पद्यानुवाद

(आचार्य विमर्शसागर)

रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु - श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

- ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो, मोक्षमार्ग को सभी चुनो।
  गुरुमुख से जिनवाणी को, सुनो-सुनो सब भव्य सुनो।।
  जिनवाणी सच्चा, हो-हो-2, सुखमार्ग दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

1. (i) वर्द्धमान जिन नमन-नमन, मन-वच-काया से वंदन।
रयणसार को कहता हूँ, सुनलो श्रावक और श्रमण।।
जिनवर की स्तुति, हो-हो-2, सब विघ्न नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(ii) प्रथम मंगलाचरण करो, फिर आहार - बिहार करो।
मोक्षमार्ग अपनाओ या, कोई लोक - व्यवहार करो।।
मंगल से जीवन, हो-हो-2, मंगल बन जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

2. जिनवर ने जिसको बोला, गणधर ने जिसको खोला।
सभी पूर्व आचार्यों ने, अन्तरंग से जो तोला।।
आगमवाणी ही, हो-हो-2, समदृष्टि सुनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

3. जो कोई मति-श्रुतज्ञानी, बोले गर स्वच्छंद वाणी।
मिथ्यादृष्टि कहलाता, है यह कुंदकुंद - वाणी।।
जिनमार्गी का, हो-हो-2, नहिं वचन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

4. (i) सम्यग्दर्शन सार कहा, शिवतरु का आधार कहा।
यह सम्यग्दर्शन भैया, निश्चय व व्यवहार कहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, रत्नों को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(ii) मोक्षमार्ग अपनाना है, सम्यग्दर्शन पाना है।
आतमरुचि जगाने को, भेदज्ञान प्रगटाना है।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iii) सच्चे - गुरु को पहचानो, कुगुरु को कुगुरु जानो।
सद्गुरु की शरणा पाकर, मोक्षमार्ग सच्चा मानो।।
सद्गुरु बिन कोई, हो-हो-2, भवपार न जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iv) देव - शास्त्र - गुरु को ध्याओ, सम्यग्दर्शन को पाओ।
तत्त्वों का श्रद्धान करो, स्वात्माभिमुख हो जाओ।।
स्वसंवेदन ही, हो-हो-2, सम्यक्त्व कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(v) अपनी भूल सँभालोगे, सम्यग्दर्शन पा लोगे।
देह बसे निज आतम में, परमातम प्रगटा लोगे।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, प्रभु नजर न आये रे - ऽऽ। रयणसार...

(vi) तत्त्वों का श्रद्धान करो, सम्यग्दर्शन - ज्ञान वरो।
जो आतमहित का हेतु, वह वैराग्य महान वरो।।
रागी-द्वेषी बन, हो-हो-2, क्यों दुख उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

5. (i) भव - तन - भोग विरक्त कहा, आत्म - गुणों से युक्त अहा।
भय - मल - व्यसन - रहित होता, पंचगुरु का भक्त कहा।।
वह सम्यग्दृष्टि, हो-हो-2, निर्दोष कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(ii) व्यसन सदा दुःख देते हैं, सबका सुख हर लेते हैं।
इसीलिए सम्यग्दृष्टि, व्यसन त्याग कर देते हैं।।
व्यसनों में फँसकर, हो-हो-2, क्यों पुण्य नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iii) स्वारथ का संसार कहा, तन को अशुचि असार कहा।
भोग सदा दुख के कारण, चिंतन यह सुविचार कहा।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, वैराग्य दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iv) पंच - महागुरु को वंदन, चरण धूलि इनकी चंदन।
निःशंकित वसु अंगों का, करो भाव से अभिनंदन।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, भक्ति दिखलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

6. सम्यग्दर्शन जब आता, मिथ्यादर्शन खो जाता।
सम्यग्दृष्टि जीव सदा, निज शुद्धातम को ध्याता।।
सम्यग्दर्शन ही, हो-हो-2, भव दुक्ख नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

7. षट्-अनायतन तजो-तजो, मद छोड़ो मूढ़ता तजो।
शंका - दोष - व्यसन-भय को, अतिचारों को तजो - तजो।।
सम्यग्दृष्टि में, हो-हो-2, नहिं दोष दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

8. वसु - द्वादश मूलोत्तर गुण, भय, अनुप्रेक्षा, सप्त व्यसन।
पच्चीस मल, अतिचार रहित, विघ्नरहित-भक्ति पावन।।
सतहत्तर श्रावक, हो-हो-2, के गुण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

9. देव - शास्त्र - गुरु भक्त कहा, भव - तन - भोग विरक्त अहा।
रत्नत्रय संयुक्त सदा, शिवसुख में अनुरक्त अहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

10. दान, शील, पूजा, उपवास, व्रत से होता कर्म विनाश।
सम्यग्दर्शन साथ अगर, अहो! मोक्ष सुख होता पास।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

11. श्रावक पूजा - दान करे, साधु अध्ययन - ध्यान करे।
कर्तव्यों का पालन कर, सुख का अनुसंधान करे।।
इस बिन न श्रावक, हो-हो-2, न साधु कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

12. श्रावक होकर दान नहीं, हृदय धर्म सम्मान नहीं।
न्यायपूर्वक भोग नहीं, त्याग नहीं बहिरात्म वहीं।।
लोभी पतंगा, हो-हो-2, मृत्यु दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

13. जो मुनियों को दान करे, जिनपूजा बहुमान करे।
सम्यग्दृष्टि धर्मातम, श्रावक ऐसा नाम धरे।।
शिवमार्ग में रत, हो-हो-2, श्रावक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

14. श्रावक शुद्ध - हृदयवाला, जिनपूजा करनेवाला।
प्रभु - पूजा का फल पाता, सुरगण से पूजा जाता।।
उत्तम दानी ही, हो-हो-2, शिवसुख को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

15. श्रावक भोजन - दान करे, जीवन धन्य महान करे।
पात्रापात्र विचार नहीं, जिनलिंग का श्रद्धान करे।।
जिनमुद्रा लखकर, हो-हो-2, श्रद्धा दिखलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

16. जो सुपात्र को दान करे, अतिशय पुण्य महान करे।
स्वर्ग - भोगभूमि पाकर, क्रमशः सुख निर्वाण वरे।।
जिनवर ही ऐसा, हो-हो-2, सद्मार्ग दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

17. उत्तम-भूमि उत्तम-काल, बोया उत्तम बीज सँभाल।
जैसे बहु - फलदायी है, वैसे पात्र - दान फल ख्याल।।
सम्यग्दृष्टि यह, हो-हो-2, कर्तव्य निभाये रे - ऽऽ। रयणसार...

18. बोता जो धन - बीज महान, जिनवर कथित सप्त स्थान।
त्रिभुवन का साम्राज्य फले, फलता सौख्य पंचकल्याण।।
तीर्थंकर जैसा, हो-हो-2, सुख वैभव पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

19. मात-पिता धन-धान्य सुपुत्र, वाहन, विभव, मकान, कलत्र।
पात्रदान से मिलते हैं, जग के उत्तम सौख्य सुमित्र।।
पुण्यात्मा ही, हो-हो-2, यह शुभ फल पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

20. राज्य - निधि - भंडार - रतन - सेना - स्त्री - वैभव - धन।
पात्रदान का फल जानो, कहते कुन्दकुन्द भगवन्।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, चक्री सुख पाये रे - ऽ ऽ। रयणसार...

21. उत्तम कुल - बुद्धि - लक्षण, उत्तम - शिक्षा उत्तम - गुण।
उत्तम रूप - स्वभाव - चरित, सुख-अनुभव वैभव-चिंतन।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, उत्तम फल पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

22. जो भवि मुनि को दे आहार, फिर भोजन करता स्वीकार।
सारभूत भवसुख पाता, पाता मुक्ति सौख्य अपार।।
जिनवर वाणी यह, हो-हो-2, कर्तव्य सिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

23. शीत-उष्ण ऋतु पहचानो, वात - पित्त प्रकृति जानो।
परिश्रम, व्याधि, कायक्लेश, या उपवास किया जानो।।
दानी श्रावक यह, हो-हो-2, सुविवेक लगाये रे - ऽऽ। रयणसार...

24. मोक्षमार्ग अनुरागी जो, पाता मुनिजन त्यागी को।
हित-मित अन्नपान, औषधि, देता है बड़भागी वो।।
स्थान शयनासन, हो-हो-2, उपकरण दिलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

25. गर्भस्थित शिशु का पालन, करते मात-पिता परिजन।
आलस तज मुनिराजों की, सेवा करते श्रावकजन।।
मुनि वैयावृत्ति, हो-हो-2, भवसिंधु तिराये रे - ऽऽ। रयणसार...

26. सत्पुरुषों का दान सदा, कल्पवृक्ष फल सम शोभा।
लोभी-जन का दान कहा, जैसे अर्थी की शोभा।
लोभीजन उत्तम,हो-हो-2 नहिं पुण्य कमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

27. यशः कीर्ति मिल जाये, पुण्य लाभ कुछ फल जाये।
लोभी दे कुपात्र को दान, शायद किस्मत खुल जाये।।
समकित गुणधारी, हो-हो-2, सत्पात्र न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

28. यंत्र - मंत्र - तंत्रादि मिले, मान - प्रतिष्ठा खूब मिले।
पक्षपात प्रियवचन - सहित, करता सेवा दान अरे।।
मुक्ति का कारण, हो-हो-2, नहिं दान कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

29. जैसा कर्म सजायेगा, वैसा जीवन पायेगा।
शुभ कर्मों का शुभ फल है, अशुभ, अशुभ फल लायेगा।।
दानी दारिद्री, हो-हो-2, लोभी ऐश्वर्य पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

30. करलो आगम ज्ञान जरा, कर सुपात्र को दान जरा।
जैसे धन से जीव सुखी, वही दान से मान जरा।।
मुनिदान बिन तू, हो-हो-2, दुख ही दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

31. है सुपात्र बिन निष्फल दान, बिन सुपुत्र धन - जमीं - मकान।
उसी तरह व्रत - गुण - चारित्र, शुद्धभाव बिन निष्फल जान।।
भावों से जीवन, हो-हो-2, में सुख-दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

32. जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा का, तीर्थ - वंदना पूजा का।
जिनवर कहते, जो मानव बचा हुआ धन भोग रहा।।
वो नरकों जाकर, हो-हो-2, दुख ही दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

33. कौन दरिद्री होता है, स्त्री, पुत्र को रोता है।
मूक, बधिर, पंगु, अन्धा, हो कुजाति को ढोता है।
जो दान-पूजा, हो-हो-2, का द्रव्य चुराये रे - ऽऽ। रयणसार...

34. अतिशय इच्छा करता है, किन्तु न फल को वरता है।
इच्छित फल गर मिल जाये, किन्तु भोग बिन मरता है।
धर्मद्रव्य भोगी, हो हो-2, व्याधि ही पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

35. पूजा-दान द्रव्य हरता, अहो! तीव्र दुख को वरता।
नाक-कान-छाती-अंगुली-दृष्टि-हीन हुआ करता।।
हाथों पैरों से, हो-हो-2, विकलांग दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

36. लूता - रोग भगंदर - रोग, नेत्र - जलोदर - सिर के रोग।
कुष्ठ - मूल - क्षय - शूल सभी, शीत - उष्ण से व्याधि रोग।।
पूजा दानादि, हो-हो-2, में विघ्न से पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

37. देव - शास्त्र - गुरु वंदन में, विघ्न करें श्रुत - अध्ययन में।
नरक - पशु दुर्गति अपंग, दुख, हानि हो जीवन में।।
श्रुतभेद का फल, हो-हो-2, दारिद्र दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

38. सम्यग्दर्शन की शुद्धि, सम्यक् ज्ञान-चरित शुद्धि।
भरतक्षेत्र पंचम युग में, हीन-हीन होती बुद्धि।।
तप-दान-गुण में, हो-हो-2, हीनता दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

39. पूजा दान नहीं करता, शील-मूलगुण नहिं धरता।
मानव जीवन पाकर भी, सम्यक् चारित न वरता।।
नारक कुमानुष, हो-हो-2, पशुगति को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

40. कार्य-अकार्य नहीं जाना, पुण्य-पाप नहिं पहिचाना।
तत्त्व-अतत्त्व व धर्म-अधर्म, सेय-असेय नहीं माना।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

41. योग्य-अयोग्य नहीं जाने, नित्य-अनित्य न पहिचाने।
हेय-उपादेय सत्य-असत्य, भव्य-अभव्य नहीं जाने।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

42. लौकिक - जन का संग करे, दुर्भावों के रंग भरे।
होकर अति वाचाल कुटिल, योगी व्रत को भंग करे।।
योगी को लौकिक, हो-हो-2, संगति न भाये रे - ऽऽ। रयणसार...

43. उग्र - तीव्र जो दुर्भावी, दुष्ट - दुश्रुत जो दुर्भाषी।
मिथ्यामत में अनुरक्ति, धर्म - विरुद्ध महा रागी।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

44. रुष्ट-अनिष्ट या हो गायक, क्षुद्र रौद्र या हो याचक।
चुगलखोर या अभिमानी, ईर्ष्यालु कलही श्रावक।।
परदोष दाता, हो-हो-2, सम्यक्त्व न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

45. हाथी, गधा, बाघ, बंदर, कच्छप, जौंक, श्वान, सूकर।
मक्खी सम स्वभाव वाले, होते हैं जो नारी-नर।।
जिनधर्म के ये, हो-हो-2, नाशक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

46. जब सम्यग्दर्शन होगा, ज्ञान तभी सम्यक् होगा।
सम्यग्दर्शन से सम्यक्-चारित का उद्भव होगा।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, बोधि न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

47. कोई मिथ्या - भेष धरे, मिथ्या - तप - व्रत - ज्ञान करे।
मिथ्याशील - शास्त्र - दर्शन, संस्तुति - स्तुति खूब करे।।
निश्चित ही उसका, हो-हो-2, समकित नश जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

48. तन कुष्टी कुल नाश करे, चाहे खूब प्रयास करे।
वैसे ही मिथ्यादृष्टि, सद्गुण सद्गति नाश करे।।
मिथ्यात्व जग में, हो-हो-2, दुखप्रद कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

49. देव-धर्म-गुरु-गुण-चारित्र, तपाचार जो करे पवित्र।
मोक्षगति का भेद तथा, जिनवाणी जो सबकी मित्र।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, कोई जान न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

50. शिवलब्धि का जो कारण, निज आतम स्वभाव इक क्षण।
चिंतन में नहिं लाता है, करे पाप का ही चिंतन।।
पर के चिंतन में, हो-हो-2, मन को भरमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

51. मद की मोह की पी मदिरा, बोले ज्यों भूला विसरा।
नहीं जानता शुद्धातम, साम्यभाव रस जहाँ भरा।।
मिथ्यादृष्टि को, हो-हो-2, सन्मार्ग न भाये रे- ऽऽ। रयणसार...

52. उपशम भाव को धर लो जी, कर्मों का क्षय कर लो जी।
संवर और निर्जरा से, मुक्ति - वधु को वर लो जी।।
इसभव-परभव क्यों, हो-हो-2, तू दुःख उठाये रे - ऽऽ। रयणसार...

53. दृष्टि सम्यक् करो - करो, ज्ञान और वैराग्य धरो।
कलह कांक्षा आलस इन, दुर्भावों को हरो-हरो।।
मिथ्यादृष्टि ही, हो-हो-2, दुर्भाव बनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

54. आर्तरौद्र यह ध्यान करें, अशुभ लेश्या हृदय धरें।
अवसर्पिणि पंचम युग में, नष्ट दुष्ट यह बुद्धि करें।।
पापी दुखी मानव, हो-हो-2, हर ओर दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

55. अवसर्पिणि पंचम युग में, सम्यग्दृष्टि दुर्लभ हैं।
मिथ्यादृष्टि सुलभ सदा, कहते ज्ञानी गणधर हैं।।
भव-भव परिवर्धक, हो-हो-2, मिथ्यात्व कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

56. क्यों तू संयम खोता है, व्यर्थ अरे क्यों रोता है।
अवसर्पिणि पंचमयुग में, धर्मध्यान तो होता है।।
जो न माने वो, हो-हो-2, मिथ्यात्व बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

57. अशुभ भाव जो करता है, नरक आयु को धरता है।
जो करता शुभ भाव अहा! स्वर्ग सुखों को वरता है।।
जैसा हो चाहे, हो-हो-2 वह भाव बनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

58. हिंसादि क्रोधादि में, मिथ्याज्ञान मदादि में।
दुरभिनिवेश अशुभ लेश्या, पक्षपात विकथदि में।।
मात्सर्य आदि, हो-हो-2, सब अशुभ कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

59. आर्त-रौद्र ध्यानादि में, ईर्ष्या मान-बढ़ाई में।
माया-मिथ्या-निदानादि शल्यों में दंडादि में।।
जो वर्तन होता, हो-हो-2, सब अशुभ कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

60. सात – तत्त्व छह – द्रव्य दिखाय, नौ – पदार्थ पंचास्तिकाय।
बंध – मोक्ष – अनुप्रेक्षायें, रत्नत्रय जब हृदय समाय।।
इनमें प्रवृत्ति, हो-हो-2, शुभभाव कहाये रे – ऽऽ। रयणसार...

61. अनुप्रेक्षाओं का चिंतन, रत्नत्रय की लगी लगन।
आर्यकर्म में उत्साही, दयाधर्म का हो पालन।।
शुभभाव सुख का, हो-हो-2, साधन कहलाये रे – ऽऽ। रयणसार...

62. सम्यग्दर्शन से सुगति, मिथ्यादर्शन से दुर्गति।
जहाँ लगे तुझको अच्छा, वहीं लगाले अपनी मति।।
इक है सुखदाई, हो-हो-2 दूजी दुःख बढ़ाये रे – ऽऽ। रयणसार...

63. करता व्रत उपवास मगर, नहीं छोड़ता मोह डगर।
वह कैसे तिर सकता है, निश्चय से यह भवसागर।।
यह मूर्ख फिर क्यों, हो-हो-2, बहु दुःख उठाये रे – ऽऽ। रयणसार...

64. द्रव्यलिंग को धारणकर, इन्द्रिय विषयों को तजकर।
व्रताचरण पालन करता, बहिरातम बुद्धि धरकर।।
जामन मरण को, हो-हो-2, वह छोड़ न पाये रे – ऽऽ। रयणसार...

65. होने को परलोक सुखी, काय – क्लेश सह हुआ दुखी।
हृदय मोक्ष की चाह मगर, रहता नित मिथ्यात्व मुखी।।
ऐसा मानव क्या, हो-हो-2, कभी मोक्ष को पाये रे – ऽऽ। रयणसार...

66. दण्ड देह को देता है, पर क्रोधादि चहेता है।
बहिरातम कर्मों का क्या, ऐसे क्षय कर लेता है।।
बामी मर्दन से, हो-हो-2, क्या सर्प नशाये रे – ऽऽ। रयणसार...

67. जब जब उपशम तप आता, भावसंयमी कहलाता।
जब कषायवश रहता है, तब असंयमी बन जाता।।
काषायिक व्याधि, हो-हो-2, क्या ज्ञानि नशाये रे – ऽऽ। रयणसार...

68. जहाँ ज्ञान की शक्ति है, वहाँ कर्म से मुक्ति है।
ज्ञानी कभी नहीं कहता, अज्ञानी की उक्ति है।।
औषध का ज्ञाता, हो-हो-2, क्या व्याधि नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

69. मिथ्यामल का शोधन कर, सम्यक् औषधि सेवन कर।
कर्म रूप व्याधि हरने, चारित्र औषधि सेवन कर।।
कर्मों का नाशक, हो-हो-2, यह क्रम कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

70. जो विषयों का त्यागी है, अज्ञानी वैरागी है।
विषयासक्त कषायरहित, ज्ञानी फिर भी त्यागी है।।
जिनदेव ऐसा, हो-हो-2, यह भेद दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

71. भक्ति बिना विनय से क्या, बिना विरक्ति त्याग से क्या।
नेह बिना महिलाओं का, रोदन करना व्यर्थ कहा।।
प्रतिषिद्ध ऐसे, हो-हो-2, सद्गुरु बताये रे - ऽऽ। रयणसार...

72. कोई शूरता रहित अरे, योद्धा बन क्या विजय धरे।
जो सौभाग्यरहित महिला, शोभा से क्या प्राप्त करे।।
संयम बिन मुनि भी, हो-हो-2, परमार्थ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

73. पाया धन-वैभव भारी, लोभी न फल का अधिकारी।
विषयलीन अज्ञानी भी, नहीं अतीन्द्रिय का धारी।।
अज्ञानी सुख का, हो-हो-2, कभी लेश न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

74. है जो वैभववान अरे, नित सुपात्र को दान करे।
वे ज्ञानी फल पाते हैं, नहीं लोभ अभिमान करे।।
विषयों का त्यागी, हो-हो-2, ज्ञानी फल पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

75. भूमि-स्त्री-सोना-धन, लोभ-सर्प का करे शमन।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित, औषध मंत्र बसा जिस मन।।
यह सब जिनवर का, हो-हो-2 उपदेश कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

76. पहले पंचेन्द्रिय तन-मन-वचन पैर कर का मुण्डन।
जो पश्चात् मुंडाता सिर, करता केशों का लुंचन।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नेता कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

77. पति - भक्ति से रहित सती, जिनभक्ति बिन जैनमती।
गुरुभक्ति बिन शिष्य अरे, पाता निश्चय ही दुर्गति।।
भक्ति बिन सुगति, हो-हो-2, कभी कोई न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

78. गुरुभक्ति बिन शिष्य अरे, क्यों सब परिग्रह त्याग करे।
ऊसर भूमि में जैसे, श्रेष्ठ बीज को वपन करे।।
जप तप व्रत आदि, हो-हो-2, निष्फल कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

79. राज्य अगर नृपहीन रहे, सेना स्वामी विहीन रहे।
राष्ट्र देश ग्रामादि सभी, नशते स्वामी-हीन अरे।।
गुरु की भक्ति बिन, हो-हो-2, नहिं शिष्य कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

80. रुचि भी है सम्यक्त्व बिना, दानभाव भी भक्ति बिना।
धर्म - क्रिया का पालन भी, करता कोई दया बिना।।
गुरुभक्ति बिन तप, हो-हो-2, निष्फल कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

81. निंद्य ग्राह्य का नहीं विचार, लगता इन्द्रिय सुख ही सार।
क्या है त्याज्य ग्राह्य क्या है, क्या है मोक्ष शान्ति का द्वार।।
अज्ञानी ऐसा, हो-हो-2, कभी जान न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

82. कायक्लेश उपवास करो, दुर्धर तप आचरण धरो।
शुद्ध आत्मा की रुचि हो, अष्ट कर्म का नाश करो।।
शुद्धात्म रुचि बिन, हो-हो-2, तू पुण्य कमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

83. परमब्रह्म का ज्ञान नहीं, निजस्वरूप श्रद्धान नहीं।
कर्मों का क्षय नहिं करता, इसभव परभव जीव कहीं।।
जिनलिंग धरके, हो-हो-2 बोलो क्या पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

84. नहीं देखता आतम को, नहीं चिंतता आतम को।
न श्रद्धान किया करता, नहीं भावता आतम को।।
वह बाह्यभेषी, हो-हो-2, मुनि क्या सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

85. नहीं जानता आतम को, नहीं मानता आतम को।
वह दुख को ही पाता है, कहलाता बहिरातम वो।।
इक सुख स्वभावी, हो-हो-2, आतम कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

86. दृष्टि में निजतत्त्व नहीं, हो सकता सम्यक्त्व नहीं।
गर सम्यक्त्व नहीं पाया, मिल सकता शिवतत्त्व नहीं।।
सम्यक्त्व सुख का, हो-हो-2, साधन कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

87. दुर्ग बिना शोभा नृप की, दान-दया बिन श्रावक की।
ज्ञान बिना शोभा तप की, जीव बिना शोभा तन की।।
कैसे हो सकती, हो-हो-2, नहिं शोभा पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

88. अगर परिग्रह होता है, साधु साधुता खोता है।
श्लेषम में मक्खी जैसा, काय क्लेश पा रोता है।।
लोभी अज्ञानी, हो-हो-2, क्यों क्लेश उठाये रे - ऽऽ। रयणसार...

89. अगर ज्ञान अभ्यास नहीं, तत्त्वज्ञान उल्लास नहीं।
ध्यान कहाँ से हो सकता, जिस बिन कर्म विनाश नहीं।।
मुक्ति चाहे भी, हो-हो-2, पर मुक्ति न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

90. स्वाध्याय ही ध्यान कहा, इन्द्रिय सुख अवसान कहा।
काषायिक परिणतियों का, निग्रह कार्य महान कहा।।
आतम अभ्यासी, हो-हो-2, ज्ञानी कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

91. पापारंभ निवृत्ति का, पुण्यारंभ प्रवृत्ति का।
सम्यग्ज्ञान ही कारण है, एक मात्र शुभवृत्ति का।।
सम्यग्ज्ञानी ही, हो-हो-2, धर्मध्यान को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

92. आगम का अभ्यास नहीं, सम्यक् तप आगाज नहीं।
श्रुताभ्यास के बिन भैया, तप बनता सरताज नहीं।।
अज्ञानी इन्द्रिय, हो-हो-2, सुख में भरमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

93. तत्त्वविचार किया करते, दुख परिहार किया करते।
मोक्षमार्ग आराधन में, गुरु नित लीन रहा करते।।
धर्म कथायें, हो-हो-2, गुरुदेव सुनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

94. जो विकथा से मुक्त रहें, अधः कर्म से मुक्त रहें।
बारह अनुप्रेक्षाओं के, चिंतन में संयुक्त रहे।।
मुनि सम्यग्ज्ञानी, हो-हो-2, प्रवचन कुशल कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

95. निंदा से जो दूर रहें, कभी वंचना नहीं करें।
परिषह को उपसर्गों को, और दुखों को सहन करें।।
परिग्रह त्यागी मुनि, हो-हो-2, ध्यानाध्ययन पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

96. निर्विकल्प निर्बन्ध सदा, निष्कलंक निर्मोह सदा।
निर्मल नियत स्वभावी जो, वह योगी मुनिराज सदा।।
निर्ग्रंथ दर्शन, हो-हो-2, कर मन हर्षाये रे - ऽऽ। रयणसार...

97. करते कायक्लेश बहुत, होकर मिथ्याभाव सहित।
सुन सर्वज्ञ देशना भी, मोक्ष - सौख्य से रहे रहित।।
मिथ्यात्व दुख का, हो-हो-2, कारण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

98. रागादि मन सहित रहे, आत्मस्वरूप दिखाई न दे।
जैसे दर्पण मलिन रहे, निज चेहरा भी नहीं दिखे।।
जो राग त्यागी, हो-हो-2, निज रूप दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

99. तीन दण्ड वश नहीं करे, तीन शल्य को हृदय धरे।
ईर्ष्या कलह याचना की, परिणतियाँ अभिमान करे।।
ऐसा साधु ही, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

100. साधु देहासक्त अगर, हो विषयों में मस्त अगर।
काषायिक परिणति सहित, आत्म स्वभाव प्रमत्त अगर।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

101. जो धनधान्य उपकरण में, रखे कांक्षा आरंभ में।
व्रत-गुण-शील सहित होकर, ईर्ष्या रखते हैं मन में।।
कषाय कलह प्रिय, हो-हो-2, वाचाल कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

102. संघ विरोध किया करते, जो स्वच्छंद रहा करते।
गुरु के निकट नहीं रहते, राजा की सेवा करते।।
जिनधर्म नाशक, हो-हो-2, वह साधु कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

103. ज्योतिष - वेद्यक - मंत्रादि, वात - विकार या भूतादि।
जो धन आदि ग्रहण करके, चला रहे जीवन आदि।।
सच्चे श्रमणों के, हो-हो-2, ये दोष कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

104. पापाचार किया करते, जो कषाय में रत रहते।
रहें लोक व्यवहार रहित, परिग्रह आसक्ति रखते।।
ऐसे साधु ही, हो-हो-2, श्रद्धा हीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

105. नहिं पर का गौरव सहते, अपनी महिमा खुद कहते।
अपनी स्तुति स्वयं करें, जिव्हा लोलुपता धरते।।
ऐसे साधु ही, हो-हो-2 श्रद्धाहीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

106. चर्म माँस अस्थि लोभी, श्वान भोंकता देख मुनि।
वैसे धर्मीजन को देख, कलह करें पापी निर्गुणि।।
निज स्वार्थवश ही, हो-हो-2, वह कलह कराये रे - ऽऽ। रयणसार...

107. ध्यान और अध्ययन सिद्धि, ज्ञान और संयम वृद्धि।
यथालाभ भोजन करता, साम्यभाव की समृद्धि।।
ऐसा साधु ही, हो-हो-2, शिवपथ लीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

108. मुनि करते उदराग्नि शमन, कोई मुनि अक्षमृक्षण।
मुनि गोचरी करते हैं, कोई मुनि श्वभ्रपूरण।।
मुनिराज भ्रामरि, हो-हो-2, चर्या अपनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

109. तन रस-रुधिर-माँस-मेदा, अस्थि-शुक्र-मल-मूत्र भरा।
पीव कृमि दुर्गन्धसहित, अशुचि अनित्य चर्ममय हा।।
यह तन अचेतन, हो-हो-2, नशनीय कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

110. तन बहु दुःख का भाजन है, कर्मास्रव का कारण है।
आत्मतत्त्व से भिन्न मगर, अनुष्ठान का साधन है।।
यह मान भिक्षु, हो-हो-2, पोषण भी दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

111. संयम तप अध्ययन विज्ञान, मुनिजन करते आतमध्यान।
करते हैं आहार ग्रहण, तन पुष्टि का नहीं निदान।।
संयम कारण तज, हो-हो-2, दुख छोड़ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

112. जो साधु याचना करे, क्रोध धरे व कलह करे।
रौद्र क्लेश परिणामों से, रुष्ट हुआ आहार करे।।
वह क्या साधु है, हो-हो-2, व्यंतर कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

113. तपे लोह सम शुद्ध कहा, करगत पिण्ड विशुद्ध कहा।
नौका के जैसा भैया, भवतारक अविरुद्ध कहा।।
शुद्धाहारी हो, हो-हो-2, शुद्धातम पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

114. अविरत-दृष्टि देशव्रती, आगम-रुचिधर महाव्रती।
तत्त्व-विचारक भेदों से, पात्र हजारों जैनमती।।
जिनवर देवों ने, हो-हो-2, यह भेद बताये रे - ऽऽ। रयणसार...

115. उपशम निरीहता अध्ययन, ध्यान आदि शुभ महान गुण।
जिन मुनि में देखे जैसे, पात्र कहें वैसे मुनिजन।।
वे पात्र उत्तम, हो-हो-2, आदि कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

116. श्री जिन अर्हत् सिद्धस्वरूप, निज आतम त्रय भेद स्वरूप।
नहीं जानता, करता है तीव्र महातप नाना रूप।।
वह चिर संसारी, हो-हो-2, परिभ्रमण को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

117. अहो! शुद्ध सम्यग्दर्शन, परिग्रह-शल्यरहित मुनिजन।
धर्मध्यान में लीन सदा, पात्रविशेष कहें गुणिजन।।
इन गुण बिन वेषी, हो-हो-2, विपरीत कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

118. जिनमें समकित गुण प्रगटें, जिनवर पात्र विशेष कहें।
पात्र विशेष जानकर जो, सम्यक् दान प्रदान करें।।
वह मोक्ष पथ में, हो-हो-2, लवलीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

119. जो निश्चय व्यवहार स्वरूप, नहिं जाने रत्नत्रय रूप।
वह जो कुछ भी करता है, कहलाता सब मिथ्यारूप।।
ऐसा जिनवर का, हो-हो-2, उपदेश कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

120. तत्त्व जानकर भी क्या लाभ, बहु तप करके भी क्या लाभ?
समकित शुद्धि रहित ऐसे, ज्ञान और तप से क्या लाभ?
संसार का ही, हो-हो-2, वह बीज कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

121. व्रत, गुण, शील, परीषह-जय, चारित्र, तप, षट्-आवश्यक।
ध्यान और अध्ययन सभी, समकित बिन सब भवकारक।।
संसार का ही, हो-हो-2, वह बीज कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

122. ख्याति - लाभ पूजा सत्कार, क्यों चाहे करता स्वीकार।
हे योगी! यदि चाह रहा, तू परलोक आत्म - उद्धार।।
ख्याति से क्या तू, हो-हो-2, परलोक को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

123. जो मुनि कर्मज सर्व विभाव, और आत्मज सर्व स्वभाव।
भावपूर्वक भा करके, करता रुचि निज शुद्धस्वभाव।।
उसका नियम से, हो-हो-2, निर्वाण दिखाए रे - ऽऽ। रयणसार...

124. मूल - प्रकृति, प्रकृति - उत्तर, द्रव्य - प्रकृति उत्तर-उत्तर।
भावकर्म से मुक्तातम, बन्धास्रव-संवर-निर्जर।।
सब जानता है, हो-हो-2, 'बहुणा किं' पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

125. योगी विषयासक्त कहा, योगी विषय-विरक्त कहा।
एक कर्म से बँधता है, एक कर्म से छूट रहा।।
तिविहातम जानो, हो-हो-2, 'बहुणा किं' पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

126. अहो! निजातम ज्ञान और ध्यान, अध्ययन सुख-अमृत रसपान।
छोड़ जो इन्द्रिय सुख भोगे, निश्चय से बहिरातम जान।।
सर्वज्ञवाणी, हो-हो-2, कभी इसे न भाये रे - ऽऽ। रयणसार...

127. पका हुआ किंपाक फलं, विष मोदक इन्द्राणफलं।
दिखने में सुन्दर प्रिय है, जीभ सुखं परिणाम खलं।।
ऐसा इन्द्रिय सुख, हो-हो-2, दुःख को उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

128. स्त्री, पुत्र, मित्र तन को, निज वैभाविक चेतन को।
आत्मस्वरूप मानता है, नहीं जानता निज धन को।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, बहिरात्म कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

129. इन्द्रिय विषयों में रमता, तत्त्वभावना नहिं करता।
विषय महादुखदायी है, कभी विचार नहीं करता।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, बहिरात्म कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

130. होते इन्द्रिय सुख जितने, देते हैं बहु-दुख उतने।
तीव्र दुखी होता आतम, नहीं विचार किया जिसने।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, बहिरात्म कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

131. जीव जन्मता विष्टा में, रुचि रखता उसी विष्टा में।
त्यों बहिरातम की बुद्धि, रहे विषय - सुख विष्टा में।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, निज सुख न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

132. खाद्य-अखाद्य, क्षार-अमृत, भक्ष्य-अभक्ष्य विवेकरहित।
ज्यों म्लेच्छ मानव जाति, भेद न करती ज्ञानरहित।।
बहिरात्मा भी, हो-हो-2, अज्ञान दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

133. तन से आतम भिन्न अहा, नहीं स्वप्न में विषय लहा।
आत्मस्वरूप करे अनुभव, नित शिवसुख में लीन रहा।।
ऐसा वह मध्यम, हो-हो-2, आतम कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

134. समकित जल से धोने पर, ज्ञानामृत भी होने पर।
चिर वासित मलमूत्र भरे, घट सम गंध संजोने पर।।
दुर्वासना को, हो-हो-2, वह छोड़ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

135. ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अरे, सुख अनुभूति अनिच्छ करे।
रोगी रोग मिटाने ज्यों, कड़वी औषधि ग्रहण करे।।
उससे वह औषधि, हो-हो-2, छोड़ी न जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

136. 'किं बहुणा' हे भव्य सुनो, बहिरातम सब भाव तजो।
अन्तर - आतम परमातम, इन संबंधी भाव भजो।।
वस्तुस्वभावी, हो-हो-2, परिणति उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

137. बहिरातम के वस्तुस्वभाव संबंधी जो होते भाव ।
चतुर्गति संसारभ्रमण, दुख के कारण हैं सब भाव।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, निज सुख न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

138. अन्तरात्म के वस्तुस्वरूप, परमातम के वस्तुस्वरूप।
संबंधी जो होते भाव, हैं शिवगति के कारणरूप।।
शुभ पुण्य के भी, हो-हो-2, कारण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

139. जो स्वसमय परसमय के, द्रव्य और गुण-पर्यय से।
भेद जानता, वह अपना आतम जाने आतम से।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

140. बहिरातम परसमय कहा, अन्तरात्म परसमय कहा।
गुणस्थान क्रम से जानो, परमातम स्वसमय कहा।।
जिनवर देवों ने, हो-हो-2, यह भेद दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

141. प्रथम तीन हैं बहिरातम, चौथा जघन अंतरातम।
ग्यारहवें तक मध्यम हैं, बारह परम अंतरातम।।
परमातम तेरह, हो-हो-2, चौदह सिद्ध कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

142. तीन मूढ़ताएँ छोड़े, तीन शल्य से मुख मोड़े।
तीन दोष जो योगि तजे, तीन दण्ड-गारव छोड़े।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

143. रत्नत्रय संयुक्त अरे, तीन - करण से युक्त अरे।
तीन - योग त्रय - गुप्ति की, जो विशुद्धि से युक्त अरे।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

144. जो जिनमुद्रा का धारक, परमोपेक्षा आराधक।
जो विराग सम्यक्त्व सहित, है सच्चा ज्ञानी साधक।।
वो योगी शिवपथ, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

145. बहि-अभ्यन्तर ग्रंथ - रहित, अहो! शुद्ध-उपयोग सहित।
मूलगुणों से पूर्ण अहा! योगी उत्तर - गुणों सहित।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

146. जो समकित कहलाता है, शिवसुख लाभ कराता है।
उसको सुनता-साधता है, साधु उसी को ध्याता है।।
जन्मादि दुःख अरि, हो-हो-2, के विष को नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

147. जो परमात्म नरेन्द्रों से, देवेन्द्रों नागेन्द्रों से।
समकित गुण प्रधान जानो, पूजित गणधर इन्द्रों से।।
हे भवि 'बहुणा किं', हो-हो-2, रुचि श्रेष्ठ कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

148. अवसर्पिणी काल का दोष, मिथ्यात्व का उदय प्रदोष।
जीवों का उपशम - समकित, हो जाता है नष्ट ये दोष।।
काषायिक परिणति, हो-हो-2, फिर से उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

149. गुण-व्रत-तप-सम-प्रतिमा-दान, जलगालन शुभधर्म महान।
सूर्य अस्त के बाद न भोज, सम्यग्दर्शन-चारित्र-ज्ञान।।
श्रावक की त्रेपन, हो-हो-2 किरिया कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

150. ज्ञान-ध्यान की सिद्धि दे, ध्यान कर्म-निर्जरा करे।
मोक्ष निर्जरा का फल है, अतः ज्ञान - अभ्यास करे।।
ज्ञानाभ्यासी ही, हो-हो-2, मुक्ति को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

151. कुशल व्यक्ति के तप जानो, निपुण के संयम पहिचानो।
समताभावी के वैराग्य, श्रुतभावना से त्रय मानो।।
इससे श्रुत की ही, हो-हो-2, भावना जगाये रे - ऽऽ। रयणसार...

152. जीव पंच संसार भ्रमण, मिथ्यादर्शन है कारण।
बीता काल-अनंत अरे, किन्तु न समकित हुआ वरण।।
यह भव-परिभ्रमणा, हो-हो-2, इसलिए दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

153. प्राप्त शुद्ध सम्यक्त्व करे, जीव तभी सुख वरण करे।
जब तक समकित शुद्ध नहीं, जीव तभी तक दुखी रहे।।
समकित ही सुख का, हो-हो-2, कारण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

154. समकित बिन सब है दुःखरूप, समकित सहित सभी सुखरूप।
अरे, बहुत कहने से क्या ? जानो निश्चय के अनुरूप।।
समकित की महिमा, हो-हो-2, जिनदेव सुनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

155. नय निक्षेप प्रमाण अरे, नव छन्दादि पुराण अरे।
नाट्यशास्त्र शब्दालंकार, किया सभी का ज्ञान अरे।।
समकित बिन किरिया, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

156. वसति प्रतिमोपकरणादि, शास्त्र संघ गण-गच्छादि।
पुत्र-पौत्र जाति कुल शिष्य, प्रतिशिष्य पुस्तक आदि।।
ममकार इनमें, हो-हो-2, बाधक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

157. पिच्छी में वा संस्तर में, इच्छाओं को अंतर में।
जब तक लोभ ममत्त्व करे आर्त-रौद्र के अनुभव में।।
तब तक न मुक्ति, हो-हो-2, न सुख को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

158. रत्नत्रय गण-गच्छ अहा, गुण समूह ही संघ अहा।
मोक्षमार्गी साधु का, निर्मल आतम समय अहा।।
निश्चय से जाने, हो-हो-2, तो कर्म नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

159. जैसे सूरज आता है, गहन तिमिर हट जाता है।
वायु मेघ, अग्नि वन को, गिरि को वज्र नशाता है।।
वैसे ही समकित, हो-हो-2, कर्मों को नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

160. मिथ्यात्व अंधकार रहित, रत्नदीप सम जो समकित।
अपने शुभ अंतरमन में, भावसहित करता प्रजलित।।
तिहुँलोक देखे, हो-हो-2, यह जिनवर गाये रे - ऽऽ। रयणसार...

161. ज्यों जल शुध निर्मली करे, स्वर्ण कालिमा रहित अरे।
निर्मल सम्यग्दर्शन को, भव्य - जीव जो प्राप्त करे।।
समकित से निर्मल, हो-हो-2, आतम को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

162. समयसार अभ्यास करे, परमध्यान निज पास करे।
जहाँ ध्यान परमातम का, वहीं कर्मक्षय नाश करे।।
कर्मों के क्षय से, हो-हो-2, मुक्ति को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

163. योग शुद्ध जो करता है, भाव - विशुद्धि धरता है।
धर्मध्यान का अभ्यासी, परमध्यान को वरता है।।
परमात्म ध्यानी, हो-हो-2, कर्मों को नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

164. जो अति शोधन क्रिया करे, शुद्ध स्वर्ण हो लिया करे।
आतम काल-लब्धियों से, परमातम पद लिया करे।।
शुद्धात्मज्ञानी, हो-हो-2, शिवपद को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

165. कामधेनु ज्यों चिन्तामणि, कल्पवृक्ष ज्यों पारसमणि।
मनुज प्राप्तकर रासायन, इच्छित सुख भोगता गुणि।।
समकित से इस भव, हो-हो-2, परभव सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

166. रयणसार यह ग्रंथ महान, देता सम्यग्दर्शन-ज्ञान।
तपोभाव, वैराग्य, चरित्र, निरीहता, गुण, शील महान।।
निजभाव को यह, हो-हो-2, उत्पन्न कराये रे - ऽऽ। रयणसार...

167. नहीं मानता सुनता जो, चिन्तन-पठन न करता जो।
रयणग्रंथ जिनवर वर्णित, नहीं भावना करता जो।।
वह मिथ्यादृष्टि, हो-हो-2, जग में कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

168. रयणसार यह ग्रंथ महान, सज्जनजन से पूजित जान।
जो निरालसी पढ़ता नित, सुनता भाता प्रतिदिन जान।।
वो भवि ही शाश्वत, हो-हो-2, स्थान को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(रयणोदय संदर्भ ग्रंथ)

ग्रंथ कानाम	ग्रंथ कर्ता	रयणोदय पृष्ठांक
बारह भावना	मंगतराय	6, 13, 65, 247, 248, 256, 260
दर्शन प्राभृत	आचार्य कुंदकुंद	8, 174
समाधिमरण (भाषा)	कवि द्यानतराय	11
ज़ाहिद की ग़ज़लें	आचार्य विमर्शसागर	12, 48, 172, 203, 253
महावीराष्टक	कवि भागचन्द्र	13
सूत्रपाहुड	आचार्य कुंदकुंद	15, 155
समाधि भावना	शिवराम	16, 44, 190
धवला पुस्तक - 1	आचार्य वीरसेन	22
तिलोयपण्णत्ति - 1	आचार्य यतिवृषभ	22, 136
द्वात्रिंशतिका	आचार्य अमितगति	23
सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह	आचार्य अजितसागर	24, 27, 33, 35, 66, 69, 260, 316
कातंत्र व्याकरण	आचार्य शर्ववर्म	29
वृहद द्रव्यसंग्रह टीका	आचार्य ब्रह्मदेव	30,36
सम्यक्त्व कौमुदी	अज्ञात	39, 45, 89
सामायिक पाठ (हिन्दी)	आचार्य विमर्शसागर	45
यशस्तिलक चंपू	आचार्य सोमदेव	62
परमानंद स्तोत्र	अज्ञात	62

ग्रंथ कानाम	ग्रंथ कर्ता	रयणोदय पृष्ठांक
मेरी भावना	जुगलकिशोर मुख़्तार	138
आदिपुराण	आचार्य जिनसेन	157
समयसार	आचार्य कुंदकुंद	161, 172
पंचास्तिकाय	आचार्य कुंदकुंद	171
अध्यात्म अमृत कलश	आचार्य अमृतचंद	203
कल्याणालोचना	ब्रह्मचारी अजित	244
बारसाणुपेक्खा	आचार्य कुंदकुंद	249
आदिनाथ जिनपूजा	आचार्य विमर्शसागर	250, 257, 258, 260, 264
समाधिमरण	कवि सूरचन्द्र	250
समाधि भक्ति	आचार्य पूज्यपाद	275
समाधि तंत्र	आचार्य पूज्यपाद	292
सर्वार्थसिद्धि	आचार्य पूज्यपाद	296, 297
धवला - 6	आचार्य वीरसेन	298
नीतिवाक्यामृत	आचार्य सोमदेव	307
गीतांजलि	आचार्य विमर्शसागर	315
समर्पण के स्वर	आचार्य विमर्शसागर	315